ब्रह्मास्त्रविद्या
एवम्
बगलामुखी-साधना



डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

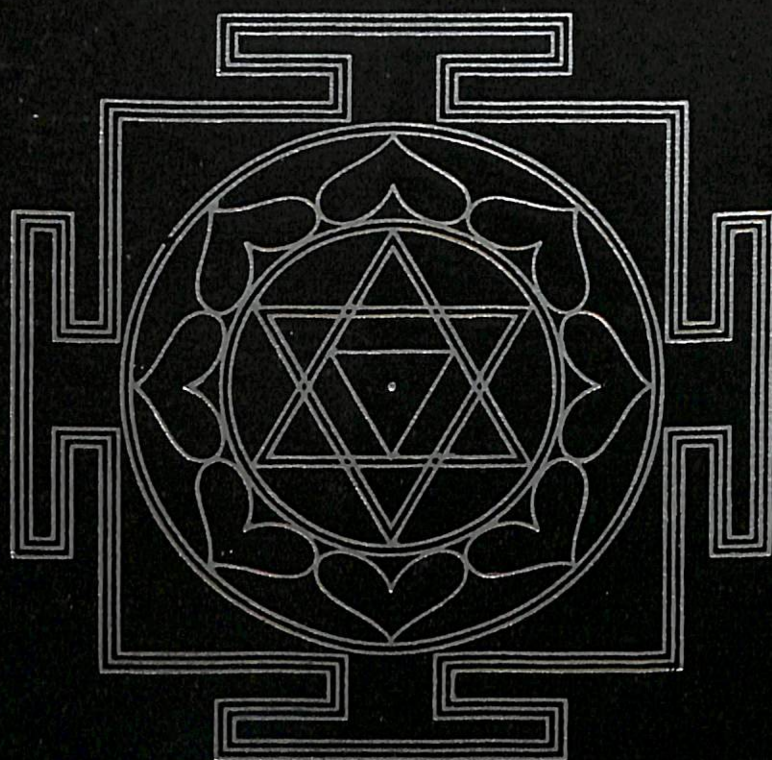


श्यामाकान्त द्विवेदी

ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना

ब्रह्मास्त्रविद्या
एवं
बगलामुखी-साधना

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'



भगवती बगलामुखी यन्त्र

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन - वाराणसी

श्यामाकान्त द्विवेदी

ब्रह्मास्त्रविद्या
एवं
बगलामुखी-साधना





॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

450



ब्रह्मास्त्रविद्या
एवं
बगलामुखी-साधना

लेखक

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्.



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263

प्रथम संस्करण 2009
मूल्य : 700.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

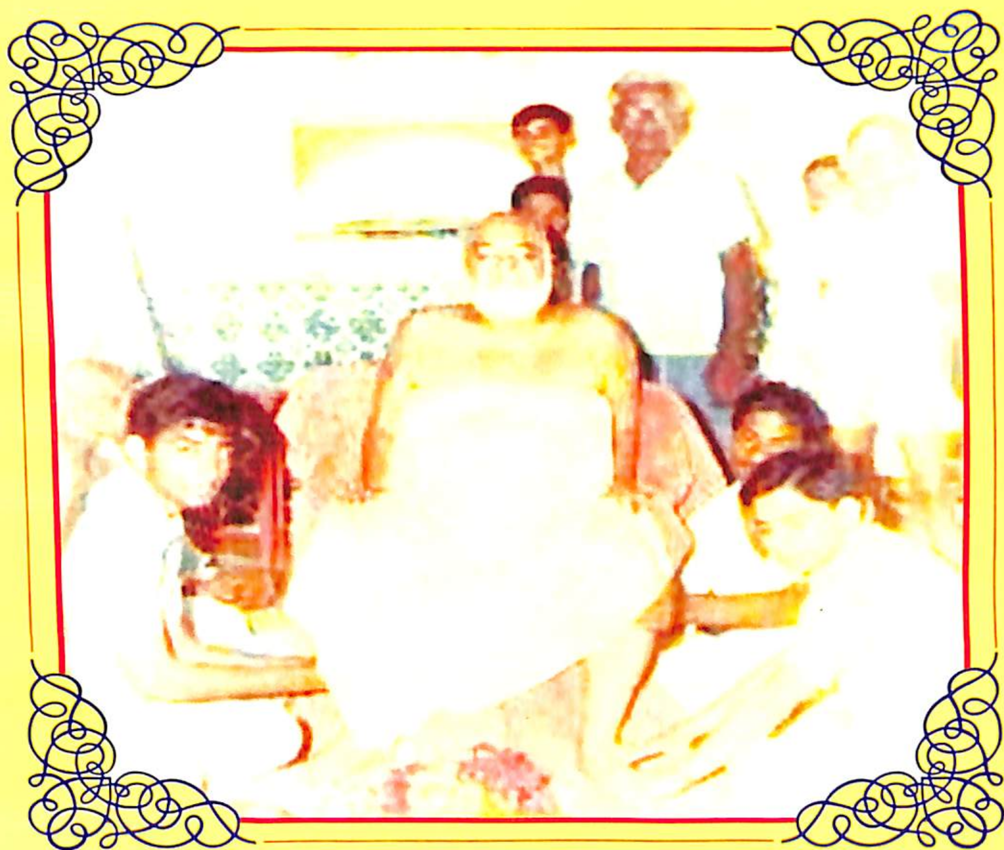
•

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

•

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 23286537

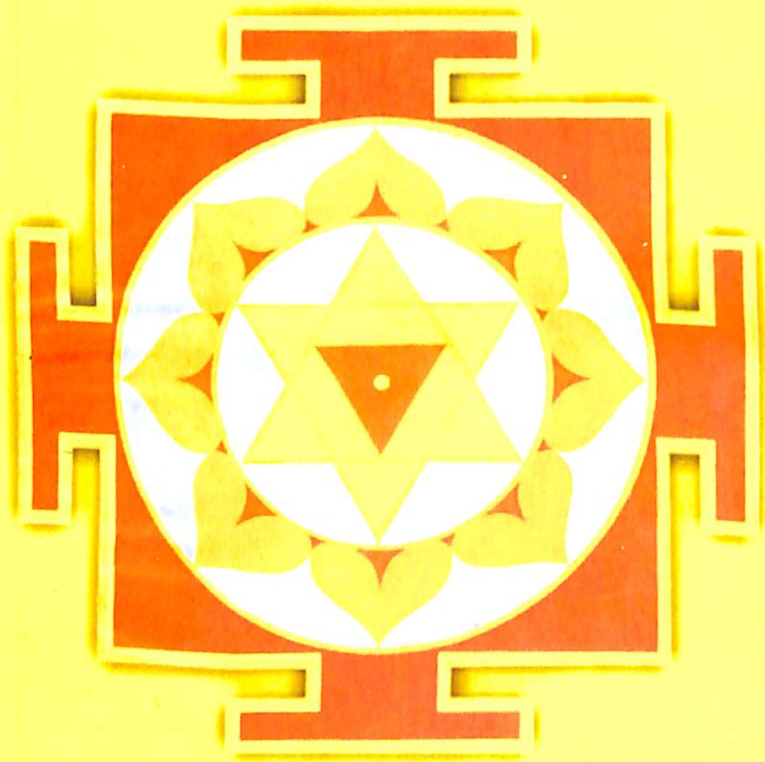
समर्पण



महाविद्या भगवती बगलामुखी के परम उपासक

स्वामी जी महाराज

पीताम्बरापीठ, दतिया (म.प्र.)



बगलामुखी यन्त्र

दो शब्द

भारतीय दार्शनिकों ने विश्व के मूल में अवस्थित परमतत्त्व को निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म के रूप में पहचान कर—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' के द्वारा उस निर्गुण-निराकार तत्त्व की जिज्ञासा तो की किन्तु वह निर्गुण-निराकार ब्रह्म शक्ति के बिना इतना अशक्त था कि वह उसके बिना हिल भी नहीं सकता था—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि' ।।

अतः उन्हें ब्रह्म-जिज्ञासा छोड़कर ब्रह्म के हृदय में निवास करने वाली उसकी शक्ति की जिज्ञासा करनी पड़ी। यह शक्ति कहीं तो उस ब्रह्म की आत्मगता पराशक्ति के रूप में तो कहीं परमाराध्य ब्रह्म के रूप में भावित हुई। इसी भावित स्वरूप की जिज्ञासा आचार्य हयग्रीव एवं ऋषि अगस्त्य के शब्दों में—'अथातः शक्तिजिज्ञासा' के रूप में प्रकट हुई। ऋषियों को इसी जिज्ञासा में—'किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता ? जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः। अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्' (श्वे. उप.)—के प्रश्न का उत्तर मिल सका। प्राचीनतम उपनिषदों में से एक उपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद् में इसी शक्ति का उल्लेख इस रूप में किया गया है—

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'।

यही आद्या परमा शक्ति कभी स्वातन्त्र्य शक्ति के रूप में तो कभी विमर्श शक्ति के रूप में; कभी भुवनेश्वरी के रूप में तो कभी महात्रिपुरसुन्दरी के रूप में; कहीं कालिका के रूप में तो कहीं भगवती बगलामुखी के रूप में प्रकट हुई। यह पुस्तक उन्हीं परा, जगदम्बिका, सर्वेश्वरी, सर्वदेवाराध्या एवं परात्पर पराशक्ति भगवती बगलामुखी महाविद्या को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। उनका स्वरूप इस प्रकार है—

'जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि।
चतुर्भुजां त्रिनयनां पीतवस्त्रधरां शिवाम्।
वन्देऽहं बगलां देवीं शत्रुस्तम्भनकारिणीम् ।।
योगिनीकोटिसहितां पीताहारोऽपि चञ्चलाम्।
कमलां परमां वन्दे परब्रह्मस्वरूपिणीम्' ।।

वे सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं।

इन्हीं भगवती बगलामुखी की विद्या ब्रह्मास्त्रविद्या है। इस ब्रह्मास्त्रविद्या का प्रयोग एवं उपयोग अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों के पूर्त्यर्थ किया जाता है। यथा—

'अमात्यानां च दुष्टानां दूषकानां दुरात्मनाम्।
दुष्टग्रहादिजातीनां सैन्यानामपि पुत्रक ॥
क्रूरग्रहविनाशाय सर्वशान्त्यर्थमेव च।
पराभिचारशान्त्यर्थं रक्षार्थं च विशेषत: ॥
अपमृत्युविनाशार्थं रोगशान्त्यर्थमेव च।
परसेनाविनाशाय स्वसेनारक्षणाय च ॥
आत्मार्थं च परार्थं च विजयार्थं च षण्मुख।
वेतालादिविनाशार्थं भैरवादिप्रशान्तये ॥
समस्तविषनिर्नाशमुष्टिकुक्षिविधावपि ।
शस्त्रास्त्रशरसन्धाने संहारास्त्रादिनाशने ॥
शस्त्रास्त्रस्तम्भनेषु च तद्वत्सूचीविधावपि।
स्तब्धीकरणनाशार्थं मृतकोत्थापनेऽपि च ॥
देशोपद्रवनाशार्थे राष्ट्रभङ्गसमागमे।
कोटिकृत्याविनाशार्थं स्वेष्टरक्षणकर्मणि ॥
महाविषे तैजसे तु विण्मूत्रबीजरक्तते।
उद्भ्रान्तघूरिनाशार्थे घटकृत्यविनाशने ॥
जलकृत्याविनाशार्थे स्थलकृत्याविनाशने।
वातकृत्याविनाशार्थे गन्धकृत्याविनाशने ॥
महेन्द्रपदनिर्नाशे विरुण्डानाशनेऽपि च।
भेरुण्डानाशनाद्यर्थे रक्तपावेशभैरवे ॥
शैलस्तम्भे दारुनाशे मन्त्रमण्डलरोगहृत्।
सत्यब्रह्मास्त्रयोगोऽयं सर्वथा चलति ध्रुवम् ॥
अमोघमृत्युनाशाय समाश्चर्यरमा यदि।
तं प्रयोगमहायोगं शृणु सार्वहितो भव' ॥

भगवती की महाविद्या का प्रयोग अभिचारषट्क के लिए भी किया जाता है जो निम्नांकित हैं—

'शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने तथा।
मारणानि प्रशंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिण:' ॥

१. शान्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

'नानारोगै: कृत्रिमैश्च नानाचेष्टाक्रमेण च।
विषभूतप्रयोगेषु निरास: शान्तिरीरिता' ॥

२. वश्य का स्वरूप—

'वश्यं जनानां सर्वेषां वात्सल्यं हृद्गतं स्मृतम्' ॥

३. स्तम्भन का स्वरूप—

'स्तम्भनं रोधनं पुत्र सर्वकर्मसुनिश्चितम्' ।

४. विद्वेषण का स्वरूप—

'मिश्रस्य कलहोत्पत्तिर्विद्वेषणमुदाहृतम्' ।

५. उच्चाटन का स्वरूप—

'बलं बुद्धिभ्रमेणोक्तमुच्चाटनमिदं भुवि' ॥

६. मारण का स्वरूप—

'प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम्' ॥

किन्तु इन षट् कर्मों का प्रयोग आपदाएँ आने पर भी (सामान्यत:) नहीं करना चाहिए, क्योंकि अन्यथा देवता शाप दे देते हैं—

'न कर्तव्यं प्रयोगादि आपद्यपि कदाचन ।
यः करोति प्रयोगान् सो देवता शापमाप्नुयात्' ॥

(सांख्यायनतन्त्र)

यदि प्राणसङ्कट ही आ जाय तब तो—'ॐ ह्ल्रीं ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'—के जप के साथ भगवती से—

'मातर्भञ्जय मे विपक्षवदनं, जिह्वाञ्चलं कीलय
ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रयाशु धिषणामङ्घ्र्योर्गतिं स्तम्भय ।
शत्रूंश्चूर्णय चूर्णयाशु गदया गौराङ्गि पीताम्बरे
विघ्नौघं बगले हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णेक्षणे' ॥

—यह प्रार्थना करते हुए यन्त्र-पूजन के सहित पुरश्चरण एवं अग्रोक्त विधान सहित भगवती की षोडशोपचार पूजा करनी चाहिए ।

यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक आध्यात्मिक साधना का मूल उद्देश्य आत्मोन्नति, नि:श्रेयस् एवं विश्वकल्याण है । अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए जगन्माता एवं उनकी ब्रह्मास्त्रविद्या का प्रयोग करना प्रत्येक दृष्टि से अनौचित्यपूर्ण है । अन्य विद्याओं की भाँति इस विद्या का भी अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है—'मोक्षार्थी च गुरुं यत्नाच्छुश्रूषेणैव तोषयेत्' । इसीलिए इस महाविद्या की साधना की दिशा में योग की 'षट्चक्रभेदन' प्रक्रिया द्वारा—१. स्वात्मैक्य-स्थापन एवं २. विद्या-सामरस्य को लक्ष्य बनाकर अन्तर्यात्रा करने का निर्देश दिया गया है—

'षट्चक्रभेदनं कृत्वा स्वात्मैक्यं च विभाव्य च ।
विद्यारूपो भवेत्पुत्र साम्राज्यपरमेष्ठिता' ॥

इसीलिए स्पष्ट रूप में कहा गया है कि इस महाविद्या का प्रयोग परपीड़ा के लिए नहीं किया जाना चाहिए—

'मुमुक्षुभिर्न कर्तव्या परपीडा कदाचन'।

इस अन्यतमा ब्रह्मास्त्रमहाविद्या का प्रयोग करने से तो अनन्त ब्रह्माण्डों का भी महाध्वंस हो सकता है, किन्तु इसके प्रयोग की मर्यादाएँ भी हैं और इसका प्रयोगानुशासन भी है।

यह महाविद्या आभिचारिक कर्मों की सिद्धियों एवं उनके प्रयोगों को केन्द्र में रखकर प्रवर्तित नहीं हुई, क्योंकि इसके द्वारा ज्ञान, शक्ति एवं वैराग्य तथा मोक्ष भी प्राप्त होता है—'ज्ञानं शक्तिं च वैराग्यं लभते च सुनिश्चितम्'। क्योंकि भगवती मोक्षप्रदा हैं अत: अपने भक्तों के लिए महामोक्षप्रदायिनी हैं—'महाभोगवती देवी महामोक्षप्रदायिनी'। भगवती की पूजा बिन्दु में स्वर्णसिंहासन पर आसीन, सर्वसिद्धिप्रदायिका, चिन्मयी पराशक्ति के रूप में करनी चाहिए—

'बिन्दुमध्ये च सम्पूज्य स्वर्णसिंहासनोपरि।
चिन्मयीं बगलां देवीं सर्वसिद्धिप्रदायिकाम्॥
चतुर्भुजां वा द्विभुजां गदाजिह्वाञ्च बिभ्रतीम्।
पीतवर्णां मदाघूर्णामर्चयेन्मूलविद्यया'॥

यह महाविद्या समस्त विद्याओं का प्रभाव नष्ट करके अपना प्रभाव दिखाती है—

'ग्रसनी सर्वविद्यानां बगलैकैव भूतले'॥

इसीलिए कहा गया है कि—'बगलायास्तु वै मन्त्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्'। भगवती विश्वरूपा है अत: विश्व के सारे रूप उन्हीं के हैं—

'भजेऽहं स्तम्भनार्थं च चिन्मयीं विश्वरूपिणीम्।

इसीलिए किसी भी रूप को कष्ट पहुँचाना भगवती को ही कष्ट पहुँचाना होगा अत: यह वर्ज्य है। मोक्ष काम्य है—'तारादि प्रजपेन्मन्त्रं मोक्षार्थी च कुमारक'। विश्व शक्तिमय है और यह शक्ति ही बगलामुखी हैं—'विश्वमेतच्छक्तिमयं सा शक्तिर्बगलामयी'। अत: महाविद्योपासना का लक्ष्य देवी का साक्षात्कार होना चाहिए—

'एवं कृत्वा तत्त्वलक्षं देवीं प्रत्यक्षमाप्नुयात्'।

साधक का लक्ष्य है 'जीवन्मुक्ति'। इस साधना द्वारा वह जीवन्मुक्त भी हो जाता है—

'जीवन्मुक्त: स एवात्र स सिद्धो नात्र संशय:'॥

यह महाविद्या नरनारायणप्रिया, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नारद आदि द्वारा उपासिता 'परब्रह्माधिदैवता' के स्वरूप में अवस्थित है—

'नानालङ्कारशोभाढ्यां नर-नारायणप्रियाम्।
वन्देऽहं बगलां देवीं परब्रह्माधिदैवताम्'॥

'देवीरूपो न संशयः' की बात को बार-बार कहे जाने का उद्देश्य यही है कि इस ब्रह्मास्त्रविद्या की उपासना का परम लक्ष्य—भगवती बगलामुखी के साथ ऐकात्म्य प्राप्त करना है—तन्मयीभाव द्वारा तादात्म्याप्ति है और 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की अद्वैत-सिद्धि है।

इस साधना-क्रम में सबसे प्रथम कवच का और फिर स्तोत्र का पाठ करना चाहिए—

'कवचं प्रपठेदादौ स्तोत्रं पुनश्चरेत्'।

इसमें अनुलोम-विलोम योग भी प्रयोज्य है—'अनुलोमविलोमेन द्वितीयो योग ईरितः'।

इसमें लघुषोढ़ा, महाषोढा, पञ्जरन्यास, कुल्लुका, सेतु, महासेतु, मृत्युञ्जय का जप आदि भी प्रयोज्य हैं—

'लघुषोढां महाषोढां पञ्जरन्यासमेव हि।
बगला मातृकां न्यस्य कुल्लुकां च विचिन्त्य वै।
सेत्वादिकामराजान्तं न्यस्य मृत्युञ्जयं जपेत्'॥

इसमें कुण्ड-निर्माण, कलश-स्थापन, गणपति-पूजन, मण्डल-निर्मण. तर्पण, मार्जन, अभिषेक, दक्षिणा, विप्रभोजन, हवन, यन्त्रप्रोक्षण आदि सभी कर्मकाण्डीय एवं उपासनोपयोगी अङ्ग स्वीकृत हैं।

१. आदौ गणपतिं पूज्यं द्वारपूजादिसंयुतम्।
२. निवेदयेद् द्रव्यशुद्धी तत्रैव जपमाचरेत्।
३. बाह्याभ्यन्तरयोः पुत्र अभेदज्ञानयोर्विना।
४. अभिषेको विप्रभोज्यं साङ्गयोगः प्रसिद्ध्यति।
५. इति संक्षेपतः प्रोक्तं तोषयेद्दक्षिणादिना।
६. मण्डले बगलादीपो कवचे मूलदीपकः।
७. एवं यन्त्रं समालिख्य प्राणस्थापनपूर्वकम्।
८. वृषभं चास्त्रमन्त्रेण प्रोक्षयित्वा विधानतः।
९. एवं च मार्जनं कृत्वा नवीनैर्वस्त्रभूषणैः।
१०. अलंकृत्वा तु शिष्यं तमानीय मण्डपान्तरे।
११. मन्त्राभिषेकः कर्तव्यः सद्यः सिद्धिकरो भवेत्।
१२. अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं गायत्रीं वेदमातरम्।
१३. श्रीसूक्त-लक्ष्मीसूक्त-पुरुषसूक्त-नारायणानुवाक-पञ्चब्रह्ममन्त्र-ब्रह्मवल्ली-भृगुवल्ली आदि सभी प्रयोज्य हैं—

'लक्ष्मीश्रीसूक्तकाभ्याञ्च द्वितीयकलशार्चनम्।
पौरुषेणैव सूक्तेन तृतीयं कलशं तथा॥
नारायणानुवाकेन चतुर्थं कलशं तथा।
पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रः पञ्चमं कलशं तथा॥

षष्ठं चाम्भस्य पारेण ब्रह्मवल्ल्या तु सप्तमम् ।
अष्टमं भृगुवल्ल्या तु मार्जयेन्मन्त्रकोविदः ।
षोडशैरुपचारैश्च धूपाद्येनैव विन्यसेत्' ॥

१४. आवाहनस्थापनानि सन्निधापनमेव च ।
१५. सन्निवेशनमुद्रा च सम्मुखी प्रार्थनी तथा ।
१६. नित्यकर्म समाप्यन्ते मन्त्रसन्ध्यां समाचरेत् ।
१७. उपस्थानं विना सन्ध्या निष्फला नात्र संशयः ।
१८. अर्घत्रयं च निक्षिप्य हृदि सम्भाव्य देवताम् ।
१९. पूजनञ्च प्रयोगञ्च वक्ष्येऽहं तव पुत्रक ।
२०. न्यासविद्यां प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धिकरीं नृणाम् ।
२१. भूतशुद्धिं भूतशुद्धिं मातृकाद्वितयं न्यसेत् ।
२२. कीर्तिकामस्तु जुहुयात् त्रिकोणाकारकुण्डके ।
२३. तिलतैलेन सम्मिश्रं माषहोमं गुणायुतम् ।
२४. प्रेताग्नौ प्रेतकाष्ठेन नग्नः सन् प्रेतदिङ्मुखः ।
२५. तत्र नग्नो जपं कुर्यादयुतं मूलविद्यया ।
२६. यन्त्रं प्रयोगं मम शासनं कलौ यन्त्रप्रयोगं यमिनां सुदुर्लभम् ।
२७. गायत्रीं च विना मन्त्रो न सिद्ध्यति कलौ युगे ।
पुरश्चरणकाले तु गायत्रीं प्रजपेन्नरः ।
२८. सिद्धिमार्गमिदं पुत्र नास्ति सिद्धिं गुणैर्विना ।
२९. कुर्यात्सौभाग्यपूजां च नोचेद् भ्रष्टो भवेन्नरः ।
३०. ध्यानं विना भवेन्मूको मन्त्रसिद्धोऽपि पुत्रक ।
३१. ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्तद्दशांशं कुमारक ।
३२. नग्नः श्मशानभूमौ तु जपेद्दक्षिणदिङ्मुखः ।
३३. श्रीसूक्तैर्मार्जनेनैव तं मन्त्रेणाभिमन्त्रितः ।
३४. चतुरङ्गुलमानं च पुत्तलीं कारयेत्सुधीः ॥
३५. प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तु संहारक्रमतोऽर्चयेत् ।
प्राणप्रतिष्ठां पुत्तल्यां कृत्वा मन्त्रेण मन्त्रयेत् ॥
३६. मन्त्रितं तोयं जुहुयात् क्षीरं वापि तथैव च ॥

आदि उदाहरणों के द्वारा यह प्रमाणित है कि महाविद्या बगलामुखी की साधना में सारे कर्मकाण्डीय विधान सम्मिलित हैं किन्तु 'योगाभ्यासी योगसिद्धिस्तपस्वी च ततोऽधिकः' आदि प्रमाणों द्वारा इसमें योगसाधना भी सम्मिलित हैं ।

(क) भगवती सर्वमन्त्रमयी हैं—

'सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वाकर्षणकारिणीम्'। अतः मन्त्रों की सारी साधनाएँ एवं सिद्धियाँ भी इस महाविद्या में सम्मिलित हैं।

(ख) भगवती बगला जगद्व्यापिनी एवं चिन्मयी हैं—

'देवता बगला नाम्नी जगद्व्यापकरूपिणी'।
'चिच्छक्तिर्ज्ञानरूपा च ब्रह्मानन्दप्रदायिनी'॥

(ग) वे विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्रशक्ति भी हैं—

'विष्णुरूपा जगन्मोहा ब्रह्मरूपा हरिप्रिया।
रुद्ररूपा रुद्रशक्तिश्चिन्मयी भक्तवत्सला'॥

(घ) वे मन्त्ररूपा परादेवी भी है और गुरु भी हैं—

'मन्त्ररूपा परादेवी तथैव गुरुरूपिणी'॥

(ङ) वे विश्वेश्वरी, निष्कला, परमाकला, विश्वमाता और ललिता भी हैं—

'मङ्गला शोभना शुद्धा निष्कला परमा कला।
विश्वेश्वरी विश्वमाता ललिता हसितानना'॥

ऐसी सर्वरूपा, सर्वमन्त्रमयी, सर्वशक्तिमयी, सर्वत्रिदेवमयी, सर्वाकृतिमयी, सर्वदेवमयी, सच्चिदानन्दमयी और परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती बगलामुखी के विषय में माननीय सञ्चालक एवं व्यवस्थापक—चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी—ने कोई पुस्तक लिखने के लिए मुझसे बार-बार आग्रह करके मुझसे जो पुनीत कार्य कराया है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

यदि माननीय व्यवस्थापक/सञ्चालक (चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी) महोदय ने इस दिशा में कुछ लिखने के लिए प्रस्ताव भेजकर एवं बार-बार मुझे उत्प्रेरित करके इस दिशा में प्रवृत्त न किया होता तो सम्भवतः मैं इस पावन कार्य को कथमपि न कर पाता, अतः मैं उन्हें एतदर्थ कोटिशः साधुवाद देते हुए उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

यदि इस कृति से पाठकों को रञ्चमात्र भी सन्तोष मिला तो मैं उसे ही अपने इस परिश्रम का सर्वोच्च पुरस्कार मानूँगा।

अन्त में मैं उन्हीं भगवती के पादपंकजों में नमन करता हुआ कहना चाहूँगा कि वे इस सत्य को साक्षात्कृत करायें कि—

'देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत्।
देवी जयति सर्वत्र या देवी साऽहमेव च'॥

श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'

विषयानुक्रमणिका

प्रथम : परिचय-खण्ड ✧ अध्याय : १-४

भगवती बगलामुखी, ब्रह्मास्त्रविद्या, साधना एवं उपासना का स्वरूप

विषय | **पृष्ठाङ्क**

प्रथम अध्याय

ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना : एक विहंगमावलोकन

विषय	पृष्ठाङ्क

द्वितीय अध्याय

महाविद्या भगवती बगलामुखी

विषय	पृष्ठाङ्क

तृतीय अध्याय

ब्रह्मास्त्रविद्या एवं इसका स्वरूप

विषय	पृष्ठाङ्क

चतुर्थ अध्याय

साधना एवं उपासना का यथार्थ स्वरूप

विषय पृष्ठाङ्क

विषय **पृष्ठाङ्क**

द्वितीय : साधना-खण्ड ✡ अध्याय : ५-९

साधनाओं का विभिन्न स्वरूप एवं ब्रह्मास्त्रविद्या

पञ्चम अध्याय

कर्ममार्गीय साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

विषय	पृष्ठाङ्क

विषय **पृष्ठाङ्क**

नवम अध्याय

मन्त्र-साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

विषय | **पृष्ठाङ्क**

विषय | **पृष्ठाङ्क**

विषय | पृष्ठाङ्क

तृतीय : अर्चा-खण्ड ❖ अध्याय : १०-११

महाविद्या बगलामुखी की दशाङ्ग-साधना

दशम अध्याय

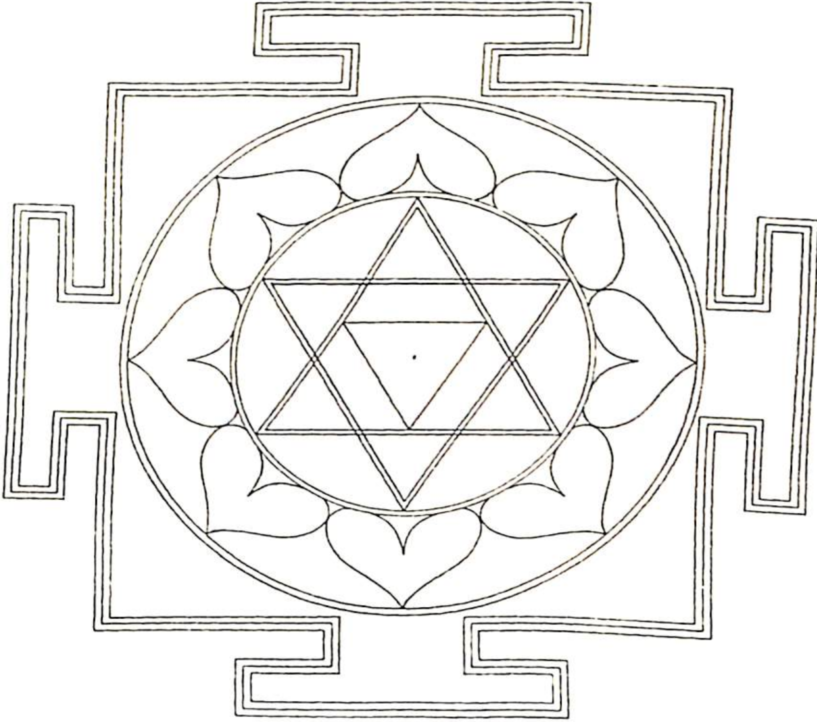
अर्चा के दशाङ्ग

एकादश अध्याय

दशाङ्गात्मक साहित्य-सामग्री

विषय **पृष्ठाङ्क**

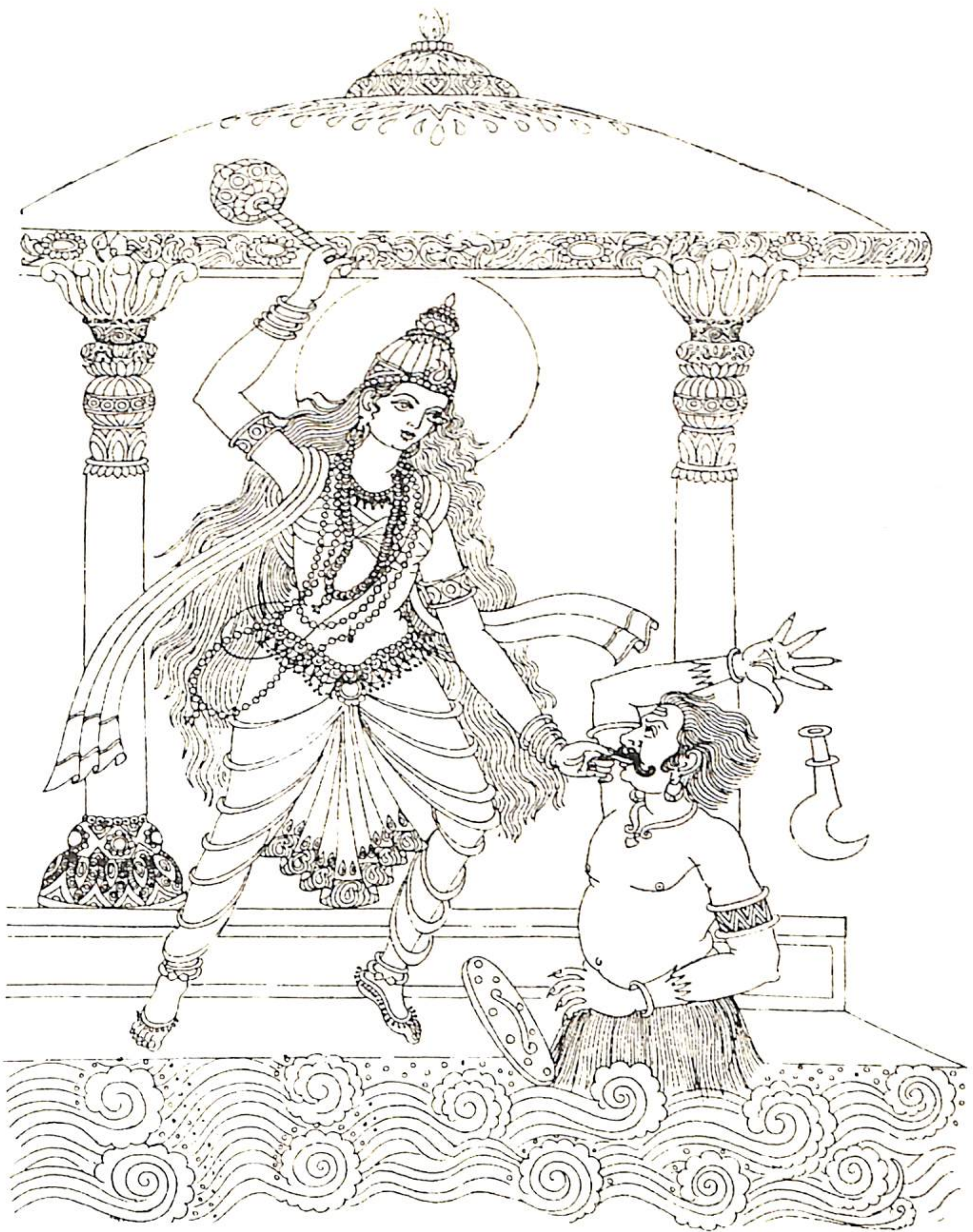
*



भगवती बगलामुखी यन्त्र

पाठकों के लिये सर्वतोभावेन ध्यातव्य है कि सुयोग्य गुरु की अनुज्ञा एवं निर्देश प्राप्त किये विना मात्र स्वविवेक से ग्रन्थ का अध्ययन कर किसी भी मन्त्र का प्रयोगात्मक अनुष्ठान न करें। स्वयम्भू प्रयोगों से होने वाले किसी भी दुष्परिणाम का उत्तरदायित्व स्वयं अनुष्ठाता का ही होगा, इसके लिये लेखक, प्रकाशक अथवा तत्सम्बन्धी किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं होगा।

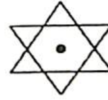




भगवती बगलामुखी

प्रथम : परिचय-खण्ड

(अध्याय : १-४)



भगवती बगलामुखी, ब्रह्मास्त्रविद्या, साधना एवं उपासना का यथार्थ स्वरूप

॥ श्रीः ॥

प्रथम अध्याय

ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना एक विहंगमावलोकन

'वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा मन्त्रितः
श्रीर्नित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि ! तुभ्यं नमः' ॥ (रुद्रयामलतन्त्र)

भगवती बगलामुखी दक्षिणाम्नाय एवं उत्तराम्नाय दोनों की उपास्या देवी हैं। 'श्रीकुल' की विद्या है। इनकी उपासना वाममार्ग एवं दक्षिणमार्ग दोनों में स्वीकृत एवं प्रचलित है। इनके भैरव आनन्दभैरव हैं और गणेश हरिद्रागणेश हैं। इस विद्या की साधना का सम्बन्ध सौभाग्यक्रम से है। भावों पर विचार करें तो इनकी साधना में वीरभाव एवं दिव्यभाव दोनों स्वीकृत हैं। इस महाविद्या की अङ्गविद्याएँ—मृत्यञ्जय मन्त्र, बटुक मन्त्र, पञ्चास्त्र मन्त्र (१. आग्नेय, २. वारुण, ३. पर्जन्य, ४. सम्मोहन, ५. पाशुपत), कुल्लुका, तारा, स्वप्नेश्वरी एवं योगिनी-मन्त्र हैं।

भगवती बगलामुखी ३३ कोटि देवताओं में से कोई व्यक्तिगत देवता नहीं हैं। वे सर्वशक्तिरूप, सर्वरूप, सर्वाकार पराशक्ति है अतः वे भैरवी, मातङ्गी, त्रिपुरा, कामेशी, श्रीविद्या, भद्रकाली आदि सभी कुछ हैं—

'मातर्भैरवि, भद्रकालि, विजये, वाराहि, विश्वाश्रये !
श्रीविद्ये, समये, महेशि, बगले, कामेशि, वामे, रमे !
मातङ्गि, त्रिपुरे, परात्परपरे, स्वर्गापवर्गप्रदे !
दासोऽहं शरणागतोऽस्मि कृपया विश्वेश्वरि त्राहि माम्' ॥

वे परब्रह्मरूपा हैं—'ब्रह्मरूपा विष्णुरूपा परब्रह्ममहेश्वरी'।

शक्तिशास्त्र एवं शक्त्युपासना का प्रमुख विषय है—शक्ति का स्वरूप और स्वरूपानुकूल उसकी उपासना। हमें प्रथमतः शक्ति के स्वरूप पर विचार करना चाहिए। भगवती बगला परात्पर शक्ति हैं—उनका क्या स्वरूप है—इसको जानने के पूर्व यह भी जानना चाहिए कि भारतीय दार्शनिकों की शक्ति के विषय में क्या दृष्टियाँ हैं। इसके अतिरिक्त यह भी जानना चाहिए कि शक्तितत्त्व के विषय में शाक्तदर्शन की क्या दृष्टि है। इसके बाद ही यह जानना चाहिए कि परात्पर शक्ति भगवती बगलामुखी के विषय में दार्शनिकों की क्या दृष्टि है।

शक्तितत्त्व का स्वरूप क्या है ?

शक्तितत्त्व—शाक्त दार्शनिकों ने शक्तितत्त्व को उसके सारे पक्षों एवं स्वरूपों (समस्त गुणों, धर्मों, रूपों, शक्तियों, सामर्थ्यों, स्वभावों एवं प्रकृतियों) का साक्षात्कार करके उसके सारे स्वरूपों का आलोचन, पर्यालोचन, समीक्षण, विश्लेषण एवं विवेचन किया है।

शाक्त दार्शनिक हयग्रीवाचार्य की दृष्टि—आचार्य हयग्रीव ने अपनी दृष्टि 'शाक्तदर्शनम्' नामक अपने ग्रन्थ में इस प्रकार प्रस्तुत की है—

'अथातः शक्तिजिज्ञासा'। (शाक्तदर्शनम् १।१।१)

शक्ति का स्वरूप

(१) 'विचित्रजगन्निर्माणादि सामर्थ्यरूपा शक्तिः'। (१।१।२)

(२) 'न भिन्ना।३। नाभिन्ना।४। भेदाभेदा।५। नैकत्र तमःप्रकाशयोरिव॥६॥ कल्पितभेदाभेदनिर्वचनीयतादात्म्यसम्बन्धः'। (शाक्तदर्शनम्)

शक्ति के भेद

(३) 'शक्तिर्द्विधा।११। विद्याऽविद्येति'॥१२॥

शक्ति के दो भेद हैं—१. विद्याशक्ति, २. अविद्याशक्ति।

शक्ति-विषयक विभिन्न दार्शनिक दृष्टियाँ

(क) गौतम की दृष्टि : 'निर्गुणं गौतमः'॥१३॥

(ख) मुद्गल की दृष्टि : 'शान्तिमूलप्रकृतिगं साक्षिणं मुद्गलः'।

(ग) हयग्रीव की दृष्टि : 'साभासामीश्वरीं हयग्रीवः'।१।१।१५॥

मायाशक्ति का स्वरूप : 'चित्प्रतिबिम्बयुक्ता माया शक्तिः।२।२।२। जगत्कारणम्।३। निमित्तोपादानम्।४। जडयोपादानम्'।५। माया जडस्वरूप से— उपादान है और चित्स्वरूप से निमित्तकारण है।

विद्या माया का स्वरूप

यहाँ माया है कौन ? 'एषा श्रीभुवनसुन्दरी ब्रह्मविद्या॥ (१।२।७) सोऽकामयत।८। तदेव कालः।९। सा सावित्री गुणान्। सात्त्विकी महालक्ष्मीः।११। सरस्वती राजसी।१२। तमस्युमा'॥१३॥

(४) अविद्या मायाशक्ति का स्वरूप : 'नानाभेदात्मकमोहदायिन्यविद्या।१४। एषा व्याकृतमयी।१५। एषा अन्तर्यामिन्युमा'।१६।

(५) शक्ति का विश्वजननी स्वरूप : 'शक्तिस्त्रिजननी। (१।४।१) नेत्री।२। परं ज्योतिः।३। तुर्यदेहात्मिका।४। इच्छाधृतविग्रहा।५। भक्तिवश्या।६। कारणलोकवा-

सिनी ।७। कारणलोको मणिद्वीपम् ।८। कारणेश्वररूपिणी ।९। एका शक्तिः कारणम्' ॥२१॥

(६) **मत-मतान्तर**—

(क) **पराशर का मत**—शक्ति स्वतन्त्र नहीं है—'न शक्तिः स्वतन्त्रा' । (२।१।१) वह विष्णु की योगनिद्रा होने के कारण परतन्त्र है। वह वैष्णवी है अतः विष्णु के अधीनस्थ है।

आचार्य हयग्रीव की समीक्षा—पराशर की शक्तिविषयक दृष्टि भ्रान्तिमूलक एवं अयथार्थ है। शक्ति परम तत्त्व है अतः स्वतन्त्र है। अतः 'चिद्योगाढ्या शक्तिः ।२।२।३। न माया ।४। शक्तिरीश्वरः' ।५।

महामाया के दो भेद हैं—१. महामाया, २. तामसी माया। महामाया त्रिगुणात्मिका एवं शक्त्यधीना है। इस महामाया से युक्त शक्ति ही ईश्वर है। ईश्वर मायोपाधि युक्त होने से स्वतन्त्र नहीं है। तामसी माया रुद्रशक्ति है और विष्णु के अधीन है। महामाया विष्णु के अधीनस्थ नहीं है। महामाया ही ईश्वरी है और वही शक्ति है—

१. 'गुणमयी महामाया ।९। शक्त्यधीना' ।१०।
२. 'वैष्णवी तामसी माया ।११। रुद्रशक्तिः विष्ण्वधीना' ।
३. 'न महामाया विष्ण्वधीना' । (२।२।१४)

हयग्रीवाचार्य—'न विष्णुरीश्वरः । शक्तिरीश्वरः इति हयग्रीवः' । (२।२।१७)

(ख) **गौतम की दृष्टि**—गौतम की दृष्टि में 'न शक्तिः स्वतन्त्रा' (२।३।१), वह रुद्र के अधीनस्थ है। रुद्र ही परदेवता है—'कारणात्मक ईश्वरः ।३। रुद्रः सत्त्वमूर्तिः ।४। परमार्थरुद्र ईश्वरः' ।५॥

निष्कर्ष—गौतम की समीक्षा—'अतो रुद्र इति गौतमः' ॥७॥

हयग्रीव का मत—गौतम का मत भ्रान्तियुक्त है। रुद्र सर्वेश्वर नहीं हैं। शिव-शक्ति कार्यशक्ति है जबकि भुवनसुन्दरी कारणशक्ति हैं—'कारणं भुवनसुन्दरी परा शक्तिरिति'। (२।३।१३)

(ग) **याज्ञवल्क्य की दृष्टि**—याज्ञवल्क्य की दृष्टि में कालतत्त्व ही जगत् का मूल कारण है। वह सर्वत्र साक्षी रूप से विद्यमान है। वह प्रपञ्चोपादानभूता माया का निमित्त-कारण है। वही श्रेष्ठतम एवं सर्वनियामक है।

आचार्य हयग्रीव की समीक्षा—याज्ञवल्क्य का मत भ्रान्तिपूर्ण है। काल विश्व का मूल कारण है ही नहीं। वह न तो स्वतन्त्र है और न तो ईश्वर। चिन्मायायोग ही काल है। माया काल का भी कारण है। काल स्वतन्त्र नहीं है—'न स्वतन्त्रः कालः' ॥१५॥

निष्कर्ष (हयग्रीवमत)—'शक्तिः स्वतन्त्रेति हयग्रीवः' ॥१६॥

(घ) **गाणपत्य सम्प्रदाय की दृष्टि**—गाणपों के मतानुसार—'मायोपहितः

साक्षी ॥१॥ स वै गणेश: ॥२॥ तदधीना माया ॥३॥ कालश्च ॥४॥ मायागततदाभास ईश्वर: ॥५॥ अविद्यागतो जीव:' ॥६॥

अर्थात् मायोपहित साक्षी गणेश ही जगत् के मूल कारण हैं। माया एवं काल दोनों उनके अधीनस्थ हैं। शक्ति कारण नहीं। गणेश ही जगत् के परम कारण एवं परम तत्त्व हैं—'न कारणं शक्ति: ।१८। कारणं गणेश एवेति' ॥ (३।१।१९)

आचार्य हयग्रीव की समीक्षा—गणेश शक्तिपुत्र है अत: वे कार्य हैं और शक्ति कारण हैं। 'न कारणत्वं कार्यस्य ।८। अत: कारणं शक्तिरेवेति हयग्रीव:' ॥ (३।२।९)

(ङ) **स्वायम्भुवमत और उसकी दृष्टि**—स्वायम्भुव मत में अकेली शक्ति ही जगत् का मूल कारण नहीं है प्रत्युत कार्योत्पादक ६ शक्तियाँ हैं—(१) गणपति, (२) सूर्य, (३) ब्रह्मा, (४) विष्णु, (५) रुद्र और (६) शक्ति। गणेश ही परमार्थ एवं परम तत्त्व हैं। उन्होंने ही अपने को ५ रूपों में परिणत करके और स्वयं छठा कारण तत्त्व बनकर अपनी शक्ति को करण बनाकर और शक्ति, काल एवं ईशों को ग्रहण करके गणपति-सूर्य-ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-शक्ति रूप द्वारषट्क के माध्यम से सृष्टि का निर्माण किया। मायोपाधिक गणेश ही परमार्थेश है।

अन्य मत—'परमार्थो गणेश: ।६। शक्तिकालेशगणपतिसमवायो जगत्कारणेश: ।७। न परमार्थो गणपति: केवलं जगत्कर्ता ।८। न काल: ।९। न शक्ति: ।१०। गणपतिसूर्यब्रह्मविष्णुरुद्रशक्तिरिति' ॥१३॥

गणेश परतत्त्वस्वरूप हिरण्यगर्भ है और जगत् उनका कार्य है। ये ही हैं परमार्थगणेश। शिव-विष्णु-शक्ति-सूर्य ये ४ कारण हैं। इसी प्रकार (१) नाभिपर्यन्त स्थूल देह 'स्थूल प्रपञ्च' है। (२) नाभि से हृदय पर्यन्त देह 'सूक्ष्म प्रपञ्च' है। (३) नाभि से कण्ठ पर्यन्त देह 'कारण प्रपञ्च' है। (४) कण्ठ के ऊपर तुरीय आत्मतत्त्व है।

(च) **बादरि की दृष्टि**—'कार्ये भिन्नत्वे च षडात्मक ईश्वर एव जगत्कर्तेति बादरि:'। (३।४।१७) इस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड गणेश का शरीर है और उनके वाम अङ्ग में शक्ति एवं दक्षिण अङ्ग में काल अवस्थित है। गणेश निखिलप्रपञ्चस्वरूप हैं। उनका मुख विष्णु एवं नेत्र रुद्र हैं।

(७) **हयग्रीवाचार्य की समीक्षा**—स्वायम्भुव मत एवं बादरि मत दोनों अनुपयुक्त एवं भ्रान्तिपूर्ण हैं।

निष्कर्ष—ब्रह्मनिष्ठा शक्ति ही है। वही साक्षी एवं आदिकारण है। गणेश की आदि तत्त्व के रूप में कल्पना व्यर्थ है। कारणेश की जननी शक्ति ही है। कारणेश में स्थित शक्ति ही व्यक्त जगत् का आदि कारण है। अव्यक्त (सूक्ष्म) जगत् का कारण ब्रह्मनिष्ठा शक्ति है। अत: व्यक्ताव्यक्त दोनों प्रपञ्चों का आदि कारण, ब्रह्मतत्त्व, परम तत्त्व परमात्मा एवं परात्पर परा सत्ता केवल 'शक्ति' ही है उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं।

'ईशनिष्ठा व्यक्तकारणम् ।२०। अव्यक्तस्य ब्रह्मनिष्ठा' ।२१।

(८) **निष्कर्ष**—शक्ति ही जगत् का मूल कारण है और वही परम तत्त्व या परमा शक्ति है—'शक्तिरेव सर्वकारणमिति हयग्रीवः'[१] ॥ कारणं शक्तिः ।४।१।१। भुवनेश्वरी। व्यक्ताव्यक्ता ।३। अव्यक्ता कारणात्मिका ।४॥ भक्तेच्छोपात्तदेहा व्यक्ता' । (४।१।५)

(क) **निराभासा शक्ति**—गुणसाम्य वाली परा शक्ति को (गुणक्षोभ से मुक्त = साम्यावस्थापन्न = प्रकृति वाली) निराभासा शक्ति कहते हैं—

'गुणशान्तिरूपिणी ब्रह्मशक्तिर्निराभासा'[२] ।

(ख) **साभासा शक्ति**—'ईश्वरी साभासा' । (५।२।२) जब वही निराभासा शक्ति गुण-वैषम्य के कारण साभासा हो जाती है तब 'ईश्वरी शक्ति' कहलाने लगती है अतः ईश्वरी शक्ति ही साभासा शक्ति है।

ज्ञानरूपा साभासा शक्ति ही जीव है।
ज्ञानरहित साभासा शक्ति जड़ माया है।
माया एवं चिति का योग ही काल है।

'साभासा ज्ञानरूपिणी जीवः ।३। भूतादिर्जडा माया ।२। तच्चिद्योगः कालः' ॥ (५।२।५) माया ही अध्यास का कारण है—'स्वाध्यासप्रपञ्चाध्यासहेतुर्माययैव' ॥ (५।२।११)

आचार्य हयग्रीव कहते हैं कि—

१. ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ॥१२।३।१॥
२. आत्मा वा इदमग्र आसीत् ॥१२।३।३॥
३. सदेवेदमग्र आसीत् ॥१२।३।३॥

—इन तीनों वाक्यों का कथ्य 'ब्रह्म' ही है। 'वाक्यत्रयेण त्रिधाभिधेययुतं ब्रह्मैव' ॥ (१२।३।४) यह निर्गुण ब्रह्म ही है ! जगत् का बीज कारणब्रह्म ही है।

निष्कर्ष—१. ब्रह्म वा इदमग्र आसीदिति परमार्थम् ॥१९॥

२. आत्मा वा इदमग्र आसीदिति जगद्बीजात्मकतुर्यबोधकम् ॥२०॥ प्रपञ्चत्रय-बोधकपूर्वं तुर्यसूचकम् ॥२१॥

३. सदेवेदमग्र आसीदिति बीजावस्थायामपि निराभासादेकत्वबोधकपूर्वं द्वैतेऽप्य-द्वैतबोधकं च ॥२२॥

४. अहं गणपतिरेक एवासातीति सद्ब्रह्मणो व्यक्तावस्थाबोधकम् ॥२३॥

५. इदं जगत् व्याकृतमासीदिति व्यक्तप्रपञ्चनिषेधपूर्वकमव्यक्तबोधकम्।

६. देवी ह्येकाग्र आसीदिति मायाया अनादित्वबोधकम् ॥२५॥

---

१. शाक्तदर्शनम्। (३।४।२२) २. शाक्तदर्शनम्। (५।१।१)

७. कालात्प्रसूतिं मन्यन्तेति कालानादित्वबोधकम् ।

८. आद्यो ब्रह्मा । वासुदेवो वा इदमग्र आसीत् ॥२८॥

९. एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे ॥२९॥ व्यवहारेशस्य व्यक्ताव्यक्त-बोधकानि ॥३०॥

१०. अत: परमार्थं ब्रह्म इदमग्र आसीदिति ॥३३॥

आचार्य हयग्रीव का मत—मूल प्रकृति के भीतर एवं बाहर सर्वत्र ब्रह्म व्याप्त है । मूल प्रकृति उस ब्रह्म से अभिन्न है और वही शक्ति है जो कि सामर्थ्यस्वरूपा है—

१. मूलप्रकृतेर्बाह्यान्तर्व्याप्यस्थं ब्रह्म सत् ।

२. सदभिन्ना मूलप्रकृति: शक्ति: ।

३. सा सामर्थ्यरूपा । (११।४।२-४)

(क) **च्यवन भार्गव मत**—गणपति ही परम तत्त्व हैं ।

(ख) **नन्दिकेश मत**—'शिव एव केवलस्तदक्षर:' ॥१२।१।१॥ शिव ही परमक्षर परमतत्त्व हैं । उनके अधीन ही शक्ति है न कि उनसे स्वतन्त्र, शिव बिम्ब हैं । प्रतिबिम्ब व्यावहारिक शिव हैं । बिम्बभूत शिव ही परमतत्त्व हैं—'बिम्बभूत: परमार्थ: । अपर: प्रतिबिम्बभूत: ॥ (१२।१।७) शिव एव नन्दिकेश:' । (१२।१।१६)

हयग्रीवाचार्य की समीक्षा—नन्दिकेश ने जिस शिव को परमतत्त्व कहा है वे व्यावहारिक ईश्वर मात्र हैं । अत: शक्ति ही परमतत्त्व है । इस शक्ति का बिम्ब गणेश हैं शिव नहीं है । 'शिव आदि कारण है'—यह वाक्य भी शक्तिपरक मानना चाहिए ।

बादरि प्रतिपादित मत में जिन महावाक्यों का अपने मत की पुष्टि में प्रयोग किया गया है वे ब्रह्मप्रतिपादक ब्रह्मनिष्ठ शक्ति के प्रतिपादक हैं । अत: शक्ति ही निर्गुण ब्रह्म एवं परम तत्त्व है—'ब्रह्मनिष्ठा शक्तिर्निर्गुणा' ॥ (१३।४।१)

साक्षिस्था शक्ति—'साक्षिस्था सगुणा निराभासा' ।

ईश्वरी शक्ति—'ईश्वरी साभासा, व्यक्तप्रपञ्चकारणमीश्वरी शक्ति:' ॥

'देवी ह्येकाग्र आसीदिति वाक्येन ब्रह्म वा इदमग्र आसीदित्यादिसर्ववाक्यार्थ-सिद्धान्तमेव बोधितम् । सर्वकारणं शक्तेरेवेति हयग्रीव:' ॥ (१२।४।७)

शक्ति ही निर्गुण ब्रह्म है, परम तत्त्व है । परा शक्ति—पराशक्ति ब्रह्मरन्ध्र में परशिव के साथ रहती है—'ब्रह्मरन्ध्रे परा शक्ति: (१३।२।१३) । ब्रह्मरन्ध्रे परा शक्ति: । (१३।२।१८) । देवता पराशक्ति:' ।

कुण्डलिनी शक्ति—'आधारज्ञाता परं पदम्' (१३।४।९) ।

१. 'तत्रैव कुण्डलिनी शक्ति:' (१३।४।१०) ।

२. 'कन्दोर्ध्वे कुण्डलिनी। (१३।४।१७)

३. 'ब्रह्मरन्ध्रं स्वमुखेन समावेष्ट्य कन्दपार्श्वेषु निरुध्य संस्थिता कुण्डलिनी'। (१४।१।१)

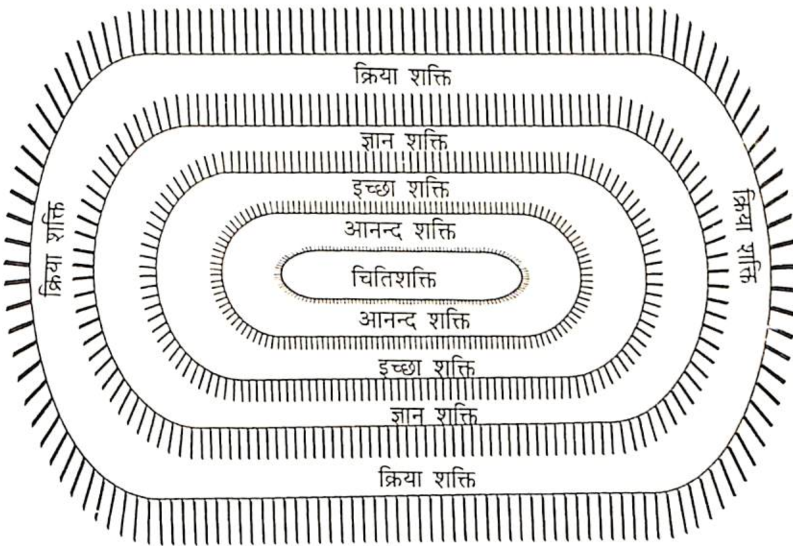
४. 'आधाररोधनेन वायुर्दीप्तो वह्नी रुहति कुण्डलीम्' ॥१८॥

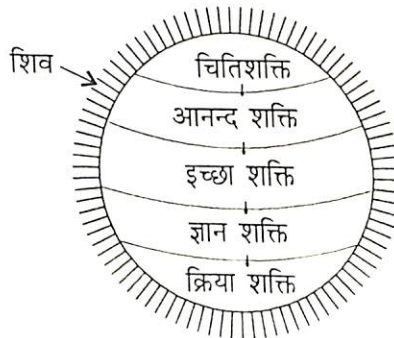
५. 'मूले कुण्डलिनी' (१४।३।६)।

अगस्त्य (शक्तिसूत्र)—शक्ति कर्त्री शक्ति है—'यत्कर्त्री ॥१।२ यदजा ॥३॥ मनोयिनित्वात्' ॥४॥

(९) **शक्ति के अन्य स्वरूप : त्रिकनय**—

काश्मीरीय त्रिक दर्शन के अनुसार शिव में समवेत भाव से या अभिन्नतया पाँच शक्तियाँ अवस्थित हैं—





(१०) **सर्वशक्त्यभेद**—

'यथा काली तथा तारा तथा नीला सरस्वती।

अभेदमतमास्थाय यः कश्चित् साधयेन्नरः ।
त्रिलोके स तु सम्पूज्यः स्यात्तारासुत एव सः' ॥ (तारारहस्यम्)

शक्ति के जितने भी स्वरूप हैं उन सभी को ब्रह्म और परमा शक्ति कहा गया है—

१. **त्रिपुरा**—'त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी ।
विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्' ॥
'परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्' ।
'सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्य निरुपमाकार ।
भावि चराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः' ॥
'शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी' ।

२. **भुवनसुन्दरी**—'कारणं भुवनसुन्दरी पराशक्तिरिति । शक्तिशब्दवाच्या भुवनेश्वरी । (३।२।३) (शा.द.) गुणशान्तिरूपिणी ब्रह्मशक्तिर्निराभासा । (५।२।१) नाभेदो ब्रह्मशक्त्योः । (७।४।१७) ओं ह्रीं ब्रह्माभिन्ना शक्तिः । (८।३।१५।) देवी ह्येकाग्र आसीत् ।१। सृष्ट्यादिक्रीडासक्ता देवी जगत्सृष्टेः पूर्वमासीदिति । (११।३।२) देवी ह्येकाग्र आसीत् । (१२।३।२५) ब्रह्मरन्ध्रे पराशक्तिः । (१३।२।१३, १८) ब्रह्मरन्ध्रं सहस्रारम् ।२३। देवता पराशक्तिः' । (१४।४।२४)

३. **बगलामुखी**—'विष्णुरूपा जगन्मोहा ब्रह्मरूपा हरिप्रिया' । 'बगला परमेश्वरी' । 'ब्रह्मस्थिता ब्रह्मरूपा ब्रह्मणा वेदवन्दिता' । 'सर्वदेवमयी देवी सर्वागम-भयापहा' । 'ब्रह्मशक्तिविष्णुशक्तिः पञ्चवक्त्रा शिवप्रिया' ।

४. **तारा**—'दृष्ट्वा हृष्टं ब्रह्ममयं परब्रह्मस्वरूपिणीम्' ।

५. **धूमावती**—'सा देवी देवदेवी त्रिभुवनजननी कालिका पातु युष्मान् ।

'शब्दब्रह्ममयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाङ्मयी
नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्त्वम्मयी चिन्मयी ।
तत्त्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयी
सर्वैश्वर्यमयी सदाशिवमयी मां पाहि मीनाम्बिके' ॥

६. **कुण्डलिनी**—

'भूपद्मे लिङ्गमावेष्ट्य राजते ब्रह्मरूपिणी ।
परां कुण्डलिनी शक्तिं साकारां परिभावयेत् ॥
निराकारस्वरूपां परब्रह्ममयीं कुण्डलिनीम्' ।

प्रश्न—प्रश्न यह उठता है कि यदि उक्त सारी शक्तियाँ ब्रह्म एवं पराशक्ति हैं तो क्या सारी शक्तियाँ आद्या परमा शक्ति हैं ? सभी ब्रह्म हैं ? यदि हाँ तो क्या आदिशक्ति एवं ब्रह्म भी सैकड़ों हैं ? नहीं, यह तो सम्भव ही नहीं है क्योंकि परमा आद्या शक्ति एवं ब्रह्म एक ही हैं और परमात्मा भी एक ही है—'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' । फिर ऐसी द्वैताभासात्मिका बातें क्यों कही गयीं ? कारण सुस्पष्ट है । सारी शक्तियाँ एक ही हैं;

यथा—भगवती बगला को लें तो वे बगलामुखी तो हैं ही किन्तु अपने से पृथक् अन्य शक्तियाँ भी तो वे ही हैं। यथा—

(क) भगवती बगलामुखी का स्वरूप

१. महाविद्या महालक्ष्मी: श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी।
भुवनेशी जगन्माता पार्वती सर्वमङ्गला॥
२. ललिता भैरवी शान्ता अन्नपूर्णा कुलेश्वरी।
वाराही छिन्नमस्ता च तारा काली सरस्वती॥
३. दक्षपुत्री शिवाङ्कस्था शिवरूपा शिवप्रिया।
४. मैनापुत्री शिवानन्दा मातङ्गी भुवनेश्वरी।
नारसिंही नरेन्द्रा च नृपाराध्या नरोत्तमा॥
५. विष्णुरूपा जगन्मोहा ब्रह्मरूपा हरिप्रिया।
रुद्ररूपा रुद्रशक्तिश्चिन्मयी भक्तवत्सला॥
६. राजराजेश्वरी देवी महिषासुरमर्दिनी।
७. भक्तानन्दकरी देवी बगला परमेश्वरी।
८. ब्रह्मशक्तिर्विष्णुशक्ति: पञ्चवक्त्रा शिवप्रिया।
९. भवानी भैरवी भीमा भद्रकाली सुभद्रिका।
१०. विन्ध्याचलरता देवी विन्ध्याचलनिवासिनी।
११. सर्वदेवमयी देवी……।
१२. 'परब्रह्मस्वरूपा च' 'ब्रह्मस्थिता ब्रह्मरूपा'।
१३. कालाक्षी कालिका काली धवलानन्दसुन्दरी॥

(ख) भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का स्वरूप

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी सर्वदेवी एवं सर्वदेवस्वरूप हैं।

१. महाशक्ति: कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी।
२. शाम्भवी शारदाराध्या शर्वाणी शर्मदायिनी।
३. महादेवी महालक्ष्मीर्मृडप्रिया।

(ग) मातङ्गी देवी का स्वरूप

१. काली कालप्रिया केली कामला कालकामिनी।
२. कमला कमलस्था च कमलस्था कलावती।
३. कात्यायनी कृत्तिका च कार्तिकी कुशवर्तिनी।
४. दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गम्या दुर्गवासिनी।

चूँकि परमात्मा एक हैं—परा शक्ति एक हैं अत: परमात्मा और सारी शक्तियाँ भी एक ही परतत्त्व के विभिन्न स्वरूप हैं। प्रत्येक महाशक्ति में समस्त शक्तियाँ अवस्थित हैं।

प्रत्येक महाशक्ति की अपने से पृथक् स्वरूप में अवस्थित शक्ति भी एक ही महाशक्ति का स्वरूप है।

(घ) भगवती सीता

सीता के 'स' में 'ई' = माया तत्त्व है—

'विष्णुः प्रपञ्चबीजं च माया ईकार उच्यते।
सकारः सत्यममृतं प्राप्तिः सोमश्च कीर्त्यते।
तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराजः प्रस्तरः स्मृतः'॥

१. सीता मूल प्रकृति एवं प्रणव तथा प्रकृति हैं—

'सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः'॥

२. सीता सर्वात्मिका हैं—'सेयं सर्ववेदमयी सर्वदेवमयी सर्वलोकमयी सर्वकीर्तिमयी सर्वधर्ममयी सर्वाधारकार्यकारणमयी महालक्ष्मीर्देवेशस्य भिन्नाभिन्नरूपा चेतनाचेतनात्मिका . ब्रह्मस्थावरात्मा·····देवर्षिमनुष्यगन्धर्वरूपा असुर-राक्षस-भूत-प्रेत-पिशाच-भूतादिभूतशरीररूपा भूतेन्द्रियमनःप्राणरूपेति विज्ञायते'। (सीतोपनिषद्)

वह इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एवं साक्षात् शक्ति भी है—'सा देवी त्रिविधा भवति शक्त्यात्मना इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति'। (सीतोपनिषद्)

'सा योगशक्तिः' ॥३५॥

सीता मूलप्रकृति हैं—

'मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते'॥ (सीतोपनिषद्)

(ङ) भगवती सरस्वती

नामरूपात्मकं सर्वं यस्यामावेश्यतां पुनः।
ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मां पातु सरस्वती॥
अद्वैता ब्रह्मणः शक्तिः सा मां पातु सरस्वती।
या वेदान्तार्थतत्त्वैकस्वरूपा परमेश्वरी।
नामरूपात्मना व्यक्ता सा मां पातु सरस्वती'॥

(च) त्रिपुरसुन्दरी

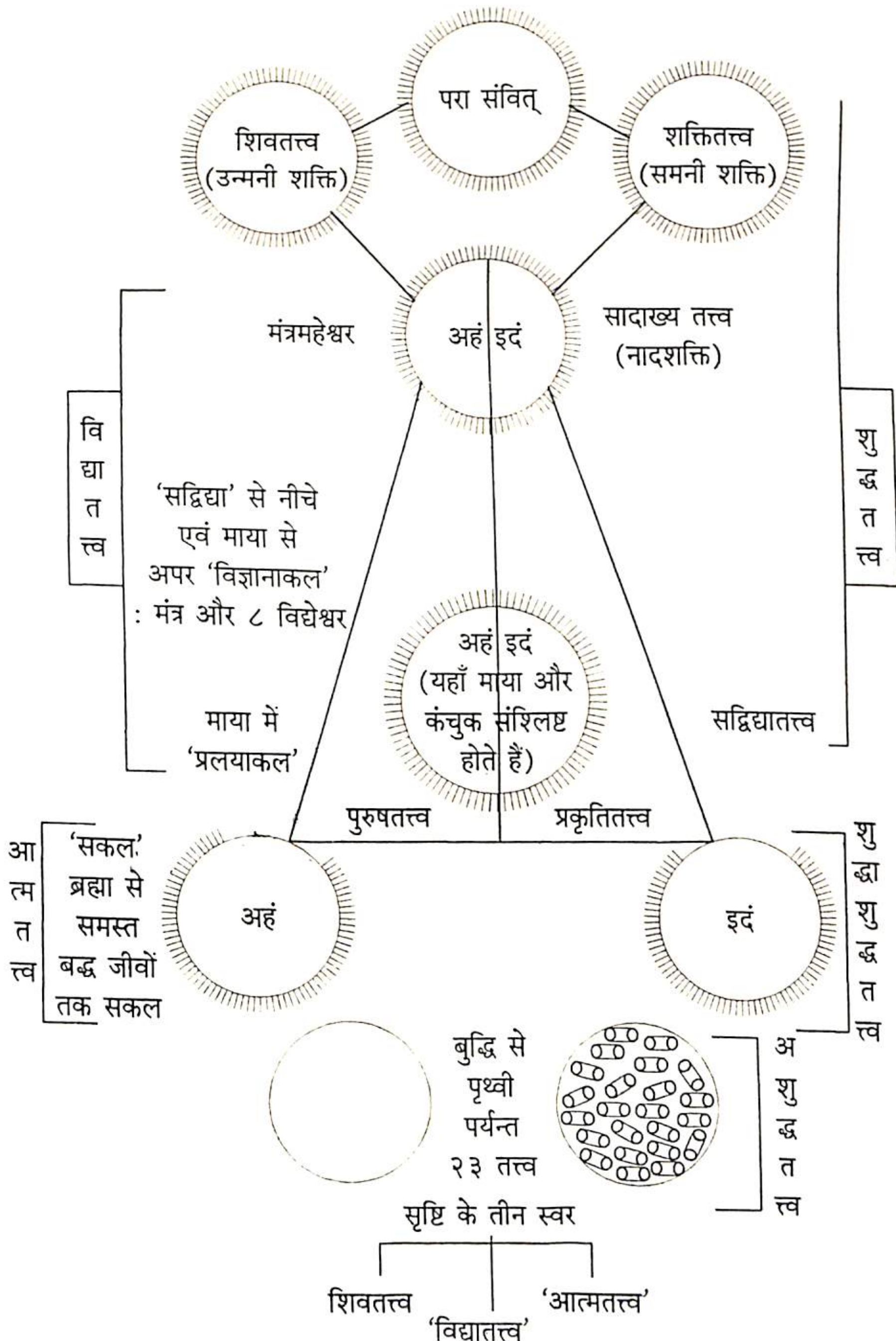
'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाम्बिकेति बगलेति वा मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति'। (बह्वृचोपनिषद्)

(छ) त्रिपुरा

'महामायां सर्वसुभगां महाकुण्डलिनी चित्कलां महात्रिपुरां देवम्' ।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद्)

शाक्त दर्शन का सृष्टिविज्ञान



शाक्तदर्शन में मान्य ३६ तत्त्व

अवरोह-क्रम से परमेश्वरेच्छा से स्वान्तर्गत विश्ववैचित्र्य के जिन ३६ तत्त्वों का आभासन करता है वे तत्त्व निम्नांकित हैं—(१) शिवतत्त्व, (२) शक्तितत्त्व, (३) सदाशिव तत्त्व, (४) ईश्वर तत्त्व, (५) शुद्धविद्या तत्त्व, (६) माया, (७) कला, (८) विद्या, (९) राग, (१०) काल, (११) नियति, (१२) पुरुष, (१३) प्रकृति, (१४) बुद्धि, (१५) अहङ्कार, (१६) मन, (१७) श्रोत्र, (१८) त्वक्, (१९) चक्षु, (२०) जिह्वा, (२१) घ्राण, (२२) वाक्, (२३) पाणि, (२४) पाद, (२५) पायु, (२६) उपस्थ, (२७) शब्द, (२८) स्पर्श, (२९) रूप, (३०) रस, (३१) गन्ध, (३२) आकाश, (३३) वायु, (३४) वह्नि, (३५) सलिल और (३६) पृथिवी।

सृष्टि के स्तर (भूमिकाएँ)

अभेदभूमिका (तत्त्व)	भेदाभेदभूमिका (तत्त्व)	भेदभूमिका (तत्त्व)
(शिव-शक्ति)	(सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या)	(माया से पृथिवी)

शिव और शक्ति में अन्तःसम्बन्ध

शिव और शक्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये तत्त्वतः अपृथक् हैं। इनमें वही सम्बन्ध है जो चाँदनी एवं चन्द्रमा में है—

'न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव' ॥

आचार्य सोमानन्द शिवदृष्टि में कहते हैं—

'न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शिवः शक्तस्तथा भगवानिच्छया कर्तुमीहते।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते' ॥

भगवती बगलामुखी का स्वरूप-विवेचन

यदि भगवती बगलामुखी के स्वरूप पर दृष्टि डाली जाय तो हमें उनके चार स्वरूप दिखाई पड़ते हैं।

भगवती बगलामुखी का स्वरूपचतुष्टय

वैदिक एवं औपनिषदिक स्वरूप। यजुर्वेदीय 'वलगहन'	भगवती महामाया सती के क्रोधावेश से उत्पन्न	महाराष्ट्र के हरिद्रा सरोवर में प्रकट स्वरूप। (विष्णु की तपस्या के	परात्पर ब्रह्मस्वरूप। सर्वशक्त्यात्मक एवं सर्वशक्तिस्वरूप।

स्वरूप (यजु. ५।२३)। पीताम्बरोपनिषद् एवं बगलाउपनिषद् में अभिव्यक्त भगवती का 'वलगहा' स्वरूप।	१० महाविद्याओं में से एक स्वरूप 'बगलामुखी' स्वरूप।	फलस्वरूप प्रकट महात्रिपुरसुन्दरी के हृदय के तेज से निःसृत स्वरूप।	पराशक्ति का स्वरूप।

भगवती बगलामुखी का सर्वात्मक स्वरूप

भगवती बगला एकरूपा नहीं है प्रत्युत बहुरूपिणी हैं—अनन्तस्वरूपा हैं 'वेदविद्या विरूपाक्षी विश्वयुक् बहुरूपिणी'। उनके अनन्त स्वरूप हैं—

'वैकुण्ठवासिनी देवी वैकुण्ठपददायिनी।
महामोहा महाविद्या महाघोरा महास्मृतिः ॥
महाकाल्या महाकाली मनोबुद्धिर्महोत्कटा।
यमरूपा च यमुना जयन्ती च जयप्रदा
ब्रह्मस्थिता ब्रह्मरूपा ब्रह्मणा वेदवन्दिता।
ब्रह्मोद्भवा ब्रह्मकला ब्रह्माणी ब्रह्मबोधिनी' ॥ आदि।

भगवती बगलामुखी का परात्पर ब्रह्मस्वरूप

परात्पर ब्रह्म सत्ता तो वह है जो सर्वरूप होते हुए भी सर्वातीत हो, जो सर्वशक्त्यात्मक होते हुए भी अद्वैत हो। वह राम, कृष्ण, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, बगला, त्रिपुरसुन्दरी आदि सभी हैं; क्योंकि वह अद्वैत है अतः उसकी सत्ता से पृथक् अन्य कोई सत्ता है ही नहीं। इसीलिए कहा गया है कि—

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'।
'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'।

भगवती बगलामुखी का सर्वशक्त्यात्मक सर्वदेवात्मक परात्पर परब्रह्मस्वरूप—

१. बगला विष्णुवनिता विष्णुशङ्करभामिनी।
२. बहुला वेदमाता च महाविष्णुप्रसूरपि।
३. महामत्स्या महाकूर्मा महावाराहरूपिणी।
४. नरसिंहप्रिया रम्या वामना बटुरूपिणी।
५. जामदग्न्यस्वरूपा च रामा रामप्रपूजिता।
६. कृष्णा कपर्दिनी कृत्या कलहा····।
७. कल्किरूपा कलिहरा····।
८. केशवी केशवाराध्या किशोरी केशवस्तुता।
९. रुद्ररूपा रुद्रमूर्ती रुद्राणी रुद्रदेवता।

१०. नक्षत्ररूपा नक्षत्रा ।
११. नागिनी नागजननी ।
१२. लङ्कापतिध्वंसकरी लङ्केशरिपुवन्दिता ।
१३. लङ्कानाथकुलहरा महारावणहारिणी ।
१४. वसुदा बहुदा वाणी ब्रह्मरूपा वरानना ।
१५. ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मविद्या च ब्रह्ममाया सनातनी[1] ।
१६. कमला विमला नीला…… ।
१७. कामाख्या कामबीजस्था कामपीठनिवासिनी ।
१८. कात्यायनी केशवा च…… ।
१९. कालाक्षी कालिका काली…… ।
२०. गङ्गा गौरी गामिनी च गीता…… ।
२१. डाकिन्युमा उपेन्द्रा च उर्वशी उरगासना ।
२२. चामुण्डा मुण्डिता चण्डी चण्डदर्पहरेति च ।
२३. ……जाह्नवी जनकात्मजा ।
२४. पीताम्बरा पार्वती च पीताम्बरविभूषिता ।
२५. पद्मावती पद्मनेत्रा पद्मा…… ।
२६. भवानी भैरवी भीमा भद्रकाली सुभद्रिका ।
२७. माहेश्वरी महामाया महिषासुरघातिनी ।
२८. ब्रह्मरूपा विष्णुरूपा परब्रह्ममहेश्वरी[2] आदि ।

शक्ति विमर्श है

शक्ति विमर्श है; विमर्श आत्मा है अत: शक्ति भी आत्मा है और शक्ति या विमर्श ही विश्वविस्तार है—

'सन् हृदयप्रकाशो भवनस्य क्रियायां भवति कर्त्ता ।
सैव क्रिया विमर्श: स्वस्था क्षुभिता च विश्वविस्तार:' ॥
(महेश्वरानन्द : महार्थमञ्जरी)

'परिमल' में कहा गया है कि विश्व शक्ति का प्रचय है—'स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्' । 'आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं न कोऽप्यर्थयते' । अर्थात् आत्मा विश्व का मूल है ।

शिव क्या है ? शिवतत्त्व शक्ति से पृथक् नहीं है । सृष्टि-पालन-संहार-तिरोधान-

---

१. बगलाशतनाम : रुद्रयामल ।
२. बगलामुखीसहस्रनाम ।

अनुग्रह आदि विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ने वाली शक्ति के हजारों-हजारों व्यापारों का ऐक्य ही शिव का स्वरूप है—

'तथा तथा दृश्यमानानां शक्तिसहस्राणामेकसङ्घट्टः ।
निजहृदयोद्यमरूपो भवति शिवो नाम परमस्वच्छन्दः' ॥

यही शक्ति ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, मायाशक्ति एवं शाम्भवी शक्ति है—

१. सत्त्वगुण स्वभाव होने पर—ज्ञानशक्ति है ।
२. रजोगुण स्वभाव होने पर—क्रियाशक्ति है ।
३. तमोगुण स्वभाव होने पर—मायाशक्ति है ।
४. विभाग-विभक्त होने पर—प्रकृतिशक्ति है ।
५. अविभक्त एक रस रहने पर—शाम्भवी (मूल प्रकृति) शक्ति है—

'ज्ञानक्रियामायानां गुणानां सत्त्वरजस्तमस्स्वभावानाम् ।
अविभागावस्थायां तत्त्वं प्रकृतिरिति शाम्भवी शक्तिः' ॥ (महार्थमञ्जरी)

नागानन्द कहते हैं कि—अकृत्रिम अहंभाव का स्फुरण या पूर्णाहम्भावना ही विमर्श है । विश्वाकार, विश्वप्रकाश एवं विश्वसंहार के रूप में अहमाकारभावना ही विमर्श है—

'विमर्शो नाम विश्वाकारेण वा विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम् । तस्यां तल्लीनत्वं नाम अन्तर्मुखत्वम्' ।

परमशिव में जो पूर्णाहन्ता है वही आख्यान्तर में विमर्श है । प्रकाश शिवरूप है और विमर्श शक्तिरूप है । शिव एवं शक्ति का नित्य सामरस्य ही परमशिव है । शक्ति आत्मारूपी परमशिव का विमर्श है । इस विमर्शि शक्ति से ही वह 'कर्तुं' 'अकर्तुं' एवं 'अन्यथाकर्तुं' स्वभाववाला होता है—

विमर्शशक्ति सर्वसह है । यह पराये को भी आत्मसात् कर लेती है । यह आत्मीय को भी पराया बना देती है । यह दोनों को एक कर देती है आदि-आदि ।

'विमर्शो हि सर्वसहः, परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं च परीकरोति, उभयम् एकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति इत्येवं स्वभावः'[१] ।

विमर्श परमशिव की परमा शक्ति है । विमर्श के बिना तो परमशिव में 'अहं' को पहचानने की भी शक्ति नहीं आ पाती । विमर्शशक्ति का स्फार ही यह नानात्मक विश्व है—'क्रियाशक्तिरेव (स्वातन्त्र्यामर्शरूपायाः) अयं सर्वो विस्फारः' ।

विमर्श एक नैसर्गिकी स्फुरत्ता है—एक लोकोत्तर शक्ति है । इसी की सहायता लेकर शिव जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार कर पाने में समर्थ हो पाते हैं—

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी ।

'नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः ।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति'[१] ।।

परमेश्वर के हृदय में जब सिसृक्षा उत्पन्न होती है तब उसके दो रूप हो जाते हैं—शिव एवं शक्ति । शिव ही प्रकाश है और शक्ति ही विमर्श है ।

समस्त चराचर जगत् वटवृक्ष के छोटे से बीज में स्थित महाकार वटवृक्ष की भाँति शक्ति के हृदय स्थित है—

'यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थः विश्वमेतच्चराचरम्'[२] ।

भगवती बगला की उपासना का स्थूल स्वरूप

भगवती बगला की पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार, षट्त्रिंशोपचार आदि से स्थूल पूजा करना एवं उनके शरीराङ्गों वाले स्थूल स्वरूप की अर्चा, ध्यान एवं सेवा करना भगवती की स्थूलोपासना है । उसका विधान तो सर्वत्र मिलता है—

ध्यान—

'पीतवर्णां मदाघूर्णां दृढपीनपयोधराम् ।
वन्देऽहं बगलां देवीं स्तम्भनास्त्रस्वरूपिणीम् ।।
नमस्ते देवदेवीशीं जिह्वास्तम्भनकारिणीम् ।
पानपात्रगदायुक्तां भजेऽहं बगलामुखीम् ।।
चतुर्भुजां त्रिनयनां पीनोन्नतपयोधराम् ।
जिह्वां खड्गं च पात्रं च गदान्तां बिभ्रतीं भजे ।। (२२।१२)
सदा च सुन्दरीं देवीं द्विभुजां बगलाम्बिकाम् ।
हस्ते वज्रधरां देवीं पानपात्रं च बिभ्रतीम्' ।। (२४।२२)

षोडशोपचार पूजन—'अर्चयेन्मूलमन्त्रेण षोडशैरुपचारकैः' । (सां. २४।१०)

(क) **भगवती का जगद्व्यापिका स्वरूप**—'देवता बगला नाम्नी जगद्-व्यापकरूपिणी' । (२२।९)

(ख) **भगवती का मन्त्रात्मक स्वरूप**—भगवती का मन्त्र हैं—'सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वाकर्षणकारिणीम्' । (सां. २०।१३)

(ग) **भगवती का जीवात्मैक्यस्वरूप**—'देवी भूत्वा यजेद्देवीमर्चना विधिवद्यदि' ।

(१) **मौन रहकर जप**—मौन व्रत—'त्रिकालं च जपेन्मन्त्रं मौनी स ध्यान-पूर्वकम्' । (सां. २३।३)

---

१. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (५।४२) । वरिवस्यारहस्यम् । २. परात्रिंशिका ।

१. सांख्यायनतन्त्र । (५।२०)

(२) **योगतत्त्व**—शाक्त दार्शनिक हयग्रीवाचार्य एवं अगस्त्य दोनों ने शक्ति-साधना में योग-साधना को स्वीकार किया है—'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसविकल्पसमाधयोऽष्टाङ्गानि योगस्य'। (शा.द. १३।१।९) 'विषयेभ्यश्चित्तवृत्ति-निरोधो योग:'। (शा.द. १३।२।१)

(३) **योग-साधना**—सांख्यायन ऋषि बगलोपासना के सन्दर्भ में कहते हैं—

'एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं न जानन्ति मुनीश्वरा:।
योगाभ्यासी योगसिद्धिस्तपस्वी च ततोऽधिक:।
मन्त्रसिद्धोऽपि यत्रैव किमाश्चर्यं कुमारक'॥ (२०।२६)

ऋषि अगस्त्य ने शाक्त साधना में योग-साधना को स्वीकार किया है—'अष्टाङ्गयोगैरिष्टार्थसिद्धि:'। (अगस्त्य : शक्तिसूत्र ४७)

ज्ञान एवं अद्वैत-साधना

भगवती की उपासना द्वैतभाव के अतिरिक्त अद्वैतभावापन्न होकर भी की जानी चाहिए, क्योंकि शाक्त-साधना अद्वैतदृष्टि प्रधान है—

'जीवेशाभेदबोधकं ज्ञानम्'। (शाक्तदर्शनम् ५।२)
'न सिद्धिर्ज्ञानं विना'। (हयग्रीव : शाक्तदर्शनम् ७।११)
'अभेदभावनाद् भेदनाश:'। (हय.शा.द. ७।२३)

'अद्वैतभावनारूपनिर्विकल्पसमाधिपर: प्रपञ्चत्रयवासनारहित: स्वानन्द-भवनम्॥ अद्वैतावस्थानरूपनिर्विकल्पसम्पन्नो ब्रह्मीभूत:'॥ (१०।३।१४-१५)

'ज्ञानसिद्धि: सानन्दम्'। (१०।४।१३) 'तदानन्दभवनम्'। (१०।४।१४) 'अद्वैतावस्थानसमाधिस्थो ज्ञानी'। (११।१।१) 'अद्वैतभावनारूपसमाधिस्थो ज्ञानयोगी'। (११।१।२) 'महावाक्यानुसारज्ञानमेव ज्ञानम्'। (११।१।४) 'अत: परमार्थं ब्रह्म इदमग्र आसीदिति'। (१२।३।३३) 'परजीवैकतां प्रति संविदुत्पत्ति: समाधि:'। (१४।४।९) 'ऐक्यानुसन्धानं समाधि:'। (१५।१।३३)

'प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते।५३। मुक्त: शुद्ध: पूर्ण: प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति'। (अगस्त्य : शक्तिसूत्र ३।५४)

सांख्यायन ऋषि भी भगवती बगला की अद्वैतभावापन्न पूजा का उपदेश देते हैं—

'देवी भूत्वा यजेद्देवीमर्चना विधिवद्यदि'॥ (२४।१४)

(४) **गुरुतत्त्व**—'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर:।
गुरु: साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नम:'॥

'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः' ॥
(श्वेताश्वतर उपनिषद्)

योग एवं तन्त्र की साधना गुरु के मार्गदर्शन के बिना सफल नहीं होती अतः बगलोपासना में भी गुरुतत्त्व महनीय तत्त्व है—

१. 'सिद्धिमार्गमिदं पुत्र नास्ति सिद्धिं गुरोर्विना'। (सां. १४।३३)
२. 'गुरुं यत्नात्प्रकर्तव्यं सततं सिद्धिकांक्षिभिः' ॥ (२।११)
३. 'गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा'। (२।१२)

(५) **सन्ध्या**—'तदारभ्य तु तन्मन्त्रसन्ध्याकर्म समाचरेत्।
मन्त्रसन्ध्याविहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत्' ॥ (४।४)

(६) **मुद्रा**—'आवाहनस्थापनानि सन्निधापनमेव च।
सन्निवेशनमुद्रा च सम्मुखी प्रार्थनी तथा' ॥ (४।८)

(७) **दीक्षा**—समस्त साधना-मार्गों में दीक्षा भी आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकृत है। उसी प्रकार बगलोपासना में भी—

'दीक्षामार्गं विना मन्त्रं शैवं शाक्तञ्च वैष्णवम्।
यो जपेत्तु दहत्याशु देवता च जुगुप्स्यति ॥
दीक्षाविधिं विना मन्त्रं यो जपेत् कोटिकोटिशः।
न स सिद्धिमवाप्नोति सिन्धुसैकतवर्षवत् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षां कुलगुरोर्मुखात्।
उपदेशक्रमेणैव मन्त्रग्रहणमादरात्' ॥ (सां. २।३-६)

(८) **अधिकारवाद** (शिष्य के गुण)—निर्मत्सरत्व, निरालम्बत्व, नीतिशास्त्र-दक्षत्व, नित्यानित्यविवेक, शुद्धि, भक्ति, अष्टपाशविनिर्मुक्ति। (सां. तन्त्र २।२१-२२)

(गुरु के गुण) वेदवेदाङ्गपारीण, वेदान्तार्थविद्, वैदिकाचारयुक्त, अतन्द्रित, गर्भकौलागम का ज्ञानी, अष्टपाशविनिर्मुक्त, नानाकौलपरायण, पुरश्चरण करने वाला, मन्त्रागमविशारद, उद्धर्ता, संहारशक्तियुद्ध, सत्यवादी, प्रधानज्ञ, पराज्ञानहारी, नीति-कोविद, श्रीविद्यामन्त्र-यन्त्र का ज्ञाता आदि। (सां. २।७-१०)

'न देया विद्यया विद्या, वित्ताकांक्षी तथैव च।
सच्छिष्याय प्रदातव्या धने देहाद्यवञ्चिते ॥
गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्।
उपदेशं ददन् गृह्णन् प्राप्नुयात्तौ पिशाचताम्' ॥
(सा.तं. २।२२-२३)

(९) **अभिषेक**—'मन्त्राभिषेकः कर्तव्यः सततं सिद्धिकांक्षिभिः'।

(१०) **उपचार**—'षोडशैरुपचारैश्च धूपाद्येनैव विन्यसेत्' ॥

(११) **कलश**—'लक्ष्मीश्रीसूक्तकाभ्याञ्च द्वितीयं कलशार्चनम्।
क्षालितं वा सितं शुद्धं कलशं तु समर्चयेत्' ॥

(१२) **गायत्री**—'अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं गायत्रीं वेदमातरम्'।

(१३) **उपस्थान**—'उपस्थानं विना सन्ध्या निष्फला नात्र संशयः'।

(१४) **अभिमन्त्रीकरण**—'पुनरेकाक्षरी मन्त्रं त्रिःसप्त अभिमन्त्रयेत्' ॥

(१५) **सम्मार्जन**—'तेन मूलेन सम्मार्ज्य मार्जनं क्रमशोऽर्भक। (मूर्द्धा, बाहु, हृदय, नाभि, अंघ्रि, पादादि मूर्धा पर्यन्त सर्वत्र मार्जन) एवं च मार्जनं कृत्वा गायत्रीं बगलाह्वयम्' ॥

(१६) **न्यास**—न्यासविद्यां प्रवक्ष्यामि सद्यः सिद्धिकरीं पराम्। एवं न्यासविधिं कृत्वा यत् किञ्चिज्जपमारभेत्' ॥

(१७) **ध्यान**—ध्यानेन मन्त्रसिद्धिः स्याद्ध्यानं सर्वार्थसाधनम्।
ध्यानं विना भवेन्मूकः सिद्धमन्त्रोऽपि पुत्रक' ॥

(१८) **गायत्री**—'गायत्रीं च विना मन्त्रो न सिद्ध्यति कलौ युगे।
पुरश्चरणकाले तु गायत्रीं प्रजपेन्नरः ॥
त्यक्त्वा तां मन्त्रगायत्रीं यो जपेन्मन्त्रमादरात्।
कोटि-कोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते' ॥ (१२।१०)

(१९) **मांस**—(वाममार्ग में)
'छागकुक्कुटमत्स्याश्च बगलाप्रीतिकारणम्'। (१३।१८)

(२०) **देवी की त्रिकाल पूजा एवं जप का विधान**—
'त्रिकालं पूजयेद्देवीं त्रिकालं प्रजपेन्मनुम्' ॥ (१३।१९)

(२१) **सभी आश्रमों के लिए उपासना का विधान**—
'ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो वा यदि वा यतिः।
बगलामन्त्रसिद्धस्तु सैव पूज्यो मुनीश्वरैः' ॥

(२२) **सिद्धबगलामन्त्र के प्रभाव का क्षेत्र**—
'बगलामन्त्रसिद्धश्च यत्र तिष्ठति भूतले।
पञ्चकोशप्रमाणेन विद्या नान्या प्रभासते' ॥ (प. १३)
'ग्रसनी सर्वविद्यानां बगलैकैव भूतले।
बगलायास्तु वै मन्त्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्' ॥ (सां. १३।२८)

(२३) **सम्प्रदाय-विधान**—
'सत्सम्प्रदायविधिना साधयेद्बगलामुखीम्'।

(२४) **सौभाग्यार्चन**—

'पुरश्चरणमध्ये तु प्रतिभार्गववासरे ।
अथवा पौर्णमास्यां वा सौभाग्यार्चनमाचरेत् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां पुष्पिणीमर्चयेन्नरः ।
मातङ्गमुनिना चोक्तं सद्यः सिद्धिकरं भुवि ॥
अर्चनं विधिमार्गेण पूजा दुर्वासमो मतम् ॥
जितेन्द्रियः सुखं त्यक्त्वा कुर्यात्सौभाग्यपूजनम् ।
सुखार्थं कुरुते योऽसौ देवताशापभाग्भवेत्' ॥

हवन—

'गुडोदकेन सन्तप्ये तद्दशांशेन पुत्रक[१] ।
त्रिकोणकुण्डे जुहुयात् हस्तनिम्नोन्नते शुभे' ॥

वाममार्ग का अनुसरण—

'वाममार्गक्रमेणैव वाममभ्यर्च्य पुष्पिणीम् ।
मन्त्रसिद्धिकरं चैव सर्वदा रिपुनाशनम्' ॥

ब्राह्मणभोजन—'ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्तत्त्वसंख्याञ्च युग्मकम्' ॥

अनेक कुण्ड-निर्माण—'विद्वेषणे तु जुहुयाद्वर्तुले कुण्डमध्यमे ।
उच्चाटने च जुहुयात् षट्कोणाख्ये च कुण्डके' ॥

षट्कर्म : १. वशीकरण—'वश्यं जनानां सर्वेषां वात्सल्यं हृद्गतं स्मृतम्' ।
२. स्तम्भन—'स्तम्भनं रोधनं पुत्र सर्वकर्मसुनिश्चितम्' ।
३. विद्वेषण—'मित्रस्य कलहोत्पत्तिर्विद्वेषणमुदाहृतम्' ।
४. उच्चाटन—'बलं बुद्धिभ्रमेणोक्तमुच्चाटनमिदं भुवि' ।
५. मारण—'प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम्' ।

होमयाग—'प्रत्येकमेनं वक्ष्यामि होमयागं निश्चितम्' ।

पुरश्चर्या—'होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ।
पुरश्चर्यां विना मन्त्रो न प्रसिद्ध्यति भूतले' ॥

उपचार—'अर्चयेदुपचारैश्च चन्दनेन विलेपयेत्' ।

तर्पण—'हेतुना तर्पणं कार्यं पूर्वसंख्यासु बुद्धिमान्' ॥

प्रत्येक आभिचारिक कर्म के लिए दिशा, माला, आसन एवं कुण्ड-निर्माण की आकृति भिन्न-भिन्न होती है। यथा—

अष्टकोणात्मक कुण्ड—'विद्वेषणे स्तम्भने च जुहुयादष्टकोणके' ।
षट्कोणात्मक कुण्ड—'उच्चाटने च वै पुत्र षट्कोणेषु विधीयते' ॥

---

१. सांख्यायनतन्त्र (५।२०)

अन्य विधान—'प्रादेशं शतहोमं च अरत्निं च सहस्रके ।
हस्तं चायुतहोमे च द्विहस्तं लक्षहोमके ॥
गुणहस्तं कोटिहोमे कुण्डनिम्नोन्नतं सुत ।
अरत्निहस्तमात्रं च द्विरत्निश्च द्विहस्तकम् ।
शतं साहस्रमयुतं लक्षहोमे त्वयं विधिः' ॥

प्रादेश—'सर्वत्रैवोन्नतं पुत्र ! प्रादेशं स्थण्डिलं स्मृतम्' ।

मन्त्र—'ॐ ह्ल्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लृं ॐ स्वाहा' ॥

यह भी ध्यातव्य है कि भगवती बगलामुखी तन्त्रशास्त्र की गुह्य महाविद्या है अतः उनकी पूजा एवं उपासना की जो तान्त्रिकी पद्धति है उसको अतिक्रान्त करके स्वच्छन्दतापूर्वक उपासना न की जाय। यहाँ तक कि कुण्ड के निर्माणों की दिशा में भी उसी प्रकार के कुण्ड बनाने चाहिए जिस प्रकार के प्रयोजन एवं अभिचार-प्रकार हों। यथा—

'षट्कोणं चाष्टकोणं च चतुःकोणं च पुत्रक ।
त्रिविधं स्थण्डिलं चैव वक्ष्येऽहं कर्म ह्यादरात् ॥
उत्तमं कुण्डहोमं च स्थण्डिलं चैव मध्यमम् ।
स्थण्डिलेन विना होमं निष्फलं भवति ध्रुवम्' ॥

प्रयोजनानुकूल कुण्ड की आकृतियों में परिवर्तन

चतस्र कुण्ड—

'लक्ष्मीः शान्तिस्तथा पुष्टिर्विद्या विघ्ननिवारिणी ।
चतस्रेण हुनेत् कुण्डे तत्र तत्प्रतिपादिते' ॥

त्रिकोणाकार कुण्ड—'वशीकरणसम्मोहे वाणिज्ये द्रव्यसंग्रहे ।
कीर्तिकामस्तु जुहुयात् त्रिकोणाकारकुण्डके ॥
वश्येन्द्रियस्तम्भने च दिव्यगन्धैस्तथैव च ।
त्रिकोणकुण्डे जुहुयाद् गुरुमार्गेण बुद्धिमान्' ॥

अष्टकोणात्मक कुण्ड—

'मारणे चाष्टकुण्डे च तत्तत्कर्मानुसारतः ।
तत्तद्द्रव्येन जुहुयात्तत्तन्मन्त्रोक्तमेव च' ॥

अर्थात् उद्देश्यानुसार उन-उन पृथक् कुण्डों में, उन-उन द्रव्यों द्वारा तथा उन-उन मन्त्रों के द्वारा हवन करना चाहिए। यथा—मारण-व्यापार में अष्टकोण कुण्ड में हवन करना चाहिए।

विद्वेषणार्थ—'विद्वेषणे तु जुहुयाद्वर्तुले कुण्डमध्यमे' ।

बगलोपासना की संक्षिप्त विधि

मन्त्र—'ॐ बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धि विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमन्त्रस्य नारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्री-बगलामुखी देवता, ह्लीं स्वाहा शक्तिः, बगलामुखीति कीलकम् (मतान्तरेण ॐ कीलकम्); श्रीबगलामुखीप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

न्यास—

१. ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

२. बगलामुखि तर्जनीभ्यां नमः।

३. सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां नमः।

४. वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां नमः।

५. जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

६. बुद्धिं विनाशय ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासः।

ध्यान—

'चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्॥
बिम्बोष्ठीं कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम्।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्यायेत् ब्रह्मास्त्रदेवताम्॥
पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रत्नोज्ज्वले मण्डपे
तत्सिंहासनमूलपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम्।
स्वर्णाभ्यां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां विभ्रमां
स्वप्ने पश्यति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽथ सर्वापदः'॥

मुद्रा—

'त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां किरीटकम्।
कुण्डलं योनिरित्यादि मुद्राः पीताम्बराप्रियाः'॥

१. भगवती को मुद्रा प्रदर्शित करके उनकी पूजा करनी चाहिए—

(शेष विधान इसी पुस्तक के अन्य स्थानों पर देखिए। पिष्ट-पेषण न हो अतः विस्तार नहीं किया जा रहा है।)

२. शान्तिकर्म एवं वशीकरणार्थ—'जुहुयाच्छान्तिवश्ये च स्थण्डिले चतुरस्त्रके'।

३. रक्षार्थ—'रक्षार्थं स्थण्डिले होमो षट्कर्मसु कुमारक'।

४. उच्चाटनार्थ—'उच्चाटने च जुहुयात् षट्कोणाख्ये च कुण्डके'॥

भगवती का दूसरा रूप सूक्ष्म रूप है जो मन्त्रस्वरूप है।

भगवती बगलामुखी की सूक्ष्मोपासना

भगवती मन्त्रस्वरूप हैं—'महातन्त्रा महामन्त्रा'।

मन्त्रतत्त्व—'नहि नादात् परो मन्त्रः' कहकर उपनिषदों ने सिद्ध कर दिया कि नाद ही मन्त्र है, मन्त्र चिति शक्ति की रश्मियाँ हैं—'मन्त्राश्चिन्मरीचयः'। इसीलिए मन्त्र को वर्णों का जडसमुच्चय नहीं माना जाता। इसीलिए उन्हें 'पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा' कहा गया। मन्त्र की यथार्थ परिभाषा निम्नांकित है—'संविद्देवता एव मन्त्रः'।

'पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मतः।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते'[1]॥

भगवती (शक्ति) स्वयं मूलमन्त्रात्मिका हैं—'मूलमन्त्रात्मिका मूलं कूटत्रयकलेवरा'। 'मन्त्राणां मातृकाश्चैव'। 'षट्चक्राक्षररूपिणीं भज सखे देवीं जगद्व्यापिनीम्'॥

मन्त्र पराशक्ति है

मन्त्र का प्रत्येक वर्ण ब्रह्माण्ड की सर्वोच्च शक्तियों का स्वरूप है। इसे इस प्रकार समझें। समस्त वर्णसमाम्नाय नाद से उत्पन्न हुआ। नाद ॐकार से उत्पन्न हुआ। ॐकार कुण्डलिनी शक्ति से उत्पन्न हुआ। जब ॐकार (समस्त वर्णसमाम्नाय का मूल स्रोत) कुण्डलिनी या पराशक्ति का स्वरूप है तब उससे उत्पन्न वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर शक्ति का स्वरूप क्यों नहीं होगा? मन्त्र एवं वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर शक्ति के रूप में हैं। चूँकि आर्थी सृष्टि पहले शाब्दी सृष्टि में अन्तर्गर्भित थी और शाब्दी सृष्टि से ही आर्थी (पादार्थिक) सृष्टि हुई तो यह भी मानना पड़ेगा कि जगत् के सारे (पञ्चभूतात्मक/पञ्चतन्मात्रात्मक) मूल तत्त्व भी शब्द (मन्त्र) से ही उत्पन्न हुए होंगे। जब मूल तत्त्व ही शब्द से उत्पन्न हुए तो उनसे उत्पन्न जगत् भी मूलतया शब्द से तथा और मूल तल में जाने पर शब्दस्वरूपा शक्ति (नादात्मिका मूल कुण्डलिनी शक्ति) से ही उत्पन्न हुआ है—यही स्वीकार करना पड़ेगा।

सारा वर्णसमाम्नाय वैखरी वाक् से, वैखरी वाक् मध्यमा वाक् से, मध्यमा वाक् पश्यन्ती वाक् से एवं पश्यन्ती वाक् परावाक् से उत्पन्न हुआ। अतः परावाक् ही वर्णसमाम्नाय का मूल सिद्ध हुआ किन्तु परावाक् तो कुण्डलिनी शक्ति है[2]।

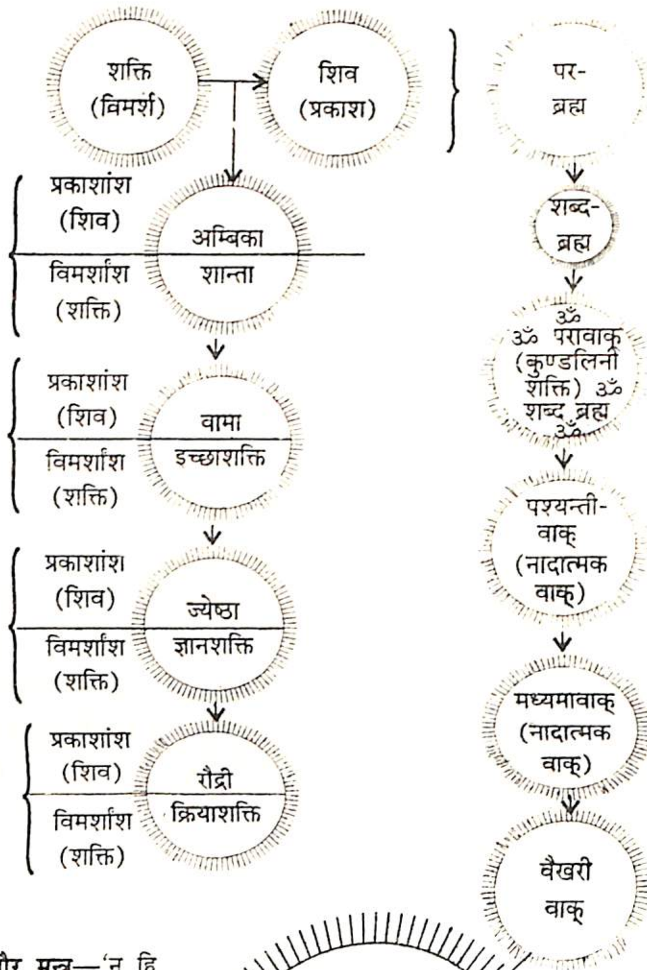
शिव, शक्ति, वाक् और मन्त्र

'वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ'॥

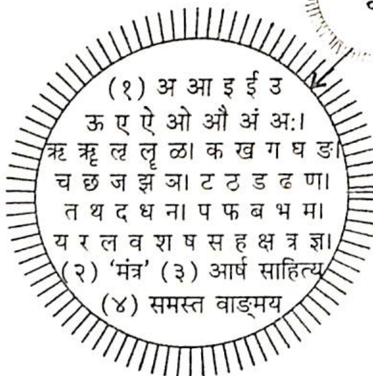
---

१. 'सौभाग्यभास्कर' में उद्धृत।

२. प्रपञ्चसारतन्त्र।



नाद, शक्ति और मन्त्र—'न हि नादात् परो मन्त्रः' कहकर उपनिषदों ने 'नाद' को मन्त्र से अभिन्न स्वीकार किया। अर्थात् नाद ही मन्त्र है। नाद क्या है ? नाद शक्ति का रूपान्तरण है—'आसीच्छक्तिस्ततो नादः'। (शारदातिलक)



मन्त्रावयव

प्रत्येक मन्त्र के अनेक अवयव होते हैं। यथा—ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति एवं कीलक। यथा—

बगला का शताक्षरी मन्त्र—

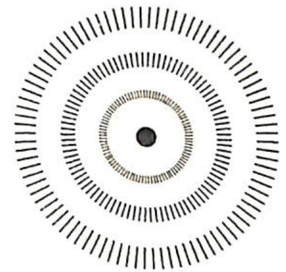
'शताक्षरी महामन्त्रं बगलायाः सुपावनम् ।
ब्रह्मा ऋषिश्च गायत्री छन्दः प्रोक्तं च षण्मुख ।।
देवता बगला नाम्नी जगत्स्तम्भनकारिणी ।
ह्लीं बीजं शक्ति माया च कीलकं वाग्भवं यथा ।।
पूर्वोक्तं नाम विद्यां च बगला पञ्जरादयः ।
न्यसेदयुक्तक्रमेणैव ततो ध्यायेच्छताक्षरीम्' ।। (पटल १७)

मन्त्र, शब्द एवं जगत्—मूल मन्त्र ॐकार है—ॐकार महामन्त्र है । यही मूल शब्द है । इसी मूल शब्द से जगद्रूपी 'विवर्त' सत्ता में आया है । इस विषय में आचार्य भर्तृहरि कहते हैं—

'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः' ।।

वैयाकरण **स्फोटवादी** हैं । उनकी दृष्टि में स्फोट से ही जगत् की सृष्टि हुई है । 'Big Bang' का आधुनिक सिद्धान्त एक दृष्टि से सही है कि सृष्टि एक **विस्फोट** से हुई । सृष्टि एक **बिन्दु से** हुई । वही **सघन बिन्दु विस्फोट के बाद अब भी अनन्त ब्रह्माण्डों** के रूप में (अनेक पिण्डों के रूप में) फैलता चला जा रहा है । आदिकाल में यह इतना सघन था कि इसके एक सेण्टीमीटर स्थान में कई टन सामग्री आ सकती थी । 'प्रपञ्चसारतन्त्र' में आचार्य शंकर ने 'बिन्दु' से समस्त सृष्टि का उद्भव प्रतिपादित करते हुए कहा है कि बिन्दु ही जगत एवं उसकी सृष्टि का मूल तत्त्व है । 'बिन्दु' के विस्फोट से ही जगत की सृष्टि हुई है ।

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ।।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधा ।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते ।
स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते ।
बिन्दोस्तमाद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत् ।
स र वः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते' ।।



भगवती बगला का चिन्मयस्वरूप

भगवती अपने मूलस्वरूप में चिन्मयस्वरूपा हैं—

१. भजेऽहं स्तम्भनार्थं च चिन्मयीं विश्वरूपिणीम् ।
२. देवता बगला नाम्नी चिन्मयीं शक्तिरूपिणीम् ।
३. चिन्मयीं बगलां देवीं सर्वसिद्धिप्रदायिकाम् ।
४. चिन्मयीं स्तम्भिनीं देवीं भजेऽहं विधिपूर्वकम् ।। (सांख्यायनतन्त्र)
५. चिच्छक्तिर्ज्ञानरूपा देवी माता श्रीबगलामुखी ।

६. रुद्ररूपा रुद्रशक्तिश्चिन्मयी भक्तवत्सला ॥

शिवसूत्रकार ने आत्मा को चित्शक्ति ही स्वीकार किया है—'चैतन्यमात्मा'। (शिवसूत्र १।१)

आत्मा ही विश्व का मूल है

'आत्मा खलु विश्वमूलम्'।

भगवान् की पाँच शक्तियाँ हैं उनमें मूलभूत आद्या प्रथम शक्ति चितिशक्ति है। उनकी शक्तियों का स्वरूप इस प्रकार है—'सर्वशक्तिरवचित एक एव अस्ति संविदात्मा महेश्वर:'।

१. तस्य प्रकाशरूपता चिच्छक्ति:।
२. स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्ति:।
३. तच्चमत्कार: इच्छाशक्ति:।
४. आमर्शात्मकता ज्ञानशक्ति:।
५. सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्ति:।

इत्थं सर्वशक्तियोगेऽपि आभिर्मुख्याभि: शक्तिभिरुपचर्यते, स च भगवान् स्वातन्त्र्य-शक्तिमहिम्ना स्वात्मानं संकुचितमिव आभासायन अणु: इति उच्यते[1] ॥

शक्ति क्या है ? (महेश्वरानन्द की दृष्टि)—

'स एवं विश्वमेषितुं ज्ञातुं कर्तुं चोन्मुखो भवन् शक्तिस्वभाव: कथितो हृदयत्रिकोण-मधुमांसलोल्लास:'। (महार्थमञ्जरी-१४)[2] जब शिव अपने हृदय में इच्छा-ज्ञान-क्रियास्वरूप त्रिकोणात्मक आह्लाद (दिव्य, सच्चिदानन्दरसास्वादनार्थ) विश्व की सृजनेच्छा (सिसृक्षा) ज्ञान एवं क्रिया की ओर उन्मुख होता है तब वह शक्तिमान् शक्तिस्वभाव कहा जाता है।

बगलामहाविद्या में गुरुक्रम

यदि महाविद्या भगवती बगलामुखी के गुरुक्रम पर विचार किया जाय तो वह ओघत्रयानुसार इस प्रकार है—

(१) दिव्यौघ	(२) सिद्धौघ	(३) मानवौघ
१. श्री उन्मन्यानन्दनाथउन्मन्यम्बाश्री	१. श्री महेशानन्दनाथ	१. श्री ईश्वरानन्दनाथ
२. श्री उन्मन्याकाशानन्द	२. श्री परेशानन्दनाथ	२. श्री रुद्रानन्दनाथ
३. श्री परमानन्दनाथ	३. श्री सच्चिदानन्दनाथ	३. श्री विश्वानन्दनाथ
४. श्री सहजानन्दनाथ	४. श्री चिदानन्दनाथ	४. श्री ब्रह्मानन्दनाथ
५. श्री परमानन्दनाथ		५. श्री नारदानन्दनाथ
६. श्री उन्मन्याकाशानन्दनाथ		

१. जन्ममरण-विचार : वामदेव भट्ट। २. महेश्वरानन्द।

पीठ तत्त्व

शिव की दो अवस्थाएँ हैं—(१) विश्वातीत, (२) विश्वमय। परमशिव विश्वोत्तीर्ण हैं। विमर्श शक्ति विश्वमय है। प्रकाश शिव को अम्बिका एवं विमर्श शक्ति को शान्ता कहा गया है। इनके सामरस्य से—

(क) वामा (इच्छाशक्ति), (ख) ज्येष्ठा (ज्ञानशक्ति), (ग) रौद्री (क्रियाशक्ति)—शक्तियों का विकास हुआ है। इन्हीं का आख्यान्तर है—

१. पूर्णगिरि पीठ, २. जालन्धर पीठ, ३. उड्डीयान पीठ। बिन्दु की अवस्था में (प्रकाश + विमर्श का संयोग 'बिन्दु' का आविर्भाव) अर्थात् शिव एवं शक्ति की सामरस्यावस्था में 'स्वयम्भूलिङ्ग'। शिव-शक्ति के सामरस्य को कामरूप पीठ कहते हैं।

१. अम्बिका—(शिवांश)
शान्ता—(विमर्शांश) > परावाक्

२. वामा—(प्रकाशांश)
इच्छाशक्ति—(विमर्शांश) > पश्यन्ती वाक्

३. ज्येष्ठा शक्ति (प्रकाशांश)
ज्ञानशक्ति (विमर्शांश) > मध्यमा वाक्

४. रौद्री शक्ति (प्रकाशांश)
क्रियाशक्ति (विमर्शांश) > वैखरी वाक्

पीठ शिव-शक्ति के सामरस्य के रूपान्तर हैं। आचार्य अङ्गिरा के अनुसार पीठ प्राण में उत्पन्न होता है और यह आकर्षण-विकर्षण शक्तियों की क्रीड़ा है। पीठ की उत्पत्ति प्राणमय कोष में होता है—'पीठस्याविर्भावः प्राणमये'। (अं.भ.सू.)

पीठतत्त्व का स्वरूप—पीठ शक्ति के आसीन होने का आसन है। इष्ट देवता, मन्त्र, पीठ, उपपीठ के साथ सम्बन्ध जोड़ने से सिद्धि-प्राप्ति में शीघ्रता होती है। वर्णमाला में ५१ अक्षर हैं। अन्तिम अक्षर 'क्ष' माला का सुमेरु है। इस वर्णमाला के आधार पर सती के भिन्न-भिन्न अङ्ग गिरे हैं। उतनी भूमि (जहाँ सती के शरीराङ्ग गिरे) वर्णसमाम्नाय स्वरूप ही है। भिन्न-भिन्न वर्णों की शक्तियाँ और देवता भिन्न-भिन्न हैं। उन-उन वर्णों, पीठों, शक्तियों एवं देवताओं का सम्बन्ध है।

पिण्ड में मूलाधार चक्र को योनिपीठ या बिन्दुपीठ कहते हैं। आसाम के कामाख्या पीठ को भी योनिपीठ कहते हैं, क्योंकि वहाँ भगवती का यही गुह्याङ्ग गिरा था—

'आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम्।
योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते॥
कामाख्यं तु गुदस्थाने पङ्कजं तु चतुर्दलम्।

तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता ।
तस्य मध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्'[1] ।

योनिपीठ या बिन्दुपीठ मूलाधार चक्र ही है। यही बीज तुल्य (कारणात्मक) परावाक् है। उससे अंकुर तुल्य नाद स्फुरित होता है। मूलाधार और स्वाधिष्ठान के मध्य योनि है और वही कामरूप कामाख्या है।

उड्डीयान पीठ मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य स्थित है तथा आज्ञाचक्र में स्थित है।

उड्डीयान पीठ के दो स्थान हैं—

'ततः पूर्वापरे व्योम्नि द्वादशान्तेऽच्युतात्मके ।
उड्ड्यानपीठे निर्द्वन्द्वे निरालम्बे निरञ्जने ।।
नाभौ लिङ्गस्य मध्ये तु उड्यानाख्यं च बन्धयेत् ।
उड्डीय याति तेनैव शक्तितोड्यानपीठकम्[2] ।।

आगम शास्त्रों में पीठन्यास के प्रसङ्ग में उड्डीश एवं ओड्यान पृथक् उल्लिखित हैं—

'पं उड्डीशाय नमः दक्षपार्श्वे । लं ओड्याणाय नमः हृदयादि गुह्यान्तम्' ।

दो शक्तियों (राग एवं द्वेष = आकर्षण + विकर्षण) शक्तियों के समन्वय से पीठाविर्भाव होता है—'तदाविर्भावः शक्त्योः साम्यात्' । (दै.मी.द.)

मानव पिण्ड में स्थित पीठ

चक्र	पीठ
१. मूलाधार चक्र	कामरूप पीठ
२. अनाहत चक्र	पूर्णगिरि पीठ
३. विशुद्ध चक्र	जालन्धर पीठ
४. आज्ञा चक्र	उड्डीयान पीठ

वर्णसमाम्नाय और पीठ—

(१) मूलाधार चक्र—(दल संख्या)	०४
(२) स्वाधिष्ठान चक्र—(दल संख्या)	०६
(३) मणिपूरक चक्र—(दल संख्या)	१०
(४) अनाहत चक्र—(दल संख्या)	१२
(५) विशुद्धाख्य चक्र—(दल संख्या)	१६
(६) आज्ञा चक्र—(दल संख्या)	०२
योग	५०

१. योगकुण्डल्योपनिषद् । २. योगशिखोपनिषद् ।

आज्ञाचक्र अव्यक्तात्मक है और प्रकृति की उच्छूनावस्था है। यह ओंकार बीज युक्त है। विशुद्ध चक्र 'अ' से 'अः' तक है (१६ स्वर)। अनाहत चक्र 'क' से 'ठ' व्यञ्जन वर्णों वाला है।

वर्णमाला—(१) 'अ' से 'क्ष' तक के वर्ण = 'अक्ष' = ५० वर्ण।
(२) 'अ' से 'त्र' तक के वर्ण = 'अत्र' = ५१ वर्ण।
(३) 'अ' से 'ज्ञ' तक के वर्ण = 'अज्ञ' = ५२ वर्ण।

'क्ष' शब्द-माला का सुमेरु है (सुमेरुस्थानीय है)।

सती के अंगों के पतन से अकारादि क्षकारान्त ५१ अक्षरों की अभिव्यक्ति हुई है।

५० अक्षर ऋग्वेद के 'ळ' को लेकर ५१ हो जाते हैं।

'अक्ष' प्रत्याहार में भी ५१ वर्ण हैं।

सती के अंगोपांगों के गिरने से—५१ पीठों का निर्माण।

किसी-किसी के कथनानुसार भगवती कुण्डलिनी ही सती हैं। आम्नाय ६ हैं—

(१) ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय।
(२) यजुर्वेदीय दक्षिणाम्नाय।
(३) सामवेदीय पश्चिमाम्नाय।
(४) अथर्ववेदीय उत्तराम्नाय।
(५) ऊर्ध्वाम्नाय।
(६) अनुत्तराम्नाय।

(१) पार्थिव चक्र	=	मूलाधार चक्र	:	बीज 'लं'	:	पृथ्वी तत्त्व
(२) वारुण चक्र	=	स्वाधिष्ठान चक्र	:	बीज 'वं'	:	जल तत्त्व
(३) तैजस चक्र	=	मणिपूर चक्र	:	बीज 'रं'	:	अग्नि तत्त्व
(४) वायव्य चक्र	=	अनाहत चक्र	:	बीज 'यं'	:	वायु तत्त्व
(५) आकाश चक्र	=	विशुद्धाख्य चक्र	:	बीज 'हं'	:	आकाश तत्त्व
(६) मनश्चक्र	=	आज्ञा चक्र	:	बीज = 'ह + क्ष'[1]		

पिण्ड में शक्तिस्थान एवं शाम्भवस्थान—

'मूलाधारादि षट्चक्रं शक्तिस्थानमुदीरितम्।
कण्ठादुपरि मूर्धान्तं शाम्भवं स्थानमुच्यते'॥

(वाराहोपनिषद् ५।५३)

ब्रह्मास्त्रविद्या

यह विद्या महर्षि अगस्त्य ने भगवान् राम को प्रदान की थी—

---

१. मनस्तत्त्व का चक्र।

'अगस्त्यश्चोक्तवान् पूर्वं रामं दाशरथिं प्रति' ॥

जिस ब्रह्मास्त्रविद्या का यहाँ स्वरूप-विवेचन किया गया है वह तो विश्व में अन्यतम है। उसके द्वारा दुष्ट, दूषक, दुरात्मा एवं शत्रु प्राणियों से रक्षा; दुष्ट ग्रह, राशि, सेना, क्रूर ग्रह, अपमृत्यु, रोग एवं परसेनाक्रमण का पराभव; स्वसेनारक्षा, आत्मरक्षा, विजय, शत्रु-पराजय, वेतालादि शक्तियों का नाश, भैरवादि का प्रशमन, विषनाश, मुष्टिकुक्षिनाश, संहारास्त्रनाश, शस्त्रस्तम्भन, स्तब्धीकरण, मृतकोत्थान, देशोपद्रवशान्ति, राष्ट्रभङ्ग, कृत्याविनाश, स्वेष्टरक्षण, पञ्चतत्त्व-कृत्याविनाश, विरुण्डा के नाश, शैलस्तम्भ, मृत्युनाश, घटकृत्यनाश, मारण-मोहन-उच्चाटन-वशीकरण-स्तम्भन-विद्वेषण की सिद्धि एवं दूसरों द्वारा किये इन प्रयोगों से रक्षा आदि हजारों प्रयोजनों की सिद्धि होती है। यह उपद्रवों से रक्षा करने वाली, अनन्त शक्ति-सम्पदा प्रदान करने वाली, रोगों का शमन करने वाली, सर्वाभीष्टों की सिद्धि करने वाली, चतुर्वर्ग (पुरुषार्थचतुष्टय) प्राप्त कराने वाली एवं भगवती की भक्ति में अग्रपद करके मोक्ष प्रदान करने वाली महाविद्या है—

'अमात्यानां च दुष्टानां दूषकानां दुरात्मनाम्।
दुष्टग्रहादिजातीनां सैन्यानामपि पुत्रक ॥
क्रूरग्रहविनाशाय सर्वशान्त्यर्थमेव च।
पराभिचारशान्त्यर्थं रक्षार्थं च विशेषतः ॥
अपमृत्युविनाशार्थं रोगशान्त्यर्थमेव च।
परसेनाविनाशाय स्वसेनारक्षणाय च ॥
आत्मार्थं च परार्थं च विजयार्थं च षण्मुख।
वेतालादिविनाशार्थं भैरवादिप्रशान्तये ॥
समस्तविषनिर्नाशमुष्टिकुक्षिविधावपि।
शस्त्रास्त्रशरसन्धाने संहारास्त्रादिनाशने ॥
शस्त्रास्त्रस्तम्भनेषु च तद्वत्सूर्चाविधावपि।
स्तब्धीकरणनाशार्थं मृतकोत्थापनेऽपि च।
देशोपद्रवनाशार्थं राष्ट्रभङ्गसमागमे ॥
कोटिकृत्याविनाशार्थं स्वेष्टरक्षणकर्मणि।
हतनष्टप्रनष्टादिवारुण्याग्न्यप्यजातिषु।
पत्रपुष्पफलं शाखा जयत्वक्क्षीरनीरके ॥
महाविषे तैजसे तु विण्मूत्रबीजरक्तते।
उद्भ्रान्तघूरिनाशार्थे घटकृत्यविनाशने।
जलकृत्याविनाशार्थे स्थलकृत्याविनाशने ॥
वातकृत्याविनाशार्थे गन्धकृत्याविनाशने।
महेन्द्रपदनिर्नाशे विरुण्डानाशनेऽपि च ॥
भेरुण्डानाशनाद्यर्थे रक्तपावेशभैरवे।

शैलस्तम्भे दारुनाशे मन्त्रमण्डलरोगहृत् ॥
सत्यब्रह्मास्त्रयोगोऽयं सर्वथा चलति ध्रुवम् ।
अमोघमृत्युनाशाय समाश्चर्यरमा यदि ।
तं प्रयोगमहायोगं शृणु सार्वहितो भव' ॥

(सां.तं. ३४ पटल)

इस विश्वविजयिनी महाविद्या का प्रभाव यह है कि यदि इसका प्रयोग कर दिया जाय तो बहुत बोलने वाला भी गूँगा हो जाता है, राजा भिखारी हो जाता है, आग शीतल हो जाती है, क्रोधी शान्त हो जाता है, दुष्ट सज्जन हो जाता है, शीघ्रगामी पङ्गु हो जाता है। अहंकारी अहं खो देता है और चेतन जड़ हो जाता है—

'वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः' ॥

मन्त्र और लोगस (Logos)

भगवती बगला मन्त्रात्मिका है। भगवती बगलामुखी तत्त्वतः तो अनाम है, अरूप है, अतीन्द्रिय है और असंवेद्य हैं किन्तु वे सर्वनामात्मक, सर्वरूपात्मक, सर्वेन्द्रियात्मक एवं सर्वसंवेद्यात्मक भी हैं। वे—

'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे विवृत्ताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा' ॥ (मुण्डकोपनिषद्) भी हैं और वे— 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' भी हैं और अणुतम-महत्तम होने के कारण—'अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः' भी हैं। वे मन्त्र भी हैं और मन्त्ररूपा भी हैं। प्रश्न उठता है कि मन्त्र क्या है ? मन्त्र नाद है और नाद शक्ति है—'नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता'।

वह मन्त्रात्मिका भी है—'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा'। 'सर्वमन्त्रस्वरूपिणी' ॥

वह वर्णात्मिका भी हैं और मन्त्रात्मिका भी—'मातृकावर्णरूपिणी'। वर्ण क्या है ? वर्ण शब्द है और शब्द क्या है ? शब्द ब्रह्म है—

'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः' ॥

(वाक्यपदीय : भर्तृहरी)

चूँकि भगवती स्वयं मन्त्रस्वरूपा है, अतः—

'यह भगवती का मन्त्र है'—यह कहना ठीक नहीं है प्रत्युत 'भगवती ही मन्त्र

हैं'—यह कहना ठीक रहेगा। भगवती शब्दब्रह्म हैं। उनके प्रत्येक मन्त्र के साथ जो 'ॐ' जुडा है वे वह भी हैं—

'ॐकारवलयोपेता ॐकारपरमा कला'।

वे मन्त्र भी हैं—

'क्लींक्लींक्लींरूपिका देवी क्रींक्रींक्रींनामधारिणी'।
श्रींश्रींकारा महाविद्या श्रद्धा श्रद्धावती तथा।
मन्त्ररूपा परादेवी तथैव गुरुरूपिणी'॥

मन्त्र परमात्मा का सूक्ष्मस्वरूप है। मूल मन्त्र ही शब्दतत्त्व या शब्दब्रह्म है।

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणो ये मनीषिण:।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, चतुर्थो वाचो मनुष्या वदन्ति'॥

कहकर उपनिषदों में जिन चार वाकों का उल्लेख किया है उनमें प्रथम वाक्—परावाक् ही Logos है। **जस्टिन** ने कहा—'क्राइस्ट वह लोगस (शब्दब्रह्म) थे और हैं जो प्रत्येक मनुष्य में निवास करता है'[१]। 'लोगस' का सर्वाधिक मूर्तिकरण ईसा में हुआ है[२]। संसार की रचना सीधे परमात्मा ने नहीं प्रत्युत शुद्ध बुद्धि की मूर्त्त शक्ति ने की। यह परमात्मा की सृजन शक्ति है। Logos (लोगस = शब्दब्रह्म) शुद्ध बुद्धि की वह शक्ति है जो रचनात्मक सिद्धान्त एवं रहस्योद्घाटक शब्द दोनों है। लोगस ईश्वर में स्थित है। सृष्टि-सौकर्य के लिए उसने अपने में से 'लोगस' को उत्पन्न किया। 'लोगस' दृश्य ईश्वर है, वह संसृष्ट ईश्वर तत्त्व है। **इरेनेइयस** (एपौलाजिस्ट : सुधारवादी) ब्रह्म एवं ईश्वर में भेद मानते थे तथा उन्होंने दोनों में तादात्म्य स्वीकार किया। **इरेनेइयस** ने कहा—मनुष्य को दिव्यरूप एवं अमर बनाने हेतु ईश्वर को मनुष्य बनना चाहिए। वही ईश्वर चिरन्तन शब्द (Logos) बनकर जन्म लेता है। हम Logos के माध्यम से ही ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। इसके पूर्व नहीं। कोई भी व्यक्ति पिता (God) तक Son (ईसा) के माध्यम से ही पहुँच सकता है, स्वतन्त्र रूप से नहीं।

'In the begining was the 'word' and the word was with God and the word was God. He was in the begining with god. All things were made through him, all without him was not anything made that was made. (Bible : John)

Bible में कहा गया है—

And the word became flesh and dwelt among us full of grace and truth. (John I/14)

१-२. अपालास्त्री।

क्लीमेण्ट कहता है कि 'ईश्वर के शब्द ने मनुष्य का रूप इसलिए ग्रहण किया ताकि तू भी मनुष्य से यह शिक्षा ग्रहण करे कि मनुष्य ईश्वर कैसे बनता है'।

'यदि कोई अपने आपको जानता है तो वह ईश्वर को भी जान जायेगा और ईश्वर को जानने के बाद वह भी उसी के समान हो जायेगा। मनुष्य जिसके साथ 'लोगस' रहता है····ईश्वर के समान बना दिया जाता है····मनुष्य ईश्वर बन जाता है'।

आरिगेन का मत है कि Son या Logos ईश्वर ही है। वह उसी तत्त्व एवं प्रकृति से निर्मित है जिसका 'पिता' निर्मित है। **आरिगेन** कभी-कभी यह भी कह देता है कि Logos ब्रह्म (God head) का अंश है ईश्वर नहीं है। उसके मत से ईश्वर एवं पुत्र दोनों ब्रह्म (God head) के अन्तर्गत हैं। बौद्धिक आत्माएँ ब्रह्म से बाहर स्थित हैं।

भारतीय दार्शनिकों ने इस Logos नामक शब्दब्रह्म महामन्त्र की संज्ञा प्रदान की है। 'शब्दब्रह्म' ॐ—

(१) यह समस्त जगत् ॐ ही है।

(२) भूत, वर्तमान एवं भविष्य भी ॐ ही है।

(३) सब कुछ ॐ ही है—

'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव'। जो त्रिकालातीत है वह भी ॐ ही है—'यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव'। (माण्डूक्योपनिषद् १)

आत्मा और ओंकार में तादात्म्य—'नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। ···शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः। सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति'।

(माण्डूक्योपनिषद्)

अतः ॐकार आत्मा है और आत्मा का ही ध्वन्यात्मक स्वरूप मन्त्र है—'मन्त्राश्चिन्मरीचयः'।

१. प्रोट्रेप्ट। २. पैड।

ईसा (पुत्र) का दूसरा नाम 'शब्द' है।

बहुदेवोपासना और भगवती बगलामुखी

भगवती बगला ग्रामदेवता की भाँति कोई सीमित शक्ति (व्यक्तित्व, प्रभाव) एवं देशकालावच्छिन्नत्व आदि से उपहित व्यष्टिभूत देवता नहीं हैं अपितु वे सर्वेश्वरी हैं। उन्हीं में १० महाविद्याएँ, त्रिदेव एवं सारी सत्ताएँ तथा सारा विश्व अन्तर्गर्भित हैं।

बहुदेवोपासना का विदेशी आक्षेप निराधार है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है—

(१) य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

(२) एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सङ्कुचोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः[१] ॥

(३) विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो, विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ (श्वे.उप.)

(४) यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधिष्ठत्येकः ॥ (श्वेता.उप.)

(५) क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
ब्रह्म त्रिविध है—
'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्' ॥ (श्वे.उप.)

तथापि वह 'एक' ही है क्योंकि ये उसके स्वरूप हैं। उसके तीन स्वरूप तो हैं किन्तु वह 'एक' ही है।

(६) विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।

(७) एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

(८) एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।

(९) नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।

(१०) एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

(११) एको इन्द्रः पुरुरूप ईयते ।

(१२) एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) ।

(१३) भगवती बगला बहुदेवोपासना की देवी नहीं हैं प्रत्युत सर्वदेव-अन्तर्गर्भिता, सर्वेश्वरी, पराशक्ति की उपासना की देवी हैं, क्योंकि वे सर्वदेवीमय हैं—

'मातर्भैरवि भद्रकालि विजये वाराहि विश्वाश्रये !
श्रीविद्ये समये, महेशि बगले कामेशि, वामे रमे !
मातङ्गि ! त्रिपुरे परात्परतरे ! स्वर्गापवर्गप्रदे !
दासोऽहं शरणागतोऽस्मि कृपया विश्वेश्वरी त्राहि माम्' ॥

बहुदेवतावाद और महाविद्या बगलामुखी

पाश्चात्य विचारकों का आक्षेप है कि भारतीय दार्शनिकों ने 'एकेश्वरवाद' के स्थान पर 'बहुदेववाद' की स्थापना की है जबकि ईसाई–इस्लामी धर्म बहुदेववाद की क्षुद्र सीमा अतिक्रान्त करके किसी सर्वोपरि, अद्वितीय, सर्वोच्च एवं एक ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं। किन्तु यह आक्षेप अयथार्थ है, क्योंकि प्रत्येक देवी (बगला, दुर्गा, महिषासुर-

१. श्वेताश्वतरोपनिषद् (३।१-२) (ब. स्तोत्र)।

मर्दिनी, महात्रिपुरसुन्दरी) दूसरी देवी से पृथक् प्रतीत होती हुई भी उससे पृथक् नहीं हैं और सारी देवियाँ और शक्तियाँ उसी का रूप है, अतः वह परात्पर ब्रह्म है और एक ही है।

शाक्त दर्शन और लाइबनिट्ज का चिद्बिन्दुवाद—शाक्त दर्शन के सर्वचैतन्यवाद, सर्वक्रियात्मकतावाद, सर्वशक्तिवाद के सिद्धान्त हमें जर्मनी के दार्शनिक लाइबनिट्ज के दर्शन में भी मिलते हैं। 'Monadology' के उसके सिद्धान्त शाक्त दर्शन से मिलते-जुलते हैं। गोट्फ्रीड विल्हेल्म लाइबनिट्ज लिपज़िग (जर्मनी) ने **डेकार्टे** के Space (Extention) के सिद्धान्त को काटकर 'आत्मकरण' (Monad) को स्थापित करके उन्हें ही चरमसत्य सिद्ध किया। उसके अनुसार—आत्मकरणों में सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत्, अतिजाग्रत् महाजाग्रत् आदि के रूप में चैतन्य के जागरण के अनन्त स्तर एवं सोपान हैं। सर्वोच्च चैतन्य विकास का सर्वोच्च शिखर ही परमात्मा है। लाइबनिट्ज ने कहा कि संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो क्रिया न करता हो। जो क्रिया नहीं करता उसका अस्तित्व ही नहीं है। सर्वत्र जीवन है। यही शाक्त दर्शन भी मानता है। **डेकार्टे** की भाँति वह 'विस्तार' को नहीं 'शक्ति' को शरीर का यथार्थ गुण मानता था। उसके कथनानुसार बिना शक्ति के विस्तार हो ही नहीं सकता। शक्ति ही मुख्य गुण है। **डेकार्टे** का देश (Space) परमार्थ नहीं है। शक्तियाँ देश पर नहीं किन्तु देश शक्तियों पर निर्भर हैं। जहाँ शक्तियाँ समाप्त होती हैं वहाँ देश भी समाप्त हो जाता है। जीव अगणित आत्मकणों में से एक है। आत्मा अचल एवं एकरस है। आत्मा इन्द्रियों का मोहताज नहीं है। चिद्बिन्दुओं में विकास की अनन्त सम्भावनाएँ हैं।

प्रत्येक पदार्थ 'एण्टीटीपिया' एवं विस्तार है। 'मैटीरिया प्राइमा' (प्राथमिक पदार्थ) अमूर्त पदार्थ है। वह कोई वास्तविक वस्तु नहीं है और वह निष्क्रिय है। यह पिण्ड की अमूर्त निष्क्रियता है। लाइबनिट्ज़ पूर्ण निष्क्रियता में विश्वास भी नहीं करता। यह द्रव्य नहीं है। यह एक अमूर्त निष्क्रियता है।

द्वितीय पदार्थ (मैटीरिया सेकण्डा) चेतन सत्ता है। प्राथमिक पदार्थ (एण्टीटीपिया) (अमूर्त निष्क्रियता) मौनेड (चिद्बिन्दु) की अपूर्णता एवं ससीमता है। प्रत्येक चिद्बिन्दु में प्रथम पदार्थ (निष्क्रियता) भी है और सम्पूर्ण द्रव्य का निष्क्रिय सामर्थ्य है। परमात्मा भी किसी द्रव्य के प्राथमिक पदार्थ का अपहरण नहीं कर सकता। द्वितीय पदार्थ सदैव एक समूह होता है। द्रव्य का सार 'देश' (Space) नहीं है।

प्रत्येक Monad (चिद्बिन्दु) सक्रिय-निष्क्रिय दोनों हैं, क्योंकि निष्क्रियता सम्भव नहीं और पूर्ण सक्रियता तो मात्र ईश्वर है। चिद्बिन्दु (Monad) में प्राथमिक पदार्थ निष्क्रिय किन्तु सक्रिय पक्ष में एक चेतन सत्ता है। प्रत्येक आत्मा का एक शरीर होता है। शरीर से पूर्णतया विच्छिन्न आत्मा नहीं होती। वह ऐसा तभी हो सकती है जब वह ईश्वर बन जाय। संसार सक्रिय है और उसके छोटे-से-छोटे कण में भी जीवन है। प्रत्येक द्रव्य शरीर एवं आत्मा से निर्मित है। जगत् चिद्बिन्दुओं से निर्मित है जिनमें से प्रत्येक—

आत्मा और शरीर चेतन सत्ता एवं प्राथमिक पदार्थ की मूर्त एकता है। प्रकृति सर्वत्र जीवित है—निर्जीव कुछ भी नहीं है। प्रत्येक चिद्बिन्दु एक-दूसरे से भिन्न है। प्रधान चिद्बिन्दु द्रव्य की आत्मा या चेतना है। निर्जीव एवं सजीव एक-दूसरे में बदल जाते हैं। निर्जीव उसे कहा जा सकता है जिसमें निम्न कोटि की सजीवता है, क्योंकि वस्तु पूर्णतया निर्जीव है ही नहीं। जिसे हम जन्म और मृत्यु के नाम से पुकारते हैं वे जन्म और मृत्यु नहीं हैं, वे रूपान्तर हैं।

धूल और कण में भी जीवन है। प्रत्येक कण में भी हमारे जैसा ही संसार अवस्थित है।

आत्मचैतन्य की ३ श्रेणियाँ हैं--१. मात्र जीवित प्राणी, २. जन्तु और ३. मनुष्य।

(१) वनस्पति एवं अन्य निम्नस्तरीय सत्ताएँ मात्र जीवित प्राणी की कोटि में आती हैं। इनमें आत्मा के स्थान पर एक रिक्त चिद्बिन्दु रहता है। इनमें आत्मचेतना नहीं किन्तु प्रत्यक्ष एवं प्रतिबिम्बन की क्षमता रहती है।

(२) द्वितीय श्रेणी जन्तुओं की है। इनमें प्रत्यक्ष उच्च स्तर का रहता है अतः इनमें स्मृति के साथ चेतना (वेदना) रहती है।

(३) तृतीय श्रेणी मनुष्य की है। इनमें उक्त दोनों वर्गों की विशेषताएँ विद्यमान हैं।

प्रत्येक चिद्बिन्दु सम्पूर्ण विश्व को प्रतिरूपित करता है। योग के 'यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे' से मिलता-जुलता है।

जिनमें केवल प्रत्यक्ष है उन्हें चिद्बिन्दु (मौनेड) एवं जिनमें प्रत्यक्ष अधिक स्पष्ट एवं स्मृति रहती है उन्हें आत्मा कहना समीचीन रहेगा। मूर्च्छावस्था में मनुष्य की भी स्मृति लुप्त हो जाती है—तब इस गहन एवं स्वान शून्य निद्रा में आत्मा चिद्बिन्दु से भिन्न नहीं है। चूँकि आत्मा इसी अवस्था में न रहकर इससे विमुक्त होकर अपनी स्मृति एवं स्पष्ट चेतना पुनः प्राप्त कर लेती है अतः वह चिद्बिन्दु नहीं अपितु उससे उच्चतर स्तर पर आरूढ़ आत्मतत्त्व है। सब कुछ होने पर भी आत्मा को भी सामान्यतः चिद्बिन्दु कहा जा सकता है।

साधना और उसके विभिन्न सोपान

साधना के विभिन्न स्तर हैं—विभिन्न पड़ाव एवं सोपान हैं—

(१) सर्वोच्च साधना	: ब्रह्मसद्भाव	'उत्तमो ब्रह्मसद्भावः, ध्यानभावस्तु
(२) मध्यम साधना	: ध्यानभाव	मध्यमः। स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बाह्य-
(३) अधम साधना	: स्तुति-जप	पूजाधमाधमा'॥

(१) उत्तमावस्था	: सहजावस्था	'उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यान-
(२) मध्यमावस्था	: ध्यान-धारणा	धारणा। जपस्तुतिः स्यादधमा, होम-
(३) अधमावस्था	: जप-स्तुति	पूजाधमाधमा'॥

(४) अधमाधमावस्था : होम-पूजा

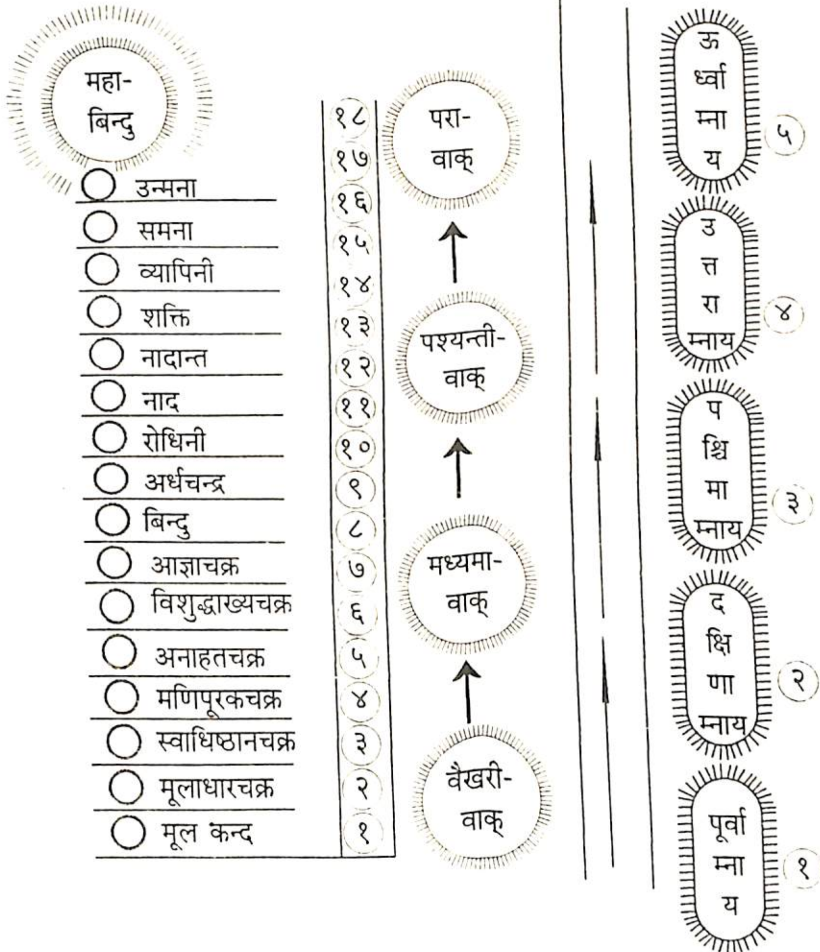
(१) उत्तमा चिन्ता : तत्त्वचिन्ता
(२) मध्यमा चिन्ता : जप-चिन्ता
(३) अधमाधमा चिन्ता : लोक-चिन्ता

'उत्तमा तत्त्वचिन्ता स्याज्जपचिन्ता तु मध्यमा । शास्त्रचिन्ताधमा ज्ञेया लोकचिन्ताधमाधमा' ।

(१) सर्वोच्च मन्त्र
(२) सर्वोच्च देवता
(३) सर्वोच्च पूजा
(४) सर्वोच्च फल

'नहि नादात् परो मन्त्रो, न देवः स्वात्मनः परः ।
नानुसन्धेः परापूजा न हि तृप्तेः परं फलम्' ॥

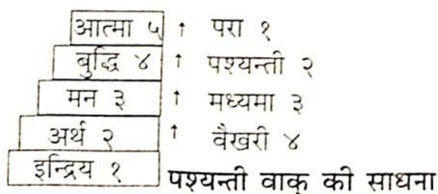
साधना के सोपान



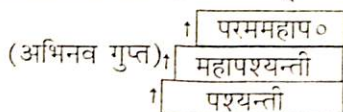
साधना के विभिन्न स्तर एवं सोपान

भावक्रम

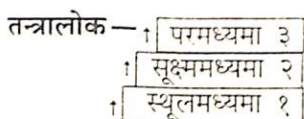
नाद-साधना



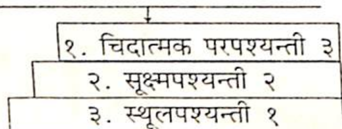
पश्यन्ती वाक् की साधना



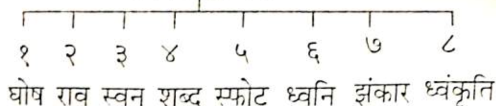
मध्यमा वाक् की साधना



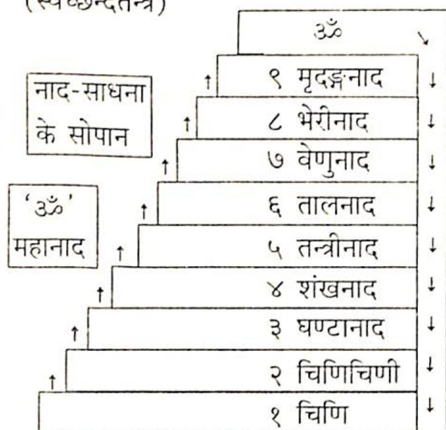
ईश्वर तत्त्व 'पश्यन्ती'
पश्यन्ती वाक् की साधना



नाद की अष्टाभिव्यक्तियाँ और उनकी साधना



(स्वच्छन्दतन्त्र)



(कामकलाविलास)







वामाचार | वीर भाव

कौलाचार (दिव्य भाव)

सिद्धान्ताचार

वामाचार

दक्षिणाचार

दक्षिणाचार एवं पशु भाव

शैवाचार

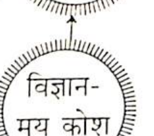
वैष्णवाचार

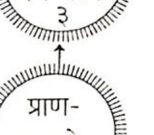
वेदाचार

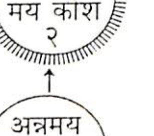
कोश-साधना











ग्रन्थि-भेदन क्रम

रुद्रग्रन्थि का उद्भेदन ३

विष्णु-ग्रन्थि का उद्भेदन २

ब्रह्म-ग्रन्थि का उद्भेदन १

'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः' ॥

योग-साधना

बगलोपासना में योगसाधना भी सम्मिलित है—'तं हठयोगमाहुः । अन्तर्वायु-सञ्चारनिरोधेन वा । यो वायुं स्तम्भयेत् स सर्वं स्तम्भयेत्' । (बगलामुखी पटल)

औपनिषदिक साधना-पथ—कठोपनिषद् में इस साधना-पथ का बहुत सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया गया है । इसमें कहा गया है कि शरीर रूपी रथ पर आत्मा रथी है । इस रथ का सारथी बुद्धि है । सारथी के हाथ में जो लगाम है वह मन है । इस रथ में जो घोड़े जुते हैं वे इन्द्रियाँ हैं । उन घोड़ों के चलने का मार्ग इन्द्रियों के विषय हैं । शरीर, इन्द्रिय एवं मन से युक्त जीव ही भोक्ता है ।

जो अविवेक से युक्त बुद्धि वाला होता है और जिसका मन अनियन्त्रित है उसकी इन्द्रियाँ असावधान सारथी के दुष्ट घोड़ों की भाँति अनियन्त्रित एवं स्वेच्छाचारी हो जाती हैं । जो विवेकसम्पन्न बुद्धि वाला एवं संयत मन वाला व्यक्ति होता है उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथी के नियन्त्रित एवं वशीकृत घोड़ों की भाँति वश में रहती हैं ।

जो कोई सदैव विवेकहीन, अनियन्त्रित चित्त वाला एवं अपवित्र रहता है वह उस परमपद को नहीं प्राप्त कर पाता अपितु बार-बार जन्म-मृत्यु वाले संसार-चक्र में भटकता रहता है । जो सदैव विवेकशील बुद्धि एवं नियन्त्रित मन से युक्त होता है वह परमपद प्राप्त करता है ।

इन्द्रियों से ज्यादा उसके विषय बलवान् हैं । विषयों से ज्यादा बलवान् मन है । मन से ज्यादा बलवान् बुद्धि है और बुद्धि से ज्यादा बलवान् एवं श्रेष्ठतर आत्मा है ।

जीवात्मा से अधिक बलवती माया है । माया से भी अधिक श्रेष्ठ परमपुरुष (परमात्मा) है । उस परमात्मा से श्रेष्ठतर कोई नहीं है । वही सब की परम अवधि एवं परम गति है—

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परं बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥
यं योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्[1] ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ'[2] ॥

---

१. कठोपनिषद् । २. कठोपनिषद् ।

अर्थात् आत्मा को रथी समझो और शरीर को रथ। बुद्धि को सारथी समझो और मन को लगाम। इन्द्रियों को घोड़े समझो और ऐन्द्रिय विषयों को मार्ग। जीव को भोक्ता समझो। जो व्यक्ति मन रूपी लगाम से इन्द्रिय रूपी घोड़ों को नियन्त्रण में रखकर ऐन्द्रिय विषय रूपी मार्ग पर चलाता है वही परम पद (जीवन के चरम लक्ष्य) प्राप्त कर पाता है अन्य नहीं।

इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का नाम ही योग है। 'तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्'। जब मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती उसी स्थिति को परमागति कहते हैं।

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्' ॥

अर्थात्—

(१) योग—इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि की स्थिरता है या उनकी स्थिर धारणा ही योग है।

(२) परमागति—मन के साथ ज्ञानेन्द्रियों एवं बुद्धि की सम्यक् स्थिरता ही परमागति है। सारांश यह कि इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि का निश्चलत्व या सम्यक् स्थिरत्व ही योग एवं परमागति दोनों हैं।

यौगिक साधना

श्वेताश्वतरोपनिषद् का यौगिक साधना-मार्ग—श्वेताश्वतरोपनिषद् प्राचीनतम उपनिषदों में प्रथम उपनिषद् है जिसमें योग-साधना का सर्वांगीण, सुस्पष्ट एवं सविस्तार विवेचन किया गया है। साधक को साधना करने के पूर्व शरीर को साधना का अधिकारी या सत्पात्र बनाना पड़ता है। इसके लिए सर्वप्रथम आसन की साधना करनी पड़ती है—

आसन तत्त्व—'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि' ॥

इस श्लोक में उपनिषत्कार ने आसन के सम्बन्ध में निम्न नियमों को पालन करने का निर्देश दिया है।

आसन के नियम

शिर, गला एवं वक्षः स्थल को ऊँचे उठाया जाय (झुकाकर न रखा जाय)	शरीर को सीधा रखा जाय	इन्द्रियों को मन के द्वारा हृदय में निरुद्ध किया जाय।	ॐकार रूप नौका के द्वारा समस्त भयंकर स्रोतों (अनादिकालिक वासनाओं) को पार कर लिया जाय।

ओंकार का जप भी करते रहना चाहिए।	सांसारिक एवं ऐन्द्रिय वासनाओं पर नियन्त्रण रखा जाय।

प्राणायाम और उसके नियम

१	२	३	४	५	६
संयुक्त चेष्टा	प्राणायाम	प्राणों का सूक्ष्मीकरण (प्राणों को क्षीण करना)	नासिकारन्ध्रों से उसका नि:सारण (रेचक)	(रथ के दुष्ट अश्वरूपी) इन्द्रियों को सावधानी से गन्तव्य मार्ग में ले जाना।	मन को सावधानी-पूर्वक वश में करना।

'प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्ट: क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं, विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्त:' ॥ (श्वे. ९)

योगसाधनोपयोगी स्थान-चयन के नियम—

(१) वह स्थान समतल हो।
(२) सर्वथा शुद्ध हो।
(३) शर्करा-वह्निरेत (कंकड़-अग्नि-बालू) से रहित हो।
(४) शब्द, जल, आश्रय आदि की दृष्टि से सर्वथानुकूल हो। (कोलाहलशून्य हो, जलाशय वाला हो, शरीर-रक्षा हेतु साधन भी सुलभ हों।)
(५) मनोरम हो।
(६) वायुशून्य गुहा भी हो और वहीं मन को ध्यान में लगाया जाय।

'समे शुचौ शर्करावह्निबालुका विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभि:।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्' ॥

योगाग्नि वाले शरीर की प्राप्ति—

(१) पञ्च महाभूतों का सम्यक् उत्थान करना।
(२) पञ्चभूतसम्बद्ध योग के गुणों की सिद्धि प्राप्त करना।
(३) 'पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते'।

योगाग्निमय शरीर के लक्षण—

(१) जराशून्य होता है।
(२) रोगशून्य होता है।
(३) मृत्युशून्य होता है।

'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्' । (श्वेताश्वतर.)

योगाभ्यास में सिद्धि के प्राथमिक चिह्न या लक्षण

१	२	३	४	५	६	७	८
नीहार	धूम	सूर्य	वायु	अग्नि के समान	जुगुनू	बिजली	स्फटिक मणि

९
चन्द्रमा के समान अनेक रूपों का आविर्भाव ।

'नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे' ।।

योग की सिद्धि के प्राथमिक लक्षण—

(१) शरीर का हल्का हो जाना ।
(२) समस्त रोगों से मुक्ति ।
(३) विषयासक्ति से निवृत्ति ।
(४) शारीरिक वर्ण की उज्ज्वलता ।
(५) स्वर की मधुरता ।
(६) मल-मूत्र कम हो जाना ।
(७) शरीर में सुगन्धि ।

'लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति' ।। (श्वेता. २।१३)

योगसाधना-सिद्धि का अन्तिम लक्षण—

(१) मृदोपलिप्त रत्न को शुद्ध करने पर उत्पन्न तेज वाले रत्न की भाँति शरीर और मन की शुद्धता ।

(२) आत्मतत्त्व का प्रसमीक्षण ।
(३) वीतशोकत्व ।
(४) कृतार्थता ।

'यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम् ।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही, एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः' ।।

(५) दीपक के समान आत्मा के द्वारा ब्रह्मतत्त्व का प्रत्यक्षीकरण (दर्शन) ।

(६) उक्त विशुद्ध देवरूप ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर उसे जानने के बाद (ज्ञान) ।

(७) समस्त पाशों (बन्धनों) से मुक्ति ।

'यदाऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं, दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं.....' ॥

भक्ति-साधना

परमात्मा की प्राप्ति का साधन : भक्ति—ऋषि अङ्गिरा कहते हैं—'सृष्टेरतीतो बुद्धेश्च परः स भक्तिलभ्यः'[१] । भक्ति भगवान् की आह्लादिनी शक्ति है । वह शिव की पाँच शक्तियों में आनन्द शक्ति है । भक्ति आनन्द की मन्दाकिनी है । भक्ति-साधना आनन्द की साधना है । भक्ति की उपासना शिव की पराशक्ति की उपासना है या उनकी आनन्दाख्या शक्ति की उपासना है । बगलासमाम्नाय में कहा गया है कि भगवती बगला की पूजा भक्तिपूर्वक की जानी चाहिए—

(१) 'पञ्जरं यः पठेत् भक्त्या स विघ्नैर्नाभिभूयते ।
अतो भक्तैः कौलिकैश्च स्वरक्षार्थं सदैव हि ॥
पठनीयं प्रयत्नेन सर्वानर्थविनाशनम्'[२] ॥

(२) 'भक्त्या वामकरे निधाय च मनुं मन्त्री मनोज्ञाक्षरम्' ।

(३) 'बगलाहृदयस्तोत्रनिदं भक्तिसमन्वितः' ।

वे भगवती 'ध्येया ध्यानस्वरूपिणी' बनकर ज्ञानियों की आराध्या तो हैं ही किन्तु साथ ही वे भक्तों की भक्तिसुलभा देवी भी है । इसीलिए उनके स्तोत्रों, पटलों, हृदयों, सहस्रनामों, कवचों आदि में उन्हें माता, दयारूपा, भक्तों की भव्यदा, विश्वमाता आदि कहा गया है और अपने को दास कहा गया है । यह भी कहा गया है कि उनकी उपासना भक्ति से की जानी चाहिए। वे 'जगदानन्दकारी च जगदाह्लादकारिणी' भी हैं और 'सर्वानन्दप्रदा देवी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी' भी हैं। वे 'सर्वानन्दमयी चैव सर्वसिद्धिप्रदायिनी' भी हैं और भजनीया (भवानीम् भजाम्यहम्) तथा दिगम्बरा दयारूपा भी है। वे 'भीषयन्तीम्भीमशत्रून्भजे भक्तस्य भव्यदाम्' भी हैं और 'आराध्या जगदम्ब दिव्यकविभिः' भी हैं। वे माता हैं—(क) 'मातस्त्वदीयं वपुः'; (ख) 'मातर्भैरवि भद्रकालि विजये'। आराधक उनके दास हैं—'दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि ! त्राहि माम्' । वे त्रिलोकजननी हैं—'त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी'; 'त्रिजगतामानन्दसंवर्धिनी' और वे—'भवति परमसिद्धा लोकमाता पराम्बा' भी हैं ।

'देवी ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलिम्
भक्त्या वामकरे निधाय च मनुं मन्त्री मनोज्ञाक्षरम्' ॥

'विश्वेश्वरी विश्वमाता' कहकर भक्त उन जगन्माता भगवती के चरणों की पूजा करते

१. वे भक्तिवत्सला हैं—'रुद्ररूपा रुद्रशक्तिश्चिन्मयी भक्तवत्सला' ।
(अङ्गिराभक्तिसूत्र : रसपाद ५)

२. पञ्जरस्तोत्र ।

हैं और उन्हें ब्रह्म नहीं विश्वमाता के रूप में कल्पित करते हैं। वे प्रेमरूपा भी हैं—'चित्कलानन्दकलिका प्रेमरूपा प्रियङ्करी'।

भक्तिसाधना-मार्ग

महर्षि अङ्गिरा की दृष्टि—भगवान् को प्राप्त करने का अन्यतम मार्ग भक्ति है—

'सृष्टेरतीतो बुद्धेश्च परः स भक्तिलभ्यः'[१]।

भक्ति का स्वरूप—वह भक्ति जो प्रेमस्वरूपा है, फलरूपा है वह कर्म, ज्ञान एवं योग से भी श्रेष्ठ भक्ति है—

'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा'[२]।

ज्ञान और भक्ति—

(१) कतिपय आचार्य यह मानते हैं कि ज्ञान भक्ति का साधन है—'तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके'।

(२) अन्य आचार्य ज्ञान-भक्ति को परस्पराश्रित मानते हैं। मोक्षाप्ति के लिए भक्ति ही ग्राह्य है। (ना.म. ३३)

भक्ति के साधन—(१) विषयत्याग, (२) संगत्याग, (३) अव्यावृत भजन, (४) भगवद्गुण-श्रवण, (५) भगवन्नाम-संकीर्तन, (६) भगवत्कृपा, (७) महत्कृपा, (८) दुःसंग त्याग, (९) ममता-राहित्य एवं महानुभावों की सेवा, (१०) निर्जन स्थान में निवास, लौकिक बन्धनों का नाश, गुणत्रय का अतिक्रम, योग-क्षेम का त्याग, (११) कर्मफल का त्याग तथा (१२) वेदों का त्याग।

प्रेमस्वरूपा भक्ति का लक्षण—

'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति'।
(ना.भ.सू. ५५)

भक्त एवं भगवान्—भक्त एवं भगवान् में भेद नहीं है।

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'। (४१)

भक्ति का स्वरूप—प्रेमरूपा जो भक्ति है उसमें प्रेमतत्त्व अनिर्वचनीय है—'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्'। वह मूक स्वादनवत् अवाच्य है।

भक्ति या प्रेम का स्वरूप—'गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्'[३]।

शाण्डिल्य का मत—आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना ही भक्ति है—'आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः'।

---

१. अङ्गिराभक्तिसूत्र (रसपाद ५)। २. नारदभक्तिसूत्र (२५)। ३. नारदभक्तिसूत्र। (५४)

नारद की दृष्टि—भक्ति शान्तिरूपा एवं परमानन्दरूपा है—

'शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च'। (६०)

व्यास का मत—'पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः'।
भगवान् की पूजा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।

गर्गाचार्य का मत—'कथादिष्विति गर्गः'।
भगवान् की कथा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।

नारद का मत—'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति'॥ अपने समस्त कार्यों को भगवान् को अर्पित करना और भगवान् का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने पर अत्यधिक व्याकुल हो जाना ही भक्ति है।

महर्षि अङ्गिरा का मत—'सानुरागरूपा' ॥६॥

'स्नेह-प्रेम-श्रद्धातिरेकादलौकिकेश्वरानुरागरूपा' ॥७॥

भक्ति के दो प्रकार (भेद) हैं—(१) गौणी तथा (२) परा। 'सा द्विधा गौणी परा च'। (दै.मी.द.)

परा भक्ति—स्वरूप-प्रकाश करने के कारण पूर्ण आनन्दप्रदा भक्ति को 'परा' कहते हैं—

'स्वरूपद्योतकत्वात्पूर्णानन्ददा परा' ॥९॥

गौणी भक्ति के भेद (महर्षि अङ्गिरा की दृष्टि)

वैधी भक्ति — रागात्मिका भक्ति

'साधनलभ्या गौणी वैधी रागात्मिका च'।

(क) **वैधी भक्ति**—विधि द्वारा साध्य भक्ति वैधी भक्ति है जो कि सोपानवत् है—'विधिसाध्यमाना वैधी सोपानरूपा'।

(ख) **रागात्मिका भक्ति**—रसानुभव कराने वाली आनन्द और शान्तिदायिनी भक्ति रागात्मिका भक्ति है—'रसानुभाविकानन्दशान्तिदा रागात्मिका' ॥१२॥

रागात्मिका भक्ति का वैलक्षण्य—मत्तता, स्तब्धता एवं आत्मारामता है—'मत्तस्तब्धात्मारामत्वम्' ॥१३॥

परमात्मा रसस्वरूप है। मुख्य रस ७ हैं।

रस

दास्यासक्ति — सख्यासक्ति — वात्सल्यासक्ति — कान्तासक्ति — आत्मनिवेदनासक्ति — गुणकीर्तनासक्ति — तन्मयासक्ति (अं.भ.सू. १७)

भाव एवं रस—भाव में निमग्न होने से साधक रसरूप ही हो जाते हैं—

'रसरूप एवायं भवति भावनिमग्ने' ॥१८॥

रस कौन है ?—'रसो वै स:'—रस परमात्मा है। मुख्य रसों से ही पराभक्ति प्राप्त होती है अन्य से नहीं।

पराभक्ति का उदय—अद्वैतभावप्रद तन्मयासक्ति रूप भवसागर में उन्मज्जन-निमज्जन करने से पराभक्ति का उदय होता है[1]।

भक्ति और अमृतत्व—भक्ति के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

भक्ति की प्रकृति—भक्ति निरोधरूपा है अत: उसमें कामना के लिए स्थान नहीं है। भक्ति ज्ञान नहीं है। भक्ति साधन नहीं अपितु साध्य है, क्योंकि वह स्वयं सारे फल प्रदान करने वाली स्वयमेव एक फल है—

'स्वयं फलरूपत्वात् सर्वफलप्रदा'। (रसपाद २७)

पराभक्ति का स्वरूप—पराभक्ति स्वरूपज्ञानस्वरूपिणी है—'परा तु स्वरूपज्ञान-रूपा' ॥

आचार्य शंकर इसी को भक्ति का स्वरूप मानते हुए कहते हैं—

(१) 'स्वात्मतत्त्वानुसन्धानभक्तिरित्यपरे जगु:'।

(२) 'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते'।

(३) वैसे आचार्य शंकर की दृष्टि में भी भक्ति मोक्ष की कारण रूप सामग्रियों में श्रेष्ठ सामग्री है—'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'[2]।

कर्ममार्ग—यह मार्ग श्रेष्ठ नहीं है। यह मात्र चित्तशुद्धि का साधन तो है किन्तु मुक्ति का साधन नहीं है—

'चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित् कर्मकोटिभि:'[3] ॥

आचार्य शंकर के लिए भक्ति साध्य नहीं साधन है किन्तु भक्तिसूत्रकारों के लिए साध्य है—'स्वयं फलरूपत्वात् सर्वफलप्रदा' ॥ (२७)

भक्ति अनुष्ठान-साध्या भी नहीं है—'नानुष्ठानाननुष्ठानविषया ज्ञानवत्'[4] ॥

(१) कोई भक्ति को ऐश्वर्यपरा कहते हैं (रसपाद ४०)।

(२) कोई भक्ति को आत्मैकपरा कहते हैं (रसपाद ४१)।

(३) कोई भक्ति को उभयपरा कहते हैं (रसपाद ४२)[5]।

नारद के अनुसार गौणी भक्ति के ३ भेद हैं—(गुणभेद–आर्तादिभेद)

---

१. विवेकचूडामणि। २-३. तत्रैव ११। ४. अङ्गिरा : दै.मी. दर्शन। ५. दै.मी.द.।

१. आर्त, २. जिज्ञासु तथा ३. अर्थार्थी। १. सात्त्विकी, २. राजसी और ३. तामसी (श्रीमद्भागवत ३।२९।९)

'सर्वथा सर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः'[1]।

भगवती का ध्यान—

'चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्॥
बिम्बोष्ठां कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम्।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्यायेद्ब्रह्मास्त्रदेवताम्'॥

भगवती बगला के ध्यान का फल

जो भगवती बगलामुखी का ध्यान करता है वह—

(१) वाग्मी हो जाता है।

(२) अमृतत्व की प्राप्ति करता है।

(३) समस्त सिद्धियाँ अर्जित कर लेता हैं।

(४) वह जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार तीनों व्यापारों का निष्पादक बन जाता है।

(५) वह सबका स्वामी बन जाता है।

(६) वह समस्त ऋद्धियों का स्वामी बन जाता है।

(७) वही यथार्थ शैव, शाक्त, वैष्णव एवं गणप होता है।

(८) वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

(९) वह संन्यासी बन जाता है।

(न्यास क्या है ? 'न्यसनं न्यासः, सम्यंङ् न्यासः संन्यासः'।)

(१०) वह मुण्डितमुण्ड संन्यासी नहीं प्रत्युत उक्त परिभाषानुकूल यथार्थ संन्यासी बन जाता है।

(११) वह षट्त्रिंशद् तत्त्वों का स्वामी बन जाता है।

(१२) वह सौभाग्यार्चन द्वारा अर्चा करके सब कुछ जान भी लेता है[2]।

इतना ही नहीं, भगवती के मन्त्रजप के द्वारा वह और भी सामर्थ्य एवं शक्तियाँ प्राप्त कर लेता हैं—

(१) स महास्तम्भेश्वरः सर्वेश्वरः।

(२) स सेनास्तम्भं करोति।

---

१. नारदभक्तिसूत्र। २. पीताम्बरोपनिषद्।

(३) किं बहुना विवस्वद्‌धृतिस्तम्भकर्ता सर्ववातस्तम्भकर्तेति ।
(४) किं दिवाकर्षयति ।
(५) स सर्वविद्येश्वर: ।
(६) सर्वमन्त्रेश्वरो भूत्वा पूजाया आवर्तनं त्रैलोक्यस्तम्भिन्या: कुर्यात्[१] ।

बगलासहस्रनाम के पाठ का फल

भगवती की पूजा के समय का विधान (मुख्यत:) तीन कालों में है—

'प्रात:काले च मध्याह्ने सन्ध्याकाले च पार्वति ।
एकचित्त: पठेदेतत् सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥
एकवारं पठेद् यस्तु सर्वपापक्षयो भवेत् ।
द्विवारं प्रपठेद्यस्तु विघ्नेश्वरसमो भवेत् ।
त्रिवारं पठनाद् देवि ! सर्वं सिध्यति सर्वथा'[२] ॥

मोक्षार्थी को मोक्ष की प्राप्ति, धनार्थी को धन की प्राप्ति, विद्यार्थी को तर्क एवं विद्या—व्याकरणशास्त्र में नैपुण्य की प्राप्ति भी इसी पाठ के द्वारा अनायास हो जाती है—

'मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कं व्याकरणान्विताम्' ॥

इतना ही नहीं, यदि कोई शत्रु अपकार करना चाहे तो उसका भी विनाश हो जाता है—

'महित्वं वत्सरान्ताच्च शत्रुहानि: प्रजायते' ॥

राजा भी उसका अनुगामी हो जाता है—

'क्षोणीपतिर्वशस्तस्य स्मरणे सदृशो भवेत्' ॥

कवच का फल

उसे शत्रु, चौर्य, नर-नारी, व्याघ्रादिक का भय नहीं रहता । उसके देखते ही सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं । कवचधारी पुरुष शंकर के समान होता है—

'न तस्य शत्रवश्चापि भयं चौर्यभयं जरा ।
नरा नार्यश्च राजेन्द्र खगा व्याघ्रादयोऽपि च ॥
तं दृष्ट्वा वशमायान्ति किमन्यत् साधवो जना: ।
यस्य देहे न्यसेद् धीमान् कवचं बगलामयम् ॥

१. पीताम्बरोपनिषद् । २. बगलासहस्रनाम ।

स एव पुरुषो लोके केवलः शङ्करोपमः ।
इयं विद्या महाविद्या सर्वशत्रुनिवारिणी ।।
धारिता साधकेन्द्रेण सर्वान् दुष्टान् विनाशयेत् ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यः पठेत्स्थिरमानसः ।।
न तस्य दुर्लभं लोके कल्पवृक्ष इव स्थितः ।
यं यं स्पृशति हस्तेन यं यं पश्यति चक्षुषा ।
स एव दासतां याति सारात्सारमिमं मनुम्' ।।

शतनाम पाठ का फल—बगलाशतनामपाठी सभी शत्रुओं से मुक्त हो जाता है। स्थिर लक्ष्मीवान् हो जाता है। भूत-प्रेत-पिशाचादि एवं ग्रहपीडादि से मुक्त हो जाता है। राजादिक सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं और वह सारे ऐश्वर्य, अनेक प्रकार की विद्याएँ एवं राज्य प्राप्त करता है। अन्ततोगत्वा वह भोग-मोक्ष दोनों पाता है और शिव के समान हो जाता है—

'रिपुबाधाविनिर्मुक्तः लक्ष्मीस्थैर्यमवाप्नुयात् ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च ग्रहपीडानिवारणम् ।।
राजानो वशमायान्ति सर्वैश्वर्यं च विन्दति ।
नानाविद्यां च लभते राज्यं प्राप्नोति निश्चितम् ।।
भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति साक्षात् शिवसमो भवेत् ।
परब्रह्मास्त्रविद्यायाश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।
विशेषतः कलियुगे महासिद्ध्यौघप्रदायिनी ।
रोधिनी विघ्नसङ्घानां मोहिनी सर्वयोषिताम् ।।
स्तम्भिनी राजसैन्यानां वादिनी परवादिनाम् ।
ये जानन्ति यजन्ति सन्ततमपि ध्यायन्ति गायन्ति वा
ते विद्याविबुधैश्चरन्ति भुवने सिद्धार्चिता श्रद्धया ।।
पराशक्तेरिदं स्तोत्रं ये पठन्ति नरा भुवि ।
वाञ्छितं सुफलं तेषां भवत्येव न संशयः ।।
प्रयतो ध्यानसंयुक्तो जपान्ते यः पठेत् सुधीः ।
धनधान्यादिसम्पन्नः सान्निध्यं प्राप्नुयाद् द्रुतम्' ।।

सहस्रनाम का पाठ करने से साधक शक्तियुक्त, शिव के समान, धर्मार्थभोगी, मोक्षपति, देवसान्निध्य और परमोदया कीर्ति प्राप्त करता है—

'हेतुयुक्तो भवेन्नित्यं शक्तियुक्तः सदा भवेत् ।
य इदं पठते नित्यं शिवेन सदृशो भवेत् ।।
जीवन् धर्मार्थभोगी स्यान्मृतो मोक्षपतिर्भवेत् ।
सत्यं सत्यं महादेवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ।।

स्तवस्यास्य प्रभावेण देवेन सह मोदते।
परमोदयकीर्तिः स्यात् परतः सुरसुन्दरि'[१] ॥

बगलामुखीब्रह्मास्त्र (नारद-विरचित) के पाठ या यन्त्र-धारण करने का फल—

'नित्यं स्तोत्रमिदं मनोरमतरं देव्याः पठेत् सादरं
धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाह्वोर्गले वा करे।
राजानो वरयोषितोऽथ करिणः सर्पा मृगेन्द्राः खला-
स्ते वै यान्ति विमोहिता रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिरा सर्वदा' ॥

ब्रह्मास्त्र के धारण या पाठ से स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति, सर्ववशीकरण, समस्त सिद्धियों की प्राप्ति; विद्या, लक्ष्मी, सौभाग्य, पुत्र, सम्पदाएँ, इष्ट एवं सम्मान आदि सभी प्राप्त हो जाता है—

'विद्या लक्ष्मीः सर्वसौभाग्यता च पुत्राः सम्पद्राज्यमिष्टार्थसिद्धिः।
मानः श्रेयो वश्यता सर्वलोके प्राप्ताऽप्राप्ता भूतले त्वत्परेण'[२] ॥

मानस पूजा और परा पूजा का स्वरूप

भगवान् की पूजा में प्रधान तत्त्व तो भाव है। यदि यह प्रगाढ़ भाव काल्पनिक पूजा-सामग्रियों द्वारा भी व्यक्त किया जा सके तो उस पूजा को भी 'पूजा' ही कहेंगे। यदि भगवान् की पूजन-सामग्रियों की कल्पना करके उन्हें वे सामग्रियाँ समर्पित करते हुए उनकी पूजा की जाय तो उसे मानस पूजा कहा जायेगा।

(१) **मानस पूजा का स्वरूप** (आचार्य शंकर के शब्दों में)—

'रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥
सौवर्णे नवरत्नमण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम्।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु ॥
छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकला गीतं च नृत्यं तथा।

---

१. श्रीउत्कटशम्बरनागेन्द्रप्रयाणतन्त्र।

२. बगलामुखीब्रह्मास्त्र।

साष्टाङ्गं प्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत् समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥

आत्मा त्वं गिरिजामतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्* ॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो'[१] ॥

(२) परापूजा का स्वरूप—

'निरञ्जनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः ? ।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह ? ॥
विश्वानन्दपितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते ? ।
स्वयम्प्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः ॥
प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः ।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते' ? ॥

भगवती बगला की मानस पूजा

(१) श्रीपीताम्बरायै नमः **लं** पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि ।
(२) श्रीपीताम्बरायै नमः **हं** आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि ।
(३) श्रीपीताम्बरायै नमः **यं** वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि ।
(४) श्रीपीताम्बरायै नमः **रं** तेजसात्मकं दीपं परिकल्पयामि ।
(५) श्रीपीताम्बरायै नमः **वं** अमृतात्मकं नैवेद्यं परिकल्पयामि ।
(६) श्रीपीताम्बरायै नमः **सं** सर्वात्मकं मन्त्रपुष्पं परिकल्पयामि ।

इसके बाद 'योनिमुद्रा' से प्रणाम करके यदि पञ्जरस्तोत्र का पाठ कर लिया जाय तो अत्युत्तम रहेगा ।

साधना का यथार्थ स्वरूप

भगवान् की साधना में यथार्थ स्थिति तो एकात्मता से आती है । इसमें—राम का भजन करने वाला मन स्वयं राम बन जाता है—'मेरा मन सुमिरै राम कूं मेरा मन रामहिं

* आत्मा·····तवाराधनम् ॥ १. शंकराचार्य ।

आहि'। तब साधक चकित होकर पूछता है कि—'अब मन रामहिं है रह्या, सीस नवावौं काहि ?' इस स्थिति में तुलसीदास जी यदि 'सियाराम मय सब जग जानी' का अनुभव करते हैं तो कबीरदास भी 'मैं' और 'तू' के भेद के दूर हो जाने पर यह अनुभव करते हैं कि उसके अतिरिक्त तो कुछ है ही नहीं, क्योंकि 'अस्मि' (अहमस्मि = 'हूँ') के निकल जाने पर अनुभव का स्वरूप 'मैं' के स्थान पर 'तू' हो जाता है—

'तूं तूं करता तूं भया मुझमें रही न हूँ।
वारी केरी वलि गई, जित देखौं तित तूँ'।

जब तक खोजनेवाला व्यक्ति स्वयं खो नहीं जाता तब खोजी जाने वाली 'सद्वस्तु' उसे मिलती ही नहीं—

'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ।
बूँद समानी समद मैं, सो कत हेरा जाइ'॥
या–'समंद समाना बूँद मैं सो कत हेर या जाइ'॥

उस स्थिति में जबकि 'मैं' में भी 'तूँ' ही 'तूँ' दिखाई पड़ने लगता है तब साधक को यह लगने लगता है कि जब 'मेरे' में मेरा कुछ है ही नहीं सबकुछ उसी का है तब 'उसी को' 'उसी का' समर्पित करने में कठिनाई क्या है ?

'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौंपता क्या लागे मेरा' ?

दृढ आस्था और अचल विश्वास की शक्ति ही हमारी प्रार्थना को भगवती तक पहुँचा सकने में समर्थ है। इस विश्वास की शक्ति के साथ हम उनसे जो भी माँगेंगे वह हमे अवश्य मिलेगा और हम जो कुछ भी खोजेंगे वह हमें अवश्य प्राप्त होगा। उसका दरवाजा खटखटाइए वह आपके लिए अवश्य खुलेगा, क्योंकि जो माँगता है उसे दिया जाता है, जो ढूँढता है उसे मिल जाता है और जो द्वार खटखटाता है उसके लिए द्वार खोल दिया जाता है। इसलिए Lord Christ कहते हैं—'Ask, and it will be given you, seek, and you will find, know, and it will be opened to you. For every one who asks neceives and who knocks it will be opened.' (Bible : Mathew 7)

साधना-पथ में धैर्य और कष्ट-सहिष्णुता की भी आवश्यकता है। साधना के मार्ग में कदम बढ़ाने पर सुविधा, विश्राम, सुख, सरलता, सहायता और सौकर्य की बात सोचने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि ये तो विनाश के मार्ग में ही मिलेंगे किन्तु शाश्वत जीवन के मार्ग में तो कठिनाइयाँ मिलेंगी ही; क्योंकि उसका रास्ता कठिन है और उसका दरवाजा अत्यन्त सँकरा है—

'Enter by the narrow gate; for the gate is wide and the way is easy that leads to destruction and those who enter by it are many. For the gate is narrow and the way is hand, that leads to life and those who find it are few.' (Bible : Mathew 7)

कबीरदास भी इस पथ को बड़ा कठिन मानते हैं और कहते हैं—

'आँखड़ियाँ झाई पड़ी पन्थ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड्या राम पुकारि पुकारि'[१]॥

केवल चिन्तन और मनन ही उसके लिए पर्याप्त नहीं है निदिध्यासन भी आवश्यक है—उसके लिए गीत बनाना ही पर्याप्त नहीं गाना भी आवश्यक है। आप स्वर ही साधते रहेंगे तो गायेंगे कब ? यदि सारा दिन आसन बिछाने में ही कट गया और आप घर में दीपक भी नहीं जला पाये तो उसे बुलायेंगे कब ?

कवीन्द्र रवीन्द्र ठीक ही कहते हैं—

'हेथा ये गान गाइते आसा आमार, हय नि से गान गावा।
आजो केवलि सुर साधा आमार, केवल गाइते चावा॥
शुधू आसन पाता हल आमार, साराटि दिन धरे।
घरे हयनि प्रदीप ज्वाला तारे, डाकव केमन करे'[२]॥

प्रेम, विरह, पश्चात्ताप एवं व्याकुलता इस मार्ग के पुष्प हैं। इन्हीं पुष्पों में वह करुणामयी सुगन्ध बन कर फूट पड़ती है।

साधना की यात्रा में आगे बढ़ने पर यह अनुभूति अवश्य होती है कि—'वह मेरे निकट आकर आसीन हुआ किन्तु मैं फिर भी नहीं जग पाया। मुझ दुर्भाग्याहत को घोर निद्रा आ गई। वह निस्तब्ध यामिनी में हाथों में विपञ्ची लेकर आया और मेरे स्वप्नों में अपनी गम्भीर रागिनी भी छेड गया। मैं उसका सामीप्य पाकर भी उसके निकटस्थ क्यों नहीं हो पाया ?'

से जे पाशे एसे वसे, तवू जागि नि।
की धूम तोर पेये छिल, हतभागिनी।
एसे छिल नीरव राते, वीना खानि छिल हाते।
स्वपन माझे बाजिए गोल, गम्भीर रागिनी॥
(जेगे देखि, दखिन हावा, पागल करिया।
गन्ध ताहार भेसे बेटाय, आँधार भरिया)
केन आमार रजनी जाय, काछे पेये काछे ना पाय ?[३]

आपका 'मैं' उसके प्रयोजनार्थ ही शेष रह जाय। वह 'मैं' इतना ही शेष रहे कि

१. हँसि हँसि कन्त न पाइए जिने पाया तिनि रोइ॥ (कबीर)
२. गीताञ्जलि (रवीन्द्रनाथ टैगोर)। ३. गीताञ्जलि।

'वह' अपने में आकर कहीं लुप्त न हो जाय। उतना ही बन्धन शेष रहे कि जिससे कि 'उसकी' इच्छा में ही अपने को बाँधा जा सके—और उसके कारुण्यपूर्ण बाँहुओं में ही अपने को बाँधा जा सके उससे अधिक नहीं—'तोमाय आमार प्रभु करे राखि, आमार आमि सेई टूक थाक् वाकि, तोमाय आमि हेरि सकल दिशि, सकल दिये तोमार माझे मिशि, इच्छा आमार सेई टूकू थाक् वाकि, तोमाय आमार प्रभु करे राखि, तोमाय आमि को थाओ नाहि टाकि, केवल आमार सेई टूकू थाक् बाकि, तोमार लीला हवे ए प्राण भरे, ए संसार रेखे छे ताइ धरे। रइव बाँधा तोमार बाहु गरै, बाँधन आमार सेई टूकू थाक् थाक् बाकि। तोमाय आमार प्रभु करे राखि'[१]॥

भगवान् के धाम में पहुँचने के लिए वैदुष्य, सेवा, दान, पुण्य भी उतना आवश्यक नहीं हैं जितना कि साधक की दीनता, हीनता, नम्रता, धार्मिकता, दया, हृदय की निर्मलता, कष्टसहिष्णुता, अन्याय एवं अत्याचार-सहिष्णुता हैं। ये ही लोग धन्य हैं और ये ही लोग भगवद्धाम में प्रवेश कर पाते हैं अन्य नहीं—

'Blessed are the poor in spirit, for their is the kingdom of heaven,

Blessed are those who mourn, for they shall be comforted,

Blessed are the meek, for they shall inherit the earth,

Blessed are those who hunger and thirst for righteousness for they shall be satisfied,

Blessed are the merciful, for they shall obtain mercy,

Blessed are the pure in the heart, for they shall see God,

Blessed are the peacemakers, for they shall be called sons of God.

Blessed are those who are persecuted for righteousness' sake, for theirs is the kingdom of heaven.

Blessed are you when men revile you and persecute you and ulter all kinds of evil against you falsely on my account.' (Bible)

भगवती बगला के सन्निधि में आने पर मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता वह तो कोई अकथ्य महान् विभूति बन जाता है। सन्त बसवेश्वर ने ठीक ही कहा है—

'मण्ण मडकें मण्णागदु क्रीयळिदु,
बण्ण करगि तुप्पवागि, मरळि तुप्प वण्णियागदु क्रीयळिदु,
हान्रु कब्बुनवागदु क्रीयळिदु, मुत्तु नीरल्लि हुट्टि मत्त नीरागदु क्रीयळिदु,

१. गीताञ्जलि।

कूडलसंगन शरणनागि, मरळि मानवनागनु क्रीयळिदु'।

मिट्टी से बना मटका फिर मिट्टी नही बना रह जाता; मक्खन से बना घी फिर कभी मक्खन नहीं बना रह जाता; लोहे से बना सोना फिर लोहा नहीं बना रह जाता (पारस पत्थर से छू जाने पर लोहा सोना बन जाता है); पानी से उत्पन्न होने वाला मोती फिर पानी नहीं बना रह जाता। ठीक इसी प्रकार कूडल सङ्गम देव की शरण में एक बार जाने पर फिर मानव 'मानव' नहीं बना रह जाता कुछ और ही हो जाता है।

अहंकार का त्याग

प्रश्न यह है कि जब मन में अहंकार ने डेरा जमा रखा है और दूसरे को रहने का स्थान ही नहीं छोड़ा है तो भगवती रहेंगी कहाँ ? सन्त बसवेश्वर ठीक ही कहते हैं—

'अहंकार मनवनिंगबुगाडल्लि लिंग तानल्लि बप्पुदा।
अहंकारक्के ये डे गुडदे लिंग तनुवागिरबेकु,
अहंकार रहित वादल्लि सन्निहित, काणा कूडल संगमदेव'॥

भगवती की कृपा प्राप्त करने के लिए तन्निष्ठता, तद्गत प्रेम, तद्रूपता एवं भगवती के पास मन की पहुँच आवश्यक है। सन्त बसवेश्वर कहते हैं—वेदों को रटने से क्या ? शास्त्रों को सुनने से क्या ? जप करने से क्या ? तप करने से क्या ? यदि हमारे कूडलसंग पास तक हमारा मन ही न पहुँच सके तो क्या फल मिलेगा ?

'वेदवनोदि देनु ? शास्त्रव केळिदरे नय्या ?
जपव माडिदरेनु ? तपव भाडिदरे नय्या ?
येन माडिदरेनु, नम्म कूडलसंगय्यन मन मुट्टदन्नक्क'।

अद्वैत की स्थिति भक्ति में भी आती है। इसी स्थिति में कबीर कहते हैं—'मैं तैं तैं मैं ए द्वै नाहीं। आपै अकल सकल घट माहीं'। साधना की यथार्थ स्थिति में पूजा के अंग-प्रत्यङ्ग—आसन, जप, तप, अनाहत नाद, शृङ्गी आदि—सभी मन के भीतर मन के ही स्वत: अङ्ग बन जाते हैं अत: बाहर से उन्हें ग्रहण करना निरर्थक हो जाता है—

'सो जोगी जाकै मन मैं मुद्रा।
मन मैं आसण, मन मैं रहणां, मन का जप तप मन सूं कहणा।
मन मैं खपरा मन मैं सीङ्गी, अनहद वे न बजावै रङ्गी'॥

भक्ति के क्षेत्र में कबीरदास नारदीया भक्ति के अनुवर्ती थे—'भगति नारदी मगनसरीरा। इहि विधि भवतिरि कहै कबीरा'—वे भावभगति और प्रेमभगति के अनुवर्ती थे। भक्ति के इस स्वरूप में योग, ध्यान, तप आदि सब विकार दिखाई पड़ते हैं। इस समय साधना का आधार केवल परमात्मा (राम) मात्र रह जाता है—

'जोग ध्यान तप सबै विकार। कहै कबीर मेरे राम अधार'।

लोगों ने राम (परमात्मा) को खिलौना समझ रखा है। वे समझते हैं कि यदि मैं माला एवं तिलक धारण कर लूँगा तो राम मिल जायेंगे। ऐसे भ्रमित भक्तों की संख्या अपार है—'माला तिलक पहिरि मनमानां, लोगनि राम खिलौना जाना। थोरी भगति बहुत अहंकारा, ऐसे भगता मिलै अपारा'।

साधक के जीवन में एक स्थिति यह भी आती है जब वह एक ऋषि की भाँति पूछने लगता है कि—

'कस्मै देवाय हविषा विधेम' ?

ठीक भी है, जब मन परमेश्वर के साथ एकाकार हो जाय और परमेश्वर मन के साथ एकाकार हो जाय तब साधक अपनी पूजा किसे समर्पित करे ? यही विचिकित्सा तो जैनी मुनि रामसिंह को भी है। वे पूछते हैं—

'मणु मिलिया परमेसर हो, परमेसरु जिमणस्स।
विणि वि समरसि हुइ रहिय पुज्ज जडावउँ किस्स' ?

जब पूजक और पूज्य सर्वत्र अभिन्न हैं तब पूजा कैसे की जाय ? जप कैसे किया जाय ? हवन कैसे किया जाय ? लिङ्ग-परिग्रह कैसे किया जाय ? तान्त्रिक दार्शनिक भी यही पूछ बैठता है कि—

'विदिते तु परे तत्त्वे सर्वाकारे निरामये।
क्व पूजा क्व जपो होमः क्व च लिङ्गपरिग्रहः' ?॥

विज्ञानभैरवकार भगवान् शिव से भी यही पूछते हैं—

'यैरेव पूज्यते द्रव्यैस्तर्प्यते वा परापरः।
यश्चैव पूजकः सर्वः स एवैकः क्व पूजनम्' ?॥

इसीलिए अभिनवगुप्तपादाचार्य ने कहा कि पूजा बाह्य सामग्रियों से अनुष्ठित कोई क्रिया नहीं है प्रत्युत परसंवित् बोध भैरव से अभेद रूप में प्रतिष्ठा ही पूजा है—

'पूजा नाम विभिन्नस्य भावौघस्यापि सङ्गतिः।
स्वतन्त्रविमलानन्तभैरवीयचिदात्मना'॥ (तन्त्रालोक : ४।१२१)

संकेतपद्धतिकार ने भी यथार्थ पूजा का स्वरूप यही बताया—'स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः'।

महात्मा कबीरदास के पूर्ववर्ती महाराष्ट्र के सन्त नामदेव जी को यही प्रतीत हुआ कि—देवालय, देवता, देवता की पूजा, देवता का नाम-संकीर्तन, उसके प्रेम में किया

गया नर्तन, उसके प्रेम में वाद्य-वादन सब कुछ 'ठाकुर' (परमात्मा) ही तो है। मैं तो कहीं नहीं हूँ—

'आपन देव, देहुरा आपन, आप लगावै पूजा।
आपहि गावै आपहिं नाचै, आप बजावै तूरा।
कहत नामदेव तूं मेरो ठाकुर जन ऊरा तूं पूरा'॥

कबीरदास भावतत्त्व को प्राधान्य देते हुए और बाह्य जप, तप, व्रत, पूजा को निरर्थक मानते हुए पूछते हैं—'क्या जप ? क्या तप ? क्या व्रत-पूजा ? जाकै रिदै भाव है दूजा ?'

'क्या जप ? क्या तप ? संयमो, क्या व्रत ? क्या इस्नानु।
जब लगि जुक्ति न जानियै, भाव भक्ति भगवान्'॥

कबीरदास की दृष्टि में आँखों का मूँदना, कानों को बन्द करना, काया को कष्ट देना आदि सारे कार्य अध्यात्म साधना में व्यर्थ हैं, क्योंकि वे अपनी साधना में इन्हें स्थान ही नहीं देते। वे कहते हैं—

'आँख न मूँदूँ, कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ'॥

यदि कोई पूछे कि कबीरदासजी ! आप भगवन्नाम कैसे लेते हैं ? सुमिरन कैसे करते हैं ? पूजा कैसे करते हैं ? आप भगवान् की परिक्रमा कैसे करते हैं ? आप भगवान् की सेवा कैसे करते हैं ? आप भगवान् को दण्डवत् कैसे करते हैं ? बिना कुछ किये हुए ही भगवान् की पूजा कैसे करते हैं ? तो कबीरदास जी अपनी पूजा की पद्धति बताते हुए कहते हैं कि—

'कहूँ सो नाम, सुणूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा॥
जहँ जहँ जाउँ सोई परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत्, पूँजूँ और न देवा॥
सब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन वचन को त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न बिसेरे, ऐही बारी लागी'।

कबीरदास जी यह भी कहते हैं कि व्यक्ति जब तक जीते हुए ही मर नहीं जाता तब तक परमात्मा को नहीं पाता—'आप मेट जीवत मरै तौ पावै करतार'। वे कहते हैं—कर के मनका को फेरने से क्या ? मन का मनका फेरने से ही सब कुछ होगा। वह सुमिरन 'सुमिरन' नहीं जिसमें मन का मनका न घुमाया जा सके—

'माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं' ॥

साधक अन्त में गूँगा हो जाता है—वह यह अनुभव करने लगता है कि अब उस 'अकथ्य' को कथ्य नहीं बनाया जा सकता—अब कुछ कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि—

'पाणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाइ' ॥

सन्त रैदास ने भी कबीर के पहले कहा था कि सभी लोग शरीर के योगी हैं किन्तु मैं मन का योगी हूँ। मन का योग लगाते ही मैं कुछ-का-कुछ हो गया—

'हम तो जोगी मनहि के, तन के हैं ते और।
मन का जोग लगावते, दसा भई कछु और' ॥

सन्त रैदास को भी अपनी अद्वैतभावापन्नावस्था में एक समस्या खड़ी हो गयी और उन्होंने अपने पूज्य राम से पूछ डाला—'राम मैं पूजा कहाँ चढ़ाऊँ। फल अरु फूल अनूप न पाऊँ' ॥ अत: उन्होंने निश्चय किया कि—'मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेऊँ सहज सरूप' ॥

देवर्षि नारद ने कहा था कि भक्ति अमृतस्वरूपा होती है और भगवन्नाम 'रसो वै स:' (रसरूप परमात्मा) का अमृतात्मक रस है, अत: उस नाम का रस पाने पर साधक एक ऐसी मदहोशी और आनन्दातिरेक की अवस्था में पहुँच जाता है कि उसे लगने लगता है कि भगवान् के नाम से अमृत की वर्षा हो रही है। तब वह गुरु नानकदेव के शब्दों में कह उठता है कि—यदि एक जीभ के स्थान पर लाख जीभें हो जायें एवं एक लाख से बीस लाख जीभें हो जायें तो भी एक-एक जीभ से मैं लाख-लाख बार एक ही परमात्मा का नाम जपूँगा—

'इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख बीस।
लखु-लखु गेड़ा आखीअहि एक नामु जगदीस' ॥

वे कहते हैं कि यदि मैं नाम का जप करूँ तभी जिऊँ। यदि उसका नाम भूल जाऊँ तो मर जाऊँ ?

साधना प्रारम्भ करते समय साधना के प्राथमिक सोपानों पर पहले साधक को कुछ अनुभव ही नहीं होता। साधना के ऊँचे सोपानों पर पहुँचने पर उसे यह विश्वास होने लगता है कि शास्त्रों में 'उसके' विषय में जो कुछ कहा गया है उसका वह स्थूल स्वरूप सत्य है और तब वह शास्त्रों की बातें अपने शब्दों में इस प्रकार कहता है—

'सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।

शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्' ॥

आगे वह 'उसकी' और सूक्ष्मतर अनुभूति करता हुआ पाता है कि 'वह' तो सारे तत्त्वों एवं सारे चक्रों में भी सूक्ष्मात्मना अवस्थित है और तब उसके सूक्ष्म स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कह उठता है—

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि' ॥

और उस समय 'वह' उसे केवल 'कुलकुण्ड' की शक्ति मात्र के रूप में अपने में भी दृष्टिगत होने लगती है—'स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी'। उसे अनुभूति एवं साधना के और सूक्ष्म धरातल पर पहुँचने पर यह अनुभव होता है कि वह केवल पञ्चतत्त्वों एवं तदात्मक चक्रों में ही नहीं रहती प्रत्युत वह तो स्वयं पञ्चतत्त्व भी है—

'मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम् ।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारैः शिवयुवतिभावेन बिभृषे' ॥

आगे चलकर उसे सारा जगत् भी 'उसी की' परिणति दिखाई पड़ने लगता है। वह उसे चिदान्दस्वरूप देखने लगता है।

अन्य दार्शनिक तत्त्वमनीषियों को भी अपने शरीर में ही वह चक्राधिष्ठात्री, सर्वचक्रनिलया एवं सर्वग्रन्थिविभेदिनी के रूप में साक्षात्कृत हो उठती है और वह कह उठता है—

'मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी ।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी ॥
आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी ।
सहस्राराम्बुजारूढा सुधासाराभिवर्षिणी ।
महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी' ॥

इतना ही नहीं वह उन्हें वाणी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तरों में भी वही दिखाई पड़ने लगती है और वही वाणीरूपा भी दृष्टिगत होने लगती है—

'परा प्रत्यकृचितारूपा पश्यन्ती परदेवता ।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानससंहिका' ॥

किन्तु उसे इन सारे रूपों में उसका भक्तिवत्सला रूप ही प्रधान दिखाई पड़ता है अत: वह कह उठता है—'भक्तिप्रिया भक्तिगभ्या भक्तिवश्या भयापहा'। साधना के उच्चतम धरातल पर शंकराचार्य जैसे दार्शनिक सन्तों को क्या अनुभव होने लगता है, उसे सुनिए—

(१) हे शिव ! मेरी आत्मा के रूप में तो तुम्हीं विराजमान हो ।
(२) हे पार्वतीजी ! मेरी बुद्धि के रूप में तो (मेरे शरीर में) आप ही अवस्थित हैं ।
(३) उसे मित्रों के रूप में प्राण ही दिखाई पड़ते हैं ।
(४) उसे बाहरी घर अपना घर नहीं प्रत्युत अपना शरीर ही अपना घर दिखाई पड़ने लगता है ।
(५) उसे अपनी भोग-रचना ही पूजा दिखाई पड़ने लगती है ।
(६) उसे अपनी निद्रा ही समाधि प्रतीत होने लगती है ।
(७) उसे अपना चलना ही भगवान् की प्रदक्षिणा दिखाई पड़ने लगती है ।

(८) उसे अपने सारे शब्द एवं वाक्य स्तोत्र प्रतीत होने लगते हैं और अन्त में उसे यह लगने लगता है कि मैं जो कुछ भी करता हूँ वह सब कुछ भगवान् की आराधना ही है—उसके सिवा कुछ भी नहीं है । वह कह उठता है—

'आत्मा त्वं गिरिजा मति: सहचरा: प्राणा: शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थिति: ।
सञ्चार: पदयो: प्रदक्षिणविधि: स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्' ॥

इसी स्थिति में वह यह भी कह उठता है कि—

'जपो जल्प: शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचनं
गति: प्रादक्षिण्यं भ्रमणमशनाद्याहुतिविधि: ।
प्रणाम: संवेश: सुखमखिलमात्मार्पणदशा
सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्' ॥

अर्थात्—(१) मेरा बोलना ही जप है ।
(२) सारा कर्मकाण्ड मुद्रा-रचना है ।
(३) मेरा चलना-फिरना प्रदक्षिणा है ।
(४) मेरा खाना-पीना यज्ञाहुति है ।
(५) मेरा सोना ही भगवान् को प्रणाम करना है ।

(६) मेरे द्वारा सारे सुखों का उपभोग ही आत्मसमर्पण है।

(७) मेरा विलास ही तेरी पूजा है।

इसी विलक्षण आध्यात्मिक परावस्था में पहुँचकर ऐसा साधक पूछ बैठता है कि जो पूर्ण होने के कारण सर्वत्र स्थित है उसे किस जगह बुलाया जाय–जहाँ वह न हो ? उसका आवाहन कैसे करें ? जो स्वयमेव सबका आधारस्वरूप आसन है उसे कौन-सा आसन दिया जाय ? जो स्वयं स्वच्छ है उसे पाद्य कैसे दिया जाय ? जो निर्मल है उसे निर्मलता के लिए जल कैसे दिया जाय ? तथा इसी प्रकार उसे अन्य पूजन-सामग्री कैसे समर्पित की जाय ?

'पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ?
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ? ॥
निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च ?
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम् ?
निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च' ?[१] ॥

परमात्मा में संलीन साधक के शरीर में अपना कहने के लिए उसका रक्त भी नहीं बचता। इसीलिए सन्त फ़रीद कहते हैं कि—'अगर कोई मेरे इस शरीर को चीरे तो इसमें रत्तीभर भी रक्त नहीं मिलेगा। जो शरीर रब में रँग गया उसमें फिर रक्त नहीं रहता—

'फ़रीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ।
जो तन रते रब सिउ, तिन तन रतु न होइ' ॥

इसी सन्दर्भ में एक घटना इस प्रकार है—एक बार बसरा की कलन्दर (महान् सन्त) रबिया से मिलने के लिए उस जमाने के महान् पीर ज़ाहिद एवं कलन्दर हसन रबिया के घर पर पहुँचे और उससे मिलने के लिए सूचना भिजवाई। रबिया ने कहला भेजा कि 'मैं अभी गुस्लखाने में नहा रही हूँ अतः स्नानोपरान्त ही मिल पाऊँगी' ॥ जब रबिया नहाकर निकली तो उसके साथ एक नौजवान भी निकला। हसन ने रबिया से पूछा कि—'तू मुझ वृद्ध एवं पीर से पर्दा करती है और इस नौजवान से तुझे कोई पर्दा नहीं है ? यह क्यों' ?

रबिया ने छूरी मँगाया और कहा कि 'ऐ नौजवान ! तू अपना हाथ छूरी से काट'। नौजवान ने जब अपना हाथ काटा तो उसमें से काला खून निकला। रबिया ने हसन से कहा कि आप भी अपना हाथ काटिये। उन्होंने हाथ काटा तो उसमें से लाल खून निकला। फिर रबिया ने अपना हाथ काटा तो उसमें से काली राख निकली। उसने हसन से पूछा—'क्या आपने अपने में, इस नौजवान में एवं मुझमें कोई फर्क पाया ? हसन ने कहा कि 'तुम किस फर्क की बात कर रही हो ? क्या कहना चाहती हो ?' रबिया ने

---

१. शंकराचार्य।

समझाया—'आपका खून आज भी वैसा ही लाल-का-लाल है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। रब उसे आज तक छू न सका; भले ही आपका वजीफ़ा, सुन्नत, नमाज़, रियाज, जियारत, इबादत और उम्र कितनी भी ज्यादा क्यों न हो किन्तु इस छोटी उम्र का नौजवान आप से बड़ा है; क्योंकि इसने इतनी इबादत की कि उसका खून काला हो गया। मैंने जीवन भर रात-दिन इतनी इबादत की कि मेरा रक्त 'रक्त' न रहकर राख़ बन गया। बस यही आपमें, मुझमें एवं इस नौजवान में अन्तर या भेद है'।

साधक को उस किसी भी वस्तु से प्रेम नहीं रह जाता जो 'उसका' न हो जाय। इसीलिए महात्मा तुलसीदास ने कहा था—

'जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी समजद्यपि परम सनेही'॥

उसी प्रकार पीर फ़रीद कहते हैं कि ''ऐ कौवो ! तुमने मेरी ठठरी का सारा मांस खोज-खोजकर खा डाला किन्तु तुम इन दो नयनों को चोंच मत लगाना, क्योंकि मुझे अभी भी अपने प्रियतम (परमात्मा) को देख पाने की आशा है—

'कागा करंग ढढोलिआ सगल खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति दुइउ पिर देखन की आस'॥

साधना के मार्ग—भारतीय साधना की प्रक्रियाओं पर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि भारतीय साधकों ने अध्यात्म-साधना के लिए पाँच मार्ग चुनें—(१) कर्ममार्ग, (२) ज्ञानमार्ग, (३) भक्तिमार्ग, (४) योगमार्ग और (५) तन्त्रमार्ग (ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग आदि सभी को आत्मीकृत करने वाला मार्ग)। बगलोपासना में भी ये सभी मार्ग स्वीकार किये गये हैं, क्योंकि यह उपासना तान्त्रिक उपासना है।

कर्म, ज्ञान और भक्ति—कर्म शरीर-साधना है किन्तु यथार्थ साधना शरीरातीत है। साधना की निम्नतम भूमि कर्मभूमि है। ज्ञान और भक्ति दोनों साधना के प्रशस्त राजमार्ग हैं।

ज्ञान क्या है ? वेदों की दृष्टि से ज्ञान स्वयं परमात्मा है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। सन्त तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—'ज्ञान अखण्ड एक सीतावर'। ज्ञान स्वस्वरूप का साक्षात्कार है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि ज्ञानी तो मेरी आत्मा है—'ज्ञानी स्वात्मैव मे मतम्'।

(क) ज्ञान मार्ग के सम्बन्ध में नारदपाञ्चरात्र की दृष्टि—नारदपाञ्चरात्र में कहा गया है कि—स्वरूपावबोध ही ज्ञान है—'स्वस्वरूपावबोधो हि ज्ञानमित्युच्यते प्रिये'।

ज्ञान का विरोधी तत्त्व है विकल्प। विकल्प क्या है ? 'स्वस्वरूपभ्रमो देवि ! विकल्पो भवसंज्ञकः'।

आचार्य शंकर तो ज्ञानी थे फिर उन्हें भक्ति की क्या आवश्यकता पड़ गई ? आचार्य शंकर स्वयं इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—

'सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवैवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो वै तरङ्गः न तु तरङ्गो वै समुद्रः' ॥

(ख) कर्ममार्ग के सम्बन्ध में नारदपाञ्चरात्र की दृष्टि—

कर्ममार्ग—भगवान् की साधना का एक मार्ग कर्ममार्ग भी है किन्तु इसकी सार्थकता केवल देहाभिमान की स्थिति तक है—

'यावद्देहाभिमानः स्यान्मता तावदेव हि ।
तावद्देहानुबन्धित्वात् कर्म कर्तव्यमेव हि ॥
शास्त्रोक्तं कर्म कर्तव्यं विकर्मविनिवृत्तये ।
विकर्मणि प्रवृत्तिस्तु नृणां स्वाभाविकी यतः' ॥

विकर्मों से विमुक्ति के बाद ज्ञानोदय की दशा में कर्म निरर्थक हो जाते हैं—

'देहाभिमाने गलिते विज्ञाते स्वात्मनि स्वयम् ।
अश्मकाञ्चनयोस्तुल्यं भावप्राप्तौ समस्थितौ ॥
उदासीनारिमित्रेषु स्वानन्दानुभवोदये ।
न कर्मभिस्तदा कार्यं साम्राज्ये भिक्षया यथा ॥
यथामृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम् ।
स्वात्मानन्दोदये तद्वत्कर्मभिर्न प्रयोजनम्' ॥

सारांश यह कि राजा को भीख माँगने की क्या आवश्यकता ? अमृत पान किये व्यक्ति को भोजन की क्या आवश्यकता ? ज्ञानी को कर्म की क्या आवश्यकता ?[१]

जपतत्त्व

भक्तिमार्ग में नवधा भक्ति एवं जप ही प्रधान तत्त्व हैं । जप को तो भगवान् श्रीकृष्ण इतना महत्त्व देते हैं कि वे कहते हैं कि यज्ञों में मैं जपयज्ञ हूँ—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' ।

बगलोपासना में भी मन्त्र-जप का सर्वातिशायी महत्त्व है । यहाँ तो मन्त्र-जप ही साधना एवं उपासना की रीढ़ (Back bone) है ।

'प्रयतो ध्यानसंयुक्तो जपान्ते यः पठेत् सुधीः ।
धनधान्यादिसम्पन्नः सान्निध्यं प्राप्नुयाद् द्रुतम्' ॥
'यं ध्यात्वा प्रजपेन् मन्त्रं सहस्रं कवचं पठेत्' ॥
'एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं सुबुद्धिमान्' ।

१. नारदपाञ्चरात्र ।

बगला मन्त्रराज के विषय में चिन्तनीय बिन्दु—

(क) **'षट्त्रिंशदक्षरी बगला विद्या—**

(१) सांख्यायन का मत—ऋषि नारद हैं, छन्द अनुष्टुप् है और देवता बगलामुखी हैं।

(२) ब्रह्मयामल का मत—ऋषि ब्रह्मा हैं, छन्द गायत्री है और देवता बगलामुखी हैं।

(३) जयप्रथायामल का मत—ऋषि नारद हैं, छन्द अनुष्टुप् है और देवता बगलामुखी हैं।

(४) हरिद्रासंहिता का मत—ऋषि नारायण हैं, छन्द त्रिष्टुप् है तथा देवता बगलामुखी हैं।

सांख्यायन ऋषि का कथन है कि बगलामन्त्र की उपासना में मृत्युञ्जय मन्त्र एवं उनकी पूजा अत्यावश्यक है, क्योंकि—'मृत्युञ्जयं विना देवि बगला नहि सिध्यति'।

उत्कीलन भी आवश्यक है, क्योंकि यह विद्या अभिशप्त है—

'इयं शप्ता महाविद्या कीलिता स्तम्भिता सुत'।
किन्तु— 'रेफयोगान्महाशैवनि:शप्ता फलदायिनी'॥
'रेफमुक्तां जपेद् विद्यां फलहीनां न सञ्जपेत्'॥

अर्थात् 'ह्लीं' नहीं 'ह्ल्रीं' का जप किया जाय।

'रेफहीनां जपन् विद्यां कोटिजापान्न सिध्यति।
तस्माद्रेफस्तु संयोज्य: स्थिराध: परमेश्वरि'॥

(ख) **जप की विधि—**

महर्षि पतञ्जलि की दृष्टि—महर्षि पतञ्जलि के अनुसार जप के दो अङ्ग हैं—(१) मन्त्र का जप एवं (२) मन्त्र के अर्थ का भावन।

(१) **योगवृत्तिकार भोज की दृष्टि**—'जपो यथावदुच्चारणं तद्वाच्यस्य चेश्वरस्य भावनं पुन: पुनश्चेतसि विनिवेशनमेकाग्रताया उपाय:'।

(२) **भावगणेशकार की दृष्टि**—'जप: प्रणवार्थस्य ब्रह्मणश्चिन्तनं धारणाध्यान-समाधिरूपं प्रणिधानमिति शेष:'।

(३) **नागोजीभट्ट की दृष्टि** (योगवृत्ति)—'जपस्तेन सहाचिन्त्यैश्वर्ययुक्तस्य तदर्थस्य परमात्मन: श्रद्धाद्यैर्भावनं ध्यानम्'।

(४) **योगसुधाकर (सदाशिवेन्द्र सरस्वती) की दृष्टि**—'तस्य प्रणवस्य यो जप:, तस्मिन्दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारैस्तदर्थासङ्गचिद्रूपेश्वरभावनापुर:सरं प्राधान्येन दृढमा-सेविते सति, पश्चात्स्वत एव वाग्व्यापाररूपे तस्मिन्प्रलीने, वाचकस्य न्यग्भावात्तदर्थासङ्ग-

चिद्रूपगोचरवृत्तिसन्तानरूपभावनायां दीर्घकालादिभिर्दृढमासेवितायाम्, ततस्तत्प्रसादेन चित्तं निरोधाभिमुखं प्रत्यासत्यभावेन ईश्वरं विश्रान्तिभूमितया लभमानं सत् तत्सादृश्यात् स्वामिनमसङ्गचिद्रूपमात्मानं स्मारयित्वा अविषतया तमप्यलभमानं निरिन्धनाग्निवत्स्वयं संस्कारावशेषं भवति । ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमः' ।

(५) **भाष्यकार व्यास की दृष्टि**—'स्थितोऽस्य वाच्यस्य वाचकेन सह सम्बन्धः' । अर्थात् चूँकि वाचक-वाच्य में अभेद सम्बन्ध है अतः मन्त्र रूप वाचक के जप के समय वाचक एवं वाच्य में अभेद-प्रतिष्ठा या वाच्यस्वरूप ईश्वर की भावना ही जप है ।

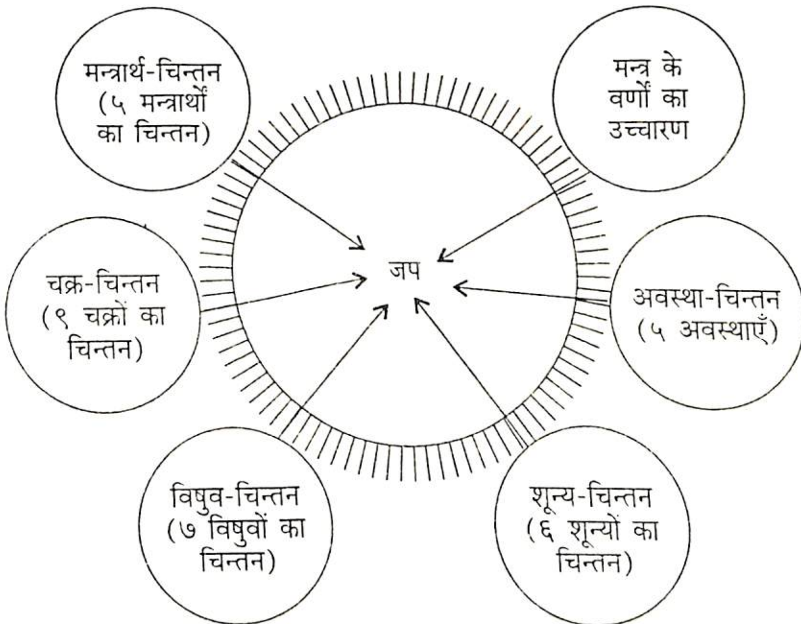
(६) **योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षु की दृष्टि**—विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि भगवान् भावग्राही हैं और मनोमय है अतः जप भी वाच्य स्वरूप भगवान् की भावना के साथ करना चाहिए—

'अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः' ।

'देवः परमात्मा भावग्राह्यो भक्तिमात्रग्राह्यो मनोमयो मनस्तुल्यकारणोपाधिशबलोऽयःशबलाग्निवदित्यादिरर्थः' ॥ (योगवार्तिक)

आचार्य भास्करराय की दृष्टि

मन्त्र के वर्णों के उच्चारण के अतिरिक्त अवस्था, शून्य, विषुव, चक्र एवं मन्त्रार्थ-चिन्तन—ये सभी मन्त्र के जप के अंग हैं ।



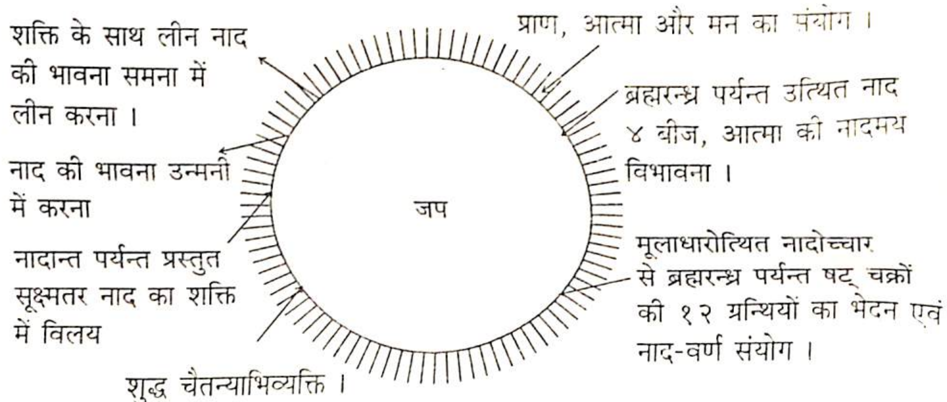
जप की परिभाषा—(आचार्य भास्करराय की दृष्टि)

'एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त।
नव च मनोरर्थांश्च स्मरतोऽर्णोच्चरणं तु जपः' ॥

महर्षि पतञ्जलि का 'अर्थभावन' एवं भास्कर के 'मन्त्र के अर्थों का स्मरण' अभिन्न नहीं हैं। दोनों में भेद है। भास्कर की दृष्टि में अर्थभावन का अर्थ है—प्रतिपाद्यार्थ, भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ, महातत्त्वार्थ, नामार्थ, शब्दरूपार्थ, नामैकदेशार्थ, शाक्तार्थ, सामरस्यार्थ, समस्त गुणार्थकार्थ तथा महावाक्यार्थ।

(i) **अवस्था**

जाग्रत् अवस्था	स्वप्न अवस्था	सुषुप्ति अवस्था	तुरीय अवस्था	तुरीयातीत अवस्था



समस्त ३१७ त्रुटियों एवं साढ़े तीन निमेषों को व्याप्त करता हुआ नाद तत्त्वज्ञान का कारण होता है। यही शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति का मूल हेतु 'तत्त्वविषुव' है।

(ii) **पाँच शून्य**—रेफ़, बिन्दु, रोधिनी, नादान्त एवं व्यापिका में शून्य की भावना करनी चाहिए। षष्ठ शून्य महाशून्य है जो कि उन्मनी में है—

'तार्तीयके रेफस्थाने बिन्दौ च रोधिन्याम्।
नादान्तव्यापिकयोश्चन्द्रकतुल्यानि पञ्च शून्यानि।
उन्मन्यां नीरूपं षष्ठं चिन्त्यं महाशून्यम्' ॥

(iii) **विषुव = प्राणविषुव**—

(१) प्राणविषुव—'प्राणात्ममानसानां संयोगः प्राणविषुवाख्यः'।

(२) मन्त्रविषुव—'प्राथमिककूटनादे त्वनाहताद् ब्रह्मरन्ध्रान्ते।

व्यष्टिसमष्टिविभेदाद् बीजचतुष्कस्य च स्वस्य ।
ऐक्येन नादमयताविभावनं मन्त्रविषुवाख्यम्' ।।

(३) नाडीविषुव—

'आधारोत्थितनादस्योच्चाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तम् ।
षट्चक्राणां ग्रन्थीन् द्वादश भिन्दन् सुषुम्णयैव पथा ।
नाडीनादार्णानां संयोगो नाडिकाविषुवम्' ।।

(४) प्रशान्तविषुव—

'रेफे कामकलार्णे हार्दकलायां च बिन्द्वादौ ।
नादान्तावधि नादः सूक्ष्मतरो जायते तत्र ।
शक्तेर्मध्ये तल्लयचिन्तमुदितं प्रशान्तविषुवाख्यम्' ।।

(५) शक्तिविषुव—

'शक्त्यन्तर्गतनादं समनायां भावयेल्लीनम्' ।।

(६) कालविषुव—

'समनागतमुन्मन्यामेते द्वे शक्तिकालविषुवाख्ये' ।

(७) तत्त्वविषुव—

'श्रीविद्याकूटावयवेषु ककारादिषून्मनान्तेषु ।
अकुलादिकोन्मनान्तप्रदेशसंस्थेषु सकलेषु ।।
अध्युष्टनिमेषोत्तरसप्तदशाधिकशतत्रयत्रुटिभिः ।
उच्चरिते नादे सति तस्यान्ते तत्त्ववेदनं भवति ।
तदिदं चैतन्याभिव्यक्तिनिदानं तु तत्त्वविषुवाख्यम्' ।।

तुर्यावस्था क्या है ?

'तुर्यावस्था चिदभिव्यञ्जकनादस्य वेदनं प्रोक्तम्' ।

तुर्यातीतावस्था क्या है ?

'आनन्दैकघनत्वं यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम् ।
तुर्यातीतावस्था सा नादान्तादिपञ्चके भाव्या' ।।

मन्त्र के दोष

(१) अभक्ति दोष—मन्त्र को अक्षर एवं वर्णों की समष्टि मात्र समझना अभक्ति दोष है ।

(२) अक्षरभ्रान्ति दोष—मन्त्राक्षरों में उलट-फेर या एकाध अक्षर बढ़ जाना अक्षरभ्रान्ति दोष है ।

(३) लुप्त दोष—मन्त्राक्षरों में किसी वर्ण की न्यूनता हो जाना लुप्त दोष है।

(४) ह्रस्व दोष—मन्त्र में किसी दीर्घ वर्ण का ह्रस्व हो जाना ह्रस्व दोष है।

(५) दीर्घ दोष—ह्रस्व वर्ण के स्थान में दीर्घ वर्ण कर देना दीर्घ दोष है।

(६) कथन दोष—जाग्रत् अवस्था में अपना मन्त्र किसी से कह देना कथन दोष है।

(७) छिन्न दोष—संयुक्त वर्णों में से किसी वर्ण का छूट जाना छिन्न दोष है।

(८) स्वप्नकथन दोष—स्वप्न में अपना मन्त्र किसी को बता देना स्वप्नकथन दोष है[१]।

(९) मन्त्र के एक-एक अक्षर के उच्चारण में परमानन्द का अनुभव करते हुए उसका जप करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि—'संविदेव मन्त्रः' अर्थात् मन्त्र संवित् तत्त्व है।

अन्य दोष

स्तोत्रादि पाठ करते समय उसे राग सहित गाना	उच्चारण में शीघ्रता करना	पाठ के समय सिर हिलाना	स्वहस्तलिखित पुस्तक से पाठ करना	पाठ-सामग्री का अर्थ का ज्ञान न होना	अधूरा मन्त्र जानना

'गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः'॥

शेष अन्य दोष (स्तोत्रादि-पाठदोष)—

पाठ करते समय अध्याय की समाप्ति के पूर्व मध्य में ही पाठ बन्द कर देना। दोषनिवृत्ति—पुनः सम्पूर्ण अध्याय का पाठ करना—

'यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत् पठन्।
यदि प्रमादादध्याये विरामो भवति प्रिये।
पुनरध्यायमारभ्य पठेत्सर्वं मुहुर्मुहुः'॥

स्तोत्रादि पाठ के अन्य दोष

(१) अज्ञानवश पुस्तक हाथ में लेकर पाठ करना।

(२) स्तोत्र का मानसिक पाठ करना—

'अज्ञानात् स्थापिते हस्ते पाठे ह्यर्धफलं ध्रुवम्।
न मानसे पठेत्स्तोत्रं वाचिकं तु प्रशस्यते'॥

(क) बहुत जोर-जोर से पाठ करना।

---

१. हरितत्त्वदीधिति।

(ख) पाठ में शीघ्रता करना।

(ग) यत्नपूर्वक शुद्ध एवं स्थिर चित्त से पाठ न करना।

'उच्चै:पाठं निषिद्धं स्यात् त्वरां च परिवर्जयेत्।
शुद्धेनाचलचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नत:' ॥

(३) अपने हाथ से या ब्राह्मणेतर व्यक्ति के हाथ से लिखित पुस्तक के पाठ से भी हानि होती है।

(४) यदि १००० से अधिक श्लोक वाला या मन्त्रों वाला ग्रन्थ हो तो पुस्तक देखकर पाठ करें किन्तु यदि इससे कम श्लोक हों तो उन्हें कण्ठस्थ करके (बिना पुस्तक देखे) भी पाठ किया जा सकता है।

(५) अध्यायान्त में 'इति', 'वध', 'अध्याय', 'समाप्त' शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिए प्रत्युत—'श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये प्रथम: ॐ तत् सत्', 'द्वितीय:', 'तृतीय:' आदि कहकर पाठान्त करना चाहिए।

'कण्ठस्थपाठाभावे तु पुस्तकोपरि वाचयेत्।
न स्वयं लिखितं स्तोत्रं नाब्राह्मणलिपिं पठेत् ॥

('पुस्तके वाचनं शस्तं सहस्रादधिकं यदि।
ततो न्यूनस्य तु भवेद् वाचनं पुस्तकं विना' ॥)

पाठक के गुण—

'माधुर्यमक्षरव्यक्ति: पदच्छेदस्तु सुस्वर:।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणा:' ॥

मन्त्र के दोष न जानने का परिणाम

'दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्रान् भजते जड:।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि' ॥

मन्त्रों के दस संस्कार

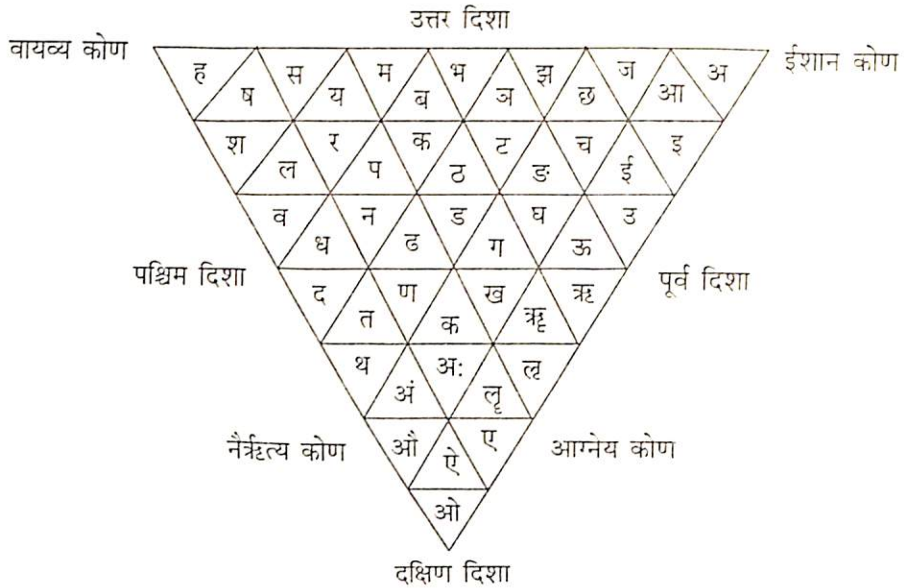
साधकों को याद रखना चाहिए कि मन्त्र छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख आदि ५० दोषों से मुक्त होने चाहिए। ७ करोड़ मन्त्र हैं। सभी किसी-न-किसी दोष से आच्छादित हैं। इन दोषों के निवृत्त्यर्थ मन्त्र के दस संस्कार करना चाहिए।

यह भी ध्यातव्य है कि मन्त्रोद्धार के बाद यन्त्र को धोकर शुद्ध जल में डाल देना चाहिए।

मन्त्र के दशविध संस्कार

जनन दीपन बोधन ताडन अभिषेक विमलीकरण जीवन तर्पण गोपन आप्यायन

(१) **जनन-संस्कार**—भोजपत्र पर गोरोचन, कुंकुम एवं चन्दन आदि से आत्माभिमुख त्रिकोण निर्मित करके तीनों कोणों में ६-६ समान रेखाएँ निर्मित करने पर निर्मित ४९ त्रिकोण कोष्ठों में ईशान कोण से मातृका वर्ण लिखकर देवावाहन-पूजन करके मन्त्र में एक-एक वर्ण का उद्धार करना चाहिए। यह क्रिया ही जननमन्त्र-संस्कार है। चित्र इस प्रकार बनेगा—



मन्त्रोद्धारोपरान्त यन्त्र को धोकर शुद्ध जल में डाल दें।

(२) **दीपन-संस्कार**—हंस मन्त्र से सम्पुटित १००० मन्त्रों के जप से दीपन संस्कार निष्पादित होता है।

(३) **बोधन संस्कार**—'हूं' नामक बीज से सम्पुटित ५००० मन्त्रों से बोधन-संस्कार निष्पन्न होता है।

(४) **ताड़न संस्कार**—फट् मन्त्र से सम्पुटित १००० मन्त्रों का जप करने से ताडन संस्कार निष्पन्न होता है।

(५) **अभिषेक संस्कार**—भूर्जपत्र के ऊपर मन्त्र लिखकर उसको 'रों हंसः ॐ' मन्त्र से अभिमन्त्रित करते हुए १००० बार मन्त्र को जपते हुए प्रत्येक मन्त्रजप से अभिमन्त्रित जल से पीपल के पत्ते आदि द्वारा मन्त्राभिषेक करना अभिषेक संस्कार है।

(६) **विमलीकरण संस्कार**—'ॐ त्रों वषट्' वर्णों से मन्त्र को सम्पुटित करके मन्त्र का १००० जप करना विमलीकरण संस्कार है। यथा राममन्त्र—

'ॐ त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों ॐ'।

(७) **जीवन संस्कार**—स्वधा एवं वषट् से सम्पुटित मूल मन्त्र का १००० जप करने से जीवन संस्कार निष्पन्न होता है। यथा—'स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा'।

(८) **तर्पण-संस्कार**—दूध, जल एवं घी से मूल मन्त्र द्वारा १०० बार तर्पण करने से तर्पण संस्कार निष्पन्न होता है।

(९) **गोपन-संस्कार**—'ह्रीं' बीज से सम्पुटित १००० जप करने से गोपन संस्कार निष्पन्न होता है। यथा—'ह्रीं रामाय नमः ह्रीं'।

(१०) **आप्यायन संस्कार**—'ह्रौं' बीज से सम्पुटित एक हजार जप करने से आप्यायन संस्कार निष्पन्न होता है। यथा—'ह्रौं रामाय नमः ह्रौं'।

इन संस्कारों से सुसंस्कृत मन्त्र शीघ्र सिद्ध होता है।

मन्त्र-चैतन्य

शब्द और मन्त्र—मन्त्र चेतन शब्दों की समष्टि है। शब्द के अनेक प्रकार हैं—

१. शब्दतन्मात्रा, २. आकाश रूप शब्द, ३. आकाश के गुण के रूप में शब्द और ४. वायु के गुण के रूप में शब्द।

१. आहत शब्द, २. अनाहत शब्द—आध्यात्मिक जगत् में शब्द के दो प्रकार हैं—

(१) किसी अर्थ के ज्ञात हो जाने पर उसे व्यक्त करने हेतु मनःप्रेरित वायु के आघात से कण्ठ, तालु आदि विशेष स्थानों से उच्चरित शब्द।

(२) अन्तःकरण में अर्थ को उद्भासित करने वाला चैतन्य रूप शब्द (स्फोट, शब्दब्रह्म)।

स्फोट—जिससे अर्थ स्फुटित हो। अर्थ का स्फुरण स्पन्दन (कम्पन) से होता है। कम्पन नादयुक्त होता है। अतः कम्पन 'शब्दब्रह्म' है। चैतन्य-स्पन्दन से ही सूक्ष्म अर्थ, शब्दतन्मात्रा, आकाश, स्थूल शब्द, स्थूल सृष्टि आदि सभी का आविर्भाव हुआ है। शब्दब्रह्म ही सगुण ब्रह्म है। यही मन्त्र का मूल है। मन्त्र, देवता एवं गुरु एकाकार हैं। मन्त्र समस्त सृष्टि का मूल है और चैतन्यस्वरूप परमात्मा है। मन्त्र के प्रति सामान्य शब्दभाव नहीं रखना चाहिए प्रत्युत ब्रह्मभाव रखना चाहिए। मन्त्र चैतन्य रूप में स्फुरित होने लगे तभी मन्त्र की सार्थकता है।

मन्त्रचैतन्य और उसका महत्त्व

जब तक मन्त्राक्षर जागते नहीं—उनमें अवस्थित शक्ति उनमें निद्रित रहती है—तब तक सारे मन्त्र जड़ वर्णों की समष्टि मात्र हैं। इसीलिए तान्त्रिकों ने इन्हें पशुभाव में अवस्थित माना है।

मन्त्र अपनी तात्त्विक स्थिति में—(१) शक्त्यात्मक एवं (२) शिवात्मक हैं—

'सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका' ॥

तथापि ये अपनी सामान्य अवस्था में मन्त्र कहलाने के योग्य भी नहीं हैं— 'उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान्विदुः'। क्योंकि इनमें मन्त्रों का प्राण शक्तितत्त्व नहीं रहता और शक्ति ही मन्त्रों का प्राण है—

'मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया' ॥

अतः—'पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः'।

यदि हमें अपने को इस प्रकार भावना करनी है कि—

(१) 'आत्मानं चिन्तयेद् देवीं शक्तिमाद्यास्वरूपिणीम्'।
(२) 'आत्मानं चिन्तयेद् देवीं परमानन्दरूपिणीम्'।

और मन्त्र के वर्ण यदि शक्ति हैं—'वर्णरूपेण सा देवी जगदाधाररूपिणीम्' तथा यह भी कल्पना करनी है कि--

(३) 'अहं देवि ! न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्। सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान्' ॥ तब तो मन्त्र में भी अपने मन्त्रवाच्या का दर्शन होना चाहिए, क्योंकि वह मन्त्रस्वरूपा है।

'मन्त्ररूपा परा देवी तथैव गुरुरूपिणी।
क्लीं क्लीं क्लीं रूपिका देवी क्रीं क्रीं क्रीं नामधारिणी।
क्लीं कामराजक्लिन्ना च चतुर्वर्गफलप्रदा ॥
ॐ ऐं क्लीं ह्लीं श्रीं परा च क्लीङ्कारी परमा कला ॥
श्री श्रीङ्कारा महाविद्या श्रद्धा श्रद्धावती तथा ॥
ह्लींकाररूपा ह्लींकारी वाग्बीजाक्षरभूषणा ॥
बीजाख्या नेत्रहृदया ह्लींबीजा भुवनेश्वरी' ॥

अतः मन्त्र तभी जपनीय है जब वह चेतन हो जाय। क्योंकि—'चैतन्यरहितं मन्त्रं यो जपेत् स च पापकृत्'। क्योंकि—'मन्त्राश्चैतन्यसहिताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः'।

मन्त्र-चैतन्यीकरण की पद्धतियाँ

मन्त्र-चैतन्य का प्रथम स्वरूप—षट्चक्रों के कमल वर्णरूप हैं। ये वर्ण सृष्टिक्रम से कमलदलों पर आते हैं और ये संहारक्रम से कुण्डलिनी शक्ति द्वारा अपने मूलस्थान में विलीन कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार उनकी दिव्यसृष्टि होती है।

इसी पद्धति से अपने मन्त्र को चिच्छक्ति या कुण्डलिनी शक्ति से ध्वनित अनुभव करते हुए—(१) वर्णाभाव से परे चैतन्य रूप में स्थित अनुभव करना।

(२) षट्चक्रों का भेदन करके सनातन शब्द रूप में अर्थात् नादबिन्द्वात्मक चैतन्य से एकीभूत कर देना और फिर—

(३) उन्हीं ज्वलन्त, जाग्रत् एवं देदीप्यान चैतन्य वर्णों की समष्टि से निर्मित मन्त्र का साक्षात्कार करना मन्त्रचैतन्य है।

मन्त्र-चैतन्य का द्वितीय स्वरूप—यह कल्पना करनी चाहिए कि मेरे हृदय में अनाहत चक्र पर मेरे मन्त्र के समस्त वर्ण स्थित हैं। मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी जाग्रत् होकर सुषुम्णा मार्ग से आती हुई मेरे मन्त्र को कण्ठस्थित विशुद्ध चक्र का भेदन करके सहस्रार में ले जा रही है और वहाँ सहस्रदल कमल की कर्णिका पर नादबिन्द्वात्मक मन्त्र के सारे अक्षर स्थित हैं और चैतन्यरूपा मन्त्रशक्ति स्फुरित हो रही है।

मन्त्र का प्रत्येक अक्षर चैतन्य शक्ति से निर्मित एवं ग्रथित है—ऐसी भावना करके मन्त्र-वर्णों को नाभि के मणिपूरक चक्र में लाना चाहिए। फिर यह कल्पना करनी चाहिए कि वे वहाँ से वाणी में आते हैं अत: उनका वहाँ चिद्रूप से ही जप करना चाहिए।

मन्त्र-चैतन्य का तृतीय स्वरूप—प्रथमत: मन्त्र के पूर्व कामबीज, श्रीबीज एवं शक्तिबीज का तथा आकार से क्षकार पर्यन्त समस्त स्वरवर्णों का उच्चारण करना चाहिए। इसके बाद मन्त्रोच्चारण करके पीछे भी उन्हीं बीजों और अक्षरों का उच्चारण करना चाहिए। इस प्रकार मूलविद्या का १०८ बार जप करना चाहिए। इस क्रिया से भी मन्त्र-चैतन्य निष्पादित किया जा सकता है।

यदि 'ऐं' मन्त्र का चैतन्य-निष्पादन करना है तो उक्त बीजत्रय का उच्चारण कीजिए—'ॐ क्लीं श्रीं ह्रीं'। फिर 'कं खं गं घं ङं चं छं जं से क्षं' पर्यन्त मातृकाओं का उच्चारण करना चाहिए। इसके अनन्तर उसी जप्य मन्त्र यथा 'ऐं' एवं पुन: उन्हीं बीज- मन्त्रों एवं अक्षरों का १०८ (एक सौ आठ) बार जप करना चाहिए। इससे मन्त्र का चैतन्यीकरण हो जाता है।

मन्त्र-चैतन्य का चतुर्थ स्वरूप—बाहर अवस्थित या अन्त:स्थित द्वादश कलात्मक सूर्य में अपने मन्त्र का चिन्तन करके उसका १०८ बार जप करना चाहिए। सूर्यमण्डल में अपने सनातन शिवस्वरूप गुरु एवं ब्रह्मरूपा उनकी शक्ति का भी ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार गुरु, उनकी शक्ति एवं मन्त्र का चिन्तन करते हुए १०८ बार अपने मन्त्र का जप करने से भी मन्त्र का चैतन्यीकरण हो जाता है।

मन्त्र-चैतन्य का पञ्चम स्वरूप—यदि मन्त्र को 'ई' से सम्पुटित करके जपा जाय तो मन्त्र स्वयमेव चैतन्यीकरण (मन्त्र-चैतन्य) हो जाता है[१]। बिना मन्त्रचैतन्य मन्त्रसिद्धि सम्भव नहीं है, अत: मन्त्र का जप करने के पूर्व मन्त्र-चैतन्य अवश्य कर लेना चाहिए।

---

१. वरदातन्त्र।

मन्त्रार्थ-चिन्तन

'ध्यानेन परमेशानि यद्रूपं समुपस्थितम् ।
तदेव परमेशानि मन्त्रार्थं विद्धि पार्वति' ।।

सहस्रार में पहुँचकर ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए और इस ध्यान के समय वे स्वयं प्रकट हो जाते हैं। वे ही मन्त्र के अर्थ हैं। उसे ही मन्त्रार्थ समझना चाहिए।

मन्त्रसेतु

मन्त्र-जप के पूर्व इनका भी जप कर लेना चाहिए। मन्त्रों का सेतु प्रणव है।

(१) ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए सेतु – 'प्रणव'।
(२) वैश्यों के लिए सेतु – 'फट्'।
(३) शूद्रों के लिए सेतु – 'ह्रीं'।

महासेतु—जप करने के पूर्व महासेतु का जप करने का विधान है। इसके करने से साधक को सभी अवस्थाओं में सारे कालों में जप करने का अधिकार या पात्रता प्राप्त हो जाती है।

(१) त्रिपुरसुन्दरी का महासेतु : 'ह्रीं'
(२) कालिका का महासेतु : 'क्रीं'
(३) तारा का महासेतु : 'हूँ'
(४) अन्य सभी देवताओं का महासेतु : 'स्त्रीं'

प्राणयोग

मन्त्र को प्राणान्वित करने के लिए मायाबीज (ह्रीं) से अपने मन्त्र को सम्पुटित करके उसका सात बार जप करना चाहिए।

दीपनी—मन्त्र के जपारम्भ के पूर्व मन्त्र को प्रणव से सम्पुटित करके सात बार मन्त्र का जप कर लेना चाहिए।

मन्त्रों की कुल्लुका[१]

मन्त्र के जपारम्भ के पूर्व उस मन्त्र की कुल्लुका को शिर पर स्थापित कर लेना चाहिए। मूर्द्धा में उनका न्यास कर लेना चाहिए।

मन्त्र की देवता और मन्त्र की कुल्लुका

देवता	कुल्लुका	देवता	कुल्लुका
१. षोडशी	स्त्रीं	११. लक्ष्मी	श्रीं
२. धूमावती	ह्रीं	१२. सरस्वती	ऐं

१. सरस्वतीतन्त्र।

देवता	कुल्लुका	देवता	कुल्लुका
३. मातङ्गी	ॐ	१३. अन्नपूर्णा	क्ली
४. भुवनेश्वरी	ह्रीं	१४. वज्रवैराचिनी	श्रीं ह्री ह्रीं ऐं ह्री ह्रीं स्वाहा हूँ
५. मञ्जुघोषा	ॐ अ र व च ल ध लीं	१५. शिव	हौं
६. तारा	ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं	१६. विष्णु	ॐ नमो नारायणाय
७. काली	क्री हूं स्त्रीं ह्री फट्	१७. वज्रवैरोचिनी	वज्रवैरोचिनीये हूँ इति
८. भैरवी	ह स रैं		
९. त्रिपुरसुन्दरी	'ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा' या 'क्लीं'	१८. भैरवी	हूँ
		१९. त्रिपुरसुन्दरी	ऐं क्लीं ह्रीं हूँ फट्
१०. छिन्नमस्ता	श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा	२०. बगलामुखी	स्त्रीं

'अपरेषां च देवानां स्वमन्त्राः परिकीर्तिताः । अन्यासां तु पराबीजं कुल्लुका परमेश्वरि' ॥ (शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

अन्य देवों के अपने-अपने मन्त्र ही कुल्लुका हैं[1] । (सरस्वतीतन्त्र)

मन्त्रार्थ-साक्षात्कार

(सरस्वतीतन्त्र की दृष्टि)

मूलाधार चक्र में निर्मल स्फटिक के समान निर्मल इष्टदेवता एवं मन्त्रस्वरूप इष्ट विद्या का चिन्तन-मनन करना चाहिए।

मुख-शोधन

मन्त्रशास्त्रीय नियम यह भी है कि मन्त्र का जप करने के पूर्व मुखशोधन नामक क्रिया भी सम्पन्न कर लेनी चाहिए।

जिह्वा की भौतिक अशुद्धि के अतिरिक्त मिथ्या-भाषण, विवाद, कलह, पैशुन्य आदि के मल से भी जिह्वा अशुद्ध होने के कारण मन्त्र-जप की पात्रता से वञ्चित हो जाती है। इस कल्मष एवं दोष के निवृत्त्यर्थ जप के पूर्व मुख-शोधन क्रिया में देवता-सम्बद्ध उस मन्त्र का (जप के पहले) १० बार जप कर लेना चाहिए—

देवता	मन्त्र	देवता	मन्त्र
लक्ष्मी	श्रीं	धूमावती	ॐ

१. राम - क्लीं ॐ रां ॐ क्लीं।

देवता	मन्त्र	देवता	मन्त्र
धनदा	ॐ धृं ॐ	मातङ्गी	ॐ ऐं ॐ
बगलामुखी	ऐं ह्लीं ऐं	दुर्गा	ऐं ऐं ऐं
तारा	ह्रीं हूं ह्रीं	श्यामा	क्रीं क्रीं क्रीं
त्रिपुरसुन्दरी	श्रीं ॐ श्रीं		ॐ ॐ ॐ
	ॐ श्रीं ॐ		
गणेश	ॐ गं	विष्णु	ॐ हं

मन्त्र-सिद्धि के उपाय

पूर्ण श्रद्धा, विश्वास एवं भक्ति पूर्वक मन्त्र-साधना करने पर भी यदि मन्त्र न सिद्ध हो तो पुनः-पुनः उसकी साधना करनी चाहिए। यदि तीन बार के अनुष्ठान में भी सिद्धि न मिले तब ७ उपायों का प्रयोग करना चाहिए। ध्यान रहे कि एक साधन का प्रयोग करने पर भी सिद्धि न प्राप्त हो तो दूसरा, फिर इसी प्रकार तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा एवं सातवाँ। सभी को एक साथ करने की आवश्यकता नहीं है।

मन्त्र-सिद्धि के सप्त साधन

(१) **भ्रामण**—इसमें वायुबीज 'यं' के द्वारा मन्त्र को ग्रथित किया जाता है। यन्त्र के ऊपर एक वायुबीज 'यं' एवं एक मन्त्राक्षर—इसी क्रम से मन्त्र के सम्पूर्ण अक्षरों को सम्पुटित करना चाहिए।

इसके अनन्तर शिलारस, कर्पूर, कुंकुम, खस और चन्दन को मिलाकर उससे पूरा मन्त्र लिखना चाहिए। लिखे हुए मन्त्र को दूध, घी, मधु एवं जल में छोड़कर पूजा, जप एवं हवन करना चाहिए।

(२) **रोधन**—वाग्बीज 'ऐं' के द्वारा अपने जाप्य मन्त्र को सम्पुटित करके जप करने को रोधन कहते हैं।

(३) **वशीकरण या वश्य**—रक्त-चन्दन, आलक्तक, कुट, धतूरे का बीज और मैनसिल—इन सभी को एक में मिलाकर इसी से भोजपत्र पर अपना मन्त्र लिखकर उसे गले में धारण करना चाहिए। इसे ही वशीकरण कहते हैं।

(४) **पीडन**—अधरोत्तर योग से मन्त्र का जप करते हुए अधरोत्तरस्वरूपिणी देवता की पूजा की जानी चाहिए। यही क्रिया पीडन क्रिया कहलाती है।

(५) **पोषण**—मन्त्रादि एवं मन्त्रान्त में 'स्त्रीं' जोड़कर जप करना चाहिए और गाय के दूध से मन्त्र लिखकर हाथ में पहनना चाहिए। यही क्रिया पोषण है।

(६) **शोषण**—वायुबीज 'यं' के द्वारा मन्त्र को सम्पुटित करके जप करना एवं यज्ञीय भस्म से भोजपत्र पर लिखकर गले में इसे धारण करना ही शोषण क्रिया है। यन्त्र का अर्थ है—गुप्त परामर्श। मन्त्र दिव्य परामर्श है।

(७) **दाहन**—मन्त्र के प्रत्येक स्वर वर्ण के साथ अग्निबीज 'रं' जोड़कर जप करे एवं पलासबीज के तेल से मन्त्र लिखकर स्कन्ध पर उसे धारण करना चाहिए। यही दाहन क्रिया है।

समस्त मन्त्र वर्णात्मक तो हैं ही किन्तु ध्यातव्य बिन्दु यह है कि ये सारे मन्त्र शक्तिसम्पन्न, शक्तिस्वरूप एवं शक्त्यात्मक हैं—'सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मका प्रिये'।

शक्ति क्या है ? 'शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया'। शक्ति के साथ शिव का क्या सम्बन्ध है ? 'शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका'। मातृकाएँ शक्तिरूपिणी हैं, शक्ति मन्त्ररूपिणी हैं और मन्त्र वर्णात्मक हैं।

मन्त्र और पशुभाव—जब तक मन्त्र में चैतन्य का जागरण नहीं होता तब तक सारे मन्त्र पशुभाव में स्थित हैं—

'पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः'।

मन्त्र भगवती का ही रूप है। भगवती जब वर्णों का स्वरूप धारण कर लेती हैं तब उसे मन्त्र कहा जाने लगता है—'वर्णरूपेण सा देवी जगदाधाररूपिणी'।

मन्त्रशिखा

भगवती बगलामुखी एवं अन्य देवी-देवताओं की उपासना में मन्त्रशिखा तत्त्व की भी कम महत्ता नहीं है। यामल में कहा गया है कि भले ही करोड़ों वर्षों तक साधनाएँ क्यों न की जायें किन्तु मन्त्रशिखा तत्त्व को स्थान दिये बिना कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती—

(१) 'तमःपूर्णे गृहे यद्वन्न किञ्चित् प्रतिभासते।
शिखाहीनास्तथा मन्त्रा न सिध्यन्ति कदाचन'॥

(२) 'शिखोपदेशः सर्वत्र गोपितः परमेश्वरि।
विना येन न सिद्धिः स्याद् वर्षकोटिशतैरपि'॥

मन्त्रशिखा का स्वरूप—मूलाधार चक्र के मूलकन्द में जो भुजङ्गाकारा भगवती कुण्डलिनी अवस्थित हैं वहीं भ्रमावर्त्त वायु विद्यमान है और उसे प्राण कहते हैं।

भगवती कुण्डलिनी इसी मूलकन्द में अवस्थित रहकर झींगुर की भाँति अव्यक्त एवं मधुर गुञ्जन करती हुई मूलाधार चक्र से सुषुम्णा मार्ग का आश्रय लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक की यात्रा करती हैं। वे ब्रह्मरन्ध्रस्वरूप अपने यथार्थ सदन में पहुँचकर और वहाँ अपने पति परमशिव के साथ रहकर पुनः उसी सुषुम्णा मार्ग से पुनः मूलाधार चक्र में लौट आती हैं। उनका यह आवागमन चलता रहता है। साधक को इसी आवागमन-क्रम का पूजा में ध्यान करना चाहिए। यही मन्त्रशिखा नामक पूजाङ्ग है।

भगवती कामाख्या कामबीजस्था एवं कामपीठनिवासिनी है। कामपीठ, कामबीज एवं कामाख्या तीनों मूलाधार चक्र में हैं और भगवती बगला वहाँ कुण्डलिनी स्वरूप में भी स्थित हैं—

(१) 'आधारपद्मगतकुण्डलिनीवरेण्याम्'।

(२) 'कामाख्या कामबीजस्था कामपीठनिवासिनी'।

मन्त्रशिखा को अपनी पूजा में प्रयुक्त करने पर विद्या शीघ्र सिद्ध हो जाती है—

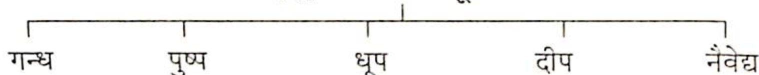
'यस्य विज्ञानमात्रेण क्षिप्रं विद्या प्रसीदति'।

(यामल/शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

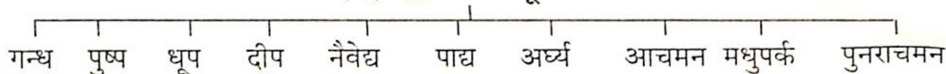
उपचार-तत्त्व

बगलोपासना एवं अन्य देवों की उपासना-प्रक्रिया में सोपचार पूजन का विधान किया गया है। उपचार क्या है ? उपचार कितने हैं ? उपचार किस स्वरूप के हैं ?— ये बिन्दु भी ज्ञातव्य एवं ध्यातव्य हैं।

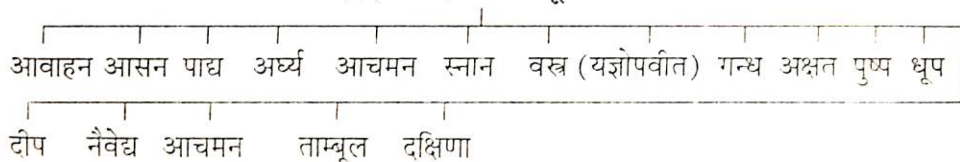
(१) पञ्चोपचार पूजन



(२) दशोपचार-पूजन



(३) षोडशोपचार-पूजन



अष्टदशोपचार-पूजन—१. षोडशोपचार, २. स्वागत तथा ३. आभूषण।

इसके अतिरिक्त—१. षट्त्रिंशदुपचार (३६ उपचार)। २. चतु:षष्ट्युपचार (६४ उपचार)। ३. राजोपचार—(१) षोडशोपचार, (२) छत्र, (३) चामर, (४) पादुका तथा (५) दर्पण।

मानसोपचार—इसमें स्नान, गन्ध आदि सभी उपचारों का ध्यान मात्र से उपयोग किया जाता है। शुभसंकल्प—'तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु'। प्रत्येक साधक को शिव संकल्प एवं शुभ संकल्पों वाला होना चाहिए। मनुष्य का जो संकल्प होता है वह वही बन जाता है। अपने संकल्पों के अनुसार ही वह अगला जीवन भी पाता है—

'अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत'॥ (छान्दोग्योपनिषद् ३।१४)

देवताओं में एकत्वभाव

साधकों को चाहिए कि वे सभी देवों को एक ही समझे पृथक्-पृथक् नहीं, अन्यथा साधक रौरव नरक में जाता है—

'यथा दुर्गा तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः ।
एतत्त्रयमेकमेव न पृथग्भावयेत् सुधीः ॥
योऽन्यथा भावयेदेतान् पक्षपातेन मूढधीः ।
स याति नरकं घोरं रौरवं पापपूरुषः ॥

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

देवी का चिन्तन : स्वात्मा के रूप में चिन्तन

देव्युपासकों को भगवती को कोई पराया या अपने से पृथक् देवता या अपने से भिन्न भगवान् के रूप में नहीं प्रत्युत स्वात्मा के रूप में चिन्तित करना चाहिए—

'सर्वदेवमयीं देवीं सर्वदेवमयीं पराम् ।
आत्मानं चिन्तयेद् देवीं परमानन्दरूपिणीम्' ॥

(शाक्तानन्दतरङ्गिणी)

'आत्मानं चिन्तयेद् देवीं शक्तिमाद्यास्वरूपिणीम् ।
मनसा वचसा चैव कायिकेन च चिन्तयेत्' ॥

क्या सोचना चाहिए ? यह सोचना चाहिए कि 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' ।

साधक का दिनचर्यारम्भ

(साधक की दिनचर्या का प्रारम्भ) रात्रि के दो दण्ड शेष रह जाने पर ब्राह्ममुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम अपने सहस्रार में परबिन्दुस्वरूप शिव को गुरु मानकर ध्यान करना चाहिए—

(क) 'द्वौ दण्डौ रात्रिशेषे तु ब्राह्म्यं मुहूर्तकं विदुः' ।
(ख) 'ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय चिन्तयेद् गुरुदैवतम् ।
स्वमूर्द्धनि सहस्रारे शिवाख्यपरबिन्दुके' ॥

फिर उनकी मानसोपचार से पूजा करनी चाहिए—'मनसा गन्धपुष्पाद्यैः सम्पूज्य वाग्भवं जपेत्' ॥ (श्यामारहस्य)

इसके बाद ही अपने इष्टदेव की पूजा का आरम्भ करना चाहिए ।

भगवती बगलामुखी आनन्दस्वरूपा हैं । साधक को उनके आनन्दात्मक पक्ष की भी साधना करनी चाहिए । आनन्द भगवान् का स्वस्वरूपात्मक 'स्वरूप' लक्षण है ।

भारतीय दर्शन का आनन्दवाद और भगवती बग़लामुखी

भारतीय दर्शन भगवान् को त्रिपाद्विभूषित मानता है । उसके पादत्रय **निम्नांकित**

हैं—(१) सत् पाद, (२) चित् पाद और (३) आनन्द पाद। इसीलिए भगवान् को 'सच्चिदानन्द' कहा जाता है।

उपनिषदों में आनन्द को ही सृष्टि का मूल, सृष्टि का अधिष्ठान एवं सृष्टि का लयस्थान माना गया है—

(१) आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।

(२) आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

(३) आनन्देन जातानि जीवन्ति।

(४) आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

(५) यही भार्गवी वारुणी विद्या है जो कि 'परमेव्योमन्' में प्रतिष्ठित है।

उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला कभी भयत्रस्त नहीं हुआ करता—'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति'[१]।

(१) आत्मा आनन्दमय है—'एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्माऽनन्दमयः'। 'आनन्द आत्मा'।

(२) परमात्मा रसस्वरूप (आनन्दस्वरूप) है। उस रस को प्राप्त करके आत्मा आनन्द प्राप्त करती है—'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति'[२]।

(३) वह आनन्दस्वरूप परमात्मा न होता तो कौन जीवित रह सकता ? कौन प्राणों की चेष्टा कर पाता ? वही आनन्दमय सबको आनन्द प्रदान करता है—

'को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्द-यति'[३]॥

(४) 'आनन्द ही ब्रह्म है'—इसी प्रकार (ऋषियों ने) जाना।

(क) आनन्द से ही सारे प्राणियों का जन्म होता है।

(ख) आनन्द से ही सारे प्राणी जीवित रहते हैं।

(ग) आनन्द से ही सारे प्राणी जीवित होकर आनन्द में ही लयीभूत हो जाते हैं—'सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता'[४]।

साधना और उसमें अष्टदल कमल की भूमिका

साधना कल्पना एवं हवा में नहीं की जाती प्रत्युत व्यावहारिक धरातल पर की जाती है अतः साधकों को प्रथमतः जानना पड़ता है कि उसकी साधना में आने वाले गतिरोधों का मूल केन्द्र कौन है ? उन गतिरोधों का स्पन्दन किस केन्द्र से स्फुरित होता है। यह जानने के बाद वह अपने मन को नियन्त्रित करके साधना में शीघ्रता से पदार्पण कर सकता है।

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद्। २-३. तै. उप. (अनु. ७)। ४. तैत्तिरीयोपनिषद् (अनु. ६)।

अष्टदल कमल और मनोवृत्तियाँ—'हृदयेऽष्टदले हंसात्मानं ध्यायेत्। अग्नीषोमौ पक्षौ, ॐकारः शिरो बिन्दुस्तं नेत्रं मुखो रुद्रो रुद्राणि चरणौ बाहूकालश्चाग्निश्च...एषोऽसौ परमहंसो भानुकोटिप्रतीकाशः'।

१२ दलों वाला अनाहत चक्र अष्टदलपद्म से पृथक् है। दोनों का स्थान हृदय ही है। 'दहराकाश' का स्थान भी हृदयस्थ शून्य में अवस्थित है। 'संवित् कमल' का आचार्य शंकर ने भी उल्लेख किया है—

'समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं'। (सौन्दर्यलहरी)

हृदय में अष्टदल पद्म का स्वरूप—

(१) अग्नि और चन्द्रमा उसके दो पंखें हैं।
(२) उसका सिर 'औंकार' है।
(३) उसका नेत्र बिन्दु है।
(४) उसका मुख रुद्र है।
(५) उसके चरण रुद्राणी हैं।
(६) उसकी बाहुएँ अग्नि और काल हैं।

यह कमल १ करोड़ 'हंसः' मन्त्र के जप करने पर खुलता है। 'हं' और 'सः' (हंस + हंसिनी) का जोड़ा है। हंस युगल और अष्टदलपद्म।

'हं' = हंस (पुरुष)। 'सः' = शक्ति (नारी)।

ये अष्टदल पद्म के प्रत्येक दल पर बैठते हैं—इनके कमलदलों पर बैठने और उनसे मनोवृत्तियों के उदित होने का क्रम इस प्रकार है।

अष्टदल कमल और सम्बद्ध वृत्तियाँ—

(१) पूर्व दिशा के कमलदल पर बैठने पर → पुण्य मति का उदय।
(२) आग्नेय कोण की दिशा वाले कमलदल पर → निद्रा एवं आलस्य का उदय।
(३) दक्षिण दिशा वाले पद्मदल पर बैठने पर → क्रूर बुद्धि का उदय।
(४) नैर्ऋत्य कोण वाली दिशा के पद्मदल पर बैठने पर → पाप बुद्धि का उदय।
(५) पश्चिम दिशा वाले पद्मदल पर बैठने पर → क्रीड़ा की इच्छा का उदय।
(६) वायव्य कोण वाले पद्मदल पर बैठने पर → यात्रा की इच्छा का उदय।
(७) उत्तर दिशा वाले पद्मदल पर बैठने पर → रति की इच्छा का उदय।
(८) ईशान कोण वाले पद्मदल पर बैठने पर → धनेच्छा का उदय।
(९) मध्य भाग वाले स्थान पर बैठने पर → वैराग्य का उदय।
(१०) पद्मदलों के केशर पर बैठने पर → जागरण।
(११) कमल की कर्णिका में बैठने पर → स्वप्नोदय।

(१२) सूक्ष्म में अवस्थित होने पर → सुषुप्ति का उदय।

(१३) पद्मदलों पर से उड़ने पर → तुरीयातीत समाधि का उदय।

साधक को अपनी मनोवृत्तियों का निरीक्षण करते हुए यह सोचना चाहिए कि मेरी अपनी मानी जाने वाली ये सारी मनोवृत्तियाँ मेरी नहीं हैं प्रत्युत—

(१) या तो ६ चक्रों के कमलदलों एवं चक्रों का परिणाम है या

(२) अष्टदल कमल के दलों पर 'हंस' युगल के बैठने का परिणाम है। अत: सदैव हंस-युगल को हृदयाकाश में (पद्मदलों पर से उड़कर) उड़ते हुए कल्पना करनी चाहिए। मध्ययुगीन सन्तों का अष्टदलकमल पृथक् है।

आनन्दश्रेणियाँ और भगवती बगलामुखी

मानुष आनन्द निकृष्टतम आनन्द है—

(१२) बगलामुखी का आनन्द

(११) ब्रह्मानन्द का १०० प्राजापत्यानन्दों के तुल्य

(१०) प्रजापति का आनन्द १०० बृहस्पत्यानन्दों के समतुल्य

(९) बृहस्पति का आनन्द १०० इन्द्रानन्दों के तुल्य आनन्द

(८) इन्द्रानन्द का १०० देवानन्दों के समतुल्य आनन्द

(७) स्वभावसिद्धों का आनन्द १०० कर्मदेवानन्दों के समतुल्य आनन्द

(६) कर्मदेवानन्द का १०० आजानज देवानन्द के समतुल्य आनन्द

(५) आजानज देवानन्द का १०० पितरानन्द के समतुल्य आनन्द

(४) पितरानन्द का १०० देवगन्धर्वानन्दों के बराबर आनन्द

(३) देव-गन्धर्व का आनन्द मानव-गन्धर्वानन्द से १०० गुना श्रेष्ठतर आनन्द

(२) मानव-गन्धर्व का आनन्द १०० मानुष आनन्द के समतुल्य

(१) मानुष आनन्द युवक, शासक एवं बलिष्ठ व्यक्ति द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य पाने पर जो आनन्द पाता है।

शक्ति ने अपने को परिणत करने के लिए चिदानन्दकार को विराट् देवभाव द्वारा व्यक्त किया है—

'त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारैः शिवयुवतिभावेन बिभृषे' ॥

वह चिदानन्दलहरी है—'भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्'। भगवती बगलामुखी स्वयं भी आनन्दस्वरूपा एवं आनन्दप्रदायिनी शक्ति हैं—

'आनन्दकारिणी देवी रिपुस्तम्भनकारिणी'।
'सर्वानन्दमयी चैव सर्वसिद्धिप्रदायिनी' ॥
'सर्वानन्दप्रदा देवी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी' ॥

भगवती ब्रह्मानन्द प्रदान करती हैं अर्थात् वे ब्रह्मानन्द से भी उच्चतर आनन्द वाली हैं। वे अमृत के समुद्र में स्थित हैं—'मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां' (ब्रह्मास्त्र- महाविद्यास्तोत्र)। भगवती—'सिद्धा मोक्षप्रदा नित्या नित्यानन्दप्रदायिनी' हैं। वे—'जगदानन्दकारी च जगदाह्लादकारिणी' एवं 'योगिजाया योगवती योगीन्द्रानन्ददायिनी' भी हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्मानन्द को सर्वोच्च आनन्द माना गया है किन्तु भगवती बगला का आनन्द और सघन है। क्योंकि ब्रह्मानन्द तो वे अपने भक्तों को ही बाँटती रहती हैं—

'सर्वानन्दप्रदा देवी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी'।

क्या आनन्द का एक ही श्रेणी-विभाजन है ? नहीं।

यद्यपि आनन्द की अनन्त श्रेणियाँ हैं तथापि यदि उन्हें वर्गीकृत किया जाय तो उनमें जो सर्वोच्च आनन्द श्रेणी है उससे असंख्यगुणित आनन्द भगवती बगलामुखी का आनन्द है, क्योंकि वे आनन्दस्वरूपा हैं।

त्रिक दर्शन के आचार्यों ने शक्ति के निम्न प्रकार बताये हैं—

शक्ति के प्रकार (भेद)



चित्शक्ति आनन्दशक्ति ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति

भगवती सीता राम की एवं भगवती राधा श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं। भगवान् को स्वयं आनन्द-चर्वणा हेतु इसी आनन्दशक्ति का आश्रय लेना पड़ता है।

नारदपाञ्चरात्र में प्रस्तुत आनन्द-श्रेणियों का स्वरूप—

१ ब्रह्मानन्द १०० अक्षरानन्दों के समतुल्य है। भगवती बगलामयी का आनन्द असंख्य ब्रह्मानन्दों के समतुल्य है।

(१३) ब्रह्मानन्द = १०० अक्षरानन्द
(१२) अक्षरानन्द = १०० पुरुषानन्द के तुल्य
(११) पुरुषानन्द = १०० प्रकृत्यानन्द के बराबर
(१०) प्रकृत्यानन्द = १०० शैवानन्द
(९) शैवानन्द = १०० ईशानन्द
(८) ईशानन्द = १०० रुद्रानन्द
(७) रुद्रानन्द = १०० वैष्णवानन्द
(६) वैष्णवानन्द = १०० वैरंच्यानन्द

(५) वैरंच्यानन्द = १०० देवानन्द
(४) देवानन्द = १०० उपदेवानन्द
(३) उपदेवानन्द = १० पितरानन्द
(२) पित्रानन्द = १०० गन्धर्वानन्दों के समान
(१) १०० मनुष्यानन्द = १ गन्धर्वानन्द

मनुष्यानन्द = सप्त द्वीपवती सम्पूर्ण पृथ्वी का जो नि:सपत्न, निरामय, व्याहतेन्द्रिय, राजेन्द्रवन्दित सम्राट् हो उसका आनन्द ही मनुष्यानन्द है।

समस्त विश्वसृष्टि के सर्वोच्च आनन्द से डूबा है—

'ब्रह्मानन्दमयं विश्वं नानाभावो न विद्यते'। (माहेश्वरतन्त्र)

भगवती बगला का आनन्द उससे भी परे है, क्योंकि वे विश्वमयी के अतिरिक्त विश्वातीता भी है।

सांख्यायनतन्त्र में देवी के साथ तादात्म्यभाव स्थापित करके उनका जप करने का निर्देश है—'देवी भूत्वा जपेद्देवीमर्चना विधिवद्यदि'; तथापि यह तादात्म्य ज्ञानमार्ग एवं योगमार्ग के तादात्म्य से अधिक भक्तिमार्ग का तादात्म्य है।

भगवती बगला बार-बार भक्ति पर बल देती हैं—

'क्षोणीपतिर्वशस्तस्य स्मरणे सदृशो भवेत्।
य: पठेत् सर्वदा भक्त्या श्रेयस्तु भवति प्रिये'॥

क्योंकि वे प्रेमरूपा हैं—

'प्रेमा प्रमध्यमा शेषा पद्मपत्रविलासिनी'।

इसीलिए वे भक्तों को आनन्द प्रदान करती है—

'भक्तानन्दकरी देवी बगला परमेश्वरी'।

इसीलिए विष्णुयामल में भी कहा गया है कि 'प्रभातकाले प्रयतो मनुष्य: पठेत् सुभक्त्या परिचिन्त्या पीताम्'। इसीलिए यह भी कहा गया है कि—

'दातव्यं भक्तियुक्ताय गुरुदासाय धीमते'।

इसीलिए साधकों के साधना की सरलतम विधि यही है कि वे भगवती बगला की अनन्य भक्ति सहित पूजा करें। भक्ति ही सरलतम साधना है। भक्ति अमृतस्वरूपा है—'अमृतस्वरूपा च' (ना.भ.सूत्र ३)। इसकी साधना से साधक सिद्ध हो जाता है, अमृत हो जाता है, तृप्त हो जाता है—'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति' (ना.भ.सू. ४) इसे प्राप्त करने के बाद उसके मन में अन्य वांछा, चिन्तन, द्वेष, राग आदि कुछ भी नहीं रह जाता—'यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति'। और व्यक्ति उसे पाकर प्रमत्त, स्तब्ध एवं आत्माराम बन जाता है—'यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति'।

इसीलिए त्रिक दर्शन के महान् दार्शनिक उत्पलदेवाचार्य ने भक्ति को 'ज्ञान की परमा भूमि एवं योग की परमा दशा' कहकर उसको प्राप्त करने की प्रार्थना की थी—

'ज्ञानस्य परमा भूमिर्योगस्य परमा दशा।
त्वद्भक्तिर्या विभो कर्हि पूर्णा मे स्यात्तदर्थिता'॥

अन्त में—

'गेहं नाकति, गर्वितः प्रणमति स्त्रीसङ्गमो मोक्षति
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृतति क्ष्मावल्लभो दासति।
मृत्युर्वैद्यति दूषणं सुगुणति त्वत्पादसंवेदनात्
वन्दे त्वां भवभीतिभञ्जनकरीं गौरीं गिरीशप्रियाम्'॥



द्वितीय अध्याय

महाविद्या भगवती बगलामुखी

'ॐ अयं हैना ब्रह्मरन्ध्रे सुभगां ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणीमाप्नोति ब्रह्मास्त्रां महाविद्यां शाम्भवीं सर्वस्तम्भनकरीं, सिद्धां चतुर्भुजां दक्षाभ्यां कराभ्यां मुद्गरपाशौ वामाभ्यां जिह्वावज्रं दधानां, पीतवासां, पीतालङ्कारसम्पन्नां, दृढपीनोन्नतपयोधरयुग्माढ्यां, तप्तकार्तस्वरकुण्डलद्वयविराजितमुखाम्भोजां, ललाटपट्टोल्लसत्पीतचन्द्रार्धमनुबिभ्रतीमुद्यद्दिवाकरोद्योतां स्वर्णसिंहासनमध्यकमलसंस्थां धिया सञ्चिन्त्य, तदुपरि त्रिकोणषट्कोणवसुपत्रवृत्तान्तः षोडशदलकमलोपरि धूर्बिम्बत्रयमनुसन्धाय तत्राद्ययोन्यन्तरे देवीमाहूय ध्यायेत्' ॥

(पीताम्बरोपनिषद्)

उन सुभगा भगवती बगलामुखी का जो ब्रह्मास्त्रस्वरूपा हैं, ब्रह्मास्त्र से युक्त हैं, महाविद्या हैं, शाम्भवी हैं और सर्वस्तम्भनकरी हैं—ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करना चाहिए। जो सिद्धिस्वरूपा हैं, चार भुजाओं वाली हैं, दाहिने हाथों में मुद्गर और पाश तथा बायें हाथों में शत्रुजिह्वा एवं पाश धारण की हुई हैं, पीले वस्त्र धारण की हुई हैं, पीले आभूषण पहनी हुई हैं, पुष्ट स्तनयुग्म से सुशोभित हैं, तप्त स्वर्णकुण्डलों से सुशोभित मुख वाली हैं, ललाट पट्ट पर सुशोभन अर्धचन्द्र धारण की हुई है। उदीयमान अरुणादित्य के समान प्रकाश से सुशोभित हैं, स्वर्णसिंहासन के मध्य कमलासन पर विराजमान हैं—ऐसे देवीस्वरूप का चिन्तन करते हुए उसके ऊपर त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल वृत्त के भीतर षोडशदल कमल और उसके ऊपर बिम्बत्रय का अनुसन्धान करना चाहिए और वहाँ आद्य योनि के मध्य स्थान में देवी का आवाहन करके उनका ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करना चाहिए।

'मातर्भैरवि ! भद्रकालि ! विजये ! वाराहि ! विश्वाश्रये !
श्रीविद्ये ! समये ! महेशि ! बगले ! कामेशि ! कामे ! रमे !
मातङ्गि ! त्रिपुरे ! परात्परपरे ! स्वर्गापवर्गप्रदे !
दासोऽहं शरणागतोऽस्मि कृपया विश्वेश्वरि ! त्राहि माम्' ॥ (रुद्रयामलम्)

'पर्यङ्कोपरि लसद्द्विभुजां कम्बुहेमनतकुण्डललोलां वैरिनिर्दलनकारणरोषां चिन्तयामि बगलां हृदयाब्जे' ॥

(रुद्रयामलम्)

'बगला' शब्द का अर्थ

'बगला' शब्द 'वल्गा' (लगाम) का अपभ्रंश है। लोग अमरुद को 'अरमूद' और लखनऊ को 'नखलऊ' कह जाते हैं, उसी प्रकार वल्गा शब्द 'बगला' के रूप में प्रचलित हो गया है। चूँकि लगाम घोड़े की शक्ति एवं क्रिया को स्तम्भित कर देती है उसी प्रकार अभिचारादिक क्रियाओं एवं अन्य क्रियाओं को जो स्तम्भित कर दे वही स्तम्भन शक्ति

है। बगला-शक्ति शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक सभी क्रियाओं को स्तम्भित कर देती है तथा ब्रह्माण्ड के समस्त व्यापारों को स्तम्भित करने में सक्षम है अत: बगलामुखी को मुख्यत: 'स्तम्भन शक्ति' माना जाता है; किन्तु भगवती बगला में—स्तम्भन, मारण, मोहन, वशीकरण, द्वेषण एवं उच्चाटन आदि सारी क्रियाओं को निष्पादित करने की क्षमता है।

भगवती 'बगलामुखी' के नामान्तर

भगवती 'बगलामुखी' को वल्गामुखी, बगला, पीताम्बरा एवं ब्रह्मास्त्रविद्या भी कहते हैं। 'सांख्यायनतन्त्र' में इन्हें 'बगला' कहा गया है—

'अथ वक्ष्यामि देवेशि बगलोत्पत्तिकारणम्।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे बगलाम्बिका'॥

इसी तन्त्र में इन्हें ब्रह्मास्त्रविद्या एवं 'त्रैलोक्यस्तम्भिनी विष्णुतेजात्मिका विद्या भी कहा गया है—

(क) 'ब्रह्मास्त्रविद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भिनी परा'।
(ख) 'तत्तेजो विष्णुजं तेजो विद्याऽनुविद्ययोर्गतम्'॥

इस विद्या को 'ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या' भी कहा गया है—

'ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या स्तब्धमायामनुस्तथा'॥ (सांख्यायनतन्त्र)

भगवती बगलामुखी 'महाविद्या' हैं और उसमें भी वे मुख्यत: प्रवृत्तिरोधिनी विद्या हैं—"प्रवृत्तिरोधिनी विद्या बगला च कुमारक"। वे षट्प्रयोगमयी विद्या हैं—

"षट्प्रयोगमयी विद्या षड्विद्याऽऽगमपूजिता"। (सांख्यायनतन्त्र)

भगवती बगलामुखी एवं बगला-विद्या दोनों अभिन्न हैं—

'विद्या च बगला नाम्नी मुनिविद्या सुपावनी'॥

विद्वानों ने 'बगला' का शुद्ध रूप 'वल्गा' माना है। वल्गा का अर्थ है—निग्रह करने वाली, लगाम या रास। (वल्ग + अच् टाप् = वल्गा)। 'बगलामुखी' शब्द की यदि यह व्याख्या की जाय जो कि अनेक विद्वानों ने भी की है—'बगलामुखमिव मुखं यस्या: सा' (बहुव्रीहि समास, उत्तरपदलोप; बगलामुख + ङीष्) अर्थात् बगला के समान मुखवाली देवी—तो यह व्याख्या भगवती बगलामुखी के स्वरूप आदि की दृष्टि से पूर्णतया असंगत है। बगलामुखी का मुख बगला की भाँति है ही नहीं।

निरुक्तकार यास्क ने निरुक्त (६।२) में 'वलगो वृणोते:' कहकर इसकी व्याख्या की है।

'वल्गा' शब्द वर्णव्यत्यय के कारण 'बगला' बन गया है। 'वलगहनं'

कृत्यानिवारणार्थ प्रयोग विशेष है। महीधर और उव्वट दोनों ने इसी अर्थ में इस शब्द की अर्थवत्ता स्वीकार की है।

'वलगान् खनति विदारयति इति बगलामुखी'। 'खनु अवदारणे' धातु से 'डित् खनेर्मुट् स चोदात्तः' इस उणादिसूत्र से 'मुख' शब्द निष्पादित होता है।

'मेदिनीकोश' में मुख के अनेक अर्थों को इस प्रकार संकेतित किया गया है—

'मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि।
सन्ध्यन्तरे नाटकादेः द्योशब्देऽपि नपुंसकम्'॥

बगलामुखी शब्द में मुख का अर्थ निःसरणात्मक है। यहाँ मुख शरीरांग के अर्थ में गृहीत नहीं किया गया है। ज्वालामुखी (जिससे ज्वाला का निःसरण होता हो), गोमुखी आदि शब्दों में 'मुख' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

वलगामुखी के स्थान पर बगलामुखी हो गया है। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' तथा 'सिंहो वर्णविपर्ययाद्' और 'परोक्षप्रिया इव हि देवाः' के कारण 'वलगा' 'बगला' के रूप में रूपान्तरित हो गया है। यह वर्णव्यत्यय के कारण हुआ है।

'वलगहन' (वलगा की हत्या करने वाली) ही 'वलगा' का अर्थ है। कतिपय विद्वानों ने 'बगं वाचं लातीति बगला' ऐसी व्याख्या की है। अन्य लोगों ने 'वाचा अलति भूषयति इति बगला' इस प्रकार बगला की व्याख्या करके बगला को वाक्य-प्रदायिनी के अर्थ में गृहीत किया है। ये व्याख्याएँ सांगत्य की दृष्टि से समीचीन नहीं है अतः 'वलग' नामक आभिचारिक कृत्य (कृत्या) के प्रभाव को नष्ट या स्तम्भित करने वाली एवं महात्रिपुरस्वरूपा आदिशक्ति ही 'बगलामुखी' है। भगवती बगला सर्वशक्तिस्वरूपा है।

रुद्रयामलतन्त्र के उत्तर खण्ड में भगवती बगला को भैरवी, भद्रकाली, वाराही, विश्वाश्रया, विद्या, समया, महेशी, कामेशी, वामा, रमा, मातंगी एवं त्रिपुरा भी कहा गया है—

'मातर्भैरवि! भद्रकालि! विजये! वाराहि! विश्वाश्रये!
श्रीविद्ये! समये! महेशि! बगले! कामेशि! कामे! रमे!
मातङ्गि! त्रिपुरे! परात्परतरे! स्वर्गापवर्गप्रदे!
दासोऽहं शरणागतोऽस्मि कृपया विश्वेश्वरि! त्राहि माम्'॥

भगवती बगलामुखी का वैदिक स्वरूप

'रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो, निचखानोत्कृत्यां किरामि'॥ (यजुर्वेद ५।२३)

भगवती बगलामुखी और वैदिक वाङ्मय

भगवती बगलामुखी पौराणिक एवं तान्त्रिक युग की ही देवी नहीं है प्रत्युत वे वैदिक काल में भी एक महत्त्वपूर्ण एवं उपास्या देवी के रूप में उल्लिखित हैं। वहाँ उनका प्रधान सम्बन्ध आभिचारिक तान्त्रिक व्यापार से है।

यजुर्वेद और भगवती बगलामुखी—यजुर्वेद (५।२३) में कहा गया है—

'रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ठ्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसम्बन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि, यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि'' ॥

भाष्यकार उव्वट का भाष्य—रक्षोहणं रक्षांसि या वागपहन्ति सा रक्षोहा तां रक्षोहणम्। 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्'—धातूपपदकालप्रत्ययनियमात्र प्राप्नोति, इति 'बहुलं छन्दसि' इति क्विप् प्रत्ययः। 'वलगहनं' वलगान् कृत्याविशेषान् भूमौ निखनितान् शत्रुभिर्विनाशार्थं हन्तीति वलगहा वाक्। पूर्ववत् क्विप् प्रत्ययः। तां वलगहनम् ॥ 'वलगो वृणोतेः' यस्य वधार्थं क्रियते तं रोरादिभिर्वृण्वन् आ प्रच्छादयन् गच्छतीति 'वलगः', वैष्णवीं विष्णुदेवत्यां वाचं वदेति सम्बन्धः। उत्किरति ॥ इदमहं यत् करोमि तद् वलगकृत्याविशेषम् 'उत्किरामि' उद्वपामि यं मे निष्ठ्यः यं वलगं मे मम निष्ठ्यः पुत्रः, स हि निर्गत्य शरीरात् ततो विस्तीर्णो भवति यं च अमात्यः वलगं 'निचखान' निखनति। छन्दसि लङ्लुङ्लिटः सर्वेषु कालेषु भवन्ति। द्वितीयमुत्किरति। यं मे समानो विद्यादिभिः सदृशः असमानः विद्यादिभिरसदृशः। शेषं व्याख्यातम्। तृतीयमुत्किरति। यं मे सबन्धुः स्वजनः असबन्धुस्तद्विपरीतः शेषं व्याख्यातम्। चतुर्थमुत्किरति। यं मे सजातः। सजातो भ्राता। स हि समानजन्मा भवति। असजातः। असमानजन्मा भ्रातुरसदृशः। शेषं व्याख्यातम्। सर्वमुत्किरति उत्कृत्यां किरामि उत्किरामि कृत्याम् ॥

आचार्य महीधर ने भी उक्त उद्धृतांश की व्याख्या की है और उन्होंने भी उव्वट की व्याख्या के समान ही व्याख्या की है। तथापि किन्हीं-किन्हीं प्रयुक्त पदों की व्याख्या अधिक विस्तारपूर्वक की है।

भाष्यकार महीधर का भाष्य—पराजयं प्राप्य पलायमानैः राक्षसैरिन्द्रादिवधार्थमभिचाररूपेण भूमौ निखाता अस्थिकेशनखादिपदार्थाः कृत्याविशेषा वलगा।

अर्थात् देवताओं के साथ युद्ध करते-करते पराभूत एवं भागते हुए राक्षसों ने इन्द्रादिक अपने शत्रुओं का वध करने हेतु भूमि में आभिचारिक कर्म करते हुए अस्थि, केश, नख आदि जिन पदार्थों को भूमि में गाड़ दिया था वे 'वलगा' कहलाते हैं।

'वलगो वृणोतेः' (नि. ६।२) 'तान् बाहुमात्रान् खनेत्' इति श्रुतेः। 'असुरा वै निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान् न्यखनन् तान् बाहुमात्रे त्वविन्दन् तस्मात् बाहुमात्राः

खायन्ते' इति तैत्तिरीयश्रुतेः । 'कात्यायनसूत्र' में कृत्या के निवारण हेतु जो प्रकरण आता है उसमें इस अभिचार की व्याख्या की गई है । इस प्रकरण में जिस सिद्धान्त की विवेचना की गई है वह श्रीबगलामुखी के तान्त्रिक स्वरूप से सम्यक् साम्य रखती है ।

अथर्ववेद एवं भगवद्गीता में बगला

अथर्ववेद के बगलासूक्त में अनेक प्रकार की कृत्याओं का वर्णन किया गया है ।

यजुर्वेद की काण्व शाखा में तथा तैत्तिरीय, काठक एवं मैत्रायणी शाखा में भी इन कृत्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है ।

उक्त ऋचा में जो वैष्णवी शब्द का प्रयोग किया गया है उसका अर्थ विष्णूपासिता शक्ति ग्रहण करना चाहिए । यह स्तम्भन शक्तिस्वरूपा है । यजुर्वेद (३२।६) में कहा गया है—'येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तम्भितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम' । यहाँ भी स्तम्भन कार्य का उल्लेख मिलता है किन्तु यहाँ देवी को पुरुष रूप में प्रस्तुत किया गया है । यजुर्वेद (३२।७) में भी यही प्रसंग मिलता है—

'यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम' ॥

भगवद्गीताकार ने भी स्तम्भन द्वारा कामरूप शत्रु के विनाश का उपदेश दिया है—

'एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकान्तेन स्थितो जगत्' ॥

(गीता ३।४३, १०।४२)

राक्षसों के विनाशार्थ 'बृहती छन्द' वाले मन्त्रों की उपयोगिता अधिक है । यजुर्वेद (५।२२) में कहा गया है—

'रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद' । इस मन्त्र में राक्षसों का विनाश करने में विशिष्ट एवं बृहत्त्वगुण युक्त वाक्य वाले बृहती छन्द की उपयोगिता अधिक रेखांकित करते हुए भाष्यकार सायण ने निम्न वाक्य—'उक्तं च दैवतब्राह्मणो बृहस्पतेर्भवति वाचमभवद्' (ख. २-७) की व्याख्या करते हुए कहा है कि—'बृहस्पतेर्वाचं वाक्यं बृहती छन्दः अभवत् अक्षरत् अगच्छद् वा बृहत्या सार्धं बृहस्पतिरपि । तस्मात् प्रजायतेर्यज्ञेऽजायत् इत्यर्थः' ।

छान्दोग्ये च—'वाग् हि बृहती तस्या एष पतिः' (१।३।२।११); पुनश्च तत्रैवोक्तं—'बृहती बृहतेर्वृद्धिकर्मणः' । (ख. ३।११)

रहस्यात्मक रूप से दोनों बगलामन्त्र के साथ सांगत्य रखते हैं ।

भगवती बगलामुखी के नाम 'बगला' के प्रत्येक अक्षर का भी विशेषार्थ है—

(१) 'ब' = वारुणी, (२) 'ग' = प्रसिद्धिप्रदायकता, (३) 'ल' — पृथ्वी।

भगवती बगला 'चैतन्य' तत्त्व हैं—

'लकारे पृथिवी चैव चैतन्या या प्रकीर्तिता'।

भगवती बगला जगन्माता, जगद्धात्री एवं जगत् की परमोपकारिणी महाशक्ति हैं—

(१) 'बकारे वारुणी प्रोक्ता, गकारे सिद्धिदा स्मृता।
लकारे पृथिवी चैव चैतन्या या प्रकीर्तिता'॥

(२) 'जगन्माता जगद्धात्री जगतामुपकारिणी'॥

शुक्लयजुर्वेद में प्रयुक्त वैष्णवी वलगम् शब्द

शुक्लयजुर्वेद (माध्यन्दिनसंहिता—पञ्चम अध्याय—२३-२५ कण्डिका) में आभिचारिक कर्मों के निष्पादन के प्रसंग में 'वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि' कहा गया है।

पूर्णमन्त्र—'रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि'।

(क) **वेदभाष्यकार उव्वट की दृष्टि**—भाष्यकार उव्वट ने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि—

(१) वलग का अर्थ है—शत्रुविनाशार्थ भूमि में निक्षिप्त कृत्याविशेष।

(२) वलगहा का अर्थ है—ऐसी कृत्याओं की हन्त्री शक्ति।

'वलगान् कृत्याविशेषान् भूमौ निखनितान् शत्रुभिर्विनाशार्थं हन्तीति वलगहाम्, ताम् वलगहनम्'।

भाव यह है कि उक्त वैदिक मन्त्र में राक्षसों के अभिचारों के निवृत्त्यर्थ वैष्णवी महाशक्ति का प्रतिपादन करने वाली वाणी बोलने हेतु इन्द्र को उपदेश दिया गया है।

यह वैष्णवी महाशक्ति ही 'वलगहा' है।

(ख) **वेदभाष्यकार महीधर की दृष्टि**—वेदभाष्यकार महीधर इस प्रसङ्ग में कहते हैं कि इन्द्र आदि देवों से पराभूत होकर भागनेवाले राक्षसों ने देवताओं के वध हेतु पृथ्वी में गाड़े गये अस्थि-केश-नख आदि कृत्या के द्वारा अभिचार-कर्म निष्पादित किया था—

"पराजयं प्राप्य पलायमानै राक्षसैरिन्द्रादिवधार्थमभिचाररूपेण भूमौ निखाता अस्थि-केशनखादिपदार्थाः कृत्याविशेषा वलगाः"।

(ग) **तैत्तिरीयब्राह्मण की दृष्टि**—तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कहा गया है कि देवताओं

का वध करने हेतु असुरों ने अभिचार-प्रयोग किया था। यह अभिचार ही 'वलग' है— 'असुरा वै नियन्तो देवानां प्राणेषु वलगान् न्यखनन्'।

(घ) **शतपथ ब्राह्मण की दृष्टि**—शतपथ ब्राह्मण में भी वलग शब्द का प्रयोग आभिचारिक कृत्या-प्रयोगों के लिए किया गया है—

"यदा वै कृत्यामुत्खनन्ति अथ सालसामोघा भवति। तथैवैष एतदस्मात्तत्र कश्चित् हिषन् मातृभ्य: कृत्यां वलगान् निखनति तानेतदुत्किरति'। (३।५।४।३)

अभिचारों के षट्कर्मों की अधिष्ठात्री देवी का नाम है 'कृत्या'। कृत्या शब्द 'कृत च्छेदने' धातु से निष्पन्न होने के कारण हिंसावबोधक है ! कृत्या को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती है। इन समस्त आभिचारिक प्रयोगों को नियन्त्रित करने वाली अर्थात् नियामिका महाशक्ति ही 'बगलामुखी' है। सारांश यह कि वेदों में बगला शब्द 'वलगा' के नाम से प्रयुक्त हुआ है। उव्वट ने उसी की व्याख्या में कहा है—'वलगान् कृत्याविशेषान् भूमौ निखनितान्'। उस वलग की निहन्ता ही है—वलगहा— 'वलगान्……हन्तीति वलगहा तां वलगाहनम्' (उव्वट)। यह वैष्णवी (वलग-हन्त्री) महाशक्ति ही है—बगलामुखी।

वलगा और मुखी का अर्थ

भाष्यकार महीधर की दृष्टि—भाष्यकार महीधर का कथन है कि जिसके वध हेतु कृत्या का प्रयोग किया जाता है उस कृत्या को गुप्तरूप से नष्ट करने के कारण ही उसकी संज्ञा 'वलग' है—

'यस्य वधार्थं क्रियते तं वृण्वन्नाच्छादयन् गच्छतीति वलग:'।

निरुक्तकार आचार्य यास्क की दृष्टि—महर्षि यास्क ने निरुक्त (६) में 'वलगो वृणोते:' में 'वृण आच्छादने' धातु से वलग शब्द को व्युत्पन्न स्वीकार किया है। तन्त्रशास्त्र इसी शक्ति को बगलामुखी नाम से पुकारती है।

मुखी शब्द उन्मुखी का बोधक नहीं है । यह अंगवाचक भी नहीं है। यह (मुख) शब्द नि:सरण—'मुखं नि:सरणं' (अमरकोश) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हैमकोश भी मुख का अर्थ नि:सरण स्वीकार करता है—'मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेष्ठे नि:सरणास्थयो:' (उपाय, प्रारम्भ, श्रेष्ठ, नि:सरण एवं मुख के अर्थ में 'मुख' शब्द प्रयुक्त होता है)।

'नखमुखात् संज्ञायाम्' सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय के प्रयोग का निषेध होता है अत: 'आ' प्रत्यय लगना चाहिए और तब शब्द बनेगा 'बगलामुखा' न कि बगलामुखी। तो क्या बगलामुखी शब्द व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध और त्याज्य है ? नहीं। 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' सूत्र से इसकी व्याकरणगत शुद्धि भी प्रमाणित हो जाती है।

इसी प्रकार तो ज्वालामुखी (जिससे ज्वाला का नि:सरण होता है) आदि शब्द भी व्युत्पन्न हैं।

यह दृष्टि भी भ्रान्तिपूर्ण है कि भगवती बगलामुखी का प्रधान सम्बन्ध आभिचारिक कर्मों से होने के कारण ये तामसिक प्रकृति की देवी हैं। यद्यपि 'कामधेनुतन्त्र' के तामस प्रकरण में भगवती बगलामुखी का नाम है तथापि यहाँ इसका अर्थ केवल यह है कि इनमें तमोगुण का प्राधान्य है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये तमोगुणस्वरूपा हैं। शत्रु-दमन में इनका अधिकांश प्रयोग किये जाने के कारण स्वयं देवी का स्वरूप ही तामसिक मान लिया जाना औचित्यपूर्ण नहीं है।

'शक्तिसंगमतन्त्र' (तारा खण्ड) में भगवती बगला को त्रिशक्तिस्वरूपा कहा गया है—

'सत्ये काली च श्रीविद्या कमला भुवनेश्वरी।
सिद्धविद्या महेशानि ! त्रिशक्तिर्बगला शिवे' ॥

बगला देवी तो आभिचारिक कार्यों से होने वाली हानियों से रक्षा करने वाली हैं। इनके बीजाक्षर का एक नाम—'रक्षाबीज' भी है—

'शिवभूमियुतं शक्तिनादबिन्दुसमन्वितम्।
बीजं रक्षामयं प्रोक्तं मुखोमेर्ब्रह्मवादिभि:' ॥

यजुर्वेद में जो आभिचारिक प्रकरण हैं उनके उन्मूलन एवं निवृत्ति के लिए इसी शक्ति का विनियोग यजुर्वेद की सभी—तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक, माध्यन्दिन एवं काण्व आदि—संहिताओं में पाया जाता है। निष्कर्ष यह कि भगवती बगलामुखी को तामसिक शक्ति मानकर उन्हें तामसिक शक्ति कहना उचित नहीं है।

महाविद्या बगलामुखी के आविर्भाव का उद्देश्य

'स्वतन्त्रतन्त्र' के अनुसार प्राचीन काल में सत्ययुग (कृतयुग) में एक भीषण वात्याचक्र (वात-क्षोभ) उत्पन्न हुआ था। उसने केवल पृथ्वी मात्र को ही नहीं प्रत्युत समस्त चराचर को व्याकुल कर दिया था। उस भीषण वायु-प्रकोप या प्रभञ्जनताण्डव ने स्वयं भगवान् विष्णु को भी स्तम्भित एवं चिन्तित कर डाला। भगवान् विष्णु भी उसे शान्त नहीं कर सके। उस वायुताण्डव को शान्त करने के लिए उन्होंने तपस्या की। भगवान् विष्णु की उग्र तपस्या से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न हुईं। भगवान् विष्णु ने अपनी उस तपस्थली (सौराष्ट्र में स्थित हरिद्रा नामक झील) पर स्थित झील के तट पर क्रीडापरायणा भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को देखा। उन भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के हृदय से एक विलक्षण ज्योति (तेज) का अविर्भाव हुआ। यह महातेज ही भगवती पीताम्बरा

दवी के स्वरूप में परिणत हो गया। भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से प्रकट तेज ने उस ताण्डव-क्रीड़ा करने वाले भीषण वात-क्षोभ को शान्त कर दिया[१]।

आविर्भाव-काल—भगवती बगलामुखी का आविर्भाव-काल 'वीररात्रि' की चतुर्थ सन्ध्या है। मंगलवार के दिन चतुर्दशी की तिथि के समय मकार-सहित कुल नक्षत्रों का योग होने पर जो रात्रि विद्यमान होती है उसे 'वीररात्रि' कहते हैं[२]। इन्हीं योगों से युक्त रात्रि में अर्द्धरात्रि के समय भगवती बगलामुखी का आविर्भाव हुआ[३]।

भगवती का आविर्भाव काल

१. उत्पत्ति का कारक—विष्णु की तपस्या।
२. दिन—भौमवार।
३. जन्मस्थान—सौराष्ट्र के हरिद्रासरोवर के वत्स तटस्थ जल में।
४. तिथि—चतुर्दशी।
५. समय—अर्धरात्रि।
६. जन्म पूर्व की स्थिति—'सुन्दरी' की जल-क्रीड़ा।
७. नक्षत्र—मकार-समन्वित कुल नक्षत्र।
८. मूल स्वरूप—महात्रिपुरसुन्दरी।
९. सारांश—वीर रात्रि में जन्म।

बगलामहाविद्या महावैष्णवी स्तम्भन शक्ति हैं। ये वैष्णव तेज से सम्पन्न हैं। इन्हें महात्रिपुरसुन्दरी का रूपान्तर भी कहा जा सकता है।

भगवती बगलामुखी के भैरव

भगवती बगलामुखी के भैरव एकवक्त्र महारुद्र हैं—

---

१. अथ वक्ष्यामि देवेशि बगलोत्पत्तिकारणम्।
पुरा कृतयुगे देवि वातक्षोभ उपस्थिते॥
चराचरविनाशाय विष्णुश्चिन्तापरायणः।
तपस्यया च सन्तुष्टा महात्रिपुरसुन्दरी॥
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे बगलाम्बिका॥
श्रीविद्यासम्भवं तेजः विजृम्भति इतस्ततः॥ (सांख्यायनतन्त्र)

२. चतुर्दशी भौमयुता मकारेण समन्विता।
कुलऋक्षसमायुक्ता वीररात्रिः प्रकीर्तिता॥

३. तस्यामेवार्धरात्रौ तु पीतह्रदनिवासिनी।
ब्रह्मास्त्रविद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भिनी परा।
तत्तेजो विष्णुजं तेजो विद्याऽनुविद्ययोर्गतम्॥ (सांख्यायनतन्त्र)

बगलाया दक्षभागे एकवक्त्रं प्रपूजयेत्।
महारुद्रेति विख्यातं जगत्संहारकारकम् ॥

कोइ-कोई 'लक्ष्मीगणेश' को ही यह स्थान देता है। कहा भी गया है—

'ॐ हुं गं ग्लौ हरिद्रागणपतये वर वरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा'।

दक्षिणाम्नाय की दृष्टि से यदि भगवती बगलामुखी के स्वरूप पर विचार करें तो प्रथमतः तो वे इस आम्नाय की भी उपास्या देवी हैं।

इसमें ६ शक्तियों की उपासना की जाती हैं और इन ६ शक्तियों के नाम निम्नांकित हैं—

(१) सौभाग्यविद्या, (२) बगलामुखी, (३) वाराही विद्या, (४) बटुक, (५) तिरस्करिणी विद्या और (६) दक्षिणसमयेश्वरी।

विनियोग—अस्य श्रीबगलामुखीमन्त्रस्य नारद ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीबगलामुखी देवता ह्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः बगलामुखीति कीलकं (मतान्तरेण ॐ कीलकम्) श्रीबगला-मुखीप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

भगवती बगलामुखी : एक सामान्य परिचय

(१) नाम—१. वल्गामुखी, २. बगलामुखी, ३. बगला, ४. पीताम्बरा, ५. ब्रह्मास्त्रविद्या।

(२) आम्नाय—उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय।

(३) कुल—श्रीकुल।

(४) आचार—वाम एवं दक्षिण।

(५) विद्या—१. दिवा दक्षिणसाध्यापि, २. निशि वामप्रसादना।

(६) शिव—त्र्यम्बक।

(७) गणेश—हरिद्रा गणपति।

(८) भैरव—आनन्दभैरव, किसी-किसी मत से मृत्युञ्जय शिव।

(९) यक्षिणी—विडालिका नाम्नी यक्षिणी।

(१०) अंगविद्या—१. मृत्युञ्जय मन्त्र, २. बटुक मन्त्र ३. पञ्चास्त्र (आग्नेय, वारुण, पर्जन्य, सम्मोहन, पाशुपत), ४. कुल्लुका, ५. स्वप्नेश्वरी, ६. योगिनी मन्त्र।

(११) कुल्लुका—'ॐ छूं क्ष्त्रौं' (त्र्यम्बक मन्त्र); इसे १० बार शिर पर जपने का विधान है।

(१२) सेतु मन्त्र—'ह्रीं स्वाहा' (इसे कण्ठ पर १० बार जपना चाहिए)।

(१३) महासेतु—एकाक्षर मन्त्र 'स्त्रीं' है (इसे हृदय पर १० बार जपना चाहिए)।

(१४) निर्वाण—इस विद्या की मातृका है—'ह्रूं ह्रीं श्रीं'। इस मातृका से सम्पुटित मूल मन्त्र का जप ही इसकी निर्वाण विद्या है। पुरश्चरण एवं विशेष पर्वों पर ही इसका जप करणीय है, नित्य नहीं।

(१५) दीपन—मूल मन्त्र को योनिबीज 'ईं' से सम्पुटित करके ७ बार जपना चाहिए। इसका भी जप पुरश्चरण या विशेष पर्व पर ही करणीय है, नित्य नहीं।

(१६) जीवन—मूल मन्त्र के अन्त में 'ह्रीं ओं स्वाहा' का १० बार जप केवल विशेष पर्वों या अनुष्ठानों में ही करणीय है नित्य नहीं।

(१७) मुखशोधन—नित्य प्रातःकाल 'ऐं ह्रीं ऐं' से मुख शोधन करना चाहिए। दातून करने के बाद अपनी जिह्वा पर अनामिका से इसे १० बार जपना चाहिए।

(१८) शापोद्धार—'ॐ ह्रीं बगले ! रुद्रशापं विमोचय विमोचय ॐ ह्रीं स्वाहा' मन्त्र का १० बार जप करना चाहिए, यह भी नित्य जप्य है। यह पुरश्चरण या विशेष पर्व पर हा जप्य है।

(१९) उत्कीलन—मन्त्र के आदि में 'ॐ ह्रीं स्वाहा' मन्त्र का जप १० बार करना चाहिए। इसका भी जप पर्वविशेष एवं पुरश्चरण में ही करणीय है।

(२०) भाव—वीरभाव एवं दिव्यभाव। प्रारम्भ वीरभाव से करणीय है। तुरीय आश्रम प्राप्त होने पर दिव्यभाव प्राप्त हो जाता है।

(२१) क्रम—सौभाग्य क्रम (कुलार्णवतन्त्र के अनुरूप)।

शक्ति और उनका प्रादुर्भाव

भगवती बगलामुखी तथा भगवान् शिव के ६ मुख एवं विविध आम्नाय

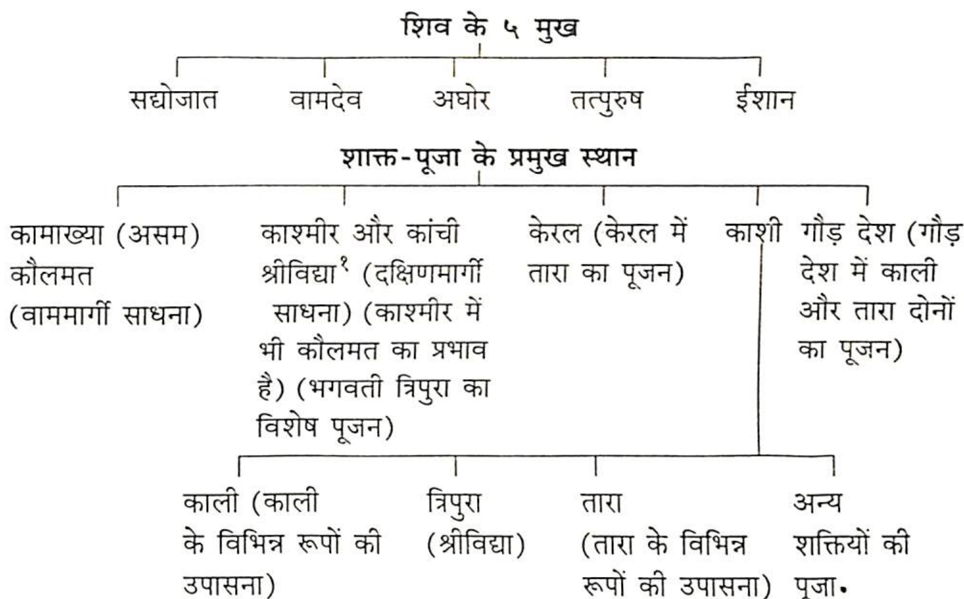
पूर्वाम्नाय	पश्चिमाम्नाय	उत्तराम्नाय	दक्षिणाम्नाय	ऊर्ध्वाम्नाय
(सृष्टिरूप मंत्रयोग) ↓ देवी-देवताओं का प्रादुर्भाव→भुवनेश्वरी, त्रिपुरा, ललिता, पद्मा, शूलिनी, सरस्वती, त्वरिता, नित्या, अन्नपूर्णा, महालक्ष्मी आदि।	(संहार रूप कर्मयोग) (भगवान् शिव के पश्चिम मुख से) ↓ गोपाल, कृष्ण, नारायण, वासुदेव, नृसिंह, वामन, वराह, रामचन्द्र, अग्नि, यम, सूर्य, हनुमान् आदि।	(अनुग्रहरूप ज्ञानयोग) ↓ (भगवान् शिव के उत्तर मुख से) ↓ महाकाली, गुह्य-काली, श्मशान-कालिका, भद्र-काली आदि।	(स्थितिरूप भक्तियोग) ↓ (भगवान् शिव के दक्षिण मुख से) ↓ प्रसाद, सदाशिव, बटुक, मंजुघोष आदि।	कौलमत ↓ (भगवान् शिव के ऊर्ध्वमुख से) ↓ त्रिपुरसुन्दरी, भैरवी आदि।

बगलामुखी अधाम्नाय[1]

देवस्थान	आसन	माला	नैवेद्य	बलिदान	साधना	पुरश्चरण	मंत्रसिद्धि

१.कुलार्णवतन्त्र।

परशुराम कल्पसूत्र—परशुराम कल्पसूत्र में भगवान् शिव के मात्र पाँच मुख माने गये हैं।



काशी—यह त्रिकोणात्मक साधना का मध्य बिन्दु है।

शिव और उनकी शक्तियाँ

शक्तिपूजा में १० शक्तियाँ ही प्रमुख हैं। ये दश महाविद्या कहलाती हैं—

१. महाकाली, २. तारा, ३. षोडशी, ४. भुवनेश्वरी, ५. छिन्नमस्ता, ६. भैरवी, ७. बगलामुखी, ८. मातंगी, ९. कमला एवं १०. धूमावती। ये क्रमश:—महाकाल, अक्षोभ्य, पञ्चमुख शिव, त्र्यम्बक शिव, कबन्ध शिव, दक्षिणामूर्ति, कालभैरव, एकमुख मद्रारुद्र, मतङ्ग शिव एवं सदाशिव पुरुष की शक्तियाँ हैं। धूमावती के कोई पुरुष नहीं है क्योंकि ये विधवा हैं।

दश महाविद्याओं का उल्लेख महाभारत में नहीं मिलता अत: यह प्रतीत होता है (सम्भव है) कि दुर्गासम्प्रदाय दशमहाविद्यासम्प्रदाय से प्राचीनतर है, क्योंकि महाभारत में दुर्गा का उल्लेख किया गया है।

दश महाविद्याओं के अतिरिक्त सात माताएँ भी हैं—

'ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।

---

१. इसी श्रीविद्या की उपासना से (भस्मीभूत) कामदेव ने पुन: जीवन प्राप्त किया था। कामदेव का एक पृथक् सम्प्रदाय ही है। इसे श्रीविद्या का 'मन्मथ सम्प्रदाय' कहते हैं।

चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः' ॥

१. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. चामुण्डा, ६. वाराही, ७. लक्ष्मी। इनके अतिरिक्त नव दुर्गाएँ भी हैं—१. शैलपुत्री, २. ब्रह्मचारिणी, ३. चन्द्रघण्टा, ४. कूष्माण्डा, ५. स्कन्दमाता, ६. कात्यायनी, ७. कालरात्रि, ८. महागौरी और ९. सिद्धिदात्री।

'प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रिश्च महागौरीति चाष्टमम् ॥
नवमं सिद्धिदात्री च नव दुर्गाः प्रकीर्तिताः'[१] ॥

भगवती बगलामुखी (या पीताम्बरा या वल्गा) कलियुग में सद्यःफलप्रदा मानी जाती हैं और उनकी उपासना या पूजा (कलियुग में) सर्वोच्च मानी जाती है।

उनके स्तोत्र एवं कवच के पाठ से समस्त ग्रहपीड़ाओं, राजपीड़ा, शत्रुपीड़ा, रोगपीड़ा आदि सभी पीड़ाओं एवं बाधाओं से मुक्ति मिल जाती है।

पुरश्चरण-विधान के अनुसार भगवती की उपासना या पूजा करने पर—(१) मारण, (२) मोहन, (३) उच्चाटन, (४) वशीकरण, (५) स्तम्भन, (६) विद्वेषण आदि सभी आभिचारिक क्रियाओं में सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

यदि किसी के द्वारा अपने या दूसरे के ऊपर तान्त्रिक प्रयोग किये गये हों तो बगलोपासना से उसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। बगलोपासना से निरन्तर उन्नति तो होती ही है साथ ही उपासक की दरिद्रता का भी अन्त हो जाता है और कई पीढ़ियों तक उसके परिवार में सुख और शान्ति विराजमान रहती है। जो व्यक्ति बगला देवी के कवच का पाठ प्रतिदिन करता है उसे शारीरिक बाधाएँ कभी नहीं होतीं।

मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, अनिष्ट ग्रहों की शान्ति, अभीष्ट-संगम, धन-प्राप्ति, मुकदमे में विजय आदि के उद्देश्य से किया गया स्तोत्र-पाठ, जप एवं अनुष्ठान भी शीघ्र सफल होता है।

दशमहाविद्याओं में अष्टमी महाविद्या के रूप में प्रख्यात भगवती बगलामुखी से सम्बद्ध—(१) पटल, (२) स्तोत्र, (३) कवच, (४) कीलक, (५) हृदय, (६) स्तोत्र, (७) शतनामस्तोत्र, (८) सहस्रनामस्तोत्र, (९) पीताम्बरोपनिषद्, (१०) ब्रह्मास्त्र मन्त्र, (११) बलिदान, (१२) नित्यार्चन, (१३) जप, ध्यान, षोडशोपचार एवं मानसोपचार पूजन तथा (१४) यन्त्र-पूजन आदि उपासना के अंगों का अनिर्वचनीय महत्त्व है।

---

१. ब्रह्मपुराण।

तन्त्रोपदिष्ट साधन-सामग्रियों में मधु, लाजा आदि से हवन; धतूर, मैनसिल आदि का लेप, गो का धारोष्ण दूध शर्करामिश्रित, द्रव्य, मधुमिश्रित अन्य द्रव्यों का उपयोग अधिक प्रशस्त है। भगवती बगला अष्टमी विद्या हैं। इनकी आराधना श्रीकाली, तारा एवं षोडशी का ही पूर्वक्रम है। इन महाविद्याओं का अन्तर्भाव इन्हीं में किया जाता है।

दश महाविद्याओं का वैशिष्ट्य

दश महाविद्याएँ (सिद्धविद्याएँ) और भगवती बगलामुखी

काली	तारा	षोडशी	भुवनेश्वरी	भैरवी	छिन्नमस्ता	धूमावती	बगला-मुखी	मातङ्गी	कमला[१]

'काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दशमहाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः'॥ (मुण्डमालातन्त्र)

इन दश महाविद्याओं के सिद्धविद्या होने को 'मुण्डमालातन्त्र' में इन शब्दों द्वारा प्रमाणित किया गया है—

'नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति नक्षत्रादिविचारणा।
कालादिशोधनं नास्ति नारिभिन्नादिदूषणम्॥
सिद्धविद्यातया नात्र युगसेवापरिश्रमः।
नास्ति किञ्चिन्महादेवि दुःखसाध्यं कदाचन'॥

इन महाविद्याओं के जपादि कार्यों में नक्षत्र, काल, राशि, दिन, मुहूर्त एवं तिथि आदि का विचार नहीं किया जाता; क्योंकि ये दस महाविद्याएँ स्वयं सिद्ध हैं। मन्त्र-ग्रहण के सन्दर्भ में शत्रु-मित्र एवं सिद्धादि विचार अनपेक्षित है। कलियुग में इन महाविद्याओं की साधना और सरल है, क्योंकि कलियुग में जप-पूजा आदि को अन्य युगों की तुलना में चौगुना करने का जो विधान है वह दशमहाविद्याओं की साधना में प्रयोज्य नहीं है।

महाविद्याओं की संख्या एवं उनके नामों के विषय में मतभेद—जिस प्रकार पुराणों में भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों के नाम एवं संख्या में मत-वैभिन्न्य मिलता है उसी प्रकार महाविद्याओं के विषय में भी है। तन्त्रशास्त्र में इस विषय में मतैक्य नहीं है।

मालिनीविजयतन्त्र ('तन्त्रसार' में उदधृत) में कहा गया है—

'अथ वक्षाम्यहं या या महाविद्या महीतले।
दोषजालैरसंस्पृष्टास्ताः सर्वा हि कलैः सह॥
काली नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तका।

---

१. चामुण्डातन्त्र, मुण्डमालातन्त्र।

वाग्वादिनी चान्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुनः ॥
कामाख्यावासिनी बाला मातङ्गी शैलवासिनी ।
इत्याद्याः सकला देव्यः कलौ पूर्णफलप्रदाः ।
सिद्धमन्त्रतया नात्र युगसेवापरिश्रमः ॥
तथा चैता महाविद्याः कलिदोषान्न बाधिताः' ॥

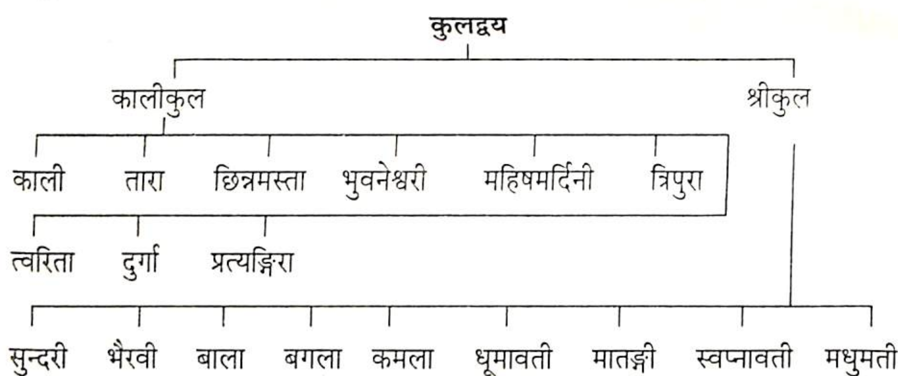
इन दोषराशिशून्य महाविद्याओं के नाम निम्नाङ्कित हैं—

(१) काली, (२) नीला तारा, (३) महादुर्गा, (४) त्वरिता, (५) छिन्नमस्ता, (६) वाग्वादिनी, (७) अन्नपूर्णा, (८) प्रत्यङ्गिरा, (९) कामाख्यावासिनी, (१०) बालात्रिपुर-सुन्दरी, (११) मातङ्गी और (१२) शैलवासिनी ।

ये देवियाँ कलियुग में साधकों को समस्त वांछित फल प्रदान करती हैं। इनकी साधना में साधकों को अधिक कृच्छ्र विधियों का पालन नहीं करना पड़ता, क्योंकि ये स्वसिद्धा विद्याएँ हैं। इनमें कलियुग के दोष संस्पृष्ट नहीं है।

कालीकुल और श्रीकुल

विशेष तन्त्र-ग्रन्थों में १८ महाविद्याओं का वर्णन मिलता है। उनमें (१) कालीकुल एवं (२) श्रीकुल ये दो विभाग हैं अर्थात् १८ महाविद्याएँ कालीकुल एवं श्रीकुल वर्गद्वय में विभाजित हैं।



भगवती बगला महाविद्या—तन्त्रशास्त्र में जो अष्टादश महाविद्याएँ प्रख्यात हैं उनमें बगला, बगलामुखी या पीताम्बरी भी एक महाविद्या हैं। 'यामलतन्त्र' में इनके ध्यान की प्रक्रिया इस प्रकार प्रस्तुत की गई है—

भगवती बगलामुखी का ध्यान

'मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेदी,
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् ।

पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं,
देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्' ।।

अर्थात् भगवती बगलामुखी अमृतसागर के मध्य मणिरचित मण्डप में स्थित मणिमय वेदिका के ऊपर रखे हुए रत्नसिंहासन पर समासीन हैं। इनका वर्ण पूर्णतः पीला है। ये पीला वस्त्र, पीले आभूषण एवं पीली माला पहनी हुई हैं। ये अपने एक हाथ में मुद्गर एवं दूसरे हाथ में शत्रु की जिह्वा धारण की हुई हैं। देवी का यही स्वरूप ध्यान-विधान में निर्दिष्ट किया गया है।

भगवती बगलामुखी अपने बायें हाथ से शत्रु की जिह्वा को खींचकर तथा दाहिने हाथ में पकड़ी हुई गदा के द्वारा शत्रु के ऊपर आघात करके शत्रुओं को दण्ड देती है। भगवती बगलामुखी के इसी स्वरूप को ध्यान का विषय बनाना चाहिए—

'जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि' ।।

इन्हीं भगवती बगलामुखी का ध्यान 'मेरुतन्त्र' में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

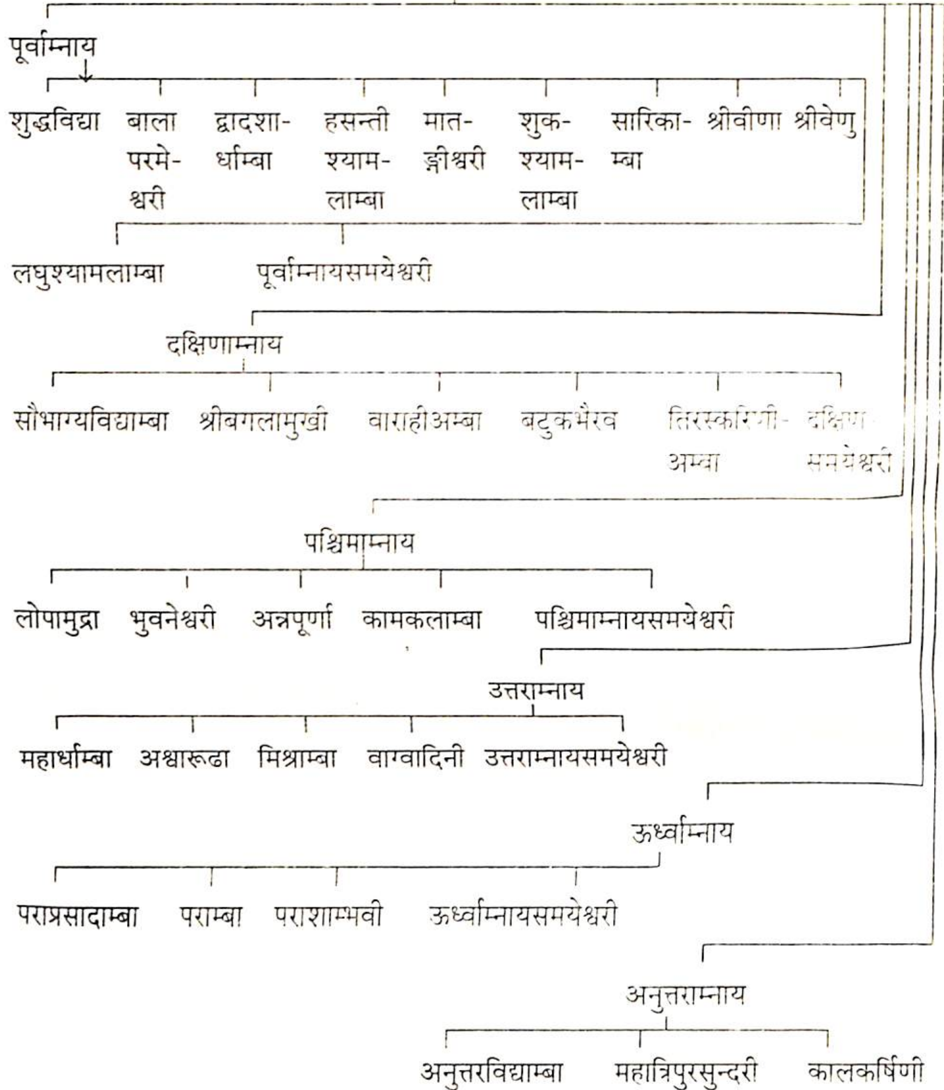
'गम्भीरां च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ।।
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्।
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम् ।।
हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्द्धशेखराम्।
पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासनस्थिताम्' ।।

इसके अनुसार भगवती बगलामुखी अत्यन्त गम्भीर आकृति वाली हैं, मदोन्मत्त हैं, तपाये हुए स्वर्ण के रंग की हैं, चार भुजाओं वाली हैं, त्रिनयना हैं और पद्मासन लगाकर समासीन हैं। उनके दाहिने हाथों में मुद्गर एवं पाश हैं, वाम हाथों में शत्रु की जिह्वा एवं वज्र धारण की हुई हैं। इनका वस्त्र पीले रंग का है। इनके स्तनयुग्म वर्तुल एवं पीन हैं। ये स्वर्णकुण्डल धारण की हुई हैं। इन्होंने किरीट धारण कर रखा है। पीले वर्ण का अर्द्धचन्द्रमा इनके मस्तक पर सुशोभित हो रहा है। वे अपने पीले रंग के आभूषणों से शोभायमान हैं। ये स्वर्णसिंहासन पर विराजमान हैं।

स्तम्भनादि अभिचार कर्मों की सिद्धि हेतु प्रायः बगलामन्त्र का ही प्रयोग किया जाता है—विनियोग किया जाता है।

भगवती बगलामुखी का सम्बन्ध दक्षिणाम्नाय से है।

आम्नायानुसार देवियों का वर्गीकरण



दश महाविद्यापीठ एवं बगलामुखीपीठ

- नील पर्वत के ऊपर श्रीभैरवीमहा-विद्यापीठ
- क्षेत्रदेवता त्रिपुरा-षोडशी-महाविद्या-पीठ
- छिन्नमस्ता-महाविद्या-पीठ
- मातङ्गी-महाविद्या-पीठ
- अम्बिका-महाकाली-महाविद्या-पीठ
- बगला-महाविद्या-पीठ
- कमला-महाविद्या-पीठ
- भुवनेश्वरी-महाविद्या-पीठ
- धूमावतीमहाविद्यापीठ

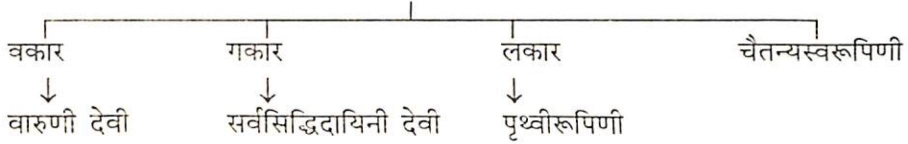
तन्त्रचूडामणि में कहा गया है—

'तत्र श्रीभैरवी देवी तत्र च क्षेत्रदेवता।
प्रचण्डचण्डिका तत्र मातङ्गी त्रिपुराम्बिका॥
कमला बगला तत्र भुवनेशी सधूमिनी।
एतानि नव पीठानि शंसन्ति परभैरवा:' ॥ (कामाख्यामाहात्म्य)

भगवती बगलामुखी के नाम का रहस्य—

'वकारे वारुणी देवी गकारे सिद्धिदा स्मृता।
लकारे पृथिवी चैव चैतन्या मे प्रकीर्तिता' ॥

भगवती बगलादेवी के विभिन्न स्वरूप



श्रीकुल और बगलामुखी
भगवती बगलामुखी का कुल

१८ महाविद्याओं को दो कुलों में विभाजित किया गया है—(१) कालीकुल एवं (२) श्रीकुल। इसी में श्रीकुल के अन्तर्गत भगवती बगलामुखी चतुर्थ महाविद्या हैं—

'काली तारा छिन्नमस्ता भुवना महिषमर्दिनी।
त्रिपुरा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा॥
कालीकुलं समाख्यातं श्रीकुलञ्च तत: परम्।
सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलापि च॥
धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये।
मधुमती महाविद्या श्रीकुलं परिभाषितम्' ॥

'निरुत्तरतन्त्र' में कहा गया है कि तान्त्रिक उपासना में जिन तीन भावों का विधान किया गया है उनमें कालीकुल एवं श्रीकुल की साधना का विधान इस प्रकार है—

(१) कालीकुल की साधना—दिव्यभाव एवं वीरभावों द्वारा।

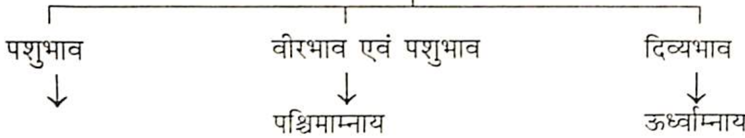
(२) श्रीकुल की साधना—पशुभाव, वीरभाव एवं दिव्यभावों द्वारा।

भावत्रय और महाविद्या

'दिव्यभावैश्च वीरैश्च कालीकुलं विचिन्तयेत्।
श्रीकुलं च त्रिभि: सर्वैश्चिन्तयेत् कुलसुन्दरि॥
काली तारा रक्तकाली भुवना महिषमर्दिनी।
त्रिपुरा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा॥

कालीकुलं समाख्यातं श्रीकुलं च ततः परम् ।
सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलापि च ।।
धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये !
मधुमती महाविद्या श्रीकुलं परिभाषितम्' ।।

भावत्रय और महाविद्या



(१) पूर्वाम्नाय
(२) दक्षिणाम्नाय

(क) १. पूर्वाम्नायोदितं कर्म पाशवं परिकीर्तितम् ।
२. यदुक्तं दक्षिणाम्नाये तदेव पाशवं स्मृतम् ।।

(ख) १. पश्चिमाम्नायजं कर्म वीरपशुसमन्वितम् ।

(ग) १. उदङ्मुखोदितं कर्म दिव्यभावान्वितं प्रिये ।
दिव्योऽपि वीरभावेन साधयेत् पितृकानने ।।
२. ऊर्ध्वाम्नायोदितं कर्म दिव्यभावाश्रितं प्रिये ।।

भगवती बगलामुखी का आविर्भाव—भगवती बगलामुखी के आविर्भाव के विषय में स्वतन्त्रतन्त्र में इस प्रकार वर्णन किया गया है—

एक समय सत्ययुग में एक भयानक वात्याचक्र (तूफान) आया। वह इतना भयानक था कि उसके प्रभाव से समस्त चराचर जगत् में त्राहि-त्राहि मच गई। उस समय शेषशायी भगवान् विष्णु अत्यन्त चिन्तित हुए एवं इसके शान्त्यर्थ तप करने लगे।

भगवान् नारायण की इस तपस्या से प्रसन्न होकर भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ने सौराष्ट्र में हरिद्रा नामक सरोवर को देखकर वे उस गाढ़े पीले रंग एवं अत्यन्त गहरे सरोवर में जलक्रीड़ा करने के लिए प्रकट हुईं[1]। उस समय उनकी जलक्रीड़ा क्रिया के कारण उनकी श्रीविद्या से एक लोकोत्तर एवं अभूतपूर्व महातेज आविर्भूत होकर चतुर्दिक् फैल गया।

भगवती के जल-क्रीड़ा हेतु हरिद्रा-सरोवर में अवतरित होने की तिथि चतुर्दशी थी, दिन मंगलवार था तथा रात्रि का समय था। उस रात्रि का नाम 'वीररात्रि' पड़ा। चतुर्दशी एवं मंगलवार की रात्रि (वीररात्रि) को पञ्चमकार से सेवित भगवती ने प्रकट

---

१. तपस्यया च सन्तुष्टा महात्रिपुरसुन्दरी ।
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा ।।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे बगलाम्बिका ।
श्रीविद्यासम्भवं तेजो विजृम्भति इतस्ततः ।। (स्वतन्त्रतन्त्र)

होकर उस रात्रि उस गहरे एवं पीले ह्रद में ही निवास किया। उनके आविर्भाव की तिथि एवं दिन को ही स्मरण करके तान्त्रिक चतुर्दशी युक्त मंगलवार के दिन पञ्च मकारों का सेवन करते हैं।

ब्रह्मास्त्रविद्या का आविर्भाव—श्रीविद्या के महातेज से दूसरी त्रैलोक्यस्तम्भिनी ब्रह्मास्त्रविद्या का आविर्भाव हुआ। उस ब्रह्मास्त्रविद्या का महातेज विष्णु से आविर्भूत तेज में विलीन हो गया और वह तेज विद्या एवं अनुविद्या में लयीभूत हो गया—

'तस्यामेवाऽर्द्धरात्रौ वा पीतह्रदनिवासिनी।
ब्रह्मास्त्रविद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भिनी परा।
तत्तेजो विष्णुजं तेजो विद्याऽनुविद्ययोर्गतम्' ॥

भगवती बगलामुखी के आविर्भाव विषयक मत-मतान्तर

भगवती बगलामुखी विषयक विशिष्ट तन्त्रग्रन्थ 'स्वतन्त्रतन्त्र' भगवती के आविर्भाव को वात-क्षोभजन्य मानता है जबकि देवीभागवत पुराण इसे सती के क्रोध का परिणाम मानता है।

(१) स्वतन्त्रतन्त्र की दृष्टि—

'अथ वक्ष्यामि देवेशि बगलोत्पत्तिकारणम्।
पुरा कृतयुगे देवि! वातक्षोभ उपस्थिते ॥
चराचरविनाशाय विष्णुश्चिन्तापरायणः।
तपस्यया च सन्तुष्टा महात्रिपुरसुन्दरी ॥
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे बगलाम्बिका ॥
श्रीविद्यासम्भवं तेजः विजृम्भति इतस्ततः।
चतुर्दशी भौमयुता मकारेण समन्विता ॥
कुलऋक्षसमायुक्ता वीररात्रिः प्रकीर्तिता ॥
तस्यामेवार्धरात्रौ तु पीतह्रदनिवासिनी।
ब्रह्मास्त्रविद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भिनी परा।
तत्तेजो विष्णुजं तेजो विद्याऽनुविद्ययोर्गतम् ॥ (स्वतन्त्रतन्त्र)

(२) देवीभागवत पुराण की दृष्टि—भगवान् शिव को भयाक्रान्त होकर भागते देखकर भगवती सती ने उन्हें रोकने के लिए १० रूप धारण करके दसों दिशाओं के मार्ग रोक दिये—

'सर्वासु दिक्षु क्षणमग्रतः स्थिता तदा च भूत्वा दश मूर्तयः पराः ॥
सन्धावमानो गिरिशोऽतिवेगतः प्राप्नोति यां दिशमेव तत्र ताम्।
भयानकां वीक्ष्य भयेन विद्रुतो दिशं तथाऽन्यं प्रति चाप्यधावत्' ॥
(देवीभागवत पुराण, अष्टम अध्याय)

इन्हीं दश महाविद्यात्मक स्वरूपों के विषय में भगवती सती ने कहा था—

'काली तारा च लोकेशी कमला बगलामुखी।
छिन्नमस्ता षोडशी च सुन्दरी बगलामुखी।
धूमावती च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै' ॥

सती एवं बगलामुखी का महादेवोक्त उपाख्यान

प्रजापति दक्ष के यज्ञ में अनाहूता सती को जाने से रोकने पर योगमाया सती ने क्रोधावेश में दशों दिशाओं को अवरुद्ध करने वाले दश रूप धारण करके शिव को अत्यन्त भयभीत कर डाला था। सती के इन्हीं दश रूपों में एक रूप भगवती बगलामुखी का भी था।

पूरा वृत्तान्त इस प्रकार है—

भगवती सती ने शिव के मना करने पर भगवान् शिव से कहा—आप आज्ञा दीजिए या न दीजिए मैं यज्ञ में अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो आपके लिए यज्ञभाग करूँगी अथवा यज्ञ का नाश कर डालूँगी—

'ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा।
प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्' ॥

भगवान् शिव ने कहा कि हे दक्षपुत्री ! अब मैंने जान लिया कि तुम मेरे कहने में नहीं रह गई हो, अतः अपनी रुचि के अनुसार तुम कुछ भी करो, मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा क्यों कर रही हो ?

'जानामि वाग्बहिर्भूतां त्वामहं दक्षकन्यके।
यथारुचि त्वं च ममाज्ञां किं प्रतीक्षते' ॥

यह सुनकर क्रोधावेश में लाल-लाल आँखों वाली सती सोचने लगी कि—इन शंकर ने पहले तो मुझे पत्नीरूप में प्राप्त करने हेतु प्रार्थना की थी और फिर मुझे प्राप्त कर लेने के अनन्तर अब ये मेरा अपमान कर रहे हैं। अतः अब मैं इन्हें अपना प्रभाव दिखाती हूँ—

'चिन्तयामास सा क्रुद्धा क्षणमारक्तलोचना।
सम्प्रार्थ्य मामनुप्राप्य पत्नीभावेन शङ्करः ॥
अधिक्षिपत्यद्य तस्मात्प्रभावं दर्शयाम्यहम्'।

भगवान् शिव ने क्रोध से फड़कते ओठों वाली एवं कालाग्नि के समान नेत्रों वाली उन भगवती सती को देखकर अपने नेत्र बन्द कर लिये—

'शम्भुः समीक्ष्य तां देवीं क्रोधविस्फुरिताधराम्।
कालाग्नितुल्यनयनां मीलिताक्षस्तदाभवत्' ॥

भयानक दाढ़ों से युक्त मुखवाली भगवती ने सहसा अट्टहास किया जिसे सुनकर

महादेव विमूढ़वत् भयाक्रान्त हो उठे। उन्होंने बड़ी कठिनाई से आँखों को खोलकर भगवती के भयानक स्वरूप को देखा। सती ने स्वर्णिम वस्त्रों का परित्याग करके वृद्धा के समान कान्ति धारण कर ली थी। वे दिगम्बरा थीं। उनकी जिह्वा लपलपा रही थी। उनकी चार भुजाएँ थीं। उनके शरीर से कालाग्नि के समान ज्योति निकल रही थी। उनके रोम-रोम से स्वेद निकल रहा था। वे अत्यन्त भयानक स्वरूपवाली भगवती सती भयानक शब्द कर रही थीं। उन्होंने मुण्डमाला धारण कर रखी थी। करोड़ों सूर्यों के समान तेजोमयी सती के मस्तक पर चन्द्रमा अवस्थित था। उदीयमान सूर्य के समान दीप्तिमान किरीट से उनका ललाट देदीप्यमान था। इस प्रकार अपने तेज से देदीप्यमान एवं भयानक रूप धारण करके देवी सती घोर गर्जना के साथ अट्टहास करती हुई शम्भु के सामने खड़ी हुईं।

'एवं समादाय वपुर्भयानकं जाज्वल्यमानं निजतेजसा सती।
कृत्वाट्टहासं सहसा महास्वनं सोऽतिष्ठमाना विरराज तत्पुरः' ॥

सती को इस प्रकार का कार्य करती देखकर शिव ने अपना धैर्य खोकर भय के कारण भागने का निश्चय किया और विमूढ़वत् सभी दिशाओं में इधर-उधर भागने लगे—

'तथाविधां कार्यवतीं निरीक्ष्य तां विहाय धैर्यं सह चेतसा तदा।
चकार बुद्धिं स पलायने भयात् समभ्यधावच्च दिशो विमुग्धवत्' ॥

भगवान् शिव को दौड़ते हुए देखकर दक्षपुत्री उन्हें रोकने के लिए ऊँचे स्वरों में 'डरो मत, डरो मत'—इन शब्दों का बार-बार उच्चारण करती हुई अत्यन्त भयानक अट्टहास कर रही थीं। उस शब्द को सुनकर शिव अत्यधिक डर के मारे वहाँ एक क्षण भी नहीं रुके। वे उस समय भय से व्याकुल होकर दिशाओं में दूर तक पहुँच जाने के लिए बड़ी तेजी से भागे जा रहे थे—

'दिगन्तमागन्तुमतीव वेगतः समभ्यधावद्भयविह्वलस्तदा' ॥

इस प्रकार अपने स्वामी को भयाक्रान्त देखकर वे दयामयी भगवती सती उन्हें रोकने की इच्छा से क्षणभर में अपने दश श्रेष्ठ विग्रह धारण करके सभी दिशाओं में उनके समक्ष स्थित हो गईं।

अत्यन्त वेग से भागते हुए वे शिवजी जिस-जिस दिशा में जाते थे, उस-उस दिशा में उन्हीं भयानक भगवती को देखते थे और फिर भय से व्याकुल होकर अन्य दिशा में भागने लगते थे—

'सन्धावमानो गिरिशोऽतिवेगतः प्राप्नोति यां यां दिशमेव तत्र ताम्।
भयानकं वीक्ष्य भयेन विद्रुतो दिशं तथाऽन्यां प्रति चाप्यधावत्' ॥

तब किसी भी दिशा को भयमुक्त न पाकर भगवान् शिव अपनी आँखें बन्द करके वहीं रुक गये और जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तब उन्होंने अपने सामने भगवती सती को इस स्वरूप में पाया—

'हसन्मुखीं पीनपयोधरद्वयां दिगम्बरां भीमविशाललोचनाम् ।
विमुक्तकेशीं रविकोटिसन्निभां चतुर्भुजां दक्षिणसम्मुखस्थिताम्' ॥

भगवान् शिव ने भगवती काली से पूछा—

'का त्वं श्यामा ? सती कुत्र गता मत्प्राणवल्लभा' । तब सती ने कहा—हे महादेव ! क्या अपने सम्मुख स्थित मुझ सती को आप नहीं देख रहे हैं ?

'न पश्यसि महादेव ! सतीं मां पुरतः स्थिताम् ?

इन देवियों के नाम इस प्रकार हैं—(१) काली, (२) तारा, (३) लोकेशी कमला, (४) भुवनेश्वरी, (५) छिन्नमस्ता, (६) षोडशी, (७) त्रिपुरसुन्दरी, (८) बगलामुखी, (९) धूमावती और (१०) मातङ्गी ।

'काली तारा च लोकेशी कमला भुवनेश्वरी ।
छिन्नमस्ता षोडशी च सुन्दरी बगलामुखी ।
धूमावती च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै' ॥

भगवती दाक्षायणी सती द्वारा वर्णित दशमहाविद्याओं का स्वरूप

(१) भगवती महाविद्या काली—

'येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना' ।

(२) महाविद्या तारा—

'सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी' ।

(३) महाविद्या छिन्नमस्ता—

'सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा ।
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते' ॥

(४) महाविद्या भुवनेश्वरी—

'वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी' ।

(५) महाविद्या बगलामुखी—

'पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदिनी' ।

(६) महाविद्या धूमावती—

'वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी ।
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी' ॥

(७) महाविद्या त्रिपुरसुन्दरी—

'नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी' ।

(८) महाविद्या मातङ्गी—

'वायौ यत्ते महाविद्या सेयं मातङ्गकन्यका' ।

(९) महाविद्या षोडशी—

'ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी'।

(१०) महाविद्या भैरवी—

'अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु'[१]।

दशमहाविद्याएँ—

स्थिति	महाविद्या का नाम
१. शिव के सामने स्थित	महाविद्या काली
२. शिव के ऊर्ध्व भाग में	महाविद्या तारा
३. दाहिनी ओर स्थित	महाविद्या छिन्नमस्ता
४. शिव के बायीं ओर	महाविद्या भुवनेश्वरी
५. शिव के पृष्ठ भाग में स्थित	महाविद्या बगला
६. शिव के अग्निकोण में स्थित	महाविद्या धूमावती
७. शिव के नैर्ऋत्य कोण में स्थित	महाविद्या त्रिपुरसुन्दरी
८. शिव के वायव्य कोण में स्थित	महाविद्या मातङ्गी
९. भगवान् शिव के ईशान कोण में स्थित	महाविद्या महेश्वरी षोडशी
१०. शिव के सामने दक्षिण-मुख करके स्थित	महाविद्या भैरवी

भगवती सती ने यह भी कहा कि ये सभी रूप भगवती के अन्य समस्त रूपों से उत्कृष्ट हैं—

'एता: सर्वा: प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु'[२]।

भगवती बगलामुखी के आविर्भाव के उद्देश्यों पर विचार करने पर उसके मुख्यत: दो उद्देश्य सामने आते हैं—

(१) कृतयुग में समुत्पन्न वातक्षोभ का निवारण—

पुरा कृतयुगे देवि! वातक्षोभ उपस्थिते।
चराचरविनाशाय विष्णुश्चिन्तापरायण:॥
तपस्यया च सन्तुष्टा महाश्रीत्रिपुराम्बिका।
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा॥
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे बगलाम्बिका।
श्रीविद्यासम्भवं तेजो विजृम्भति इतस्तत:[३]।
× × × × × × × × ×
तस्यामेवाऽर्द्धरात्रौ वा पीतह्रदनिवासिनी।
ब्रह्मास्त्रविद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भिनी परा[४]॥

१. देवीभागवत पुराण, अध्याय ८। २. भगवती सती। ३. स्वतन्त्रतन्त्र। ४. स्वतन्त्रतन्त्र।

(२) राक्षसों का वध एवं विजय की प्राप्ति—

'चापचर्यासु निपुणैर्युद्धचर्याभयं करैः ।
नानामायाविनं चैव जेतुमिच्छामि राक्षसम् ।।
तस्योपायं च तद्विद्यां ब्रूहि मे करुणाकर ।
महापाशुपताक्रान्त नमः पन्नगभूषण ।
षट्त्रिंशदक्षरीं विद्यां बगलायाश्च मे वद'[१] ।
'एकाक्षरीमहामन्त्रवैभवं वद मे प्रभो'[२] ।

बगलामुखी के आविर्भाव का उद्देश्य

चराचर-विनाशी वातक्षोभ का निवारण तथा राक्षसों पर विजय ही बगलामुखी के आविर्भाव का उद्देश्य है । क्या अन्तर्जगत् के प्राणमय कोश, मनोमय कोश, आनन्दमय कोश—प्राण, मन, अहंकार, क्रोध, लोभ, मोह, भय, द्वेष, अहंभाव आदि क्षोभ के कारण नहीं हैं ? क्या इनके क्षोभ के निवारण में इस ब्रह्मास्त्रविद्या की सार्थकता नहीं है ? पाञ्चभौतिक बाह्य वातक्षोभ से भी भयानक है यह मानस क्षोभ । यह आन्तरिक वातक्षोभ है । यह मानस क्षोभ तो वातक्षोभ के कारणभूत वात (वायुदेव) को भी उद्वेलित कर देता है ।

राक्षस जाति को हराना तो सरल है—वे देवताओं द्वारा अनेक बार हराये भी जा चुके हैं किन्तु मनोविकारों के राक्षस तो उनसे अधिक बली हैं । षड् विकारों के राक्षस तो अहर्निश देव, दनुज, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, मानव एवं अन्य प्राणियों को अर्थात् सभी जीवों को खाते रहते हैं—ये ही भव-बन्धन, पतन, मृत्यु एवं आवागमन के सूत्रधार भी हैं; अतः ये राक्षस देवों के प्रतिपक्षी राक्षसों से भी बलवत्तर हैं । क्या इनके वध में ब्रह्मास्त्रविद्या की चरितार्थता, कृतार्थता एवं अर्थवत्ता नहीं है ? स्पष्ट है कि इन सन्दर्भों में भी उसकी अर्थवत्ता, चरितार्थता, कृतार्थता एवं उपयोगिता है ।

चाहे देवासुर-संग्राम हो और चाहे पाण्डवों तथा कौरवों का कुरुक्षेत्र-संग्राम—सभी का सम्बन्ध इस वातक्षोभ से है । इस क्षोभ के निवारण का मुख्योपाय यही ब्रह्मास्त्रविद्या है ।

बगलामुखी पटल में ब्रह्मास्त्रविद्या का आन्तरिक पक्ष

बगलामुखी पटल में कहा गया है—

(क) 'रिपुस्तम्भनकामो बगलामुखीमुपासीत्' ।।७।।

अर्थात् शत्रु के स्तम्भन हेतु बगलामुखी की उपासना करे ।

---

१. सांख्यायनतन्त्र । २. सांख्यायनतन्त्र ।

(ख) 'अन्त:शत्रुस्तम्भनकामो वा' ॥८॥

अर्थात् आन्तरिक शत्रुओं (कामादिक शत्रुओं) के स्तम्भन की कामना वाला व्यक्ति बगलामुखी की उपासना करे।

स्पष्ट है कि भगवती बगलामुखी की शक्ति के प्रयोग का उद्देश्य भी इनमें से ही होना चाहिए।

भगवती के जन्म की रात्रि : वीररात्रि—वीररात्रि उस रात्रि को कहते हैं जिस भौमयुता चतुर्दशी तिथि की रात्रि को भगवती महात्रिपुरसुन्दरी हरिद्रा नामक सरोवर में जलक्रीड़ा करने के लिए आविर्भूत होकर बगलामुखी के नाम से प्रख्यात हुई—

'तपस्यया च सन्तुष्टा महाश्रीत्रिपुराम्बिका।
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा॥
महापीतह्रदस्याऽन्ते सौराष्ट्रे बगलाम्बिका'।

इस रात्रि का नाम वीररात्रि क्या वीरभाव की साधना के प्रामुख्य के कारण पड़ा? यह अनुसन्धेय है।

वीररात्रि का अर्थ—

'चतुर्दशी भौमयुता मकारेण समन्विता।
कुलर्क्षसमायुक्ता वीररात्रि: प्रकीर्तिता'॥

(सांख्यायनतन्त्र/स्वतन्त्रतन्त्र)

भगवती के आविर्भाव के उद्देश्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सांख्यायनतन्त्र में कहा गया है कि एक बार जब भगवान् शशांकशेखर कैलास-शिखर पर भगवती गौरी, भारतीपति, शिवासंयुत ईश्वर, अष्टदिक्पाल, विघ्नेशाष्टक, भैरवाष्टक, मातृमण्डल कार्त्तिकेय एवं महापाशुपतों से घिरे हुए बैठे थे तब क्रौंचभेदन ने भगवान् शिव से कहा कि हे प्रभु! चापचर्या में निपुण, युद्धचर्या में भयानक एवं मायावी राक्षसों पर मैं कैसे विजय प्राप्त करूँ? कृपया इसका उपाय बताइए। भगवान् आशुतोष ने कहा कि शत्रुओं का संहार बिना ब्रह्मास्त्र के सम्भव ही नहीं है—'ब्रह्मास्त्रेण विना शत्रो: संहारो न भवेत् किल'।

इसके बाद उन्होंने क्रौंचभेदन को—

ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या, स्तब्धमायामनु प्रवृत्तिरोधिनी विद्या, बगलामन्त्र-जीवनविद्या, प्राणिप्रज्ञापहारिका विद्या, षट्कर्माधारविद्या, षड्विद्याऽऽगमपूजिता तिरस्कृताखिला विद्या, त्रिशक्तिमयी बगला विद्या (विद्या च बगला नाम्नी), वाक्यस्तम्भिनी विद्या, महाविद्या, कमलासनजीविनीम्—नामवाली इस बगला विद्या का उपदेश दिया।

विद्या-क्रम

इस बगला विद्या का उपदेश ब्रह्मा के पुत्र नारद ने सांख्यायन ऋषि को भी मेरु की कन्दरा में प्रदान किया था—

'पद्मजो नारदो विद्यां सांख्यायनमुनिं प्रति ।
उपदेशक्रमेणैव दत्तवान् मेरुकन्दरे' ॥

क्रौंचभेदन के प्रश्न एवं भगवान् शिव के उत्तर की इसी प्रश्नोत्तरपद्धति से व्यक्त ब्रह्मास्त्रविद्या के ज्ञानोपदेश का संग्रह ही 'सांख्यायनतन्त्र' है जो कि बगलामहाविद्या का प्रधान एवं आर्ष तान्त्रिक ग्रन्थ है ।

विद्या का सामान्य अवतरण क्रम

(१) नारद—सांख्यायन (२) शिव—क्रौंचभेदन

ब्रह्मास्त्रविद्या और कुलमार्ग

ब्रह्मास्त्रविद्या या बगलाविद्या का सीधा सम्बन्ध कुलमार्ग (कौल पन्थ) से हैं । शाक्त सम्प्रदाय के मुख्यत: तीन भेद हैं—(१) कौल मार्ग, (२) समय मार्ग, (३) मिश्र मार्ग । कौलों के भी दो भेद हैं—(१) पूर्व कौल और (२) उत्तर कौल ।

भगवान् शिव क्रौंचभेदन से कहते हैं कि—

(क) उपदेशक्रमेणैव गृहीत्वा साधयेन्मनुम् ।
(ख) कुलाऽऽचारसमायुक्त: कुलमार्गेण पुत्रक ।
(ग) साधयेत् कुलमार्गेण तेन यन्त्रं प्रयोजयेत् ।
(घ) उपसंहरणं तेन कर्तव्यं कुलयोगिना ।

ब्रह्मास्त्रविद्या का स्वरूप—यह विद्या बगला से अभिन्न है इसीलिए इसे—'करुणापूरितचित्तां, सच्चिद्रूपां, परां, दिव्याम्, ब्रह्मसहचरीं, तुर्यां, सौभाग्यां, बगलाशक्तिं' कहा गया है—

'करुणापूरितचित्तां सच्चिद्रूपां परां दिव्याम् ।
ब्रह्मसहचरीं तुर्यां बगलाशक्तिं प्रणौमि सौभाग्याम्'[१] ॥

तन्त्रशास्त्र में विद्या एवं उस विद्या की अधिष्ठात्री देवी में भेद नहीं माना जाता—देवता और उसके मन्त्र में भेद नहीं माना जाता । विद्या शब्द द्व्यर्थक है; यथा—

(१) दश महाविद्याएँ (देवतारूप) ।
(२) दश महाविद्याएँ (मन्त्र रूप) ।

१. सांख्यायनतन्त्र ।

पञ्चदशी महाविद्या (मन्त्र) भी विद्या है और भगवती महात्रिपुरसुन्दरी भी महाविद्या है। बगला महाविद्या देवतारूपा भी है और मन्त्ररूपा भी। दोनों में अभेद है[१]।

भगवती बगलामुखी के आविर्भाव के विषय में एक तान्त्रिक आख्यान

प्राणतोषिणी नामक ग्रन्थ में भगवती बगलामुखी के आविर्भाव के विषय में निम्न वृत्तान्त दिया गया है—एक बार सत्ययुग में समस्त विश्व को विनष्ट कर देने वाला भयानक वात्याचक्र (तूफान) उठा। इसकी भयानकता एवं इसकी विश्वव्यापी विनाशधर्मिता को देखकर जगत् के रक्षक एवं पालक भगवान् विष्णु अत्यन्त चिन्तित हुए। उन्होंने सौराष्ट्र देश में हरिद्रा सरोवर के समीप जाकर कठोर तपश्चर्या प्रारम्भ की। समय व्यतीत होता गया। मंगलवार चतुर्दशी की अर्द्धरात्रि के समय माता बगलामुखी का आविर्भाव हुआ।

त्रैलोक्यस्तम्भिनी महाविद्या बगला ने प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु को इच्छित वर प्रदान करने को कहा। इसके कारण ही विश्व की रक्षा हो सकी।

भगवती बगला को वैष्णव तेज से संवलित ब्रह्मास्त्रविद्या एवं त्रिशक्ति भी कहा जाता है। वे वीररात्रि हैं। इनके शिव का नाम 'एकवक्त्र महारुद्र' है। इन्हें सिद्धविद्या भी कहा जाता है।

इनका स्वरूप इस प्रकार है—

वे स्वर्णपीठ पर आसीन हैं। उन्होंने एक हाथ में मुद्‌गर धारण कर रखा है तथा दूसरे हाथ में शत्रु की जीभ पकड़ी हुई हैं। वे शीघ्र फल देने वाली महादेवी हैं।

अथर्वा और बगलामुखी—प्राणियों के शरीर से प्राण की एक धारा प्रवाहित होती रहती है। इस प्राणमयी धारा या प्राणसूत्र को 'अथर्वा' कहते हैं। जो अदृश्य वायवी प्राणशक्ति सहस्त्रों मील दूर स्थित अपने किसी अत्यन्त प्रिय व्यक्ति की पीड़ा, क्षोभ एवं व्याकुलता को बिना किसी स्थूल माध्यम के अपने पास पहुँचाकर अपने को व्यथित कर देती है। उसी सन्देशवाहिका आन्तरिक शक्ति को अथर्वा कहते हैं। वही 'टेलीपैथी' का भी माध्यम है। इस 'वायरलेस टेलीग्राफ़ी' की वैज्ञानिक प्रामाणिकता को मारकोनी ने भी स्वीकार किया था और मानव मन को सर्वोच्च रिसीवर एवं ट्रांसमीटर कहा था। कुत्तों एवं कौवों में इस शक्ति का अधिक विकास मिलता है। इस शक्तिसूत्र से हजारों मील दूर स्थित किसी भी व्यक्ति को आकर्षित किया जा सकता है। आधुनिक विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है। पुलिस विभाग के खोजी कुत्तों में वह असाधारण शक्ति होती है जिससे कि वे पृथ्वी को सूँघते हुए चोर को पकड़ लेते हैं। चोर जिस मार्ग से जाता है

१. वरिवस्यारहस्यम्।

उस मार्ग में उसका प्राण वासनासिक्त होकर मिट्टी में मिल जाता है और एक विशिष्ट गन्ध छोड़ जाता है; यथा—चींटियाँ एवं अनेक जंगली पशु। चींटिओं एवं जंगली पशुओं में अपने मार्ग की पहचान के लिए या अपने झुण्ड या साथी से मिलने के लिए एक मार्ग बनाते चलने की प्राकृतिक शक्ति होती है। वे अपने शरीर से वह विशिष्ट गन्ध छोड़कर अदृश्य गन्धमार्ग का निर्माण करते हुए अपना Contact–passage सम्पर्क-मार्ग बनाते हैं। व्याघ्र को भी व्याघ्र इसीलिए कहते हैं कि उसमें विलक्षण गन्धग्रहण-शक्ति होती है—**'विशेषेण जिघ्रतीति व्याघ्रः'**। यह घ्राणशक्ति मनुष्यों की घ्राणशक्ति से लाखों गुना अधिक होती है। इसी प्रकार विलक्षण दर्शन शक्ति (यथा गृद्धों में), विलक्षण श्रवण शक्ति (यथा कुत्तों में), विलक्षण संकल्प शक्ति (यथा कच्छप में या भृङ्गी में) तथा विलक्षण वेधक दृष्टि (यथा—जादूगरों में) पाई जाती है।

समस्त तान्त्रिक क्रियाएँ इसी विशिष्ट शक्ति का आश्रय लेकर सञ्चालित की जाती हैं। पहने हुए वस्त्र, नाखून, केश आदि में वह प्राण वासना की शक्ति से अनुप्राणित होकर एक विशिष्ट स्पन्दन, विशिष्ट गन्ध एवं विशिष्ट लक्षण ग्रहण करता है और सम्बद्ध व्यक्ति के साथ इसी अथर्वाशक्ति से (सुदूर रहकर भी) पूर्णतया सम्बद्ध रहता है। सूक्ष्म शरीर (स्थूल शरीर से पृथक् होकर) बाहर निकल कर इसी प्राणसूत्र या रजतसूत्र (Silver cord) द्वारा पुनः उस शरीर में वापस आ जाता है। यदि इस सूत्र को तोड़ दिया जाय तो सम्बद्ध व्यक्ति का अपने पूर्व शरीर में प्रत्यावर्तन असम्भव हो जायेगा। यही रजतसूत्र (Silver cord) सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से जोड़कर रखता है। इसी प्रकार अथर्वाशक्ति भी है जो कि बाहर रहकर भी सम्बद्ध व्यक्ति से अपना सम्बन्ध बनाये रखती है।

इसी शक्तिसूत्र को पकड़कर व्यक्ति उस सम्बद्ध व्यक्ति को (भले ही वह व्यक्ति संसार में कहीं भी किसी भी दूरी पर स्थित क्यों न हो) सूक्ष्म धरातल पर पकड़ लेता है और उससे स्पन्दनात्मक सम्बन्ध बनाकर उस व्यक्ति पर मनमाने प्रयोग कर सकता है। अथर्वामहाशक्ति भी इसी शक्ति का एक पर्याय है। अथर्वाशक्ति को वल्गामुखी के रूप में भी जाना जाता है।

निगमोक्त वल्गा शब्द वर्णव्यत्यय के कारण बगला बन गया है। बगलामुखी एक कृत्या शक्ति के रूप में भी प्रतिष्ठित है।

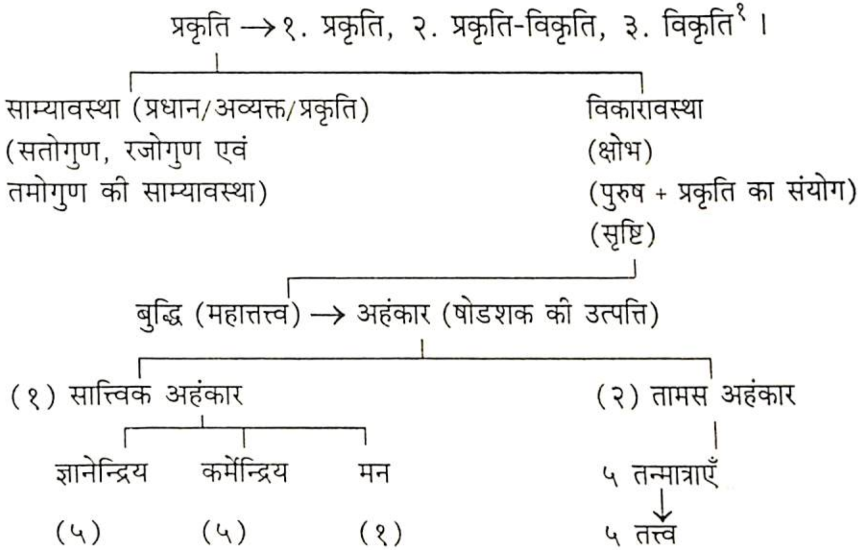
भगवती बगलामुखी क्षोभ-शान्ति का उपाय हैं—क्षोभ-शान्त्यर्थ ही इनका आविर्भाव हुआ। तान्त्रिक ग्रन्थों में कहा गया है कि प्राचीन काल में वात-क्षोभ उत्पन्न हुआ—

'पुरा कृतयुगे देवि ! वात-क्षोभ उपस्थिते'।

इसी वातक्षोभ के शमनार्थ भगवान् विष्णु ने तप किया और इस क्षोभ के शमनार्थ

ही भगवती बगलामुखी का आविर्भाव हुआ तथा उनके आविर्भाव ने ही क्षोभ का शमन किया। प्रश्न उठता है कि 'क्षोभ' क्या है और वातक्षोभ क्या है ?

(१) साम्य-भङ्ग को ही क्षोभ कहते हैं। क्षोभ ही सृष्टि का मूल है। प्रकृति की जो साम्यावस्था है वह जब विकारोन्मुख होकर भङ्ग होती है—वैषम्योन्मुख होकर विकारग्रस्त होती है तब उस स्थिति या अवस्था को क्षोभ कहते हैं। प्रकृति के दो रूप हैं—(१) प्रकृति और (२) विकृति।



(१) मन समेत ११ इन्द्रियाँ—सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न हुईं।

(२) ५ तन्मात्राएँ—तामस अहंकार से उत्पन्न हुईं।

(३) पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए।

सृष्टि का कारण—पुरुष-प्रकृतिसंयोग—

'पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः'।

सृष्टि-क्रम—'प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः। तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि'।

अहंकार से होने वाली सृष्टि—

'अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः।
एकादशकश्च गणस्तन्मात्रः पञ्चकश्चैव'॥

---

१. (१) न प्रकृति न विकृति = पुरुष-१।
(२) प्रकृति = प्रधान/अव्यक्त-१।
(३) प्रकृति-विकृति = महत्तत्त्व, अहंकार तथा पाँच तन्मात्रा-७।
(४) विकृति = १६ : इन्द्रियाँ + मन ११, पाँच महाभूत।

'सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात् ।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्' ॥ (सांख्यकारिका)

महत्तत्त्व (बुद्धि)
↓
अहङ्कार

सात्त्विक अहङ्कार
(रजोगुणात्मक अहङ्कारमात्र सहायक है)
(सतोगुण की प्रबलता एवं तमोगुण के अपचय वाले अहङ्कार)

५ ज्ञानेन्द्रियाँ ५ कर्मेन्द्रियाँ १ मन

= ११ (एकादशकः)

तामस अहङ्कार
(रजोगुणात्मक अहङ्कार मात्र सहायक है, स्वतन्त्र कर्ता नही है अतः अहङ्कार के मात्र दो ही भेद हैं)

१. सात्त्विक २. तामस
↓
५ तन्मात्राएँ
५ महाभूत

पुरुष (१), प्रकृति (१), महत्तत्त्व (१), अहङ्कार (२)।	
अहङ्कार के कार्य—११ + ५	= १६
तन्मात्रा—५	= ००
तन्मात्राओं के कार्य–५	= ०५
पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार	= ०४
योग—	२५

क्षोभ
↓
सृष्टि

विश्वसृष्टि विकल्प-सृष्टि (मानसिक)

'क्षोभ' ही सृष्टि का मूल है। यह क्षोभ दो प्रकार का है—

(१) पाँचभौतिक तत्त्वात्मक क्षोभ (सृष्टिरूप)।

(२) मानसिक सन्तुलन में उत्पन्न क्षोभ।

सृष्टि के भी दो रूप हैं—(१) जागतिक भौतिक सृष्टि। (२) विकल्पात्मक मानसिक सृष्टि—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, घृणा, द्वेष, अभिमान आदि।

क्षोभ का अन्त और उसका परिणाम—

'यदा क्षोभ: प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पदम्'[१] ॥ उत्पलाचार्य कहते हैं—'यदा तु क्षोभो विकारोऽशुद्धिजनितो देहाहम्प्रत्ययरूपो विवेकेनात्मबलस्पर्शात् प्रलीयते प्रलयं याति तदा स्यात् परमं पदं स्वस्वरूपे स्थितिर्भवेत्'[२] ॥

''निजाशुद्ध्यासमर्थस्य कर्तव्येष्वभिलाषिण: ।
यदा क्षोभ: प्रलीयेत तदा स्यात्परमं पदम्'[३] ॥

भट्ट कल्लट क्षोभ का अर्थ अहंरूप भाव को मानते हैं—

'यदा क्षोभ: अहमिति प्रत्ययभवरूपोऽस्य प्रलीयेत भवति परमे पदे प्रतिष्ठानम्' । (स्पन्दसर्वस्व)

अशुद्धि आणवमल है । कर्तव्य कार्ममल है । क्षोभ मायीय मल है । क्षोभ क्या है ? यह है देहादिक अनात्म वस्तुओं में अहं (मैं का अभिमान) । असत् में विकल्पपरम्परात्मक अभिमान ही अहं है । असत् में सत् के अभिमान वाली मिथ्या विकल्प-परम्परा वाले इस प्रत्यय का नाम ही क्षोभ है ।

रामकण्ठाचार्य ने क्षोभ को 'मायीय उपप्लव' कहा है। वे कहते हैं कि 'प्रतिनियतशरीराद्यालम्बनाहम्प्रत्ययात्मा मायीय उपप्लव' ही क्षोभ है। जब कृत्रिम आलम्बनों से उत्तीर्ण स्वाभाविक अहं प्रत्यय का प्रभाकर उदित होता है तब उसके सम्पर्क से ही यह क्षोभ नष्ट होता है; अन्यथा वह ''अहं करोमि, अहं जानामि इति स्वविषयं प्रतिपद्यमान: क्षुभित एव''[४] । क्षोभ के दो प्रकार हैं—

क्षोभ

प्रकृति की साम्यावस्था का भङ्ग होना = क्षोभ	आत्मस्वरूप पूर्णहन्तात्मक विश्वात्मक
↓ सृष्टि	विश्वातीतात्मक शिव भाव की समरसता की जलराशि में विकल्प रूप तरङ्गों का आविर्भाव = देहादिक अनात्म पदार्थों में आत्मभाव का आविर्भाव ।
↓ जीवों के अपने कर्मानुसार	↓ बन्धन → संसरण
पाप-पुण्य	(आवागमन परम्परा)
नरक-स्वर्ग	नरक-स्वर्ग

१. स्पन्दकारिका । २. उत्पलदेव : स्पन्दप्रदीपिका । ३. स्पन्दकारिका । ४. स्पन्दकारिका-वृत्ति ।

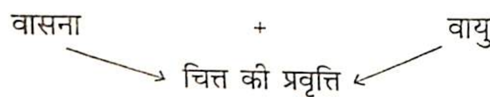
इसी क्षोभ को नष्ट करने के लिए भगवती महात्रिपुरसुन्दरी ने बगलामुखी का स्वरूप धारण करके उस वात-क्षोभ को नष्ट किया।

प्रश्न उठता है कि यहाँ बाह्य क्षोभ की बात का प्रसङ्ग जान पड़ता है इसीलिए वातक्षोभ कहा गया है, अत: अन्त:क्षोभ का अर्थ क्यों स्वीकार किया जाय ?

उत्तर सुस्पष्ट है कि सारे अन्त:क्षोभ मात्र वात के सहारे ही हुआ करते हैं ? बिना वात (प्राण-स्पन्दन) के मन में लहरें उत्पन्न ही नहीं हो सकतीं, क्योंकि—'दुग्धाम्बुवत् सम्मिलितौ तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ च। यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिर्यावन्मरुच्चापि मन:-प्रवृत्ति:'[1] ॥

अर्थात् जब तक वायु तब तक मन एवं जब तक मन तब तक वायु क्रियाशील रहेंगे। दोनों जल एवं दूध की भाँति परस्पर मिश्रित हैं। एक का नाश→दूसरे का नाश→ 'तत्रैकनाशादपरस्य नाश: एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्ति:'[1]। दोनों में से किसी का भी नाश—'विध्वस्तयो मोक्षपदस्य सिद्धि:'।

वासना के मूल (क्षोभ के मूल) केवल दो ही हैं।



'हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरण:'।

एक का नाश → दूसरे का भी नाश—

'तयोर्विनष्ट, एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यत:'[2] ॥

यदि वातक्षोभ रोक दिया जाय तो मन का क्षोभ भी रुक जायेगा, क्योंकि—

'पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते' ॥

पवन (वात) एवं मन दोनों को बन्धन में डालने वाला (रोकने वाला) एक ही तत्त्व है—एक ही साधन है जो दोनों को एक साथ प्रतिबन्धित, निरुद्ध एवं उन्मूलित कर देता है।

बगलामुखी महाविद्या में वही कारक तत्त्व मात्र भगवती बगलामुखी हैं।

भगवती बगलामुखी और उनका जल से प्राकट्य

भगवती बगलामुखी का सरोवर से प्राकट्य प्रतीकार्थों की भी सूचना देता है। प्रत्येक देवी-देवता का अपना एक उद्भव स्थान एवं मूल स्थान है और उनके प्रतीकार्थ भी है। देवों का उद्भव-स्थान एवं वास-स्थान इस प्रकार है—

१. अमनस्कयोग (गोरक्षनाथ)। २. हठयोगप्रदीपिका।

(१) विष्णु का समुद्र (जल तत्त्व)।
(२) शिव का पर्वत (पृथ्वी तत्त्व)।
(३) ब्रह्मा का विष्णुनाभि से निर्गत जलकमल।
(४) भगवती पार्वती का पर्वत (हिमालय की पुत्री)।
(५) भगवती सीता का पृथ्वी (पृथ्वी से प्रकट हुईं)।
(६) भगवती हैमवती का आकाशमण्डल।
(७) महात्रिपुरसुन्दरी का (निवास) अमृत-समुद्र।
(८) महाविद्या बगलामुखी का सरोवर (जल तत्त्व)।
(९) भगवती महालक्ष्मी का समुद्र (जल तत्त्व)।
(१०) मत्स्यावतार—जल में।
(११) कच्छपावतार—जल में।

जल तत्त्व और उसकी विशिष्टता—कथाओं में आता है कि ऋषि ने हाथ में जल लिया, मन्त्र पढ़ा और शाप देकर किसी पर जल फेंक दिया; वह व्यक्ति शापग्रस्त हो गया, जैसा शाप था तद्वत् घटना घट गयी।

क्या जल ने ऋषि की आज्ञाओं का पालन किया इसलिए घटना घटी या ऋषि के तपोबल के कारण घटना घटी ? (१) जल के द्वारा अर्घ्य देना, (२) जल से स्नान करके ही पवित्र कार्य करने की पात्रता होना, (३) शरीर को शुद्ध करने हेतु जलाभिसिञ्चन करना, (४) पूजा के समय देवी-देवताओं को कुशा के द्वारा जलाभिसिञ्चन करना, (५) सूर्य को जल से अर्घ्य देना, (६) नवागत के स्वागत में मधुपर्क के साथ जल गिराना, (७) जल को पाद्य के रूप में समर्पित करके उससे शुद्ध होने की कल्पना करना, (८) ईसाई धर्म में भी जल द्वारा बपतिस्मा देना, (९) जल छिड़ककर स्वस्तिपाठ करना आदि जलोपहित क्रियाएँ क्या जल की महत्ता एवं विशेषताओं (विलक्षणताओं) को चिह्नित नहीं करतीं ? क्या पानी सुनता है ? क्या पानी स्मरण रखता है ? क्या वह भावनाओं को समझता है ? क्या इस पर स्थान, ध्वनि, वातावरण, भावनाओं एवं विचारों का प्रभाव पड़ता है ? इन्हीं विषयों पर विचार करना आवश्यक है।

जल का वैज्ञानिक विश्लेषण

जापान के शोधकर्ता डॉ. मसारू ईमोटो ने अनेक वर्षों तक इस विषय पर शोध किया।

डॉ. मसारू ईमोटो के प्रयोग—डॉ. मसारू ईमोटो ने इस विषय पर निम्न प्रयोग किये—

(१) उन्होंने जल की अभिव्यञ्जनाओं का छायांकन किया।

(२) जमे हुए जल से सद्य: निर्मित रवों (Crystals) के विन्यास के चित्र खींचे। इसमें शीतल कक्ष में शक्तिशाली दूरदर्शी यन्त्र का प्रयोग किया गया।

(३) (अपने प्रयोगार्थ) संसार के विभिन्न भागों से जल के नमूने (Sample) एकत्रित किया।

(४) इन विभिन्न जल के नमूनों पर प्रयोग किया गया।

(५) इन नमूनों पर विचार एवं भावनाओं का सम्प्रेषण किया गया।

(क) कहीं जल से भरे बोतल के ऊपर कुछ शब्द लिखकर चिपकाये गये तो कहीं प्रार्थना की गई।

(ख) दूर से लोगों द्वारा विचार-तरङ्गें भेजी गईं।

(ग) जल को राजनैतिक वाद-विवादों के स्थान पर भी रखा गया।

(घ) जल के रवों के विन्यास के चित्र लेने हेतु प्रयोगशाला के कक्ष विशेष का तापमान–५°C तक ले जाया गया।

(ङ) इस कक्ष में लगभग १/२cc जल को अनेक तश्तरियों में रखकर लगभग ३ घण्टे फ्रीज़र में रखा गया और फ्रीज़र का तापमान लगभग–२५°C रखा गया। इस शीतलन पर पानी जम जाता है और उसके रवें भी बन जाते हैं। फिर सूक्ष्मदर्शी कैमरे द्वारा रवों के विन्यास के चित्र खींचे गये। चित्र खींचने हेतु रवों को २०० से ५०० गुना बड़ा किया गया। चित्र खींचते समय जमे जल पर सूक्ष्मदर्शी से प्रकाश भी डाला गया जिससे कि बर्फ के शीर्ष पर रवों के विन्यास का अवलोकन किया जा सके।

यद्यपि ये विन्यास मनुष्याकृतियों की भाँति एक जैसी आकृति तो धारण नहीं करते थे तथापि यथापरिस्थिति एक प्रतिमान (Pattern) अवश्य दृष्टिगत होता था।

डॉ. ईमोटो और उनके सहयोगियों ने इस प्रकार १०,००० से अधिक चित्र खींचे।

(च) जल-रवाकरण भी अनेक परिस्थितियों में किया गया।

(छ) एक बोतल पर 'देवदूत' लिखकर चिपका दिया गया, दूसरे बोतल पर दैत्य। किसी बोतल पर 'तुमने मुझे बीमार कर दिया' लिखकर चिपका दिया गया तो दूसरे बोतल पर—'तुमने मुझे बीमार कर दिया और मैं तुम्हें मार डालूँगा'—लिखकर चिपका दिया गया। अन्य बोतलों पर 'एडोल्फ हिटलर' तथा कुछ पर 'मदरटेरेसा' लिखकर चिपका दिया गया। कुछ बोतलों पर धन्यवाद, कुछ पर प्रेम एवं अन्य पर 'सद्भावना' जैसे शब्द लिखकर चिपका दिये गये या लिख दिये गये। उक्त बोतलों में शुद्ध जल भरकर उसे चौबीस घण्टे के लिए छोड़ दिया गया। इसके बाद डॉ. ईमोटो ने बोतलों में रखे गये जल का रवाकरण किया और उनके चित्र लिये। उन्होंने प्रथमत: जापानी भाषा के शब्दों का और बाद में जर्मन भाषाओं का प्रयोग किया। उन्होंने पाया कि विभिन्न भाषाओं में विलक्षण साम्य है।

(६) यह देखा गया कि बोतल पर लिखे गये शब्द रवाविन्यास के स्वरूप को प्रभावित करते हैं और एक ही शब्द यदि विभिन्न भाषाओं में लिखा गया तो रवा-विन्यास लगभग एक जैसा ही होता है।

(७) क्या पानी भाषाएँ समझता है और तदनुकूल प्रतिक्रिया करता है ?

(८) तरङ्गों एवं कम्पनों पर विचार करें। विभिन्न प्रकार के समानार्थी शब्द एक ही प्रकार की तरङ्गें उत्पन्न करते हैं। पानी उन तरङ्गों से प्रभावित होता है भाषा से नहीं। धन्यवाद कोई हिन्दी में कहे या अंग्रेजी या जापानी में–ध्वनियों के भिन्न रहने पर भी विचार एवं तरङ्गें समान रहेगीं। जल तरङ्गों में निहित भावात्मक भाषा समझता है।

(९) ५०० व्यक्तियों ने पानी को मानसिक रूप से प्रेम का सन्देश सम्प्रेषित किया। इस सन्देश से प्रभावित जल के कण सुन्दर षट्कोणीय आकृति के बन गये।

(१०) जापान के फ्यूजीवारा बाँध का जल लेकर प्रार्थनापूर्व एवं प्रार्थनोपरान्त रवे बनाये गये। रवों के विन्यास में प्रार्थनापूर्व एवं प्रार्थनोपरान्त निर्मित रवों के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन पाया गया।

(११) भारी धातु के वाद्यों के संगीत एवं समूह नृत्य के पश्चात् बनाये गये रवों में भी आकृतियों का परिवर्तन देखा गया।

निष्कर्ष—ईमोटो ने निष्कर्ष निकाला कि जल भावनाओं, विचारों, क्रियाकलापों एवं घटनाओं से प्रभावित होता है। यह उस प्रभाव को अपने ऊपर अंकित भी करता है।

शुद्ध एवं प्रदूषित जल में निर्मित आकृतियाँ—

(क) पहाड़ी के झरने के जल से षट्कोणीय रवा-विन्यास निर्मित होता है।

(ख) प्रदूषित जल से प्राय: रवा-विन्यास होता ही नहीं।

(ग) विश्व के विभिन्न शहरों के निकट वर्षा के जल रवे के रूप में अव्यवस्थित पाये गये।

(घ) ध्रुवीय प्रदेशों का जल अत्यन्त निर्मल रवों का निर्माण करता है। जल एक प्रकार से तरल टेप रिकार्डर के रूप में कार्य करता है। यह अपने निकट के वातावरण का अंकन एवं प्रत्यावर्तन करता है।

(ङ) गुफाओं के जल ने गुफा जैसा स्वरूप प्रदर्शित किया।

(च) झरने के जल के रवों ने माला का स्वरूप ग्रहण कर लिया।

(छ) हीरे की खदानों के निकट के जल के रवों ने हीरे जैसी आकृति ग्रहण कर ली।

(ज) ईमोटो ने निरीक्षण के दौरान यह भी पाया कि पानी न केवल अपने निकट

के वातावरण का अंकन एवं प्रत्यावर्तन करता है बल्कि वह ध्वनि से भी प्रभावित होता है। उन्होंने अपने प्रयोगों में यह पाया कि जल मानो ध्वनि सुनता है[१]।

(झ) टेलीविजन पर हो रहे राजनैतिक वाद-विवाद के समय जल दिग्भ्रमित एवं संशय की स्थिति में पड़ गया।

(ञ) जल प्रार्थना, ध्यान एवं विचार आदि से भी प्रभावित प्रतीत हुआ।

शरीर में भावावेश के समय जल की प्रतिक्रिया—हर व्यक्ति यह जानता है कि किसी का अपमान किये जाने पर निम्न सोपान-बद्ध प्रतिक्रियाएँ होती हैं—(१) श्रवणेन्द्रिय द्वारा मस्तिष्क को उत्तेजित करना, (२) (परिणामत:) अन्त:स्रावी ग्रन्थियों में हार्मोन के रूप में संगृहीत जल का उद्वेलन और इस जल का रक्त में छलक कर आ मिलना, (३) हार्मोन के रक्त में मिलने से इसकी सान्द्रता की रक्त में वृद्धि होने से शरीर की कोशिकाओं में सञ्चारित आस्मोटिक प्रेशर भी बढ़ता है और परिणामत:—

१. पसीना छूटना, २. क्रोध आना, ३. कँपकँपी छूटना, ४. नेत्र लाल होना, ५. भुजाएँ फड़कना आदि क्रियाएँ होती हैं—इन सभी क्रियाओं में जल की भूमिका सुस्पष्ट है।

मन्त्राभिषिक्त जल—जिस पात्र या हाथ में जल रखा होता है उसकी विद्युत् चुम्बकीय शक्ति से जल प्रभावित होता है। उच्चरित मन्त्रों की ध्वनि-तरंगों के प्रभाव से मंत्रपूरित जल के अणु एक विशेष प्रतिमान में संयोजित हो जाते हैं, अत: जिस व्यक्ति या वस्तु पर फेंका जाता है वह वहाँ उसको अवशोषित करके तदनुकूल प्रभावोत्सर्जन करता है।

जल संवेदनशील है अत: वह प्रतिक्रिया भी करता है। भोजन के पूर्व प्रार्थना, पवित्रता हेतु जल-प्रयोग एवं कर्मकाण्डीय विधानों में सर्वत्र जल-प्रयोग इन्हीं वैज्ञानिक प्रभावों को केन्द्र में रखकर स्वीकार किये गये हैं।

दूध, घी, अन्न आदि सभी द्रव्यों में जल है।

जल का विशेष महत्त्व—अथर्ववेद (३।१२।९) में कहा गया है कि—विभिन्न रोगाणुशून्य एवं रोगों को दूर करने वाला यह जल लेकर आता हूँ। इसके सेवन से यक्ष्मा आदि रोग दूर हो जाते हैं—

'इमा आप: प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनी: ।
गृहानुप प्रपसीदाम्यमृतेन सहाग्नि' ॥ (अथर्ववेद)

---

१. प्रभुनारायण मिश्र। (लेखक डॉ. मसारू इमोटो की पुस्तक 'Massege from water' नामक पुस्तक एवं नीदरलैण्ड की पत्रिका 'ओडे': २।२००३ के अंक पर आधृत।)

सृष्टि का मूल तत्त्व और जल

सुमेरियन एवं बेबीलोनियन दार्शनिक सृष्टि का मूल तत्त्व जल को मानते थे। ईसामसीह से हजारों वर्ष पूर्व सुमेरियन एवं बेबीलोनियन सभ्यता में सृष्टि का मूल तत्त्व जल स्वीकार किया गया था। सुमेरियन अवशेषों से ज्ञात होता है कि ये लोग जल की भी बीजशक्ति (इनिम) को मानते थे और उसे 'इनिम' या 'शब्द' कहते थे। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो जल का शब्द के साथ अपृथक् एवं कार्य-कारणसम्बन्ध है।

प्राचीन सुमेरियन सभ्यता में 'मम्मु' (उच्च ध्वनि) शब्द मेघगर्जन का वाचक है। इस प्रकार जल के भीतर भी शब्दशक्ति स्वीकार करके उन दार्शनिकों में विश्व को रूपायित करने वाली बीजशक्ति को शब्दशक्ति माना था।

संस्कृत का 'उद्' 'उदक्' लैटिन का 'उन्द', गाथिक का 'वत ओ', हाई जर्मन का 'वाजर' और अंग्रेजी का 'वाटर' समानार्थी हैं। सेमेटिक भाषाओं में प्रयुक्त 'मुम्मु' शब्द (ध्वनिवाचक शब्द) यूनानी लेखकों की भाषा में जलदेवता (अप्सू) और 'तियामत' (समुद्र के जल की देवी) के पुत्र के रूप में स्वीकृत हुआ।

शब्द जल की चित् शक्ति है। यह उसकी बुद्धि है। यही सृष्टि की विधात्री है। सुमेरियन एवं बेबीलोनियन सभ्यता का यह विश्वास था कि जड़-चेतन वस्तुएँ जलदेवता की मानसी धारणा मात्र हैं। उन्हीं की मानसिक क्रियाओं से वे प्रत्यक्ष भी होती हैं।

ग्रीक दार्शनिक Thales या थेलीज़ ने जल को सृष्टि का मूल तत्त्व माना था। थेलीज़ कहता है—'वस्तुत: सृष्टि के आदि में केवल जल की ही सत्ता थी। जल से सत्य का उद्भव हुआ। सत्य से परमात्मा का उदय हुआ। परमात्मा से प्रजापति की उत्पत्ति हुई। प्रजापति से देवों की सृष्टि हुई। ये देवता केवल सत्य की उपासना करते हैं'। इसके अनुसार तो सृष्टि के आदि में आत्मा या पुरुष की सत्ता नहीं थी। जल ही जगत् की आदि सत्ता है। उसी से सम्पूर्ण वस्तुओं की सृष्टि हुई है। सत्य भी जल से उत्पन्न हुआ। थेलीज़ जल को वस्तुजगत् का मूल कारण मानता था।

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी जल को सम्पूर्ण वस्तुओं का मूल कारण स्वीकार किया गया है।

जल के पटल पर विचरने वाली ईश्वरीय आत्मा की कल्पना, मनु का जगत् की सृष्टि का मूल कारण जल को स्वीकार करना आदि तथ्य जल की श्रेष्ठता के प्रमुख प्रमाण हैं।

'आपो वै इदमग्रमासीत्' अर्थात् सृष्टि के आदि में सबसे पूर्व मात्र जलतत्त्व ही था। यह कहकर वेदों ने भी जलतत्त्व को सृष्टि का मूल तत्त्व स्वीकार किया है।

हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार प्रतिदिन जल से स्नान करने, बिना स्नान किये पूजा का अधिकार न प्राप्त करने, मृतक को गंगा आदि नदी के जल में डालने,

भगवदर्पित पुष्प-हवन आदि को जल में डालने, अन्त्येष्टि क्रिया के पूर्व शव को जल से स्नान कराने, पवित्रार्थ जल से आचमन करने, जलोत्पन्न कमल से (कमलोत्पन्न ब्रह्मा से) जगत् की सृष्टि मानने, सृष्टि एवं प्रलय के समय जगत् के जल में लीन हो जाने, सृष्टि के समस्त पदार्थों में जलतत्त्व के रूप में जल के वर्तमान रहने, जगत् में स्थल भाग की अपेक्षा जलमण्डल के अधिक होने आदि के कारण जलतत्त्व की महत्ता स्वतः रेखांकित है।

वेदों की दृष्टि

ऋग्वेद में कहा गया है कि जल में अमृत है और जल में रोग-निरोधक औषधियाँ हैं—'अप्सु अन्तः अमृतम्, अप्सु भेषजम्'।

'आपो वै इदमग्रमासीत्' अर्थात् सृष्टि के पूर्व सर्वप्रथम जल ही एक मात्र परम सत्ता के रूप में अवस्थित आदि तत्त्व था।

अथर्ववेद में कहा गया है—(१) जल ही औषधि है। (२) जल समस्त रोगों का उन्मूलन करता है। (३) जल तुम्हें भी सभी कठिन रोगों से दूर रखे।

'आप उ भेषजोरापो अभीवचातनी'। 'आपस्य सर्वस्य भेषजोस्तास्ते सुन्वन्तु क्षेत्रियात्'।

ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है—

'शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः'। अर्थात् हे ईश्वर! दिव्य गुणों वाला यह जल हमारे लिए सुखप्रद हो। यह हमें अभीष्ट पदार्थों की सम्प्राप्ति कराये। यह हमारे पीने के लिए पेय हो, सम्पूर्ण रोगों का नाश करे एवं रोगों से उत्पन्न भय की सृष्टि न करे और हमारे सामने प्रवाहित होता रहे।

जीवजगत् में जीवन का सूत्रधार जल है। यजुर्वेद की दृष्टि—

'आपो ह यद वृहती विश्रवभायन।
गर्भः दधाना जन्यन्ती रग्नि यः'॥

अर्थात् जल में सर्वप्रथम सृष्टि का बीज पड़ा और उससे अग्नि की उत्पत्ति हुई।

जल में सभी तत्त्वों का समावेश और समस्त देवता जल में ही विद्यमान हैं

ऋग्वेद में यही बात इन शब्दों में कही गई है—'तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे'।

अथर्ववेद में कहा गया है—(१) वर्षा के जल से भूमि पर हरीतिमा छायी रहती है। (२) वातावरण में स्वाभाविक उत्साह बना रहता है। (३) समस्त प्राणियों का जीवन

सुखमय एवं आनन्दमय बना रहता है—'वर्षेण भूमिः पृथ्वी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि' ॥

यजुर्वेद में इसीलिए कहा गया है कि—

(१) जल को दूषित न करो।

(२) वृक्ष एवं अन्य वनस्पतियों को हानि न पहुँचाओ—

'माऽऽपो हिंसीः, मा औषधीर्हिंसीः'।

समग्र पृथ्वी एवं सम्पूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे—'पृथ्वीः पूः उ उर्वी भव'।

(ऋग्वेद)

प्राकृतिक चिकित्सा में जल-चिकित्सा नाम की पृथक् चिकित्सा-पद्धति की ही पद्धति स्वीकृत है।

भगवती पीताम्बरा देवी और पीत वर्ण (प्रतीकार्थ)

भगवती बगलामुखी अपने सम्पूर्ण स्वरूप में पीतवर्णा हैं। वे सौराष्ट्र के हरिद्राख्य (हरिद्रा) सरोवर से उत्पन्न भी हुई हैं। उन्हें पीत वर्ण इतना प्रिय है कि उनके वस्त्राभूषण आदि सभी पीले वर्ण के हैं।

भगवती बगलामुखी का एक नाम पीताम्बरा भी है। उनके वस्त्र, भूषण, मुख, अङ्ग, अङ्गराग आदि सभी पीले हैं। उनको जो पुष्प, प्रसाद, फल, वस्त्र, भूषण, अङ्गराग आदि समर्पित किये जाते हैं वे भी पीले ही होने चाहिए।

निष्कर्ष यह कि पीताम्बरा देवी सर्वत्र पीत वर्ण को सर्वाधिक चाहती हैं। इनकी पूजा में आसन, माला, वस्त्र, फल, फूल आदि सभी पीले रंग के ही स्वीकार्य हैं। हरिद्रा (हल्दी) तो पूर्णतः पीली वस्तु है और उसकी माला ही यहाँ सर्वोत्तम मानी जाती हैं। इनके ध्यान में पीतत्व-प्राधान्य का भूरिशः उल्लेख किया गया है। यथा—

(१) सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।

(२) पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीम्।

(३) हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सचम्पकस्रग्युताम्।

(४) पीतभूमिसुखासनाम्।

(५) पीतगन्धानुलेपनाम्।

(६) पीतचन्द्रार्धशेखराम्।

(७) पीतभूषणभूषाढ्याम्।

(८) पीतमाल्याम्बरावृताम्।

(९) हरिद्राक्तवस्त्रावृतेन।

(१०) 'कुर्वन् पीतासनस्थः' 'ध्यायेत् त्वां पीतवर्णाम्'।



५०० व्यक्तियों का प्रेम संदेश सम्प्रेषित करने पर आनन्दित जल का रूप



प्रार्थना के पश्चात् 'फ्यूजीवार' बाँध की जल-छवि (रवा-विन्यास)



बोतल पर 'दैत्य' (Demon) लिखने पर (रवा-विन्यास)



बोतल पर 'देवदूत' (Angel) लिखने पर (रवा-विन्यास)



'तुमने मुझे बीमार कर दिया' लेबल लगी बोतल-जल का रवा-विन्यास



लन्दन के नल का जल (रवा-विन्यास)



न्यूयार्क के नल का जल (रवा-विन्यास)

(११) पीताचारो य एनं जपति।
(१२) यां ब्रह्मपत्नीं ब्रह्माणीं पीताम्!
(१३) सेयं पीतावयव: पूज्या। आदि।

भगवती बगलामुखी के पीत वर्ण का रहस्य—आगमों में कहा गया है कि पीत आसन पर पीत वसन पहनकर, पीत सामग्रियों (अक्षत, फल, फूल, भूषण, रक्षासूत्र, प्रसाद आदि) द्वारा माता पीताम्बरा देवी की अर्चा करके जो लोग हरिद्रा (पीले रंग की हल्दी) की माला से भगवती पीताम्बरा जी के मन्त्र का जप करते हैं वे पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति करते हैं।

इस पीत वर्ण में ऐसी क्या विलक्षणता है कि इसे इतना महत्त्व दिया गया है?

अथर्वा और पीताम्बरा देवी

अथर्वा एक तेज:स्वरूपा शक्ति है जो कि सभी वस्तुओं एवं सभी प्राणियों से निरन्तर अहर्निश निकलती रहती है। इस शक्ति के द्वारा आकर्षण, विकर्षण, स्तम्भन, वशीकरण, मारण, मोहन, द्वेषण एवं उच्चाटन आदि सारे व्यापार निष्पादित किये जा सकते हैं तथा तान्त्रिकों एवं सिद्धों द्वारा इनका प्रयोग किया भी जाता है। यह पदार्थों एवं जीवों के चतुर्दिक् प्रसृत एक तेजोमण्डल है। यह जीवों के देह के चतुर्दिक् चैतन्य एवं क्रिया को प्रवाहित करने वाली शक्ति है।

यह प्रत्येक व्यक्ति के चतुर्दिक् तेजोमण्डल के रूप में तो रहता ही है किन्तु यह प्रत्येक प्राणी से भिन्न-भिन्न रंगों में प्रवाहित होता है। रंगों की भिन्नता प्रत्येक व्यक्ति के विचार, आचरण, स्वभाव एवं संस्कारों की भिन्नता के कारण है।

अथर्वा एक रंग का कभी नहीं होता। जड़ पदार्थों का अथर्वा उस पदार्थ के वर्ण के अनुरूप ही होता है। चाहे जड़ पदार्थ हो और चाहे चेतन प्राणी—सभी के चतुर्दिक् प्रवाहित अथर्वा उस पदार्थ एवं उस प्राणी की आन्तरिक चेतना या स्वरूप (प्रकृति) की प्रतिच्छाया ही है। यह वह सूक्ष्म कारण तत्त्व है जिससे उस पदार्थ या प्राणी का कार्यरूप स्थूल स्वरूप गठित होता है। चूँकि सूक्ष्म ही स्थूल का कारण है अत: प्रत्येक पदार्थ या प्राणी का अन्तस्थ रंग ही उस पदार्थ या प्राणी के शरीर से प्रवाहित अथर्वा में प्रवाहित होता है। सारांश यह कि पदार्थ के गोचर रंग की सृष्टि उसके सूक्ष्म अथर्वा के रंग की प्रतिकृति या प्रतिच्छाया है।

यदि पदार्थ लाल रंग का है तो निश्चित ही उसका 'अथर्वा' भी लाल रंग का ही होगा। यदि पदार्थ पीला है तो उसका अन्तस्थ एवं बाहर प्रवाहित अथर्वा भी पीला होगा।

चेतन प्राणी से नि:सृत अथर्वा उस प्राणी के द्वारा व्यवहृत प्रत्येक वस्तु या पदार्थ पर अपना स्थायी या अस्थायी प्रभाव अवश्य डालता है। इसी के कारण जासूसी कुत्ते अपराधियों की व्यवहृत वस्तु या उनके चरण-चिह्न आदि को सूँघकर उस अपराधी को

पकड़ लेते हैं। चींटियाँ भी इसी वैज्ञानिक सूत्र को पकड़कर अपने से पृथक् चींटियों के समूह तक बिना भूल किये पहुँच जाती हैं। अथर्वा का स्थायी प्रभाव उन वस्तुओं पर पड़ता है जिन्हें किसी के द्वारा लगातार दीर्घ काल तक व्यवहार में लाया गया हो। यह एक प्रकार का विद्युत्-प्रवाह है। Hypnotist एवं Mesmeriser इसे Animal Magnetism कहते हैं। सन्त समाज में इस आलोकमण्डल को तेजोमण्डल कहते हैं। कहा जाता है यही प्रभामण्डल भगवान् बुद्ध, महावीर आदि सिद्ध महात्माओं के शिर के चारों ओर गोलाकार आलोक के रूप में चित्रित मिलता है।

विज्ञान का नवीन खोजों ने इसे केवल सन्तों-महात्माओं में एवं केवल उनके मस्तक के चतुर्दिक् ही नहीं पाया प्रत्युत इसे प्रत्येक जड़ एवं चेतन सत्ता के चतुर्दिक् प्रवाहित एक द्रव्य के रूप में पाया।

इसका विशेष प्रवाह हाथों की अँगुलियों एवं नेत्रों में पाया जाता है। इसे अभ्यास द्वारा बढ़ाया भी जा सकता है। छड़ी, घड़ी, रुमाल, लेखनी, पुस्तक, कंघी, वस्त्र, टोपी, साफा, चश्मा, जूते, मोजे, नाखून, शिर के बाल, मूँछों के बाल आदि व्यक्ति के शरीर से पृथक् होकर भी अथर्वा के सूत्र से स्थायी रूप से जुड़े रहते हैं।

व्यक्ति द्वारा व्यवहृत वस्तुओं का अथर्वा उस व्यक्ति के अथर्वा से सदैव सम्बद्ध रहता है। जिन पदार्थों में विद्युत् का संक्रमण सम्भव होता है वे सभी पदार्थ अथर्वा से तत्काल प्रभावित नहीं होते। जिन पदार्थों में विद्युत् संक्रमण नहीं हो पाता वे तत्काल ही 'अथर्वा' से प्रभावित हो जाते हैं और अपना प्रभाव भी शीघ्र ही परित्यक्त कर देते हैं। सूती वस्त्र, काष्ठ एवं उद्भिदोद्भूत सारे पदार्थ एवं निःशेष वनस्पति एवं वानस्पतिक द्रव्यों का 'अथर्वा' व्यक्ति के अथर्वा से तत्काल प्रभावित हो जाता है। रेशम, ऊन एवं केश न तो शीघ्र प्रभाव ग्रहण करते हैं और न ही गृहीत प्रभाव को छोड़ते ही हैं। भूमि, भूमिज पदार्थ, मृत्तिका, पाषाण एवं खनिज शीघ्र प्रभाव ग्रहण करते हैं और शीघ्र प्रभाव छोड़ भी देते हैं।

पीला रंग गति का संयामक है—जितने रंग हैं उनमें तीन रंग प्रधान हैं। वे निम्नाङ्कित हैं—(१) पीला, (२) लाल, (३) नीला।

वर्ण (रंग) और उनके अवयव (संघटक तत्त्व)

१. पीले रंग में—नाइट्रोजन, कार्बन, आक्सीजन, बेरियम, कैल्शियम, स्ट्राण्टियम, केडमियम, कोबाल्ट, मेङ्गेनिज, टिटेनियम, एल्म्यूनियम, क्रोमियम, लोहा, निकिल, ताँबा और जस्ता।

२. पीलापन लिये हुए हरे रंग में—आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन, सोडियम, कैल्शियम, क्रोमियम, निकिल, ताँबा, एल्म्यूनियम, टिटेनियम, स्ट्राण्टियम, केडमियम, कोबाल्ट तथा रुबीडियम।

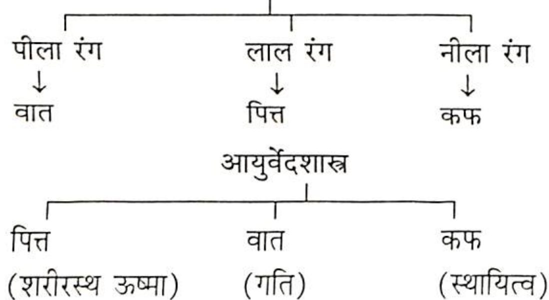
३. नारंगी रंग में—टिटेनियम, एल्म्यूनियम, रुबीडियम, कोबाल्ट, जस्ता, निकिल, लोहा, कैल्शियम और आक्सीजन।

४. पीताभ नीले रंग में—मेंगेनिज, निकिल, जस्ता, सोडियम, नाइट्रोजन और कार्बन।

५. गहरे नारंगी रंग में—केडियम, स्ट्रांटियम, ताँबा, लोहा, बेरियम, कैल्शियम, नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन।

मानव शरीर में स्थित तत्त्व

- तीन चौथाई आक्सीजन
- शेष भाग में नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, क्लोरीन, क्लुओरिन आदि तत्त्व
- भोजन आदि द्वारा मेग्नेशियम, पोटेशियम, सोडियम, सिलिकन, केल्शियम, कार्बन, लिथियम, पारा, शीशा, ताँबा, लोहा, गन्धक और फास्फोरस।



पीत वर्ण गति का कारण है। शरीर में आन्तरिक अवयवों की गति या बाह्य अवयवों की गति का निष्पादक पीत वर्ण भी है।

पीले रंग की काँच की बोतल में रखे पानी या तेल के गुण (सूर्यरश्मियों के सम्पर्क में रखने से उत्पन्न गुण)—

१. पाचन/पाचन शक्ति।
२. विकार-शोधन।
३. शरीर के किसी भी अङ्ग से स्रवित रक्त का अवष्टम्भक (स्तम्भन करने वाला)।
४. कण्ठमाला, मधुमेह, बधिरता, चर्मरोग, कुष्ठ आदि में लाभप्रद।
५. फसली बुखार, जुकाम, हिस्टीरिया आदि में लाभप्रद।

पीत वर्ण—पीत वर्ण वात-गति का ही कारण नहीं है अपितु जहाँ गति नहीं है वहाँ पीला रंग गति प्रदान करता है। जहाँ गति में आधिक्य है वहाँ यह अवसादक है। यह चर्मरोग, ज्वर आदि में ऊष्मा को संयमित करके गत्यवरोधन करता है। यह अपने

पालक-शोधक गुण के कारण ऊष्मोत्पादन करके गति में वृद्धि करता है। आयुर्वेद की भाषा में पीत वर्ण गति का सर्वतोभाव से संयामक है।

अथर्वा—प्रत्येक प्राणी एवं व्यक्ति का अथर्वा भिन्न-भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति अथर्वा में परिवर्तन भी कर सकता है। व्यक्ति का अपने चतुर्दिक् प्रसृत जो तेजोमण्डल होता है वह व्यक्ति के स्वभाव, विचार, चरित्र की देन है। यह तेजोमण्डल ही 'अथर्वा' है। तेजोमण्डल अनेक रंगों का मिश्रण होता है। यदि साधक में संकल्प-शक्ति या इच्छा शक्ति का प्राबल्य हो तो वह अपने अथर्वा में रंग का परिवर्तन कर सकता है।

अथर्वा के रंग का नियामक है—व्यक्ति का चरित्र, गुण, स्वभाव, प्रकृति, विचार, इच्छा, संकल्प, क्रिया एवं मानसिकता। इनमें परिवर्तन ही अथर्वा में परिवर्तन का कारण है। अथर्वा मस्तिष्क तथा हृदय के कार्यों की समष्टि है—तर्क, चिन्तन, विचार आदि की प्रकृति तथा भावना का समुच्चय है। 'अथर्वा' के वर्ण से मस्तिष्क एवं हृदय दोनों प्रभावित होते हैं। विचार अथर्वा के परिणाम हैं। अथर्वा एवं मस्तिष्क अन्योन्याश्रित हैं और अथर्वा के रंग से मस्तिष्क प्रभावित होता हुआ जड़ एवं चेतन (जड़ीभूत या विकसित) दोनों प्रकार के स्वरूप में गठित हो सकता है। मस्तिष्क की जड़ता या विकास के अनुकूल अथर्वा के वर्ण का भी निर्माण होता है।

रंग-विज्ञान—बैगनी रंग सबसे कम तरंग-लम्ब द्वारा उद्भूत होता है। लाल रंग प्रकाश का सबसे अधिक तरंग लम्ब द्वारा उत्पन्न होता है किन्तु बैगनी रंग के बाद ही लाल रंग आता है; यद्यपि दोनों के तरंग-लम्ब में बहुत बड़ा अन्तर है। बैगनी रंग प्रकाश के ४३०ꝏ तरंग-लम्ब से उत्पन्न होता है किन्तु लाल रंग ७६०ꝏ तरंग-लम्ब से। तथापि दोनों रंग सहवर्ती हैं। बैगनी रंग के बाद ही लाल रंग की उत्पत्ति होती है। ५८०ꝏ तरंग-लम्ब से पीला रंग उत्पन्न होता है। ७६०ꝏ तरंग-लम्ब एवं ४३०ꝏ तरंग-लम्ब के सुदीर्घ अन्तराल में लाल-बैगनी दो रंग किन्तु ५८०ꝏ से ४८४ꝏ तरंग लम्ब के मध्य कितनी लम्बाई की प्रकाश-तरंग से किस रंग की संवेदना होती है उसे निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

प्रकाश-तरंग की लम्बाई

लम्बाई	रंग
(i) लगभग ३९० से ४३० M.M.	बैगनी (Violet)
(ii) लगभग ४३० से ५२५ M.M.	नीला (Blue)
(iii) लगभग ५२५ से ५९० M.M.	हरा (Green)
(vi) लगभग ५९० से ६५० M.M.	पीला (Yellow)
(v) लगभग ६५० से ७६० M.M.	लाल (Red)

७६० M.M. से अधिक लम्बी प्रकाश-तरंग को ऊन-रक्तकिरण (Infra red

rays) कहते हैं। इतनी लम्बी तरंगों से आँख को उत्तेजित करने पर प्रकाश की संवेदना न होकर ताप (Heat) की संवेदना होती है। ३९० M.M. से कम लम्बी प्रकाश-तरंगों से जो Ultra violet rays (अति नीललोहित किरण) कहलाती हैं चाक्षुष संवेदना नहीं होती प्रत्युत केवल एक Chemical activity/रासायनिक क्रियाशीलता उत्पन्न होती है।

वस्तु द्वारा प्रतिबिम्बित (Reflected) प्रकाश के अनुपात में हमें किसी वस्तु के रंग की संवेदना होती है। विभिन्न उत्तेजनाएँ विभिन्न लम्बाई की प्रकाश-तरंगें प्रतिबिम्बित करती हैं।

किसी भी वस्तु का कोई रंग नहीं है प्रत्युत उसके द्वारा प्रतिबिम्बित प्रकाश में रंग है जो द्रष्टा के चक्षुओं को प्रभावित करता है।

एक विशेष प्राचुर्य (Amplitude) के साथ जब ३९० M.M. से ७६० M.M. के मध्य की किसी लम्बाई की प्रकाश-तरंग हमारी आँख को प्रभावित करती है तब हम कोई रंग देखते हैं। ३९०-७६० M.M. की प्रकाश-तरंग से हमें चाक्षुष संवेदना भी होती है। हमें विभिन्न लम्बाई की प्रकाश-तरंगों के कारण विभिन्न रंगों की संवेदना होती है। सूर्य के प्रकाश में सभी लम्बाई की प्रकाश-तरंगें विद्यमान हैं।

रंग की चमक (Brightnend colour)—प्रत्येक रंग में उसकी रंगीनी के साथ चमक भी होती है। प्रत्येक रंग की चमक पृथक्-पृथक् होती है। कोई रंग अधिक और कोई कम चमकीला होता है। नील (Blue) रंग की अपेक्षा रक्त (Red) रंग अधिक चमकीला होता है। प्रकाशतरंग के प्राचुर्य (Amplitude) पर रंग की चमक निर्भर है। जब किसी रंग से अधिक प्राचुर्य की प्रकाश-तरंगें निकलती हैं तब वह अधिक चमकीला प्रतीत होता है। जिस रंग से कम प्राचुर्य की प्रकाशतरंगें निकलती हैं वह कम चमकीली प्रतीत होती है। किसी भी वस्तु का रंगहीन (श्वेत, काला या धूसर) दीख पड़ना भी प्रकाश तरंगों के प्राचुर्य के कारण होता है। प्रकाश-तरंग की लम्बाई को निश्चित रखते हुए उसके प्राचुर्य को बढ़ाने से उत्तेजना की चमक बढ़ती जाती है और अन्त में श्वेत रंग की संवेदना होने लगती है। प्रकाशतरंग के प्राचुर्य को कम करने पर चमक कम हो जाती है और अन्त में उत्तेजना अपना रंग खोकर काली प्रतीत होने लगती है।

कतिपय नियम एवं स्वाभाविक स्थिति—

(१) रंगों में पीत वर्ण (Yellow colour) सर्वाधिक चमकीला एवं नील-लोहित सर्वाधिक कम चमकीला होता है।

(२) प्रकाश-तरंग के प्राचुर्य पर ही रंग की चमक निर्भर है।

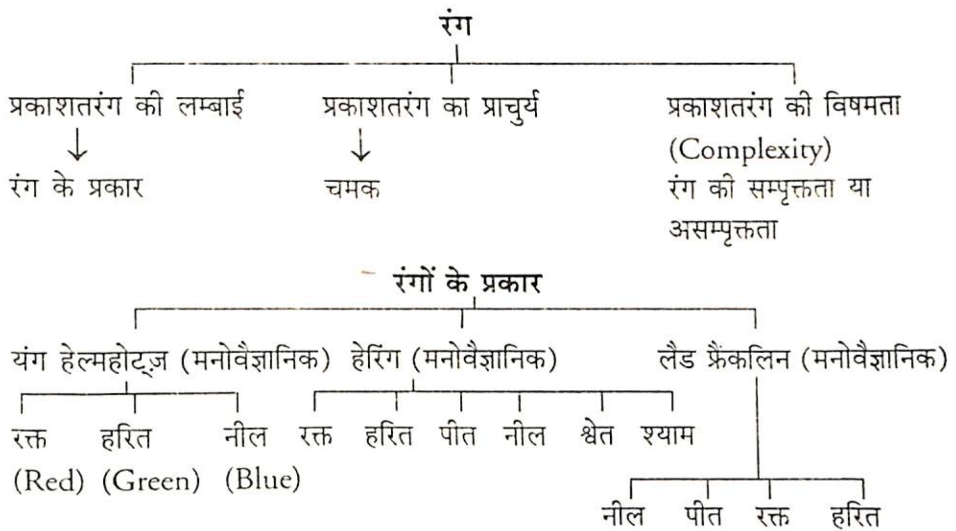
(३) जब किसी रंग से अधिक प्राचुर्य की प्रकाश-तरंगें निकलती हैं तब वे अधिक चमकीली प्रतीत होती हैं।

(४) जिस रंग से कम प्राचुर्य की प्रकाश-तरंगें निकलती हैं वे कम चमकीली प्रतीत होती हैं।

(५) किसी भी वस्तु की रंगहीनता (श्वेतता, कालापन, धूसरवर्णता प्रकाशतरंगों के प्राचुर्य के कारण होती है।

(६) प्रकाश-तरंग की लम्बाई को निश्चित रखते हुए उसके प्राचुर्य को बढ़ाते जाने पर उत्तेजना की चमक बढ़ जाने से अन्त में श्वेतता की संवेदना होने लगती है तथा प्रकाशतरंग के प्राचुर्य को कम करने पर चमक कम हो जाती है और अन्त में उत्तेजना अपना रंग खोकर काली मालूम पड़ने लगती है।

(७) उदाहरण—वस्तु का रक्त दीख पड़ना यह बताता है कि रक्त रंग प्रतीत होने हेतु जितनी लम्बाई की प्रकाश-तरंग (६५० से ७६० M.M. के मध्य की प्रकाशतरंग) चाहिए वह उस वस्तु द्वारा हमारी आँखों पर पड़ रही है। प्रकाशतरंगों के प्राचुर्य को कम करते जाने पर रक्त रंग की चमक कम हो जायेगी और अन्ततः रक्त रंग समाप्त होकर धूसर या काला प्रतीत होने लगेगा। सारांश यह कि प्रकाशतरंगों के प्राचुर्य पर ही किसी वस्तु का रंगहीन पड़ना निर्भर है।



(अद्यतन मान्यता भी इसी मत के अनुकूल है।)

तरंग-लम्ब पर ही दृष्टि-संवेदना का रंग निर्भर करता है।

(१) इन्द्रधनुष के लाल छोर पर तरंग-लम्ब ७६०ϖ।

(२) फिर नारंगी रंग के छोर पर तरंग-लम्ब की संख्या = ६४७ϖ।

(३) उससे आगे पीले रंग के छोर पर तरंग-लम्ब की संख्या = ५८०ϖ।

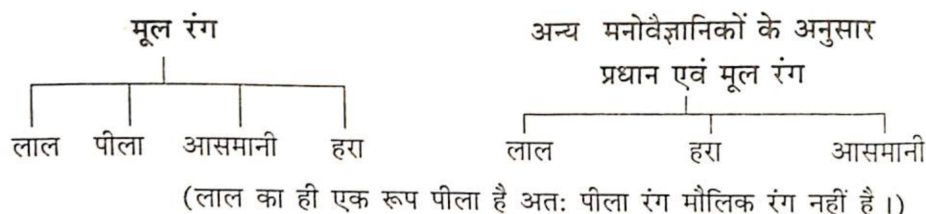
(४) हरे रंग के स्थान पर तरंगलम्ब की संख्या = ५२०ϖ हो जाता है।

(५) आसमानी रंग का उद्भव = प्रकाश का तरंगलम्ब ४९२ϖ का होता है।

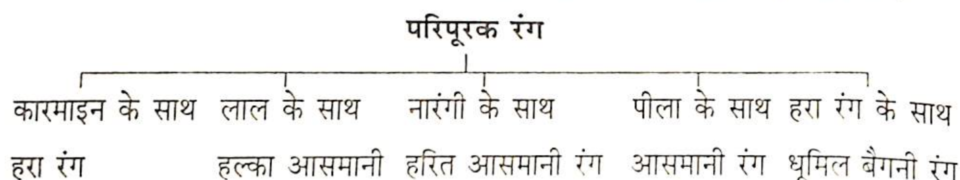
६) सबसे अन्तिम बैगनी रंग के सिलसिले में प्रकाश का तरंगलम्ब ४३०ꣳ का होता है।

(७) बैगनी रंग की उत्पत्ति हेतु प्रकाश के सबसे कम तरंगलम्ब की आवश्यकता है।

(८) लाल रंग को देखने के बाद कम तरंगलम्ब वाले प्रकाश की ओर दृष्टि करने पर ५८८ꣳ तरंगलम्ब के प्रकाश पर लाल रंग लुप्त हो जाता है। जहाँ पर लाल रंग लुप्तप्राय: हो जाता है वहीं से हरे रंग का आभास होने लगता है। हरा रंग जब तीव्र होने लगता है तब पीला रंग विलुप्त हो जाता है। पीला रंग प्रकाश के ५२६ꣳ तरंगलम्ब से कम में प्राप्त नहीं हो सकता। ५२६ꣳ तरंगलम्ब के बाद जब पीला रंग पूर्णत: लुप्त हो जाता है तब आसमानी रंग का उदय होता है। ४८४ꣳ तरंगलम्ब से कम तरंगलम्ब में हरा रंग पूर्णत: लुप्त हो जाता है किन्तु उसमें आसमानी रंग का प्राधान्य रहता है किन्तु बैगनी रंग का भी आभास रहता है। ५२६ꣳ तरंगलम्ब से कम तरंगलम्ब में हरा रंग तो रहता है किन्तु पीलेपन नहीं आसमानी रंग के साथ रहता है।



(लाल का ही एक रूप पीला है अत: पीला रंग मौलिक रंग नहीं है।)

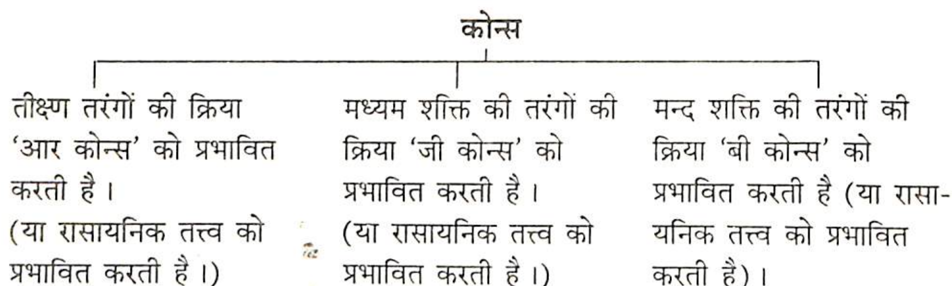


भगवती बगलामुखी का रंग पीला है।

(१) लाल के साथ आसमानी मिला देने पर बैगनी रंग उत्पन्न हो जाता है।

(२) लाल एवं पीला मिला देने पर नारंगी रंग उत्पन्न हो जाता है।

यंग हेल्महोट्ज़ महोदय का कथन है कि रंगों के अनुसार ही हमारी आँखों के तीन कोन्स भी हैं; यथा—(१) आरकोन्स, (२) जीकोन्स और (३) बीकोन्स।



यदि एक ही साथ लाल एवं हरे रंग की उत्तेजना हो तो पीले रंग की संवेदना होगी। इस सिद्धान्त ने पीले रंग को लाल एवं हरे रंग का मिश्रण बताया है—यह गलत है।

रेटिना के सबसे बाह्य स्तर में भी पीले रंग की अनुभूति होती है किन्तु उस बाह्य स्तर से हरे तथा लाल रंग की अनुभूति नहीं होती।

मनोवैज्ञानिक हेरिंग के मतानुसार लाल एवं पीला वर्ण उष्ण वर्ण है। हरा एवं आसमानी शीत वर्ण है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक लैडफ्रैंकलिन का मत है कि लाल एवं हरे वर्ण के एक परिमाण में एक साथ उत्तेजित होने पर पीत वर्ण की उत्तेजना होती है।

जानवरों में केवल रौड्स (Rods) ही होते हैं। वे केवल 'रौड्स' से देखते हैं 'कोन्स' से नहीं। मानव की आँखों में 'रौड्स' एवं कोन्स दोनों हैं। कोन्स ही वर्णों का विश्लेषण करने में समर्थ हैं। इन कोन्स में भी सर्वप्रथम उस वस्तु का विन्यास हुआ जिसके सहारे पीत/आसमानी एवं केवल पीतवर्ण का बोध होता है। बाद में पीत वर्ण ग्रहण करने वाली वस्तु के दो भाग हुए। इनमें से—

(१) एक लाल वर्ण को करने वाला था।

(२) दूसरा हरे वर्ण को ग्रहण करने वाला था।

(३) लाल एवं हरे वर्ण का एक परिमाण में एक साथ उत्तेजित होने से पीत वर्ण की उत्तेजना होती है।

(४) लाल-हरा-अन्धापन से पीड़ित व्यक्ति को केवल आसमानी एवं पीले रंग की संवेदना होती है।

कल्पना कीजिए कि आप लाल रंग के कक्ष में रहते भी हैं, लाल वस्त्र पहनते भी हैं, कमरों के पर्दे भी लाल हैं, फर्श भी लाल रंग की है, बिजली का बल्ब भी लाल रंग का है, भोजन की वस्तुएँ/वस्त्र, अन्य प्रयुक्त वस्तुएँ भी लाल रंग की हैं तो आपके चतुर्दिक् लाल वस्तुओं का रक्ताभ अथर्वा उसके अपने अथर्वा के रंगों को अवश्यमेव प्रभावित करेगा।

यदि बाह्य वातावरण में स्थित जड़ पदार्थों के अथर्वा के रंग द्वारा चैतन्य (चेतन प्राणी की चेतना) के अथर्वा के वर्ण में परिवर्तन होता है तो वह रंग अपने साथ जड़ता भी लायेगा। वर्णों का प्रचुर प्रयोग मानसिक विकृतियों का कारण होता है उसका आधार यही है। सारांश—

जड़ पदार्थों के अथर्वा या रंग का प्रभाव—

(१) चेतन प्राणी में उस अथर्वा के गुणों एवं जड़त्व का प्रवेश।

(२) तदनुकूल मानसिकता।

ज्योतिषशास्त्र में ग्रहशान्त्यर्थ जिन पत्थरों एवं उनके रंगों के उपयोग का विधान है

वह उनके अथर्वा पर ही आश्रित है। चिकित्सा-विज्ञान में (प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में) रंगीन बोतलों में पानी या तेल आदि वस्तुएँ सूर्य-रश्मियों के सम्पर्क में रखकर उनके प्रयोग से अनेक रोगों की निवृत्ति का विधान किया गया है, उसका भी मूलाधार अथर्वा ही है।

अथर्वा एवं वर्ण-परिवर्तन के साधन—किसी प्राणी के अथर्वा का परिवर्तन मुख्यत: तीन साधनों द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है—(१) ध्यान, (२) वातावरण और (३) वर्णतत्त्व (मन्त्रतत्त्व)।

(क) ध्यान तत्त्व—विश्व में किसी भी वस्तु-पदार्थ या सत्ता का जो भी वर्ण या रंग होता है वह विश्व में गोचर स्थूल वर्ण (रंग) का ही सूक्ष्म रूप होता है। प्रत्येक गोचर आकार का आधार उस मूल वस्तु का सूक्ष्म रूप होता है।

वस्तु का 'अथर्वा' उस वस्तु का सूक्ष्म शरीर है। ध्यान के समय हम उसके सूक्ष्म रूप का ही ध्यान करते हैं, क्योंकि हमारे विचार या ध्यान में वस्तु की पारमाण्विक भौतिक या स्थूल सत्ता तो रहती नहीं केवल उसकी कल्पना मात्र रहती है, जो कि विचारात्मक होने के कारण सूक्ष्म होती है और उसका सम्बन्ध सीधे सूक्ष्म शरीर से होता है न कि स्थूल शरीर से। हम ध्यान में जिस पदार्थ का ध्यान करते हैं उसके अथर्वा (सूक्ष्म शरीर) से अपने सूक्ष्म (कल्पना, भावना, विचार) स्वरूप का ही सम्बन्ध स्थापित करते हैं। हमारा अनन्य या एकनिष्ठ चिन्तन 'अथर्वा' का रूप धारण कर लेता है। अथर्वा एवं उसके वर्ण के स्वरूप में ही प्रत्येक प्राणी एवं प्रत्येक सत्ता का स्वरूप गठित होता है।

एकनिष्ठ या तद्रूपात्मक ध्यान (तदावेशात्मक ध्यान) के बिना—तद्रूप बने बिना—तादात्म्य प्राप्त किये बिना 'अथर्वा' में कोई भी परिवर्तन नहीं होता।

पृथक् मन्त्र एवं पृथक् ध्यान भी अनुकूल प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाता।

(ख) मन्त्रतत्त्व—मन्त्रों के जप से 'ईथर' (आकाशीय स्पन्दन) में ध्वनि-तरंगें उत्पन्न होती हैं। मन्त्रावृत्तियों के द्वारा ध्येय देवता का (उसके रंग एवं अथर्वा सहित उसके स्वरूप का) उदय एवं साक्षात्कार होता है। मन्त्र द्वारा 'अथर्वा' (देवता का आलोकमण्डल) अर्थात् देवता का स्वरूप प्रत्यक्षीकृत होता है।

भगवती के हाथों में स्थित अस्त्र एवं अन्य वस्तुएँ

भगवती के हाथों में मुख्यत: चार वस्तुएँ स्वीकार की गई हैं जो निम्नाङ्कित हैं—
(१) गदा, (२) वज्र, (३) पाश तथा (४) शत्रुजिह्वा।

(क) 'देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्'।

(ख) 'जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि'॥

(ग) 'मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्'।

भगवती की हस्त-धृत वस्तुओं का रहस्यार्थ—

जिस प्रकार भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के द्वारा हाथों में धृत वस्तुओं के पादार्थिक एवं लाक्षणिक दोनों अर्थ हैं उसी प्रकार भगवती बगलामुखी द्वारा हस्तधृत पदार्थों के भी दो निहितार्थ हैं।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के हस्तधृत पदार्थ	पदार्थों का अर्थ
१. ५ बाण	१. पञ्च तन्मात्राएँ ('शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा: पञ्चतन्मात्रा: पञ्च पुष्पबाणा:')
२. इक्षुधनुष	२. मन ('मन इक्षुधनु:')
३. बाण	३. 'वश्यो बाणो'
४. पाश	४. 'राग: पाशो'
५. अंकुश	५. 'द्वेषोऽङ्कुश:'।

(भावनोपनिषद्)

भगवती बगलामुखी के हस्तधृत पदार्थ

(१) गदा	'गद व्यक्तायां वाचि' धातु से 'गदा' शब्द निष्पन्न हुआ है। गदा दण्ड का प्रतीक है। गदा आततायिओं को दण्ड देने एवं सज्जनों की रक्षा करने का प्रतीक तो है ही साथ ही यह अभि-व्यक्ति की निरंकुशता (मिथ्या भाषण, अप्रिय भाषण, पैशुन्य, निन्दा, दुर्भावात्मक अभिव्यक्ति, विषयपंकिल एवं वासनात्मक अभिव्यक्ति आदि की क्रिया के कालुष्य) पर दण्डात्मक प्रहार का भी प्रतीक है। 'गद व्यक्तायां वाचि' धातु तो गदा के व्युत्पत्त्यात्मक अर्थ को इसी प्रकार सूचित करता है।
(२) वज्र	'वज्र' मृत्युदायक दण्ड का प्रतीक है। 'स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति' वाक्य वज्र को वाणी के साथ भी जोड़ता है।
(३) पाश	लज्जा, घृणा आदि अष्टपाश तो प्रसिद्ध ही हैं अत: यह शब्द जीवों को आबद्ध करने वाले 'मायिक पाश' का भी बोधक है और साथ ही माधुर्यादि षड्रसों द्वारा जीवों की पाशबद्धता का भी बोधक है।
(४) जिह्वा	जिह्वा के दो कार्य हैं—(१) बोलना एवं (२) रसास्वाद। जिह्वा को खींचने का अर्थ वाणी पर संयम न रखने एवं रसों की दासता स्वीकार करने पर आवागमनात्मक, जन्ममरणात्मक, सुख-दु:खात्मक दण्ड-विधान है। 'वरुणो वा एष दुर्वाग् उभयतो यदक्ष:' वाक्य में 'अक्ष:' (अ से क्ष

	पर्यन्त) वागेन्द्रिय एवं रसनेन्द्रिय के रूप में जिह्वा की क्रियाओं की दो दिशाएँ हैं। इन दोनों दिशाओं में की गई यात्राएँ सांकुश होनी चाहिए स्वच्छन्द, असंयमित एवं स्वेच्छाचारी नहीं। यही जिह्वा ग्रहण का संकेतितार्थ है। यौगिक साधना में 'गोमांस-भक्षण' क्रिया द्वारा जिह्वा को बाहर खींचकर उसका दोहन करते हुए उसे भ्रूमध्य तक लम्बी करने का भी विधान पाया जाता है। इस क्रिया से योगी अपनी लम्बी की हुई जिह्वा को कण्ठकूप में ले जाकर अमृतपान करता है। यह अमृतपान की यौगिक क्रिया का अभ्यास है। उपनिषदों में कहा गया है— 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणो ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयो वाचो मनुष्याः वदन्ति'॥ वाक्तत्त्व के चार रूप—१. परा वाक्, २. पश्यन्ती वाक्, ३. मध्यमा वाक्, ४. वैखरी वाक्। वाक् का प्रथम भाग परावाक् जिह्वाग्र ही तो है और भगवती बगलामुखी ने उसे ही पकड़ रखा है, तो क्या इसके द्वारा वे अपने परावागात्मक स्वरूप और इसके माध्यम से अपने मातृकास्वरूप की ओर इङ्गित नहीं कर रही हैं? भगवती वर्णात्मिका एवं मातृकात्मा हैं—वर्णविग्रहा कुण्डलिनी उन्हीं का मातृकास्वरूप है। कहा भी गया है—'वर्णानां मातृका देवी'। 'माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी'। जिह्वा को वागेन्द्रिय के अर्थ में ग्रहण करने पर 'जिह्वाग्रहण' अन्य निहितार्थों की ओर भी क्या संकेत नहीं देता? वागेन्द्रिय के रूप में जिह्वा के अर्थ— १. वर्णोच्चारण के साधन या माध्यम के रूप में। २. वाणी के परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के प्रतीक के रूप में। ३. मन्त्रात्मिका भगवती की मन्त्रस्वरूपता को संकेतित करने हेतु भगवती बगलामुखी को महाविद्या कहा गया है—'महाविद्यां महामायां'। ४. वर्णानुस्यूत नाद एवं महानाद 'ॐ' के स्वरूप को धारण करने की प्रतीकात्मकता को संकेतित करने हेतु।

	५. 'प्रणवः प्राणिनां प्राणाः' के अनुसार नादात्मा बगलामुखी की सर्व प्राणियों के प्राण रूप में स्थिति को संकेतित करने हेतु। ६. 'प्रणवः प्राणिचैतन्यम्' के अनुसार (भगवती बगलामुखी के नाद रूप में अवस्थित होकर) सबमें चैतन्य-सञ्चार की भूमिका निष्पादित करने के भाव को संकेतित करने हेतु। ७. 'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः' ॥ (वा.प.) वर्णात्मिका स्वरूप में समस्त षट्त्रिंशदात्मक जगत् (पृथ्वी से शिव पर्यन्त निःशेष प्रपञ्च) को उत्पन्न करने वाले, धारण करने वाले, लय करने एवं अपने में सदा संस्थित रखने वाले परावाक् स्वरूप को संकेतित करने हेतु (अर्थात् बगलामुखी के सृष्टि-स्थिति-संहार एवं अनुग्रह करने वाले स्वरूप को संकेतित करने हेतु)।

भगवती के हाथों एवं आयुधों की संख्या

ब्रह्मास्त्रमहाविद्या स्तोत्र में भगवती के हाथों की संख्या इस प्रकार दी गई है—

(१) द्विभुजा—'पीतवस्त्रां त्रिनेत्रां च द्विभुजां हाटकोज्ज्वलाम्' ॥ (ब्र. विद्यास्तोत्र ४)
'पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि'। (२)
'पर्यङ्कोपरि द्विभुजां'। (३०)

(२) चतुर्भुजा—'चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च कमलासनसंस्थिताम्'। (६)

(३) 'षष्टिसप्ततिशतं धृतास्त्रबाहुभिः परिवृतां बगलाम्बाम्'। (६०, ७०, १०० हाथों में अस्त्र धारण करने वाली)

(४) भगवती को—(क) 'धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्'। (१)

(ख) त्रिशूलधारिणी—'त्रिशूलधारिणीमम्बां सर्वसौभाग्यदायिनीम्'। (३)

(ग) 'शिलापर्वतहस्ताम्'। (४) 'शिलामुद्गरहस्ताम्'[1]। (३७)

(घ) पाश एवं वज्र धारण करने वाली—'मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्'।

१. दाहिने हाथों में—गदा, पाश।

२. बायें हाथों में—जिह्वा, वज्र[2]।—भी कहा गया है।

(ङ) ''वामे पाशाङ्कुशौ शक्तिस्तस्याधस्ताद् वरं शुभम्।

---

१. ब्रह्मास्त्रमहाविद्यास्तोत्र।

२. ब्रह्मास्त्रमहाविद्यास्तोत्र (रुद्रयामल-उत्तरखण्ड)।

दक्षिणे क्रमतो वज्रं गदा जिह्वाऽभयानि च' ॥ (१३) अर्थात् उनके बायें हाथों में पाश, अंकुश, शक्ति एवं दाहिने हाथों में वज्र, गदा, शत्रुजिह्वा तथा अभयदान की मुद्रा है।

(च) शृणिहस्ताम्—'चिन्तयामि सुभुजां शृणिहस्ताम्'। (३१) इसी श्लोक में उन्हें ६०, ७० एवं १०० हाथों एवं सभी में अस्त्र (अर्थात् १०० अस्त्र) धारण करने वाली भी कहा गया है।

यही भगवती को 'अरिदेहप्रेतासननिवेशितदेहाम्'; 'पञ्चप्रेतनिकेतनबद्धाम्' (१६); 'तत्सिंहासनमूलपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम्'[1] भी कहा गया है।

भगवती का प्रतीकार्थात्मक स्वरूप

भगवती स्थिर हैं। स्थिरमाया, स्तब्धमाया, स्थिरमुखी आदि पद पृथ्वी के सूचक हैं।

(१) भगवती का पीला वर्ण—पीलावर्ण पृथ्वी तत्त्व का है। पृथ्वी काठिन्य, स्थैर्य, धैर्य एवं निश्चलता की प्रतीक है अत: भगवती का पीला वर्ण भी उनमें इन निहित गुणों का सूचक है। भगवती का वाहन सिंह—यह धर्म का प्रतीक है।

(२) पीला वस्त्र—भगवती के वस्त्र का पीला वर्ण 'छन्द'. का प्रतीक है। पीत वर्ण माङ्गलिक भी है। चूँकि छन्द भी आच्छादक है और वस्त्र भी, अत: वस्त्र आच्छादक छन्द का प्रतीक है। मन्त्र में छन्द एक अनिवार्य तत्त्व है।

पीले वस्त्र और आच्छादक छन्द में साम्य है।

(३) स्वर्णकुण्डल—भगवती द्वारा पहना हुआ स्वर्णकुण्डल भोग-मोक्ष का संसूचक है या उसका प्रतीक है।

(४) रत्नपुष्पांकित माला—भगवती की माला ऐश्वर्यों का प्रतीक है।

(५) भगवती का मुकुट—पारमेष्ठ्य पद का प्रतीक है।

(६) चन्द्रमा—मुकुट पर स्थित चन्द्र षोडशी कला का प्रतीक है।

(७) भगवती के नेत्रत्रय—भगवती के नेत्रत्रय अग्नि, सूर्य एवं चन्द्रमा के निवास के प्रतीक हैं। इन्हें अवस्थात्रय का भी प्रतीक मान सकते हैं और चतुर्थी भगवती हैं।

देवता (बगलामुखी) का तात्त्विक स्वरूप

देवता के दो स्वरूप हैं—(१) देशकालावच्छिन्न स्वरूप तथा (२) देशकालानवच्छिन्न, सार्वकालिक एवं तात्त्विक स्वरूप।

भगवती बगलामुखी के दोनों स्वरूपों का वर्णन मिलता है। इनमें एक तो ब्रह्मास्त्रा, महास्तम्भरूपा, निश्चित काल एवं देश में आविर्भूत होने वाला, दक्षिणाम्नाय की

१. ब्रह्मास्त्रमहाविद्यास्तोत्र (रुद्रयामल-उत्तरखण्ड)।

देवता, सतयुग में हरिद्रा सरोवर से आविर्भूत पीताम्बरा देवी का है। किन्तु दूसरा भगवती बगलामुखी का सार्वकालिक तात्त्विक स्वरूप भी है। भगवती बगलामुखी तत्त्वतः संवित्तत्त्व हैं। वे सर्वान्तरभूता आत्मा हैं। वे विश्वात्मिका तथा विश्वोत्तीर्णा दोनों हैं। यही भगवती का तात्त्विक स्वरूप है। वे अपने तात्त्विक स्वरूप में सर्वान्तरभूत आत्मा हैं—

'सच्चिदानन्दवासना' की दृष्टि—

इस ग्रन्थ में भगवती के तात्त्विक स्वरूप को चार रूपों में प्रस्तुत किया गया है।

देवी का स्वरूप

विश्वात्मिका	विश्वोत्तीर्णा	प्रकाशामर्शरूपिणी	परापरमयी आत्मा

'विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम्।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम्'॥

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (एकेश्वरवाद)

क्या काली, लक्ष्मी, सरस्वती, तारा, षोडशी, बगलामुखी, सीता, पार्वती, भैरवी आदि देवियाँ पृथक्-पृथक् हैं? यदि उन्हें भगवान् का स्वरूप स्वीकार किया गया है तो क्या दर्जनों भगवान् हैं? यदि नहीं तो क्या वे अभिन्न हैं? क्या उनमें कोई भेद नहीं है? भेद है भी और नहीं भी है। तत्त्वतः तो कोई भेद नहीं है किन्तु औपाधिक स्तरों पर स्वरूपों में भेद भी है। कोयला बहुत बड़े दबाव एवं दीर्घकाल के बाद हीरा बन जाता है तथापि तत्त्वतः कोयला ही रहता है। उनमें नये गुणों का विकास हो जाने के बाद वह हीरा बन जाता है। उद्देश्य, आवश्यकता एवं प्रयोजन की भिन्नता के कारण एक ही शक्ति भिन्न-भिन्न कालों, स्थानों, स्वरूपों एवं शक्तियों के साथ अवतरित होती है। तत्त्वतः वे सारी शक्तियाँ एक ही मूलभूता शक्ति का पूर्णस्वरूप या कलाएँ होती हैं। इसीलिए बगलामुखी जो कि सतयुग में आविर्भूत हुई थीं उन्हें—

काली, कंसारि, कैलासेश्वरवल्लभा, कात्यायनी, केशवा, शिवा, गंगा, गौरी, गीता, गन्धर्वा, गरुडासना, गोविन्दा, गोपी, गोपिका, डाकिनी, उर्वशी, चामुण्डा, चण्डी, जाह्नवी, जनकात्मजा, तारा, दुर्गा, षोडशी, पार्वती, ब्रह्मरूपा-विष्णुरूपा-परब्रह्म महेश्वरी, सुभद्रा, शुम्भविनाशिनी, भद्रकाली, भैरवी, मेनका, महाकाली, महिषासुरघातिनी, यमुना, रामपत्नी, विन्ध्यस्था, शिवा, सनकादिस्वरूपा, हरिप्रिया, अपर्णा, कमला, सरस्वती, छिन्नमस्तका, हिंगुली, जानकी, गोमती, पुष्कर, प्रभासा, कंसासुरविनाशिनी, ललिता, चण्डिका, सावित्री, वैष्णवी, शंकरी, यक्षिणी, किराती, राक्षसी आदि सभी नामों से पुकारा गया है। ऐतिहासिक कालक्रम से इन नामों की संगति भी नहीं बैठती। जानकी तो त्रेता में हुई थी जबकि बगला सतयुग में, कंसारि तो द्वापर में हुई थी; जबकि बगला देवी सतयुग में आविर्भूत हुई थीं। विन्ध्यस्था देवी तो द्वापर में आविर्भूत हुई थीं जबकि बगलादेवी सतयुग में।

स्वरूप, गुण, शक्ति एवं कालक्रम के भिन्न होने पर भी यह आवश्यक नहीं कि उन अवतरित (आविर्भूत) विभिन्न कालिक एवं विभिन्न स्वरूपा शक्तियों में कोई मौलिक एवं तात्त्विक भिन्नता हो।

'श्रीदेव्यथर्वशीर्ष' में देवी देवताओं से कहती हैं कि मैं रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वेदेव, मित्र, इन्द्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, सोम, त्वष्टा, पूषा, विष्णु, ब्रह्मा, प्रजापति आदि सभी हूँ। इसीलिए कहा गया है कि—'सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि कलाकाष्ठादिरूपिणी'।

तन्त्रशास्त्र भगवती के विभिन्न स्वरूपों में कालिकभिन्नता, स्वरूप-भिन्नता, उद्देश्य-भिन्नता एवं लीला-भिन्नता के रहते हुए भी उनमें एवं संसार की विभिन्न दैवी शक्तियों एवं पदार्थों में एकरूपता एवं अभिन्नता देखता है। क्योंकि—

(१) 'यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरी'॥ (चतुश्शती)

इसीलिए कहा जा सकता है कि निर्वचनों में आभासमान विरोध विरोध नहीं मिथ्या विरोधाभास की भ्रान्ति है। क्योंकि—

(२) 'एका सती भगवती परमार्थतोऽपि सन्दृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव'[१]॥
(३) 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'।

भगवती बगलामुखी का विराट् विश्वरूपत्व

भगवती बगलामुखी गणेशस्वरूपा, नक्षत्रस्वरूपा, योगिनीस्वरूपा, राशि-स्वरूपा, मातृकास्वरूपा पीठमयी हैं।

भगवती पराम्बा बगलामुखी का ध्यान—

'उद्यत्सूर्यसहस्राभां पीनोन्नतपयोधराम्।
पीतमाल्याम्बरधरां पीतभूषणभूषिताम्॥
गदामुद्गरहस्ताञ्च पीतगन्धानुलेपनाम्।
लसन्नेत्रत्रयां स्वर्णमुकुटोद्भासिमस्तकाम्॥
गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं पीठमयीं ध्यायेन्मातृकां बगलां पराम्'॥ (सांख्यायनतन्त्र)

---

१. योगिनीहृदयदीपिका।

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी एवं बगलामुखी : एक तुलनात्मक विश्लेषण

महात्रिपुरसुन्दरी	बगलामुखी
'गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् । देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम्' ॥ (तन्त्रराजतन्त्र)	'गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीं राशिरूपिणीम् । देवीं पीठमयीं ध्यायन् मातृकां बगलां पराम्' ॥ (सांख्यायनतन्त्र)
१. गणेशरूपिणी—'माता निरुपम-तेजोमय्या: स्वस्या मरीचिरूपाणाम् । आवरणदेवतानामीशत्वादुच्यते गणेशीति' ।	भगवती महात्रिपुरसुन्दरी एवं बगलामुखी स्वरूपत: अभिन्न हैं अत: विश्वात्मिका एवं विश्वातीता दोनों हैं ।
२. ग्रहरूपिणी—'इच्छादित्रिसमष्टिर्गुणत्र-याढ्यानलेन्दुरविनेत्रा । एवं नवभिर्योगाद् ग्रहरूपेत्युच्यते माता' ।	वे विश्वात्मिका स्वरूप में—ग्रह, राशि, नक्षत्र, गणेश, योगिनी, मन्त्र, मातृका, वर्ण, पीठ एवं विद्या आदि सभी हैं । वे विश्वमय भी है और विश्वातीत भी, वे सर्वरूपा भी हैं और सर्वातीता भी[1] ।
३. नक्षत्ररूपिणी—'इन्द्रियदशकेनान्त:-करणचतुष्केण विषयदशकेन । प्रकृति-पुरुषगुणतत्त्वैर्जाता, नक्षत्ररूपिणी माता' ॥	
४. योगिनीरूपिणी—'नरपतिरविकाष्ठाषट्-समुद्रद्विसंख्यै र-क-ड-ब-व-हपूर्वैरक्ष-रैर्वेष्टिताभि: । ड-र-ल-क-स-हवर्णाद्या-किनीभिस्तु षड्भिर्घटिततनुरितीयं कथ्यते योगिनीति' ॥	
५. राशिरूपिणी—'पञ्चभिर्नागकूर्माद्यै: प्राणापानादिपञ्चभि: । जीवात्मपरमा-त्मभ्यां, चैषा राशिस्वरूपिणी' ॥ इतना ही नहीं भगवती ललिता की	

१. बगलाअष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ।

महात्रिपुरसुन्दरी	बगलामुखी
श्रीविद्या भी गणेशरूपिणी, ग्रहरूपिणी, नक्षत्ररूपिणी, योगिनीरूपिणी, राशि-रूपिणी है। विद्या एवं देवी के सारूप्य के कारण विद्या एवं देवी में अभेद है। श्रीचक्र भी ग्रहरूप, नक्षत्र-रूप, योगिनीरूप, राशिरूप है। 'विद्या' के अक्षरों से निर्मित होने के कारण चक्र श्रीविद्या (पञ्चदशाक्षरी) से अभिन्न है। अभेद की भावना की दृढ़ता के कारण अपना गुरु, देवता, विद्या एवं श्रीचक्र आदि परस्पर अभिन्न हैं। निष्कर्ष—'इत्थं माता विद्या चक्रं स्वगुरुः स्वयं चेति। पञ्चानामपि भेदाभावो मन्त्रस्य कौलिकार्थोऽयम्' ॥ (वरिवस्यारहस्यम्)	

भगवती बगलामुखी विश्वात्मा हैं

आगमशास्त्र यह स्वीकार करता है कि आत्मा ही देवता है और इसलिए विश्वविग्रहा, विश्वमूर्ति एवं विश्वात्मिका भगवती ललिता भी तत्त्वतः विश्वात्मा ही हैं।

'आत्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा'। अर्थात् आत्मा ही देवी का यथार्थ स्वरूप है।

आत्मा क्या है ? जो समस्त भावों अर्थात् सत्ताओं में प्राण रूप से, अस्तित्व रूप से या जीवन के रूप से स्थित है वह सत्ता का केन्द्र-बिन्दु ही आत्मा है। वह सर्वव्यापक, सर्वस्फुरित निर्वृतिस्वरूप (स्वप्रकाशस्वरूपविश्रान्तिस्थ एवं आनन्दस्वरूप) है। अनिरुद्धइच्छाप्रसर, दृक्क्रिय एवं और सार्वभौम रूप में सर्वप्रसरणशील है—

'आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृतचिद्विभुः।
अनिरुद्धेच्छाप्रसरः प्रसरद् दृक्क्रियः शिवः'[१] ॥

शक्ति, प्रकाश एवं विमर्श का सामरस्य है और यही शक्ति जगदात्मा है। शक्ति ही विश्वात्मा है।

१. सोमानन्द : शिवदृष्टि।

देवता (देवी) के रूपत्रय

शक्ति (देवी/देवता) के तीन रूप हैं—

१. **स्थूल** (सामान्य)—हाथ, पैर, मुख, शरीर, विशिष्ट रूप एवं विशिष्ट नाम-रूप-लीला-धाम वाला भौतिक स्वरूप।

२. **सूक्ष्म**—मन्त्रमूर्तिस्वरूप देवता।

३. **वासनामय**—(परम सूक्ष्म स्वरूप)—अनादि एवं अनन्त तत्त्व स्वरूप। अद्वितीय, अनाम, अरूप, नित्य तथा ब्रह्मरूप।

इसी आधार पर भगवती की उपासना के भी तीन रूप स्वीकार किये गये हैं जो निम्नांकित हैं—१. स्थूल, २. सूक्ष्म और ३. पर। भगवती के इन्हीं तीन रूपों के विषय में कहा गया है कि—

'सामान्यं परमं चेति द्वे रूपे विद्धि मेऽनघ।
पाण्यादियुक्तं सामान्यं यत्तु मूढोपासते॥
पररूपमनाद्यन्तं यन्ममैकमनामयम्।
ब्रह्मादि परमात्मादि शब्देनैतदुदीर्यते'॥

श्रीविद्यार्णव के अनुसार श्रीविद्या की मातृकाओं के विभिन्न रूप

सोम, सूर्य, अग्नि, काम, गणेश, योगिनी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला आदि ४९ देवता श्रीविद्या की मातृकाओं के प्रतिरूप हैं।

भगवती बगला के विभिन्न स्वरूप—(१) श्रीविद्यार्णव के अनुसार भगवती बगला—स्तम्भिनी, जम्भिनी, मोहिनी, वश्या एवं चलाचला हैं। वे वर्णरूपिणी हैं। ५१ पीठों में बगला भी एक पीठ हैं। बगलामुखी मातृका श्रीविद्या के अन्तर्गत ही है।

(२) भगवती बगलामुखी विष्णुवनिता भी हैं और विष्णुशंकरभामिनी भी—बगला 'विष्णुवनिता विष्णुशङ्करभामिनी'। (अष्टोत्तरशतनाम)

(३) भगवती बगलामुखी वेदमाता एवं महाविष्णु की माता भी हैं—'बगला वेदमाता च महाविष्णुप्रसूरपि'। (ब.अष्टोत्तर.)

(४) भगवती बगलामुखी मत्स्यावतार भी हैं और कूर्मावतार भी—'महामत्स्या महाकूर्मा'[१]।

(५) भगवती महात्रिपुरसुन्दरी एवं भगवती बगला में अभिन्नता है। प्रचण्ड वातप्रकोप से सृष्टि को नष्ट-भ्रष्ट होते हुए देखकर भगवान् विष्णु ने भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के दर्शनार्थ तप किया। महात्रिपुरसुन्दरी का ही भगवती बगला के रूप में स्वरूप प्रकट हुआ। अत: दोनों सत्ताओं को अभिन्न कहा जा सकता है।

---

१. बगलाअष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्।

बगला और सुन्दरी अभिन्न हैं

बह्वृचोपनिषद् की दृष्टि—बह्वृचोपनिषद् में षोडशी, श्रीविद्या, पञ्चदशाक्षरी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, बालाम्बिका को बगला देवी से अभिन्न कहा गया है—

'सैषा षोडशी श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी बालाऽम्बिकेति बगलेति मातङ्गीति स्वयंवरकल्याणीति भुवनेश्वरीति चामुण्डेति चण्डेति वाराहीति तिरस्करिणीति राजमातङ्गीति वा शुकश्यामलेति वा लघुश्यामलेति वा अश्वारूढेति वा प्रत्यङ्गिरा धूमावती सावित्री सरस्वती गायत्री ब्रह्मानन्दकलेति'। (८) (बह्वृचोपनिषद्)

(१) भगवती बगला ब्रह्म हैं। शाक्त दार्शनिक शक्ति को ही ब्रह्म मानते हैं। देव्युपनिषत् में इसकी पुष्टि भी की गई है—'सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः काऽसि त्वं महादेवीति। साऽब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगच्छून्यं चाशून्यं च'। बह्वृचोपनिषद् में कहा गया है—'ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते। तस्या एव ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णु-रजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनन्। गन्धर्वा अप्सरसः किन्नरा वादित्रवादिनः समन्तादजीजनन्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्'।

(२) भगवती बगला नारी तत्त्व एवं पुरुष तत्त्व का सामरस्यात्मक तेज हैं—विष्णु के तप से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के रूप में भगवती बगला का आविर्भाव हुआ एवं उनमें विष्णु का महातेज (विष्णु से निकलकर) लीन हो गया। अतः भगवती बगला सुन्दरी-तेज एवं विष्णु-तेज का एकीभूत तेजःपुञ्ज हैं।

(३) भगवती बगला स्तम्भन शक्तिमात्र नहीं प्रत्युत सृष्टि-पालन-संहार तीनों कार्यों की सूत्रधार हैं—

'त्रैलोक्यं च सृज्यत्येषा संहरेत् भुवनत्रयम्।
पालयेत् बगला विश्वम्, एकैकाक्षरमात्रतः'[१]॥

(४) भगवती बगलामुखी भोग-मोक्ष दोनों प्रदान करती हैं—
'तस्मात् तु भुक्तिं मुक्तिः स्यात् सम्पूज्य बगलामुखीम्'[२]।

(५) भगवती बगलामुखी वाराहावतार एवं नृसिंहावतार भी हैं—
'महामत्स्या महाकूर्मा महावाराहरूपिणी।
नरसिंहप्रियारभ्या.....'।

(६) भगवती बगलामुखी वामनावतार एवं जामदग्न्यस्वरूपा भी हैं—
'वामना बटुरूपिणी।

---

१. विष्णुयामलोक्त-बगला पटल। २. बगलापटल।

जामदग्न्यस्वरूपा च रामारामप्रपूजिता[१] ॥

(७) भगवती बगला बुद्धिरूपा, बुद्धभार्या एवं बौद्धपाखण्डखण्डिनी भी हैं—

'बुद्धिरूपा बुद्धभार्या बौद्धपाखण्डखण्डिनी'[२] ।

भगवती बगलामुखी के विभिन्न स्वरूप

(१) **भगवती का द्विभुजात्मक रूप**—भगवती बगलामुखी इस स्वरूप में स्थित होने पर अपने बाँयें हाथ से शत्रु की जिह्वा बाहर खींचकर उसे पीड़ित कर रही हैं और दक्षिणवर्ती हाथ की गदा से आघात करके उसे दण्डित कर रही हैं। इस स्वरूप में दो हाथ हैं। एक हाथ शत्रुजिह्वा पकड़े हुए हैं तो दूसरा (दक्षिणवर्ती) हाथ गदा से प्रहार कर रहा है—

'जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं, वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि'. ॥

उनके कानों में स्पन्दनशील एवं चञ्चल सोने के लटकते हुए सुन्दर कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं तथा उनके गले में मनोज्ञ एवं स्वर्ण के पीले चम्पा पुष्प सुशोभित हो रहे हैं। उनके अधरद्वय चन्द्रबिम्ब के समान रमणीय हैं। वे स्तम्भिनी देवी इसी स्वरूप में स्थित हैं।

(२) **अमृत रत्नाकर में भगवती का स्वरूप**—अमृत-रत्नाकर के रत्नमण्डप में सिंहासनासीन भगवती के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'पीयूषोदधि-मध्य-चारु-विलसद्रत्नोज्ज्वले मण्डपे
तत्सिंहासनमौलिपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम्।
स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदा बिभ्रती-
मित्थं पश्यति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽथ सर्वापदः' ॥

सारांश यह कि भगवती अमृत-समुद्र के मध्य स्थित रत्नसुशोभित मण्डप के स्वर्णखचित सिंहासन पर बैठकर एवं शत्रु के मस्तक को नीचे झुकाकर उसे ताड़ित करती हुई प्रेतासन पर आसीन हैं। उनके इस स्वरूप के ध्याता की समस्त विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

(३) **भगवती बगला का चतुर्भुज स्वरूप**—भगवती बगला का द्विभुजात्मक स्वरूप तो है ही किन्तु उनका चतुर्भुजात्मक स्वरूप भी है—

१. 'गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम्।

१-२. बगलाअष्टोत्तरशतनामस्तोत्र (९)।

चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ।।
मुद्‌गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वा च वज्रकम् ।
पीताम्बरधरां सान्द्रां दृढपीनपयोधराम् ।।
पीतभूषणभूषाङ्गीं धृतचन्द्रार्द्धशेखराम् ।
रत्नसिंहासनासीनामम्बां त्रैलोक्यसुन्दरीम्' ।। (सां. तन्त्र)

२. 'चतुर्भुजां त्रिनयनां पीतवस्त्रधरां शिवाम् ।
वन्देऽहं बगलां देवीं शत्रुस्तम्भनकारिणीम्' ।। (सां.तं.)

भगवती के हाथों में—शत्रुजिह्वा, गदा, पाश, वज्र तो हैं ही साथ ही उनके हाथों में—खड्‌ग, धनुष, बाण भी है—''शत्रोर्जिह्वां च खड्‌गं शरधनुसहितां व्यक्तगर्वाधिरूढाम्' । (सां.तं.)

(४) **भगवती बगला का सुन्दर एवं सौम्य स्वरूप**—भगवती बगला का यह स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

१. 'बालभानुप्रतीकाशां नीलकोमलकुन्तलाम्' ।

२. 'स्वर्णसिंहासनासीनां सुन्दराङ्गीं शुचिस्मिताम् ।
बिम्बोष्ठीं चारुवदनां वृत्तपीनपयोधराम्' ।।

३. 'श्रीपीते सुधाब्धौ रत्नपर्यङ्के मूले कल्पतरोस्तथा ।
ब्रह्मादिभिः परिवृतां बगलां भावयाम्यहम्' ।।

४. 'हृदि सम्भावयेद्देवीं बगलां सर्वसिद्धिदाम्' ।

५. 'जयं देहि रिपुं दह' । (सां.तन्त्र)

६. 'जातवेदमुखी देवि ! जगज्जननकारिणि' । अर्थात् जगन्माता के रूप में स्थित स्वरूप ।

७. 'कल्पद्रुमाधो हेमशिलां प्रविलसच्चित्तोल्लसत्कान्तिम् ।
पञ्चप्रेतासनमारूढा भक्तजनकामवितरणशीलाम्' ।। (सां. त. ३०।१)

८. 'पीतार्णवसमासीनां पीतगन्धानुलेपनाम् ।
पीतोपहाररसिकां भजे पीताम्बरां पराम्' ।। (सांख्यायनतन्त्र)

९. 'नवयौवनसम्भूतां सर्वाभरणभूषिताम् ।
पीतमाल्यानुवसनां स्मरेत्तां बगलामुखीम्' ।।

१०. 'सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्‌गरपाशबद्धरसनां सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तये' ।। (रुद्रयामलतन्त्र)

११. 'पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रक्तोत्पले मण्डपे
सत्सिंहासनमौलिपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां विभ्रमा-
मित्थं ध्यायति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽथ सर्वापदः' ॥

(सांख्यायनतन्त्र एवं रुद्रयामलतन्त्र)

(५) **भगवती का सर्वमङ्गलविधायी कारुण्यपूर्ण स्वरूप**—भगवती का यह स्वरूप—१. दुष्ट-स्तम्भन, २. उग्रविघ्नशमन, ३. दारिद्र्यविद्रावण, ४. भूभृद्भीशमन करने वाला, ५. मृगनयनियों का समाकर्षक, ६. सौभाग्यनिकेतन, ७. कारुण्य-पूर्णामृतस्वरूप तथा ८. मृत्यु-विनाशक है।

'दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं
भूभृद्भीशमनं चलन्मृगदृशां चेतः समाकर्षणम् ।
सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशः कारुण्यपूर्णामृतं
मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः' ॥ (रुद्रयामलतन्त्र)

'जिह्वाकीलन-भैरवी विजयते ब्रह्मादिमन्त्रो यथा' ॥

वे श्री, सर्वकल्याणी और नित्य तत्त्व हैं—

'श्रीनित्ये ! बगलामुखि ! प्रतिदिनं कल्याणि ! तुभ्यं नमः' ॥ (रुद्रयामलतन्त्र)

(६) **भगवती बगलामुखी अनन्त रूपात्मिका भी हैं**—वे कृष्णा, कपर्दिनी, कृत्या, कलहा, कलिनाशिनी, बुद्धिरूपा, बुद्धभार्या, बौद्धपाखण्डखण्डिनी, सर्वावतारस्वरूपा, कल्किरूपा, कलिहरा, कलिदुर्गार्तिनाशिनी, कोटिसूर्यप्रतीकाशा, कोटिकन्दर्पकेवला, कठिना, काली, कलाकैवल्यदायिनी, केशवी, केशवाराध्या, किशोरी, रुद्रा, रुद्रमूर्ति, रुद्राणी, रुद्रदेवता, नक्षत्ररूपा, नक्षत्रा, नागिनी, नागजननी, नागराजनागेश्वरी, नागकन्या, नागात्मजा, नागाधिराजतनया (पार्वती), नीरदा, पीता, श्यामा, रक्ता, नीला, घना, श्वेता, सौभाग्यदायिनी, सौम्या, सुभगा, स्तम्भिनी, मोहिनी, यक्षिणी, सिद्धेशा, सिद्धिरूपिणी, लंकापतिध्वंसकरा, महारावणहारिणी, परमेश्वरी, पराणुरूपा, वरदा, वरदानपरायणा, वसुदा, ब्रह्मरूपा, पीतवसना, पीतभूषणभूषिता, पीतपुष्पप्रिया, पीतहरा और पीतस्वरूपिणी हैं[१] ।

(७) **भगवती का वात्सल्यपूर्ण एवं सर्वशक्तिमान् स्वरूप**—भगवती अभिमानी वक्ता को गूँगा बना देती हैं, क्षितिपति को रंक बना देती हैं, सर्वदाही अनल को शीतल बना देती हैं, क्रोधी को प्रशान्त कर देती हैं, दुष्टों को सज्जन बना देती हैं, द्रुतगामी लँगडे के समान हो जाता है, गर्वोन्मत्त व्यक्ति का गर्व चूर्ण-चूर्ण कर देती हैं और सारे चेतन प्राणियों को जड़ीभूत (या जड़) बना देती हैं—

---

१. विष्णुयामलतन्त्र में बगलाअष्टोत्तरशतनामस्तोत्र (२)।

'वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः' ॥

(८) **पीतवर्णा भगवती बगला का मदोन्मत्त स्तम्भनास्त्रस्वरूप**—इस स्वरूप को इन शब्दों में चित्रित किया गया है—

'पीतवर्णां मदाघूर्णां समपीनपयोधराम्।
चिन्तयेद्बगलां देवीं स्तम्भनास्त्राधिदेवताम्' ॥

भगवती को अन्य स्वरूपों में भी दिखाया गया है; यथा—'सर्वावयवशोभाढ्यां समपीनपयोधराम्'।

(९) **भगवती का पानपात्रधारिणी रूप**—इस स्वरूप में वे सुरा-चषक धारण करके स्थित हैं—'पानपात्रयुते देवि! बगले त्वां नमाम्यहम्'।

'बिम्बोष्ठीं चारुवदनां समपीनपयोधराम्।
पानपात्रं वैरिजिह्वां धारयन्तीं शिवां भजे' ॥

कहीं-कहीं उन्हें सप्तोदरी, सर्वमुखार्चिता भी कहा गया है—'सप्तोदरीं सर्वमुखामरार्चिताम्'। वे पीताम्बरालंकृत पीतपुष्पा भी हैं—'पीताम्बरालङ्कृतपीतपुष्पाम्'। उन्हें मदविह्वला एवं मदविह्वलचेतसा भी कहा गया है—'मदविह्वल-चेतसाम्'। उन्हें आसवप्रिय भी कहा गया है—'नमामि बगलां देवीमासवप्रियभामिनीम्'।

(१०) **भगवती का कौलागमैकसंवेद्य स्वरूप**—भगवती बगला शाक्तों की कौलशाखा द्वारा पूजित एवं कौलावताम्बिका वाममार्गी स्वरूप भी है—'कौलागमैकसंवेद्यां यदा कौलावताम्बिकाम्'।

(११) **भगवती बगला का चिन्मय एवं शक्तिस्वरूप**—भगवती शक्तियों की भी शक्ति हैं। वे चिन्मय शक्ति हैं। वे चितिशक्ति हैं। विश्व की समस्त चेतना एवं शक्तियाँ उन्हीं से उद्भूत होती हैं। इसीलिए उन्हें चिन्मयी एवं शक्तिरूपिणी कहा गया है—

'देवता बगलानाम्नी चिन्मयी शक्तिरूपिणी'। (सा.तं)

भगवती बगला सर्वसिद्धिप्रदात्री देवी हैं—इसी बात को ऋषि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. 'भजेऽहं सर्वसिद्ध्यर्थं बगलां चिन्मयीं हृदि'।
२. 'हृदि सम्भावयेद्देवीं बगलां सर्वसिद्धिदाम्'।

(१२) **भगवती बगला का कल्पतरु के नीचे रत्नपर्यङ्कासीन स्वरूप**—भगवती बगला अवतार-प्रयोजन की प्रधानता की दृष्टि से तो कोपावृता हैं—'जिह्वां समुत्पाट्य कोपसंयुताम्'; तथापि उनका सुरम्य स्वरूप क्षीरसमुद्र में कल्पतरुओं के नीचे रत्नपर्यंक पर आसीन स्वरूप है—'श्रीपीते सुधाब्धौ रत्नपर्यङ्के मूले कल्पतरोस्तथा'।

(१३) **भगवती बगला का रौद्ररूप**—भगवती बगला के रौद्र एवं सौम्य दोनों स्वरूप हैं। उनका स्वरूप तो एक ही है किन्तु उसमें भी एक रौद्रभाव का अभिव्यञ्जक है तो दूसरा सौम्य भाव का। यथा—

'नमस्ते बगलां देवीं जिह्वास्तम्भनकारिणीम्।
भजेऽहं शत्रुनाशार्थं मदिरासक्तमानसाम्'॥

भगवती बगला 'सर्वावयवशोभाढ्यां समपीनपयोधराम्' के स्वरूप में मनोज्ञ भी हैं। 'पीतवर्णां मदाघूर्णां'; 'स्तम्भनास्त्रस्वरूपिणीं'; 'बुद्धिनाशनतत्पराम्'; 'स्तम्भनास्त्राधिदेवताम्'; 'जिह्वाग्रमादाय करद्वयेन छित्वा दधन्तीमुरुशक्तियुक्ताम्'; 'भजेऽहं शत्रुनाशार्थमदिरासक्तमानसाम्'; 'परप्रज्ञापहारीं तां परवर्गप्रभेदिनीम्। परविद्याभक्षिणीं तां बगलां हृदि भावयेत्'; 'नमस्ते देवदेवेशीं जिह्वास्तम्भनकारिणीम्'; 'पानपात्रगदायुक्तां भजेऽहं बगलामुखीम्'।

भगवती का रौद्र एवं भीषण रूप भी हैं—

'गदाभ्रमणभिन्नाभ्रां भ्रुकुटीभीषणाननाम्।
भीषयन्तीं भीमशत्रून् भजे भक्तस्य भव्यदाम्'॥ (बगलाहृदयस्तोत्र)

वे परमतेजोरूप, पीततेज:स्वरूपिणी हैं—'तेजोरूपमयीं देवीं पीततेज:-स्वरूपिणीम्'। और शत्रुसंघविदारिणी हैं—'बगले। मे वरं देहि शत्रुसङ्घविदारिणि'। (बगलाहृदयस्तोत्र)

(१४) **भगवती बगलामुखी का परब्रह्मस्वरूप**—भगवती बगला इस स्वरूप में जगज्जननी तो हैं ही—'जातवेदमुखीदेवी, जगज्जननकारिणी'। साथ ही वे नर-नारायणप्रिया एवं परब्रह्माधिदैवता भी है—

'नानालङ्कारशोभाढ्यां नरनारायणप्रियाम्।
वन्देऽहं बगलादेवीं परब्रह्माधिदैवताम्'॥

भगवती बगला विश्ववन्द्या ही नहीं प्रत्युत वे विश्वेश्वरी, विश्वानन्दस्वरूपिणी भी हैं तथा सभी प्राणियों के हृदय में निरन्तर निवास करने वाली भी हैं। वे विश्वानन्दरूपा भी हैं—

'विश्वेश्वरीं विश्ववन्द्यां विश्वानन्दस्वरूपिणीम्।
पीतवस्त्रादिसंयुक्तां पीतां हृदि निवासिनीम्'॥ (सांख्यायनतन्त्र)

भगवती बगलामुखी करोड़ों योगिनियों से घिरी हुई रहती हैं और इस स्वरूप में स्थित वे परब्रह्म हैं—

'योगिनीकोटिसहिता पीताहारोपचञ्चलाम्।
बगलां परमां वन्दे परब्रह्मस्वरूपिणीम्'॥ (सांख्यायनतन्त्र)

चूँकि भगवती बगला विश्वरूपा और शक्तिरूपा हैं अत: विश्व एवं शक्तियों के समस्त रूपों में भी वे ही स्थित हैं अर्थात् वे सर्वरूप हैं। इसीलिए उन्हें—भैरवी, भद्रकाली, वाराही, श्रीविद्या, समया, महेशी, बगला, कामेशी, मातङ्गी, त्रिपुरा, कामेशी एवं (सर्वमय एवं सर्वरूप के अतिरिक्त) 'परात्परपरा' भी कहा गया है—

'मातर्भैरवि! भद्रकालि! विजये! वाराहि! विश्वाश्रये!
श्रीविद्ये समये! महेशि! बगले! कामेशि! रामे! रमे!
मातङ्गि! त्रिपुरे! परात्परपरे! स्वर्गापवर्गप्रदे!
दासोऽहं शरणागत: करुणया विश्वेश्वरी! त्राहि माम्'॥

भगवती त्रिलोकजननी हैं। इसके अतिरिक्त वे सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। यथा—

१. 'त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघसञ्छेदिनी'। २. योषाकर्षणकारिणी। ३. त्रिजगतामानन्दसंवर्द्धिनी। ४. दुष्टोच्चाटनकारिणी। ५. जनमन:सम्मोहसन्दायिनी।

(१) भगवती बगलामुखी सर्वावताररूपा हैं। वे महामत्स्या, महाकूर्मा, महावाराहरूपिणी, नरसिंहप्रिया, वामना, बटुरूपिणी, जामदग्न्यस्वरूपा, रामा, कृष्णा और कल्किरूपा भी हैं—

'महामत्स्या महाकूर्मा महावाराहरूपिणी।
नरसिंहप्रिया रम्या वामना बटुरूपिणी॥
जामदग्न्यस्वरूपा च रामारामप्रपूजिता।
'कल्किरूपा कलिहरा कलिदुर्गतिनाशिनी'[1]॥

(२) भगवती बगलामुखी विष्णुपत्नी (महालक्ष्मी) भी हैं और महाविष्णु की जननी भी हैं—

'बगला विष्णुवनिता विष्णुशङ्करभामिनी।
महाविष्णुप्रसूरपि.....'। (विष्णुयामल)

(३) भगवती बगलामुखी शंकर की भामिनी एवं वेदमाता हैं—

(i) 'बगला विष्णुवनिता विष्णुशङ्करभामिनी।
बहुला वेदमाता च'। (विष्णुयामल)

(ii) वे केशवी भी हैं और केशवाराध्या भी हैं—
'केशवी केशवाराध्या किशोरी केशवस्तुता'॥

---

१. विष्णुयामल।

(iii) वे रुद्रभामिनी भी है और रुद्रमूर्ति, रुद्राणी एवं रुद्रदेवता भी हैं—

'रुद्ररूपा रुद्रमूर्ती रुद्राणी रुद्रदेवता'[१]।

(४) भगवती बगलामुखी नक्षत्ररूपा भी हैं—

'नक्षत्ररूपा नक्षत्रा नक्षत्रेशप्रपूजिता।
नक्षत्रेशप्रिया नित्या नक्षत्रपतिवन्दिता'[२]॥

(५) भगवती बगलामुखी पराणु, सिद्धि, वाणी एवं ब्रह्म हैं—

१. 'पराणुरूपा परमा'। २. 'यक्षिणीसिद्धनिवहा सिद्धेशा सिद्धिरूपिणी'। ३. 'वसुदा बहुदा वाणी'। ४. 'ब्रह्मरूपा वरानना'। ५. वे परमेश्वरी भी हैं—'देव-दानव-सिद्धौघपूजिता परमेश्वरी'[३]॥

(६) भगवती बगला सृष्टि-स्थिति-विनाश की आदिकारणरूपा महेश्वरी हैं—

'सृष्टिस्थितिविनाशानामादिभूतां महेश्वरीम्'। (ना.प्र.)

वे जगद्विध्वंसिनी महामाया एवं अजरामरणकारिणी देवी हैं—

'जगद्विध्वंसिनीं देवीमजराऽमरकारिणीम्।
तां नमामि महामायां महदैश्वर्यदायिनीम्'॥ (ना.प्र.)

(७) भगवती बगलामुखी ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मविद्या, ब्रह्ममाता एवं ब्रह्मेशी हैं—

'ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मविद्या च ब्रह्ममाता सनातनी।
ब्रह्मेशी ब्रह्मकैवल्यं बगला ब्रह्मचारिणी'॥ (ना.प्र.)

(८) भगवती बगलामुखी पराविद्या, परासिद्धि, पार्वती एवं नारायणी हैं—

'पराविद्या परासिद्धिः परस्थानप्रदायिनी'।
'पीताम्बरा पार्वती च पीताम्बरविभूषिता'।
'नारायणी नारसिंही नित्यानन्दा नरोत्तमा'॥

(९) भगवती यशोदानन्दतनया (विन्ध्याचल की देवी) भी हैं—

'यशोदानन्दतनया नन्दनोद्यानवासिनी'। (ना.प्र.)

भगवती ध्येया और ध्यान स्वरूपा दोनों हैं—'ध्येया ध्यानस्वरूपिणी'। (ना.प्र.)

(१०) भगवती स्वाहा, फट् एवं फट्मंत्रा भी हैं—

'फट्मन्त्रा स्फटिका स्वाहा स्फोटा च फट्स्वरूपिणी'।

(११) भगवती बगलामुखी ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति एवं पञ्चवक्त्रा हैं—

'ब्रह्मशक्तिर्विष्णुशक्तिः पञ्चवक्त्रा शिवप्रिया'। (ना.प्र.)

१-३. विष्णुयामल।

वे वैकुण्ठवासिनी देवी भी है और ब्रह्म, विष्णु एवं परब्रह्म भी हैं—

'वैकुण्ठवासिनी देवी वैकुण्ठपददायिनी।
ब्रह्मरूपा विष्णुरूपा परब्रह्ममहेश्वरी' ॥ (ना.प्र.)

(१२) भगवती बगला शुम्भदैत्यविनाशिनी एवं महिषासुरघातिनी भी हैं—

'भद्रा सुभद्रा भवदा शुम्भदैत्यविनाशिनी।
माहेश्वरी महामाया महिषासुरघातिनी' ॥ (ना.प्र.)

भगवती महामाया, महामोहा, महाविद्या एवं महास्मृति भी हैं—

'मन्दहासा महामाया मोहिनी महदुत्तमा।
महामोहा महाविद्या महाघोरा महास्मृतिः' ॥ (उ.ना.प्र.तं.)

(१३) भगवती बगलामुखी अनन्तरूपा हैं—

(i) ब्रह्मरूपा— 'ब्रह्मस्थिता ब्रह्मरूपा ब्रह्मणा वेदवन्दिता।
ब्रह्मोद्भवा ब्रह्मकला ब्रह्माणी ब्रह्मबोधिनी ॥

(ii) वेदरूपा— 'वेदाङ्गना वेदरूपा', 'विद्यावती वेदधारी'।

(iii) वामाचारप्रिया—'वामाचारप्रिया वह्निर्वामाचारपरायणा।
वामाचाररता देवी वामदेवप्रियोत्तमा ॥

(iv) षट्चक्रनिवासिनी—'षण्मुखी च षडङ्गा च षट्चक्रविनिवासिनी।
षट्चक्रभेदनकरी षट्चक्रस्थस्वरूपिणी' ॥

(v) षड्ग्रन्थिरूपा—'षड्ग्रन्थियुता षोढा षण्माता च षडात्मिका'।

(vi) षडानना—'षडानना षड्रसा च षष्ठी षष्ठेश्वरी प्रिया'।

(vii) षोडशी एवं षोढान्यासरूपा—

'षडङ्गस्वादा षोडशी च षोढान्यासस्वरूपिणी'।

(viii) सनकादिस्वरूपा—'सनकादिस्वरूपा च शिवधर्मपरायणा'।

(ix) षोडशस्वररूपा, सिद्धविद्या एवं सिद्धमाता—

'षोडशस्वरूपा च षण्मुखी षडदान्विता।
सिद्धविद्या सिद्धमाता सिद्धासिद्धस्वरूपिणी' ॥

(x) हरिरूपा एवं हरिप्रिया—

'हरिरूपा, हरिप्रिया, हरिणाक्षी हरिप्रिया'।

(xi) आदिविद्या, आदिभूता, इन्द्राणी, उमा, कात्यायनी—

'आदिविद्या आदिभूता आदिसिद्धिप्रदायिनी'।
'इन्द्रप्रिया च इन्द्राणी', 'उमा कात्यायनी तथा'।

(xii) ॐकाररूपा—

उमापतिप्रिया देवी शिवा चौङ्काररूपिणी।
ओङ्कारवलयोपेता ओङ्कारपरमाकला॥
ओङ्काराक्षरमण्डिता ॐलोकपरवासिनी।
ॐकारमध्यबीजा च ॐ नमोरूपधारिणी॥
ॐकारा अः षड्मन्त्रा अक्षाक्षरविभूषिता।
प्रणवोङ्काररूपा च प्रणवोच्चारभाक् पुनः'॥

(xiii) परब्रह्मस्वरूपा, भुवनेश्वरी बीजाक्षरी महाविद्या—'परब्रह्मस्वरूपा च', 'बीजाख्या नेत्रहृदया ह्रींबीजा भुवनेश्वरी' कामराजाक्लिन्ना', 'क्लीं क्लीं क्लीं रूपिकादेवी क्रीं क्रीं क्रीं नामधारिणी'।

'श्री श्रीङ्कारा महाविद्या श्रद्धा श्रद्धावती तथा।
'ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं परा च क्लीङ्कारी परमाकला'।
'ह्रीं क्लीं श्रीङ्कारस्वरूपा सर्वकर्मफलप्रदा'॥

(xiv) सर्वाढ्या, सर्वदेवी, सर्वशक्ति—

'सर्वाढ्या सर्वदेवी च सर्वसिद्धिप्रदा तथा।
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च वाग्विभूतिप्रदायिनी'॥

(xv) सर्वमोक्ष, सर्वभोग, सर्वशक्ति, सर्वानन्द, सर्वसिद्धि, सर्वचक्र, सर्वसौख्य, सर्वानन्द, सर्ववाञ्छितदात्री—'सर्वमोक्षप्रदा देवी सर्वभोगप्रदायिनी'। 'सर्वशक्तिप्रदायिनी'। 'सर्वानन्दमयी चैव सर्वसिद्धिप्रदायिनी'। 'सर्वचक्रेश्वरी देवी सर्वसिद्धेश्वरी तथा'। 'सर्वसौख्यप्रदायिनी'। 'सर्वानन्दप्रिया देवी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी'। 'मनोवाञ्छितदात्री च'।

(xvi) अकारादिक्षकारान्तवर्णमालारूपा दुर्गा—

'अकारादिक्षकारान्ता दुर्गादुर्गार्तिनाशिनी'।

(xvii) स्वधा, स्वाहा, वषट्करी नवदुर्गा—

'स्वधा स्वाहा वषट्करी'। 'नवदुर्गा नरोत्तमा'।

(xviii) सर्वविद्या, सर्वतिथिरूपा—

'सङ्क्रान्तिः सर्वविद्या'। 'प्रथमा च द्वितीया च तृतीया च चतुर्थिका। पञ्चमी चैव षष्ठी च विशुद्धा सप्तमी तथा॥ अष्टमी नवमी चैव दशम्येकादशी तथा। द्वादशी त्रयोदशी च चतुर्दश्यथ पूर्णिमा। अमावस्या तथा पूर्वा उत्तरा परिपूर्णिमा'॥

(xix) कुलाचारपरायणा—

'कुलेश्वरी कुलवती कुलाचारपरायणा।
कुलकर्मसु रक्ता च कुलाचारप्रवर्द्धिनी'॥

(xx) क्षमा, धृति, स्मृति, मेधास्वरूपिणी—
'क्षमा धृतिः स्मृतिर्मेधा कल्पवृक्षनिवासिनी'।

(xxi) कालीरूपा—
'काली कराली काल्या'। 'कीलिनी कालिका चैव'।
'ऊर्ध्वकाली सिद्धिकाली दक्षिणाकालिका शिवा'।

(xxii) सरस्वती, छिन्नमस्तका, सर्वेश्वरी, परादेवता-
'नील्या सरस्वती सा त्वं बगला छिन्नमस्तका'। (उ.ना.तन्त्र)

भगवती बगलामुखी मन्त्ररूपा एवं गुरुरूपिणी भी हैं—
'मन्त्ररूपा परादेवी तथैव गुरुरूपिणी'।

भगवती बगलामुखी विश्वेश्वरी एवं विश्वमाता हैं और साथ ही सदाशिवा एवं उमा भी हैं—

'विश्वेश्वरी विश्वमाता ललिता वसितानना।
सदाशिवा उमा क्षेमा चण्डिका चण्डविग्रहा'॥

भगवती बगलामुखी सर्वदेवमयी, विश्वरूपा एवं सर्वेश्वरी हैं—

सर्वदेवमयी देवी, सावित्री च महादेवी, यमदूती, विन्ध्यवासिनी, भरुण्डा, सर्वविद्या, सर्वरोगहरा, योगमाता, चतुर्वेदा, चतुर्विद्या, संसारार्णवतारिणी, यक्षिणी, किराती, राक्षसी, विश्वहन्त्री, कमला, हरविनाशिनी, त्रैलोक्याकर्षिणी, धात्री सर्वलोकानां एवं जानकी भी हैं। (उत्कटशम्बर नागेन्द्रप्रयाणतन्त्र)

= 'सावित्री च महादेवी परप्रियविनायका'।
= 'यमदूती च पिङ्गाक्षी वैष्णवी शङ्करी तथा'॥
= 'सर्वेश्वरी यक्षिणी च किराती राक्षसी तथा'।
= 'विश्वहन्त्री विश्वरूपा विश्वसंहारकारिणी'।
= 'धात्री च सर्वलोकानां हितकारणकामिनी'।
= 'कमला सूक्ष्मदा देवी धात्री हरविनाशिनी'।
= 'परारूपवती देवी त्रैलोक्याकर्षकारिणी'।
= 'ज्ञानदानकरी यज्ञा जानकी जनकप्रिया'। आदि।

वे ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही[१], नारसिंही, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी के साथ ही डाकिनी, राकिनी आदि भी हैं—

'ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंही चामुण्डा महालक्ष्मीश्च।
षड्योनिगर्भान्ता डाकिनी-राकिनी-लाकिनी-काकिनी-शाकिनी-हाकिनी'[२]॥
'ब्रह्मास्त्रां महाविद्यां शाम्भवीं सर्वस्तम्भकरीं सिद्धां चतुर्भुजाम्'[३]।

---

१. उ.शं.ना.प्र.। २. पीताम्बरोपनिषत्। ३. पीताम्बरोपनिषद्।

भगवती बगलामुखी का ध्यानस्वरूप

उपनिषदों में भगवती बगलामुखी का स्वरूप—

भगवती बगलामुखी विष्णुतेज:समन्वित भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का रूपान्तर हैं। वे ब्रह्मास्त्रविद्या, ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या, स्तब्धमाया तथा स्थिरमाया हैं।

उनका यथार्थ स्वरूप तो अकल्पनीय है। उनका तात्त्विक स्वरूप अवाङ्मनस-गोचर एवं सर्वातीत है तथापि शास्त्रों में उनके जिन-जिन स्वरूपों को अनावृत किया गया है उनके अनुसार भगवती का स्वरूप इस प्रकार है—

पर स्वरूप (अन्तर्यागोपयोगी स्वरूप) (अतिसूक्ष्म स्वरूप) (वासनात्मक स्वरूप)	परापर स्वरूप (सूक्ष्म स्वरूप) सूक्ष्मस्वरूप-मंत्रस्वरूप	अपर स्वरूप (स्थूल स्वरूप) कर, चरण आदि अवयव वाला साकार स्वरूप (बहिर्यागोपयोगी स्वरूप)

(१) 'कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी।
अस्यां परिणतायां तु न कश्चित् पर इष्यते'[१] ॥

इसी शक्ति से शक्तिमान् (शिव) शक्ति-सम्पन्न बन पाते हैं—

(२) 'परो हि शक्तिरहित: शक्त: कर्तुं न किञ्चन।
शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्तो यदा भवेत्'[२] ॥
'शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नम्'।

(३) 'शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते'। (नित्याषोडशिकार्णव)

(४) 'कवलीकृतनिश्शेषा बीजाङ्कुरतया स्थिता' ॥ (नि.षो.)

(५) 'एषा सा परमा शक्तिरेकैव परमेश्वरी।
त्रिपुरा त्रिविधा देवी ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी' ॥ (नि.षो.)

(६) 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'। (शक्तिसूत्र)

मेरुतन्त्रानुसार बगलादेवी का ध्यानस्वरूप—(१) भगवती की गम्भीराकृति है। (२) वे मदोन्मत्ता हैं। (३) वे प्रतप्तस्वर्णवर्णा हैं। (४) वे पीताम्बर धारण की हुई हैं। (५) वे वर्तुलाकार एवं परस्पर मिले हुए पीन स्तनवाली हैं। (६) वे स्वर्णकुण्डलों से मण्डित हैं। (७) उनके मस्तक पर पीत वर्ण की शशिकला सुशोभित हो रही है। (८) उनके दाहिने दोनों हाथों में मुद्गर एवं पाश तथा बायें दोनों हाथों में वैरिजिह्वा एवं वज्र विराज रहे हैं। (९) वे पीत वर्ण के वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर स्वर्ण-सिंहासन पर कमलासन लगाकर समासीन हैं।

---

१. नित्याषोडशिकार्णव (पटल चतुर्थ ४।५)। २. नित्याषोडशिकार्णव (पटल ४)।

वे सुभगा, ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणी, ब्रह्मास्त्रविद्या, शाम्भवी, सर्वस्तम्भकरी, सिद्धा, चतुर्भुजा, दाहिने हाथों में मुद्गर एवं पाश तथा वाम करों में शत्रुजिह्वा एवं वज्र धारण करने वाली, पीतवस्त्रापीतालङ्कारभूषिता, दृढपीनोन्नतकुचा, तप्तकाञ्चनकुण्डलद्वय-शोभिता, ललाट में पीतार्धचन्द्रधारिणी, उदितदिवाकरसन्निभा, स्वर्णसिंहासन पर कमल पर आसीन है। उस ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल कमल, वृत्त, षोडशदल कमल एवं तीन भूगृहों का अनुसन्धान करके उस मण्डल के आदि योनि (त्रिकोण) के मध्य देवी बगला का आवाहन करके ध्यान करना चाहिए।

'ॐ अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे सुभगां ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणीमाप्नोति। ब्रह्मास्त्रां महाविद्यां शाम्भवीं सर्वस्तम्भकरीं सिद्धां चतुर्भुजाम्। दक्षाभ्यां कराभ्यां मुद्गरपाशौ, वामाभ्यां शत्रुजिह्वावज्रे दधानाम्। पीतवाससं पीतालङ्कारसम्पन्नां दृढपीनोन्नतपयोधरयुग्माढ्यां। तप्तकार्तस्वरकुण्डलद्वयविराजितमुखाम्भोजां, ललाटपट्टोल्लसत् पीतचन्द्रार्धमनुबिभ्रती-मुद्यद्दिवाकरोद्योतां, स्वर्णसिंहासनमध्यकमलसंस्थम्। धिया सञ्चिन्त्य, तदुपरि त्रिकोण-षट्कोणवसुपत्रवृत्तान्तः षोडशदलकमलोपरि भूबिम्बत्रयमनुसन्धाय, तत्राद्ययोन्यन्तरे देवीमाहूय ध्यायेत्' ॥

भगवती का इस प्रकार ध्यान करके निम्न मन्त्र का जप करना चाहिए—

'ऐं ह्लीं स्थिरामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।

(हे स्थिरामुखि ! आप समस्त दुष्टों के वचन, मुख एवं पद का स्तम्भन कीजिए। आप जिह्वा को कीलित कीजिए। बुद्धि का विनाश कीजिए।)

'योनिं जगद्-योनिं समायमुच्चार्य, शिवान्ते भूमाग्रबिन्दुमिन्दुखण्डमग्निबीजं, ततो वर्णाङ्कगुणार्णत्रियुतं स्थिरामुखि इति सम्बोध्य, सर्वदुष्टानामिदं चाभाष्य, वाचमिति मुखमिति स्तम्भयेति चोच्चार्य, जिह्वां वैशारदीं कीलयेति बुद्धिं विनाशयेति प्रोच्चार्य, भूमायां वेदाद्यं ततो यज्ञभूगुहायां योजयेत्' ॥

ध्यान तत्त्व

पूजा या जप के पूर्व भगवती का ध्यान करना परमावश्यक है, क्योंकि—'ध्यानं विना भवेन्मूकः सिद्धमन्त्रोऽपि साधकः'। अर्थात् ध्यान के बिना सिद्ध मन्त्र भी गूँगा ही रहता है। उसमें मन्त्र-सिद्धि का कुछ भी प्रकाश नहीं होता।

(क) पारमार्थिक ध्यान का स्वरूप (अभिनव गुप्त की दृष्टि)—

'यदेव स्वेच्छया सृष्टिस्वाभाव्याद् बहिरन्तरा।
निर्मीयते तदेवास्य ध्यानं स्यात्पारमार्थिकम्' ॥

पञ्चकृत्यों के स्वस्वभाव में समाविष्ट होकर स्वेच्छा से बाहर या भीतर मेय-मान आदि का आकलन ही पारमार्थिक 'ध्यान' है।

(ख) व्यावहारिक सगुण-साकार ध्यान—

भगवती का ध्यान इस प्रकार किया जाना चाहिए—

स्वर्ण के आसन पर समासीन, त्रिनयना, पीताम्बरवसना, काञ्चनाङ्गी, चन्द्रोल्लसितमणिमुकुटधारिणी जो भगवती बगलामुखी अपने कण्ठ में चम्पा की माला धारण की हुई हैं; हाथों में गदा, पाश, वज्र एवं शत्रु की जिह्वा ग्रहण की हुई हैं; जिनका शरीर दिव्याभूषणों से समलंकृत हैं उन स्तम्भनकारिणी भगवती बगलामुखी का मैं ध्यान करता हूँ—

(१) 'सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
'हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम्।
हस्तैर्मुद्गरपाशवज्ररसना: सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत्'[१] ॥

(बगलामुखी-पटल)

(२) 'गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ॥
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्।
पीताम्बरधरां सान्द्रदृढपीनपयोधराम् ॥
हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम्।
पीतभूषणपीताङ्गीं स्वर्णसिंहासने स्थिताम् ॥
एवं ध्यात्वा जपेत्स्तोत्रमेकाग्रकृतमानस:'[२]।

'मन्त्रमहोदधि' में उपर्युक्त ध्यान के बाद जप का निर्देश दिया गया है[३]।

भगवती पीयूष-पयोनिधि के मध्य मणियों से रचित मण्डप में रत्नों की वेदी पर पीत वर्ण के आभूषण एवं वस्त्रों से तथा (पीतपुष्पों से निर्मित) मालाओं से विभूषित अङ्गों वाली, (हाथों में) में शत्रु की जिह्वा एवं मुद्गर (गदा) ली हुई भगवती बगलामुखी का अभिवादन करता हूँ—

'मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्' ॥

वाम हाथ से शत्रु की जिह्वा के अग्रभाग को ग्रहण करके शत्रुओं को पीड़ित करती

---

१. मन्त्रमहोदधि।
२. षट्कर्मदीपिका।
३. एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चम्पकोद्भवै:।
कुसुमैर्जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम् ॥

हुई एवं दक्षिण हाथ से गदा के आघात से उसे आहत करती हुई उन पीताम्बरा एवं द्विभुजा भगवती को मैं नमस्कार करता हूँ—

'जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं, वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि' ॥

त्रिशूल धारण करने वाली, सभी प्राणियों को सौभाग्य प्रदान करने वाली, समस्त शृङ्गारोपकरणों एवं सुन्दर वेश को धारण करने वाली देवी का ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिए—

'त्रिशूलधारिणीमम्बां सर्वसौभाग्यदायिनीम्।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां देवीं ध्यात्वा प्रपूजयेत्' ॥

पीले वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाली, त्रिनयना, द्विभुजा, स्वर्ण की कान्ति से समुज्ज्वलित, हाथ में पर्वत को धारण की हुई भगवती बगलामुखी का स्मरण करना चाहिए—

'पीतवस्त्रां त्रिनेत्रां च द्विभुजां हाटकोज्ज्वलाम्।
शिलापर्वतहस्तां च स्मरेत् तां बगलामुखीम्' ॥

शत्रुजिह्वा को ग्रहण की हुई, पीले पुष्पों से समलंकृत भगवती बगलामुखी का शत्रुओं के निर्दलन हेतु स्मरण करना चाहिए—

'रिपुजिह्वाग्रहां देवीं पीतपुष्पविभूषिताम्।
वैरिनिर्दलनार्थाय स्मरेत् तां बगलामुखीम्' ॥

अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वाली, मद से उन्मत्त, स्वर्ण की दीप्ति के समान पीली दीप्ति वाली, चार हाथों वाली, तीन नेत्रों वाली, पद्मासन पर समासीन, दाहिने हाथों में गदा एवं पाश तथा बायें हाथों में शत्रुजिह्वा एवं वज्र धारण की हुई, पीतवर्ण के वस्त्र धारण की हुई; घन, पुष्ट एवं पीन स्तनों वाली; स्वर्ण-रचित कुण्डलों के आभूषणों वाली, पीतवर्ण के अर्धचन्द्र को (मस्तक पर) धारण करने वाली, स्वर्ण के सिंहासन पर समासीन—अर्थात् इस स्वरूप वाली भगवती बगलामुखी का ध्यान करके उनके स्तोत्र का एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिए। ऐसा करने से मन्त्र तथा ध्यान में निरत होकर स्तोत्रपाठी वह साधक समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता हैं—

'गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च कमलासनसंस्थिताम् ॥
मुद्‌गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्।
पीताम्बरधरां सान्द्रदृढपीनपयोधराम् ॥
हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम्।
पीतभूषणपीताङ्गीं स्वर्णसिंहासने स्थिताम् ॥

एवं ध्यात्वा जपेत् स्तोत्रमेकाग्रकृतमानसः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति मन्त्रध्यानपुरःसरम्' ॥

उक्त स्तोत्र में भगवती बगलामुखी के दो स्वरूपों का उल्लेख किया गया है जो निम्नानुसार है—

(१) 'पीतवस्त्रां त्रिनेत्रां च द्विभुजां हाटकोज्ज्वलाम् । शिलापर्वतहस्तां च स्मरेत् तां बगलामुखीम्' ॥ वे द्विभुजा हैं ('पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि') ।

(क) उनके वाम हाथ में शत्रुजिह्वा है और दक्षिण हाथ में गदा है ।

(ख) उन्हें त्रिशूल धारण करने वाली भी कहा गया है—'त्रिशूलधारिणीमम्बां सर्वसौभाग्यदायिनीम्' ।

(ग) उन्हें हाथ में शिलापर्वत धारण करने वाली भी कहा गया है—'शिलापर्वतहस्तां च स्मरेत् तां बगलामुखीम्' ।

(२) भगवती को चतुर्भुजा भी कहा गया है—

'चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च कमलासनसंस्थिताम्' ।

यहाँ उन्हें गदा, पाश, शत्रुजिह्वा एवं वज्र धारण करने वाली कहा गया है ।

ब्रह्मास्त्रविद्यास्तोत्र की दृष्टि—(१) उपासना या पूजा का प्रथम सोपान चिन्तन या ध्यान है—

'व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत्' ।

(२) उपासना या पूजा का द्वितीय सोपान नमन या अभिवादन है—'देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्' । 'पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि' । 'एवं ध्यात्वा जपेत् स्तोत्रमेकाग्रकृतमानसः । सर्वसिद्धिमवाप्नोति मन्त्रध्यानपुरःसरम्' ॥

(३) उपासना का तृतीय सोपान स्तोत्र-जप है ।

(४) ललितासहस्रनाम में उपासना के सोपान—प्रथम—श्रीचक्र की पूजा। द्वितीय—पञ्चदशाक्षरी मन्त्र का जप । तृतीय—स्तोत्र (सहस्रनाम) का पाठ ।

'चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम् ।
जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नामसहस्रकम्' ॥
'चक्रराजार्चनं देव्या जपो नाम्नां च कीर्तनम्' ॥

चक्रराज (श्रीयन्त्र) की पूजा बिल्वपत्र, पद्म, तुलसी, पुष्प के द्वारा की जानी चाहिए—

"बिल्वपत्रैश्चक्रराजे योऽर्चयेल्ललिताम्बिकाम् ।
पद्मैर्वा तुलसीपुष्पैरेभिर्नामसहस्रकैः" ॥ (ललितासहस्रनाम)

यन्त्रपूजन की उपेक्षा—ब्रह्मास्त्रमहाविद्यास्तोत्र में यन्त्र-पूजन को महत्त्व नहीं दिया गया। इसमें इसकी पूजा का कहीं उल्लेख तक नहीं किया गया है।

भगवती श्रीबगलामुखी और तत्सम्बद्ध आम्नाय एवं आचार

भगवती बगलामुखी के मन्त्र से गुरु द्वारा दीक्षित अपने गुरु से मन्त्र-ग्रहण करके उसी सम्बद्ध यन्त्र एवं आचार को ग्रहण करना चाहिए। इस दिशा में दिशा-निर्देश इस प्रकार है—

'पूर्वाम्नाये यदा मन्त्रस्तदा प्राचीदिशि स्थितः।
सदाशिवोऽहं भगवानाचारः परिकीर्तितः॥
एवं वै दक्षिणाम्नायो दक्षिणस्यां दिशि स्थितः।
एवमेवोत्तराम्नाये उत्तरस्यां दिशि स्थितः'॥

यह भी सत्य है कि भगवती बगलामुखी महाविद्या का सम्बन्ध छहों आम्नायों से है, क्योंकि इस महाविद्या का उपदेश छहों आम्नायों में पाया जाता है।

(क) **षडाम्नाय और भगवती बगलामुखी**—'षट्प्रयोगमयी विद्या षडाम्नाय-प्रपूजिता' (षड्विद्यागमपूजिता)। इतना होने पर भी भगवती बगलामुखी का मुख्य सम्बन्ध षडाम्नायों से नहीं है।

(ख) **दक्षिणाम्नाय और भगवती बगलामुखी**—स्थितिक्रम के प्रामुख्य के कारण भगवती बगला का मुख्य सम्बन्ध 'दक्षिणाम्नाय' से है—

'श्रीविद्याभेदसहिता तारा च त्रिपुरा तथा।
भुवनेशी चाऽन्नपूर्णा पूर्वाम्नाये प्रकीर्तिताः॥
बगलामुखी वशिनी त्वरिता धनदा तथा।
महिषघ्नी महालक्ष्मीर्दक्षिणाम्नाये कीर्तिताः'॥

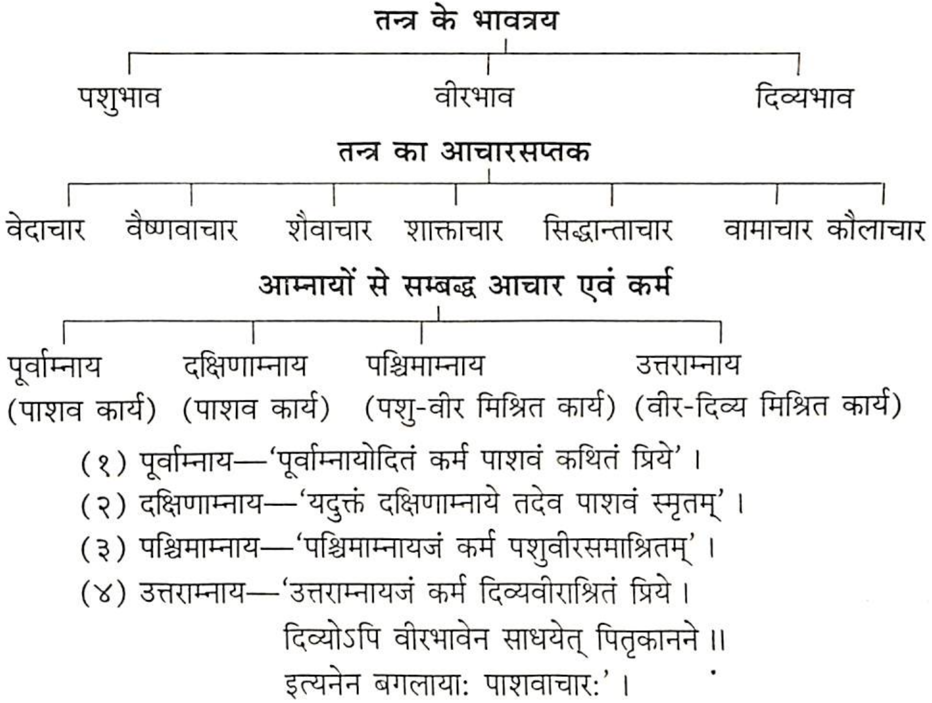
(ग) **ऊर्ध्वाम्नाय और भगवती बगलामुखी**—ऊर्ध्वाम्नाय में भगवती का ध्यान चतुर्भुजी बगला के रूप में किया जाता है। यह ऊर्ध्वाम्नायात्मक बगलोपासना मुक्ति को केन्द्र में रखकर की जाती है न कि सांसारिक विषय-भोगों या जागतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए।

बगलामहाविद्या और आचार

बगला महाविद्या की उपासना में प्रयुक्त आचार 'पश्वाचार' है।

'इत्यनेन बगलायाः पाशवाचारः'।

विशेष—आचार सात हैं उनमें 'पश्वाचार' तो नहीं है। हाँ, तन्त्रोपासना में जिन तीन भावों की स्वीकृति है उनमें एक भाव 'पशुभाव' अवश्य है।



(१) पूर्वाम्नाय—'पूर्वाम्नायोदितं कर्म पाशवं कथितं प्रिये'।

(२) दक्षिणाम्नाय—'यदुक्तं दक्षिणाम्नाये तदेव पाशवं स्मृतम्'।

(३) पश्चिमाम्नाय—'पश्चिमाम्नायजं कर्म पशुवीरसमाश्रितम्'।

(४) उत्तराम्नाय—'उत्तराम्नायजं कर्म दिव्यवीराश्रितं प्रिये।
दिव्योऽपि वीरभावेन साधयेत् पितृकानने ॥
इत्यनेन बगलायाः पाशवाचारः'।

कलियुगानुकूल भाव तथा आचार

निर्वाणतन्त्रोक्त दृष्टि—

(१) कलियुग में दिव्यभाव एवं वीरभाव दोनों अनुपयुक्त हैं—

'दिव्यवीरमयो भावः कलौ नास्ति कदाचन'।

(२) इस युग में मात्र पशुभाव ही उपयोगी है—

'केवलं पशुभावेन मन्त्रसिद्धिरनुत्तमा'।

(३) कलियुग में कौलाचार की भी सार्थकता है। कलियुग में कहीं-कहीं कौलाचार भी सार्थक या उपयोगी है—

'कुत्रचित् कौलाचारोऽपि'।
'कुलीना भैरवी देवी कुलीना छिन्नमस्तका।
कुलीना सुन्दरी साक्षात् कुलीना महिषमर्दिनी ॥
कुलीना भुवना बाला कुलीना बगलामुखी।
धूमावती कुलीना च मातङ्गी कुलनायिका' ॥

सांख्यायन ऋषि का मत—सांख्यायनतन्त्र के प्रणेता ऋषि सांख्यायन की दृष्टि के अनुसार तो भगवती बगला महाविद्या से सम्बद्ध आचार तो मात्र वामाचार है—

'सांख्यायनमते देव्या वामाचारविधिर्मतः' ॥

सांख्यायन की दृष्टि में तो भगवती बगला मात्र कलियुग में ही जागृत होती हैं अन्य युगों में नहीं—

'सांख्यायनमते देवी कलौ जागर्ति केवलम्' ॥

पूजन-क्रम

पूजा के तीन प्रकार हैं—(१) सृष्टि, (२) स्थिति और (३) संहार।

पूजा : देश और आगम

पूजा का सम्बन्ध विशिष्ट देश एवं विशिष्ट आगम से भी है; यथा केरल एवं कामरूप आदि में।

पूजा-विधान एवं आगम

केरल में–	गौडदेश में–	कामरूप देश में–
१. सृष्टिपूजा	१. स्थितिमार्ग	१. संहारक्रम पूजन
२. गर्भकौलागम	२. गौडागम	२. कामरूपागम
	(गुप्तगौडागम)	(संहारार्चन)
	(गौडदेशार्चन)	

स्थित्यर्चा

'सृष्टिस्थित्यन्तसंहारैः पूजा च त्रिविधा कलौ।
केरले सृष्टिपूजा च गर्भकौलागमक्रमात् ॥
अर्चनं गौडदेशे तु स्थितिमार्गं कुमारक।
कामरूपप्रदेशे तु संहारार्चनमेव च ॥
गुप्तगौडागमं नाम गौडदेशाऽर्चने विधिः ॥
कामरूपागमं नाम संहारक्रमपूजनम्।
गौडागमं चाऽवलम्ब्य सांख्यायनमुनिस्तथा।
उक्तवानागमं चैव स्थित्यर्चां शृणु पुत्रक' ॥

गुरुतत्त्व और बगला महाविद्या

तन्त्रसमाम्नाय में गुरु का सर्वोच्च महत्त्व है। यहाँ परम शिव ही जगद्गुरु के रूप में स्वीकृत हैं।

गुरु और उनका स्थान—द्वादशदल कमल (द्वादशार्णसरोरुह) में 'अ-क-थ' रेखात्रय में 'ह-ल-क्ष' से विभूषित, मन्त्रमय हंसपीठ पर आसीन परमशिव को ही 'स्वगुरु' मानना चाहिए—

'कर्णिकान्तः पुटे देवि ! द्वादशार्णसरोरुहे ।
तेजोमये कर्णिकान्तश्चन्द्रमण्डलमध्यगे ।।
अकथादित्रिरेखीये ह-ल-क्षत्रयभूषिते ।
हंसपीठमन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम्' ।।

ये रेखात्रय क्या है ? वामा, ज्येष्ठा एवं रौद्री शक्तियाँ—

'रजःसत्त्वतमोरेखा योनिमण्डलमण्डिता ।
उपरिष्टात् सत्त्वरेखा रजोरेखा स्ववामतः ।
तमोरेखा दक्षभागे रेखात्रयमुदाहृतम् ।
अकथादित्रिपङ्क्त्या तु हलक्षेण विमण्डितम्' ।।

पादुकापञ्चक में गुरु के इसी स्वरूप का विवेचन किया गया है । गुरुमण्डल का बगलोपासना का क्या सम्बन्ध है ?

गुरुसमुदाय और ओघत्रय

दिव्यौघ गुरुमण्डल	सिद्धौघ गुरुमण्डल	मानवौघ गुरुमण्डल
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—		
१. परमशिवात्मानन्दनाथ	१. सिद्धनाथानन्दनाथ	१. गगनानन्दनाथ
२. पराशक्त्याम्बा परानन्दनाथ	२. सिद्धानन्दनाथ	२. विश्वानन्दनाथ
३. कौलेश्वरानन्दनाथ	३. परमेष्ठिनाथानन्दनाथ	३. विमलानन्दनाथ
४. कुलेश्वरानन्दनाथ	४. कण्ठानन्दनाथ	४. मदनानन्दनाथ
		५. भुवनानन्दनाथ
		६. नीलानन्दनाथ
		७. स्वात्मानन्दनाथ
		८. प्रियानन्दनाथ

मानवौघ और बगलोपासना—मानवौघ गुरुमण्डल में जो प्रथम गुरु गगनानन्द नाथ थे उनकी (मानवौघ गुरुपरम्परा से) भगवती बगलामुखी की उपासना से सम्बन्ध था । वे बगलामहाविद्या के उपासक थे—

'गगनानन्दनाथस्य प्रसन्नतात् महेश्वरि ।
विख्याता बगलेत्येतद् रहस्यमिति गीयते ।
अभेदत्वाच्च लकयोर्बगलेति प्रकीर्तिता' ।।

गगनानन्दनाथ मानवौघ गुरुमण्डल के प्रथम गुरु थे जो कि भगवती बगला विद्या के (मानवौघ गुरुपरम्परा में) प्रथम सिद्ध महात्मा थे ।

महाविद्या बगलामुखी के स्वरूप एवं उनकी साधना के विषय में प्रश्न एवं समाधान

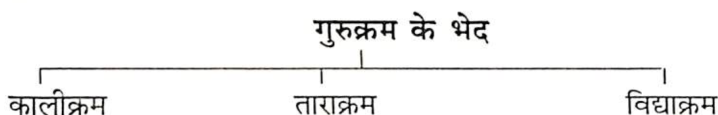
(१) **प्रश्न**—महाविद्या के गुरुक्रमों में भगवती ललिता महात्रिपुरसुन्दरी के गुरु-क्रम एवं भगवती बगलामुखी के गुरुक्रम में कोई भेद है या नहीं ?

उत्तर—ऊर्ध्वाम्नायात्मक निखिल विद्याओं को 'श्रीविद्या' कहा जाता है। श्रीविद्या के ही अपर पर्याय हैं—ललिता, राजराजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बाला, पञ्चदशी, त्रिपुरा आदि।

दश महाविद्याओं में प्रथम तीन महाविद्याएँ—१. काली, २. तारा एवं ३. षोडशी ही प्रधान महाविद्याएँ हैं। इन तीनों विद्याओं से ही ९ महाविद्याएँ एवं एक पूरक महाविद्या मिलाकर १० महाविद्याएँ होती हैं। मूल विद्या से ही तीन महाविद्या का उदय होता है। सभी की मूलभूत विद्या एक 'श्रीविद्या' ही है। इसे ही ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्ममयी विद्या भी कहते हैं।

इन महाविद्याओं का वरिवस्या-पद्धति में तीन गुरुक्रम हैं।

गुरुक्रम के भेद



काली, तारा एवं षोडशी महाविद्याओं के साथ जो-जो महाविद्याएँ हैं उनकी अर्चना-पद्धति में भी प्रधान महाविद्याओं के ही गुरुक्रम गृहीत किये जाते हैं। समस्त मातृकाएँ श्रीविद्या के अन्तर्गत हैं अत: यदि किसी महाविद्या का गुरुक्रम उपलब्ध नहीं होता तो उसकी उपासना हेतु श्रीविद्या का गुरुक्रम ग्रहण किया जाता है।

श्रीबगला महाविद्या श्रीविद्या के साथ हैं और वे मुख्यतया दक्षिणाम्नाय एवं ऊर्ध्वाम्नाय की तथा सामान्यतया समस्त आम्नायों की विद्या मानी जाती हैं।

जब भगवती बगलामुखी की ऊर्ध्वाम्नाय के अनुसार पूजा होगी तब वह तान्त्रिक मन्त्र 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्' वाली वैदिक ऋचा (या मन्त्र) से सम्पुटित होगी और उसके भैरव 'महामृत्युञ्जय' होंगे। कारण यह कि बगला का स्थिर 'मायाबीज' समेत जो अपना मन्त्र है वह दक्षिणाम्नायात्मक है। निष्कर्ष यह कि महाविद्या श्रीबगला षोडशी क्रम में ही अन्तर्भूत हैं अत: अर्चना-पद्धति में उनका गुरुक्रम 'विद्याक्रम' ही स्वीकार किया जायेगा।

श्रीविद्यार्णवतन्त्र में निरूपित गुरुक्रम को ही बगलामुखी-अर्चनापद्धति में स्वीकार किया गया है। अन्य विशेष क्रम के अभाव में परमार्थ देवता का क्रम ही उसके अन्तर्गत अन्य देवताओं के गुरुक्रम के रूप में स्वीकार किया गया है।

महाविद्या बगलामुखी का अपना स्वतन्त्र गुरुक्रम नहीं है। श्रीललिता महात्रिपुर-सुन्दरी महाविद्या का गुरुक्रम ही महाविद्या बगलामुखी का भी गुरुक्रम है।

(२) **प्रश्न**—क्या दिव्यौघक्रम का यह स्वरूप पुनरुक्तिपूर्ण होने से दोषापन्न नहीं है ?

(क) श्री उन्मन्यानन्दनाथ—उन्मन्यम्बाश्री,
(ख) श्री उन्मन्याकाशानन्दनाथ,
(ग) श्री परमानन्दनाथ,
(घ) श्री सहजानन्दनाथ,
(ङ) श्री परमानन्दनाथ,
(च) श्री उन्मन्याकाशानन्दनाथ—

—इस गुरुक्रम में 'ख' एवं 'ग' में उल्लिखित गुरु का ही पुनः उल्लेख 'ङ' एवं 'च' में किया गया है। क्या दोषापन्न नहीं है ?

उत्तर—तान्त्रिक योग-विधान के अनुसार मूलाधार चक्र से सहस्रार पर्यन्त चक्रों में दिव्यौघ गुरुक्रम के चार स्थान हैं—

(१) सहजानन्दनाथ, (२) परमानन्दनाथ, (३) उन्मन्याकाशानन्दनाथ और (४) उन्मन्यम्बा।

यही आरोह-क्रम है।

भगवती कुण्डलिनी अकुल (शिव) से सायुज्य प्राप्त करके तृप्त होने पर पुनः अपने मूलाधार चक्र की ओर प्रत्यावर्तित होती है अर्थात् वह 'उन्मनी अवस्था' से प्रत्यावर्तित होकर—

(१) उन्मन्याकाशानन्दनाथ तथा (२) परमानन्दनाथ अवस्थाओं से अवतरित होते हुए मूलाधार स्थित सहजावस्था में पदार्पण करती है। उसके इस आरोहावरोह चक्र को पूरा करने में (१) उन्मन्याकाश एवं (२) परमानन्द अवस्थाओं को दो बार अतिक्रान्त करना पड़ता है—

(क) एक बार आरोह-क्रम में।
(ख) दूसरी बार अवरोह-क्रम में।

कुण्डलिनी की आदि (मूल) सहजावस्था तथा अन्तिम उन्मन्यावस्था इस चक्र में उभयनिष्ठ हैं अतः गुरुक्रम में दिव्यौघ के ६ स्थान दिखाये गये हैं। चक्र के पूर्ण होने में—

(क) उन्मन्याकाशानन्दनाथ और (ख) परमानन्दनाथ—दिव्यौघ की पुनरावृत्ति स्वाभाविक है।

(३) **प्रश्न**—क्या 'पितुर्दीक्षा यतेर्दीक्षा निष्फलाऽज्ञानमूलका' का विधान सभी स्थितियों में मान्य हैं ?

उत्तर—ऐसा नहीं है। यदि पिता पुत्र के काम्य कर्मों की पूर्ति के लिए दीक्षा देता है तो उक्त दीक्षा का विधान उस पर लागू होगा और वह दीक्षा निष्फल हो जायेगी; किन्तु यदि यह दीक्षा निष्काम उपासना के लिए प्रदान की गई हो तो यह दीक्षा भी फलवती होगी।

केवल काम्य कर्मों की 'पशुदीक्षा' के लिए 'पितृदीक्षा' निषिद्ध है।

'पुरश्चर्यार्णव' में कहा गया है कि वशिष्ठ ने अपने पुत्र को दीक्षा दी थी। भैरवतन्त्र में कहा गया है कि ब्रह्मोक्त मार्ग के प्रकाश में वशिष्ठ ने अपने पुत्र को दीक्षा दी थी—

'ब्रह्मणा कथितं पूर्वं वशिष्ठोऽपि स्वपुत्राय।
मत्पित्रे दत्तवान् स्वयम्' ॥

कपिल ने अपनी माता देवहूति को दीक्षा दी थी। यति तो शङ्कराचार्य थे, दत्तात्रेय थे; क्या उन्होंने अपने शिष्यों को दीक्षा नहीं दी थी ? क्या उनकी दीक्षा निष्फल हो गई ? कदापि नहीं।

पश्चाचार में स्थित पिता पश्चाचारपरक काम्य कर्मों के निष्पादनार्थ यदि दीक्षा देना चाहे तो इस स्थिति में पिता द्वारा पुत्र को प्रदत्त दीक्षा निष्फल हो जायेगी।

(४) **प्रश्न**—क्या 'दक्षिणाचार' से तान्त्रिक साधना सफल नहीं होती, क्योंकि दक्षिणाचार तान्त्रिक-साधना का प्रथम सोपान होने के कारण 'पश्चाचार' है अतः क्या सिद्धि-प्राप्त्यर्थ 'वीराचार' को ही ग्रहण करना आवश्यक है ? सांख्यायनतन्त्र में बगलामुखी को 'कौलागमसंवेद्यां', 'सदा कौलावताम्बिकाम्' कहकर क्या दक्षिणाचार के स्थान पर वामाचार मात्र को ही प्रशस्त नहीं माना गया है ?

उत्तर—दक्षिणाचार और कौलाचार (वामाचार) तत्त्वतः एक रूप ही हैं, क्योंकि विशुद्ध कौलाचार में पञ्चमकारों का सेवन द्रव्य रूप में न होकर प्रतीक के रूप में होता है अतः कौलाचार एवं दक्षिणाचार तत्त्वतः भिन्न नहीं है। इसलिए दक्षिणाचार विधि से भगवती बगलामुखी की साधना भी किसी भी तरह कम महत्त्व की नहीं है।



तृतीय अध्याय

ब्रह्मास्त्रविद्या एवं इसका स्वरूप

ब्रह्मास्त्रविद्या कौन-सी विद्या है ? इसका स्वरूप क्या है ?

(१) यह वह विद्या है जो ब्रह्मास्त्र को भी रोक देती है—'ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या स्तब्धमायामनुस्तथा'।

(२) यह मानव-दानव, देव-गन्धर्व आदि सभी प्राणियों एवं चराचर सम्पूर्ण जगत् की प्रवृत्ति को रोक देती है—'प्रवृत्तिरोधिनी विद्या बगला च कुमारक'!

(३) यह मन्त्रजीवन विद्या भी है और प्राणिप्रज्ञापकारिका भी—'मन्त्रजीवनविद्या च प्राणिप्रज्ञाऽपहारिका'।

(४) यह तन्त्र के षट्कर्मों की निष्पादिका विद्या है—

'षट्कर्माधारविद्या च रात्रेः पर्यायवाचकाः।
षट्प्रयोगमयी विद्या षड्विद्याऽऽगमपूजिता'॥

(५) यह त्रिशक्तिसम्पन्ना विद्या अन्य सभी विद्याओं को तिरस्कृत कर देती है अर्थात् इस उच्चतमा विद्या के सामने अन्य सभी विद्याएँ तिरस्कार करने योग्य बन जाती हैं—

'तिरस्कृताऽखिला विद्या त्रिशक्तिमयमेव च'॥
(६) 'स्तम्भनेन विना वश्यं, शान्तिश्चैव तु तद्विना।
मोहनाऽकर्षणे चैव विद्वेषोच्चाटने तथा॥
मारणं भ्रान्तिरुद्वेगकरणं च कुमारक।
विद्या च बगलानाम्नी मुनिगुह्या सुपावनी॥
विना वाक्स्तम्भिनीं विद्यां स्वविद्या न च भासते।
तस्मादेतन्महाविद्यां कमलासनजीविनीम्॥
पद्मजो नारदो विद्यां सांख्यायनमुनिं प्रति।
उपदेशक्रमेणैव दत्तवान् मेरुकन्दरे'॥

(७) यह स्वविद्या की रक्षिका, स्वतन्त्रफलप्रदायिका, स्वयशोरक्षिणी, शत्रु-नाशिनी, परविद्यानाशिनी, परमन्त्रविच्छेदिनी, परमन्त्रप्रयोगविध्वंसिका, परानुष्ठानसंहारिका, परकीर्तिविदारिणी और विजयदायिनी एवं परहृदयभ्रमोत्पादिनी विद्या है—

'स्वविद्यारक्षिणी विद्या स्वतन्त्रफलदायिका।
स्वकीर्तिरक्षिणी विद्या शत्रुसंहारकारिका॥

परविद्याछेदिनी च परमन्त्रविदारिणी ।
परमन्त्रप्रयोगेषु सदा विध्वंसकारिका ॥
परानुष्ठानहारिणी परकीर्तिविनाशिनी ।
पराऽपन्नाशकृद् विद्या परेषां भ्रमकारिणी' ॥

(८) यह षट्कर्मों में प्रयुक्त होने वाली विद्या है । यह समस्त आगमों में अत्यन्त आदृता विद्या है—इसके समक्ष संसार की समस्त विद्याएँ तिरस्कार्य हैं—

'षट्प्रयोगमयी विद्या षड्विद्याऽऽगमपूजिता ।
तिरस्कृताऽखिला विद्या त्रिशक्तिमयमेव च' ॥

यह आभिचारिक कर्मों में सिद्धि प्रदान करने वाली विद्या है—

'स्तम्भनेन विना वश्यं शान्तिश्चैव तु तद्विना ।
मोहनाकर्षणे चैव विद्वेषोच्चाटने तथा ॥
मारणं भ्रान्तिरुद्वेगकरणं च कुमारक ।
विद्या च बगलानाम्नी मुनिगुह्या सुपावनी' ॥

यही वाक्स्तम्भिनी विद्या भी है और ब्रह्मा का प्राण भी है—

'विना वाक्स्तम्भिनी विद्या स्वविद्या न च भासते ।
तस्मादेतन्महाविद्यां कमलासनजीविनीम्' ॥

इसी बगलाब्रह्मास्त्रमहाविद्या को भगवान् नारद ने सांख्यायन मुनि को प्रदान किया था—

'पद्मजो नारदो विद्यां सांख्यायनमुनिं प्रति'[१] ।

ब्रह्मास्त्रविद्या की विशेषता यह है कि—

१. यह सद्यः प्रत्ययकारक है ।
२. यह साधकों का हित-साधन करती है ।
३. यह वैरियों का स्तम्भन करती है ।
४. इसके स्मरणमात्र से चञ्चल पवन भी स्थिर हो जाता है—

'ब्रह्मास्त्रं सम्प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
साधकानां हितार्थाय स्तम्भनाय च वैरिणाम् ।
यस्याः स्मरणमात्रेण पवनोऽपि स्थिरायते' ॥

(९) जो लोग शत्रुविनाशपूर्वक अपनी विजय चाहते हैं; जो शान्ति, वशीकरण, सम्मोहन, विद्वेषण, उच्चाटन आदि आभिचारिक प्रयोगों में साफल्य (सिद्धि) चाहते हैं उन्हें ब्रह्मास्त्रविद्या की उपासना करनी चाहिए और उसके मन्त्र का जप करना चाहिए—

'ये वा विजयमिच्छन्ति ये वा जन्तुक्षयं कलौ ।
ये वा क्रूरमृगेभ्यश्च जयमिच्छन्ति मानवाः ॥

१. सांख्यायनतन्त्र ।

इच्छन्ति शान्तिकर्माणि वश्यं सम्मोहनादिकम् ।
विद्वेषोच्चाटनं पुत्र तेनोपास्यस्त्वयं मनुः ॥
तत्सम्प्रदायविधिना सद्गुरोर्मुखतस्तथा ।
उपदेशक्रमेणैव गृहीत्वा साधयेन्मनुम्'[१] ॥

(१०) यह महाविद्या सारे ऋषियों, सिद्धों, देवताओं, विद्याधरों, महासर्पों, यज्ञों, गन्धर्वों, पिशाचों, ब्रह्मराक्षसों, विद्वानों, मूर्खों एवं समस्त इन्द्रिय-सञ्चार वाले प्राणियों को तत्काल नष्ट कर देती है[२] ।

महाविद्या बगलामुखीमन्त्र का सामान्य परिचय

१. नाम	२. आम्नाय	३. कुल	४. आचार	५. शिव	६. गणेश
वल्गामुखी ब्रह्मास्त्रविद्या	१. उत्तराम्नाय २. दक्षिणाम्नाय	श्रीकुल (यह श्रीकुल की विद्या है)	१. वामाचार २. दक्षिणाचार	इस महाविद्या के शिव हैं– त्र्यम्बक	हरिद्रा गणेश
७. विद्या	**८. भैरव**	**९. यक्षिणी**	**१०. कुल्लुका**	**११. सेतु**	**१२. महासेतु**
'दिवा दक्षिण-साध्यापि निशि वाम-प्रसादना'	आनन्दभैरव	विडालिका	इस महाविद्या का सेतुमन्त्र– 'ॐ हूँ क्ष्रौं' सिर पर १० बार जप्य है	सेतु-मन्त्र– 'ह्रीं स्वाहा' इसे कण्ठ पर १० बार जपना चाहिए	महासेतु-मन्त्र– 'स्त्रीं' इसे १० बार हृदय पर जपना चाहिए

१३. अंगविद्या	१४. निर्वाण	१५. दीपन	१६. जीवन	१७. मुखशोधन
१. मृत्युञ्जयमन्त्र २. बटुकमन्त्र ३. पञ्चास्त्र ४. कुल्लुका ५. तारा ६. स्वप्नेश्वरी ७. योगिनीमन्त्र	इस विद्या की मातृका 'ह्रूं ह्रीं श्रीं' से सम्पुटित मूल मन्त्र का जप ही निर्वाण विद्या है।	दीपनार्थ मूल मन्त्र को योनि बीज 'ईं' से सम्पुटित करके ७ बार जप करना चाहिए। इसे पर्व, पुरश्चरण आदि में ही करें सदैव नहीं।	मूल मन्त्र के अन्त में 'ह्रीं ॐ स्वाहा' का १० बार जप करना चाहिए। इसका नित्य जप नहीं होता।	त्र्यक्षरी 'ऐं ह्रीं ऐं' से नित्य प्रातःकाल मुखशोधन करना चाहिए। दन्त-धावन के बाद अपनी जिह्वा के ऊपर अनामिका से जल-सङ्केत से इसे लिखकर १० बार जपें।

१८. शापोद्धार	१९. उत्कीलन	२०. भाव
'ॐ ह्लीं बगले रुद्रशापं	'ॐ ह्लीं स्वाहा' इस चतुरक्षरी	इस विद्या की साधना में 'वीर

१. सांख्यायनतन्त्र। २. सांख्यायनतन्त्र।

विमोचय विमोचय ॐ ह्लीं स्वाहा' मन्त्र के पहले इसको जपना चाहिए।	को मन्त्र के आदि में १० बार जपना चाहिए। यह भी विधान पुरश्चरण एवं पर्व आदि विशेषा-वसरों पर अनुष्ठेय है, नित्य प्रति नहीं।	भाव' और 'दिव्य भाव' दो भाव हैं। आदि में वीरभाव का ही आश्रय लेना चाहिए। क्रमशः तुरीयाश्रम तक दिव्य भाव प्राप्त हो जाता है।
२१. क्रम	**२२. मूल मन्त्र**	
१. इस विद्या की साधना 'सौभाग्य क्रम' से ही सर्व-सिद्धिप्रद हो पाती है। २. शक्ति-साधना, सौभाग्य-पूजा आदि 'कुलार्णवतन्त्र' के द्वारा ही करना प्रशस्त है।	१. 'ह्लीं' २. 'ह्ल्रीं'	

बगलामुखी का बीज मन्त्र

दशमहाविद्याएँ और ब्रह्मास्त्रविद्या

दश महाविद्याओं का आविर्भाव तो भगवती दाक्षायणी सती के शरीर से उस समय हुआ था जब सती अपने पिता दक्ष के यज्ञ में भाग लेने के लिए शिव से अनुमति माँग रही थीं, किन्तु भगवान् शिव उन्हें वहाँ जाने के लिए अनुमति नहीं दे रहे थे। उसी समय सती को इतना क्रोध उत्पन्न हुआ कि मानों वे अपने क्रोधानल से शिव को भस्म कर देंगी—

'सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद् रुदत्यश्रुकलातिविह्वला।
भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः'॥ (श्रीमद्भागवत)

इसी समय भगवती ने क्रोधावेश में दसों दिशाओं को अवरुद्ध करने के लिए १० रूप धारण कर लिये और ये ही १० महाविद्याएँ कहलाईं। 'बृहद्धर्मपुराण' में भी इसका उल्लेख है—'ततः क्रुद्धा महाकाली घोररूपमकल्पयत्। ततो भयेन भूतेशः पलायनपरोऽभवत्' ॥ इसी महाकाली रूप को देखकर भगवान् भूतेश भाग चले। पति को भयभीत देखकर सती को उन पर दया आ गई अतः उन्होंने शिव को भागने से रोकने के लिए अपने १० रूप बनाकर दसों दिशाएँ अवरुद्ध कर दी थीं। ये ही दस रूप दस महाविद्याएँ कहलाती हैं—

'एवं पतिं वीक्ष्य भयाभिभूतं, दयान्विता तत्प्रतिवारणेच्छया।
सर्वासु दिक्षु क्षणमात्रमध्यतः, स्थिता च भूत्वा दश मूर्तयस्तदा' ॥

इन्हीं १० रूपों में भगवती बगलामुखी भी एक हैं।

मालिनीविजयतन्त्र ('तन्त्रसार' में उद्धृत) में दस महाविद्याओं के नाम पृथक् हैं। यथा—काली, नीला, महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यङ्गिरा, कामाख्यावासिनी, बालात्रिपुरसुन्दरी, मातङ्गी, शैलवासिनी और कामाख्या।

दशमहाविद्याओं की महत्ता

(१) भगवती सती की महाविद्या विषयक दृष्टि—

दशमहाविद्याओं का महत्त्व एवं अन्य विवरण—दश महाविद्याएँ—

१. पुरुषार्थचतुष्टय प्रदान करती हैं।

२. तान्त्रिक अभिचार (मारण, उच्चाटन, क्षोभण, मोहन, द्रावण, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेष आदि) कर्म सिद्ध होते हैं।

३. आगम और वेद ये दोनों मेरी दो भुजाएँ हैं। इन्हीं दोनों से मैंने स्थावरजंगममय सम्पूर्ण जगत् को धारण कर रखा है।

४. इन महाविद्याओं के साधक वैष्णव माने जाते हैं—'आसां ये साधकास्ते तु सभायां वैष्णवा मताः'। किन्तु—'मय्यर्पितान्तःकरणा भवेयुः सुसमाहिताः'।

५. मन्त्र, यन्त्र, कवच को गुप्त रखना चाहिए।

६. ये महाविद्याएँ अत्यन्त गोपनीय हैं। इनका कभी प्रकाशन नहीं करना चाहिए।

सती कहती हैं—

'भक्त्या सम्भजतां नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाः।
सर्वाभीष्टप्रदायिन्यः साधकानां महेश्वर ॥
मारणोच्चाटनक्षोभमोहनद्रावणानि च।
वश्यस्तम्भनविद्वेषाद्यभिप्रेतानि कुर्वते ॥
इमाः सर्वा गोपनीया न प्रकाश्याः कदाचन।
तासां मन्त्रं तथा यन्त्रं पूजाहोमविधिं तथा ॥

पुरश्चर्याविधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा।
आचारं नियमं चापि साधकानां महेश्वर॥
त्वमेव वक्ष्यसि विभो नान्यो वक्तात्र विद्यते।
आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहू मम शङ्कर।
ताभ्यामेव धृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्' ॥

(देवीभागवत पुराण-अष्टम अध्याय)

जब भगवती सती अपने पिता के यहाँ यज्ञ में जाने लगी तब भगवती सती एवं तारा दोनों एकरूप हो गईं तथा अन्य अष्ट मूर्तियाँ भी सहसा अन्तर्धान हो गईं[१]।

(२) कुब्जिकातन्त्र की दृष्टि—इसमें कहा गया है कि दशमहाविद्याएँ—चतुर्वर्गफलप्रदा, धर्मार्थकामदा एवं सिद्ध विद्याएँ हैं—

'एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः।
धर्मार्थकामदा नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाः'॥

इनके समान कोई अन्य विद्या है ही नहीं। इनका एक बार भी उच्चारण कर लिया जाय तो व्यक्ति सारे पापों से मुक्त हो जाता है और इनका स्मरण मात्र करने से भवबन्धन से विमुक्त हो जाता है—

'आसाञ्चैव समाना हि नास्ति त्रिभुवने ध्रुवम्।
एकोच्चारणमात्रेण सर्वपापात् प्रमुच्यते।
स्मरणेनैव देवेशि! मुच्यते भवबन्धनात्'॥

ब्रह्मास्त्रविद्या

यह विद्याओं में अन्यतमा महाविद्या है। यह तीनों लोकों में दुर्लभ विद्या है। भले ही व्यक्ति अपना पुत्र या शिर ही क्यों न दे दे किन्तु इस विद्या को जिस किसी को कभी नहीं देनी चाहिए—

(क) 'तद्विद्यां प्रवक्ष्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम्'।
(ख) 'पुत्रो देयः शिरो देयं न देया यस्य कस्यचित्'।

यह ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या है। यह स्तब्धमायामन्त्रात्मिका विद्या है। यह प्रवृत्तिरोधिनी विद्या है। यह मन्त्रजीवन विद्या, प्राणिप्रज्ञापहारिका, षट्कर्माधारविद्या है। यह षट्प्रयोगमयी, षड्विद्यागमपूजिता, समस्त विद्याओं को अपने प्रभाव से निष्प्रभाव करने वाली—तिरस्कृताखिला विद्या और त्रिशक्त्यात्मिका विद्या है—

'ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या स्तब्धमायामनुस्तथा।
प्रवृत्तिरोधिनी विद्या बगला च कुमारक॥

१. भगवती सती के द्वारा भगवान् शिव के ऊपर किये गये भयानक क्रोध का वर्णन भागवत पुराण में भी आया है।

मन्त्रजीवनविद्या च प्राणिप्रज्ञापहारिका।
षट्कर्माऽधारविद्या च रात्रेः पर्यायवाचकाः' ॥ (सांख्यायनतन्त्र)

दश महाविद्यापीठ

तन्त्रचूड़ामणि नामक ग्रन्थ में दस महाविद्यापीठों का नामकरण इस प्रकार किया गया है—(१) नील पर्वत के ऊपर श्रीभैरवी महाविद्यापीठ, (२) क्षत्रदेवता त्रिपुरा-षोडशी महाविद्यापीठ, (३) छिन्नमस्ता महाविद्यापीठ, (४) मातङ्गी महाविद्यापीठ, (५) अम्बिका-महाकाली महाविद्यापीठ, (६) बगला महाविद्यापीठ, (७) कमला महाविद्यापीठ, (८) भुवनेश्वरी महाविद्यापीठ और (९) धूमावती महाविद्यापीठ।

इन ९ पीठों के भैरव भगवान् उमानन्द हैं। यहाँ नव महाविद्याओं एवं नव महाविद्यापीठों का ही उल्लेख किया गया है दश का नहीं—

'तत्र श्रीभैरवी देवी तत्र च क्षेत्रदेवता।
प्रचण्डचण्डिका तत्र मातङ्गी त्रिपुराम्बिका॥
कमला बगला तत्र भुवनेशी सधूमिनी।
एतानि नव पीठानि संशन्ति परभैरवाः' ॥

× × × × ×

'योनिपीठं कामगिरौ कामाख्या तत्र देवता।
यत्रास्ते त्रिगुणातीता रक्तपाषाणरूपिणी॥
यत्रास्ते माधवो साक्षाद् उमानन्दोऽथ भैरवः।
सर्वदा विहरेद्देवी तत्र मुक्तिर्न संशयः' ॥

× × × × ×

बगला शब्द की व्याख्या—

'वकारे वारुणी देवी गकारे सिद्धिदा स्मृता।
लकारे पृथिवी चैव चैतन्या मे प्रकीर्तिता' ॥

बगला में तीन अक्षर हैं—(१) 'ब', (२) 'ग', (३) 'ल'। इन तीनों के पृथक्-पृथक् अर्थ हैं—

(क) 'वकार' = वारुणी देवी का प्रतीक है।
(ख) 'गकार' = सर्वसिद्धिदातृ देवी का प्रतीक है।
(ग) 'लकार' = पृथ्वी का प्रतीक है।

भगवती बगला त्रिरूपिणी एवं चैतन्यात्मा है।

ब्रह्मास्त्रविद्या का इतिहास-क्रम

सांख्यायनतन्त्र के प्रथम पटल में कहा गया है कि एक बार जब गौरी, वाल्मीकि,

अष्टदिक्पाल, विघ्नेशाष्टक, भैरवाष्टक, मातृमण्डल, महापाशुपतास्त्र आदि से घिरे हुए भगवान् शिव कैलास के शिखर पर बैठे हुए थे तब कुमार ने भगवान् शिव का नमन एवं स्तवन करते हुए उनसे कहा कि 'हे भगवन् ! मैं आपका पुत्र भी हूँ और शिष्य भी, अतः कृपया आप चापचर्या में निपुण, युद्धचर्या में भयानक तथा मायावी इन राक्षसों पर विजय प्राप्त करने के उपाय एवं तत्सम्बद्ध विद्या बताने की कृपा करें जिससे कि मैं राक्षसों से जीत सकूँ'—'जेतुमिच्छामि राक्षसम्' ।

भगवान् शिव ने कहा कि यदि तुम राक्षसों पर विजय चाहते हो तो उन पर ब्रह्मास्त्रविद्या के बिना विजय पाना सम्भव नहीं है, अतः मैं तुम्हें ब्रह्मास्त्रविद्या बताता हूँ ।

बगलोपासना की परम्परा—भगवती बगला की उपासना वैदिक रीति से ब्रह्मा ने की । परिणामस्वरूप वे सृष्टि-रचना में समर्थ हो सके । ब्रह्मा ने अपने पुत्र सनक आदि को यह विद्या प्रदान की । सनत्कुमार ने इस विद्या को नारद को प्रदान किया । नारद ने इस विद्या को सांख्यायन को प्रदान किया । ऋषि सांख्यायन ने ३६ पटलों में सांख्यायन-तन्त्र के रूप में इस विद्या को पुस्तकाकार स्वरूप प्रदान किया ।

ब्रह्मास्त्रविद्या या बगलाविद्या की ऋषि-आचार्य परम्पराएँ—

(१) ब्रह्मा—सनक आदि ऋषि, सनत्कुमार—नारद—सांख्यायन ।

(२) विष्णु—इस विद्या के द्वितीय उपासक भगवान् विष्णु हुए ।

(३) शिव—इस विद्या के तृतीय उपासक भगवान् शिव हुए ।

शिव ने इस ब्रह्मास्त्रविद्या को परशुराम को प्रदान किया। परशुराम ने इसे द्रोणाचार्य और द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र अश्वत्थामा को प्रदान किया ।

परशुराम ने यह विद्या कर्ण को भी सिखाई थी ।

भगवान् शिव ने ही यह विद्या च्यवन मुनि को प्रदान की थी । उन्होंने (च्यवन ऋषि ने) अश्विनीकुमारों को यज्ञाधिकार प्रदान करने के समय इन्द्र के क्रोधित होने पर इसी विद्या से उनके वज्र को स्तम्भित कर दिया था ।

जहाँ तक स्तम्भन शक्ति की बात है तो मेघनाद ने लंका में हनुमान् की गति स्तम्भित कर दिया था । अंगद ने रावण की सभा में अपने पैर को इसी प्रकार स्तम्भित कर दिया था । रणक्षेत्र में गिरे हुए लक्ष्मण को रावण द्वारा न उठा पाने का कारण भी यही स्तम्भन शक्ति थी । भगवान् श्रीकृष्ण ने जयद्रथ के वध के लिए सूर्य को स्तम्भित कर दिया था । आचार्य गोविन्दपाद की समाधि में विघ्न डालने वाली रेवा नदी को आचार्य शंकर ने स्तम्भित कर दिया था । अङ्गुलिमाल डाकू दौड़कर तथागत बुद्ध पर आघात करने आ रहा था किन्तु बुद्धदेव की शक्ति से स्तम्भित हो उठा । ये समस्त स्तम्भन क्रियाएँ बगला-शक्ति से ही सम्बद्ध हैं ।

ब्रह्मा के मानस पुत्र नारद ने मेरु कन्दरा में इसका उपदेश सांख्यायन को दिया तो भगवान् शिव ने इसका उपदेश क्रौंचभेदन को दिया ।

क्या माद्री के द्वारा सूर्य पर त्राटक करके उनकी गति को स्तम्भित करने में इस स्तम्भिनी विद्या का प्रयोग नहीं किया गया था ?

विभिन्न उपदेश-परम्पराएँ—

(१) **ब्रह्मा**—स्रष्टा ब्रह्मा ने ब्रह्मास्त्रविद्या का सर्वप्रथम उपदेश अपने मानस पुत्रों—सनक, सनातन, सनन्दन एवं सनत्कुमार को प्रदान किया। सनत्कुमार ने इस विद्या को नारद (ब्रह्मा के मानस पुत्र) को अर्थात् अपने अनुज को प्रदान किया। नारद ने इस ब्रह्मास्त्रविद्या का उपदेश ऋषि सांख्यायन को दिया।

(२) **विष्णु**—ब्रह्मास्त्रविद्या के द्वितीय उपासक भगवान् विष्णु हुए। भगवान् विष्णु ने इस विद्या का वैष्णव सम्प्रदाय में प्रवर्तन एवं प्रसार किया।

(३) **शिव**—ब्रह्मास्त्रविद्या के तृतीय उपासक भगवान् शिव हुए। भगवान् शिव ने इस विद्या का उपदेश तारकासुर के वध के अवसर पर कार्तिकेय को दिया।

(४) **परशुराम**—भगवान् शिव ने ब्रह्मास्त्रविद्या का उपदेश स्वयमेव परशुराम को भी प्रदान किया था।

(५) **द्रोणाचार्य**—परशुराम ने इस विद्या का उपदेश द्रोणाचार्य को एवं द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा को प्रदान किया था।

आम्नाय-भेद और बगलोपासना

भगवती बगलामुखी की उपासना अनेक आम्नायों से की जाती है।

(१) दक्षिणाम्नाय और भगवती की उपासना—आम्नायस्तोत्र में कहा गया है—

'सौभाग्यविद्या बगला वाराही बटुकस्तथा।
श्रीतिरस्करिणी प्रोक्ता दक्षिणाम्नायदेवता॥
त्रिंशत्सहस्रदैवत्याः पूर्णपीठे स्थिताः सदा।
भैरवादि पदद्वन्द्वं, भजे दक्षिणमुत्तमम्'॥

'वडवानलतन्त्र' भी भगवती को दक्षिणाम्नायपूजिता मानता है—

'निशेशी दक्षिणा काली बगला छिन्नमस्तका।
भद्रा तारा च मातङ्गी दक्षिणाम्नायदेवता॥

'परातन्त्र' की भी यही मान्यता है—

'मृत्युञ्जया चर्चिका च सिंही दक्षिणकालिका।
प्रचण्डा उग्रचण्डा च उग्रतारा कपालिनी॥

त्वरिता छिन्नशीर्षा च बगला वाक्प्रदायिनी।
दक्षिणाम्नायदेवेशी नानाभेदविशारिणी' ॥

सारांश यह कि दक्षिणाकाली, बगलामुखी, छिन्नमस्तका, तारा, मातङ्गी आदि देवियों की उपासना दक्षिणाम्नाय-पद्धति से की जाती है।

भगवती बगलामुखी की उपासना—१. वामाचार, २. कौलाचार एवं ३. दक्षिणाचार—इन सभी आचारों से निष्पादित की जाती है किन्तु यह उपासना वामाचार एवं कौलाचार से अनुष्ठित होने पर सद्यः फलप्रद होती है, अन्यथा फलाप्ति में विलम्ब होता है।

स्थिरमाया ('ह्लीं') 'बगला-बीज' कहलाता है और 'ह्रीं' नामक माया-बीज 'भुवनेश्वरी-बीज' कहलाता है। स्थिरमाया (बगलाबीज) दक्षिणाम्नायात्मक है अतः बगला के मन्त्रों में इस बीज के होने से भगवती बगलामुखी दक्षिणाम्नायात्मिका हैं। दक्षिणाम्नायात्मिका बगला देवी के दो भुजाएँ हैं।

भगवती बगलामुखी के दो रूप

दक्षिणाम्नायात्मक स्वरूप (द्विभुजात्मक स्वरूप)	ऊर्ध्वाम्नायात्मक स्वरूप (चतुर्भुजात्मक स्वरूप)
	१. इस स्थिति में देवी बगला विपरीत गायत्री(ब्रह्मास्त्र)रूपिणी बन जाती है। २. इसके मन्त्र में 'बगलामाया' के स्थान पर 'भुवनमाया' होगा। इस स्थिति में बगलामुखी ऊर्ध्वाम्नायात्मिका होती हैं।

ऊर्ध्वाम्नायात्मिका भगवती बगलामुखी देवी—

मन्त्रोद्धार—

'देवि श्रीभववल्लभे ! शृणु महामन्त्रं विभूतिप्रदं
देव्या वर्मयुतं समस्तसुखदं साम्राज्यदं मुक्तिदम्।
तारं रुद्रवधूं विरञ्चिमहिला विष्णुप्रिया कामयुक्
कान्ते ! श्री बगलानने ! मम रिपुं नाशय युग्मं त्विति ॥
ऐश्वर्याणि पदं च देहि युगलं शीघ्रं मनोवाञ्छितं
कार्यं साधय युग्मयुक् शिववधू वह्निप्रियान्तो मनुः'।

ब्रह्मास्त्रविद्या और उसकी सम्प्रदायमूलक साधना

सांख्यायनतन्त्र में यह भी कहा गया है कि—

(क) ब्रह्मास्त्रविद्या को सत्सम्प्रदाय-विधि से, सद्गुरु के मुख से एवं उपदेश क्रम से ही ग्रहण करके इसकी साधना करनी चाहिए—

'सत्सम्प्रदायविधिना, सद्गुरोर्मुखतस्तथा।
उपदेशक्रमेणैव गृहीत्वा साधयेन्मनुम्' ॥

(ख) इतना ही नहीं इसे 'कुलमार्ग' की पद्धति से ग्रहण करना चाहिए—

'कुलाऽऽचारसमायुक्तः कुलमार्गेण पुत्रक।
दीक्षाकाले गुरोर्योगो गृहीतव्यः सुबुद्धिमान् ॥
साधयेत् कुलमार्गेण तेन यन्त्रं प्रयोजयेत्।
उपसंहरणं तेन कर्तव्यं कुलयोगिना'[१] ॥

इसकी साधना तर्पण एवं सतत पूजा द्वारा अनुष्ठित होनी चाहिए—

'सौभाग्येन समायुक्तैः सदा तर्पणपूर्वकैः।
सदा पूजासमायुक्तैश्चिन्तितं भवति ध्रुवम्' ॥

ब्रह्मास्त्रविद्या के अंगोपांग—

भगवती बगलामुखी से सम्बद्ध—(१) पटल, (२) स्तोत्र, (३) कवच, (४) कीलक, (५) हृदय, (६) स्तोत्र, (७) शतनामस्तोत्र, (८) सहस्रनामस्तोत्र, (९) उपनिषद् (पीताम्बरोपनिषद्), (१०) ब्रह्मास्त्र, (११) मन्त्रप्रयोग, (१२) उपासना-दीपदान विधि, (१३) उत्पत्ति, (१४) नित्यार्चन, (१५) बलिदान और (१६) बगलामुखी-पञ्चाङ्ग (बगलापटल/बगलास्तोत्र/बगलाकवच/बगलाहृदय/बगलाशतनाम) सभी की विवेचना ब्रह्मास्त्रविद्या के परिचय में आवश्यक है।

ब्रह्मास्त्रविद्या और स्तम्भन—

ब्रह्मास्त्रविद्या का मुख्य उद्देश्य ही वात्याचक्र के भयानक कोप का स्तम्भन दिया। भगवती बगला ने प्रकट होकर वात-प्रकोप को शान्त किया। यह वात-निवारण स्तम्भनात्मिका ब्रह्मास्त्रविद्या द्वारा ही निष्पादित किया गया। जब हनुमान् जी सूर्य को निगल रहे थे तब इसी स्तम्भन विद्या द्वारा ही पवन देवता ने हनुमान् को रोका था। मेघनाद ने लंका में हनुमान् को नागपाश में बाँधकर उनकी गति को इसी स्तम्भन विद्या द्वारा निरुद्ध किया था। अंगद ने इसी स्तम्भन विद्या द्वारा रावण की सभा में अपने पैरों को इस प्रकार आरोपित किया कि कोई भी वीर उसे हिला तक नहीं सका।

---

१. सांख्यायनतन्त्र।

ब्रह्मास्त्रविद्या की शेष साम्प्रदायिक उपदेश-परम्परा—

१. भार्गव परशुराम ने ब्रह्मास्त्रविद्या कर्ण को प्रदान किया था।

२. भगवान् शिव ने इस विद्या का उपदेश भार्गव परशुराम एवं च्यवन मुनि दोनों को प्रदान किया था।

३. च्यवन मुनि ने अश्विनीकुमारों को यज्ञाधिकार प्रदान करने के अवसर पर, देवराज इन्द्र द्वारा वज्रास्त्र का प्रयोग करने की स्थिति में इस ब्रह्मास्त्रविद्या का प्रयोग वज्रास्त्र को रोकने के लिए किया था।

४. महर्षि अगस्त्य ने इस विद्या का उपदेश भगवान् राम को दिया था।

५. महर्षि सांख्यायन ने इस विद्या का साङ्गोपाङ्ग वर्णन सांख्यायनतन्त्र में किया है तथा अपने शिष्यों को इसका ज्ञान प्रदान किया था।

स्तम्भन-प्रयोग की दिशा में जयद्रथ-वध के अवसर पर सूर्य की गति इसी विद्या से रोक दिया था। रावण लक्ष्मण को इसी कारण नहीं उठा कर ले जा सका क्योंकि उनका शरीर स्तम्भित था। आचार्य शंकर ने रेवा नदी को इसी विद्या से स्तम्भित कर दिया था।

ब्रह्मास्त्रविद्या के अधिकारी गुरु एवं शिष्य

ब्रह्मास्त्रविद्या से सम्बद्ध प्रसिद्ध तन्त्र-ग्रन्थ सांख्यायनतन्त्र (द्वि.पटल) में उपर्युक्त विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि इसे किसी अधिकारी गुरु से ही ग्रहण करना चाहिए तथा इसे किसी अधिकारी (सत्पात्र) छात्र को ही दिया जाना चाहिए, अन्यथा यह अनर्थकारी होगी—

'गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्।
उपदेशं ददन् गृह्णन् प्राप्नुयात्तौ पिशाचताम्'॥
(सांख्यायनतन्त्र २।२३)

विद्यागुरु का लक्षण—ब्रह्मास्त्रविद्या की दीक्षा (मन्त्रदान-दीक्षा) का अधिकारी गुरु वह होता है जिसमें निम्न लक्षण परिलक्षित होते हैं—

(१) वेदवेदाङ्गपारीणं वेदान्तार्थविदां वरम्।
वैदिकाचारसंयुक्तं कुर्याद् गुरुमतन्द्रितः॥

(२) गर्भकौलागमासक्तं नानाकौलपरायणम्।
अष्टपाशविनिर्मुक्तं कुर्याद् गुरुमतन्द्रितः॥

(३) पुरश्चरणकृन्मन्त्री मन्त्रागमविशारदम्।
उद्धर्तुश्चैव संहर्तुं समर्थं सत्यवादिनम्॥

(४) प्रधानज्ञं परज्ञानहारिणं नीतिकोविदम्।
श्रीविद्यामन्त्रयन्त्रं च कुर्याद् गुरुमतन्द्रितः।

(५) चक्रपूजासमायुक्तं न्यासपूजाविशारदम्।
गुरुं यत्नात्प्रकर्तव्यं सततं सिद्धिकांक्षिभिः' ॥

गुरु और विद्यागम में अन्तःसम्बन्ध—

गुरु विद्या की चाभी या द्वार है। विद्या-प्राप्ति के द्वारों में गुरु भी एक द्वार है, क्योंकि विद्यागम के निम्न द्वार हैं और उनमें गुरु प्रधान द्वार है।

'गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थे नोपलभ्यते॥
सुश्रूषया गुरुं सम्यक् तोषयेच्छिष्य अन्वहम्।
प्रसन्नचेतसा दत्तं मन्त्रमुत्तममर्भक' ॥

अधिगत विद्या के विविध सोपान या स्तर—

(१) **सर्वसिद्धिदा विद्या**—गुरुसुश्रूषा एवं गुरु-अनुग्रह से प्राप्त विद्या ही सर्वसिद्धिप्रदा एवं उत्तमोत्तमा (उत्तम विद्या = सात्त्विकी विद्या) विद्या है—

'मोक्षार्थी च गुरुं यत्नाच्छुश्रूषेणैव तोषयेत्।
सुश्रूषेणैव यल्लब्धं तद्विद्या सर्वसिद्धिदा'॥

× × × × × × ×

'सुश्रूषया गुरुं सम्यक् तोषयेच्छिष्य अन्वहम्।
प्रसन्नचेतसा दत्तं मन्त्रमुत्तममर्भक' ॥

(२) **राजसीविद्या (= विक्रीत विद्या)—**

'स्वल्पं वा बहुलं वाऽथ शिष्यद्रव्यं गुरुः स्वयम्।
गृहीत्वा मन्त्रमादत्ते विक्रीतं तदुदाहृतम्।
राजसं चैव तद् विद्याद् रोगदं भुवि पुत्रक' ॥

(३) **तामसी विद्या—**

'विद्या प्रतिनिधिं विद्यां यद्दतं तामसं स्मृतम्'।
'न देया विद्यया विद्या वित्तकांक्षी तथैव च।
सच्छिष्याय प्रदातव्या धनदेहाद्यवञ्चिते' ॥

दीक्षागुरु कुलगुरु होना चाहिए और शिष्य को चाहिए कि वह गुरुपरम्परागत उपदेश क्रम से आदरपूर्वक मन्त्र ग्रहण करते हुए उस कुलगुरु-परम्परागत (साम्प्रदायिक) विद्या प्राप्त करे—

'तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षां कुलगुरोर्मुखात्।
उपदेशक्रमेणैव मन्त्रग्रहणमादरात्' ॥

सत्पात्र शिष्य (विद्या-प्राप्ति के योग्य शिष्य) के लक्षण

सांख्यायनतन्त्र में इसके लक्षण निम्नाङ्कित (बताये गये) हैं—

(१) निर्मत्सरं निरालम्बं नीतिशास्त्रविशारदम्।
नित्यानित्यविवेकञ्च शिष्यत्वेनोपकल्पयेत् ॥

(२) शुद्धभक्तिसमायुक्तं धनदेहाद्यवञ्चकम्।
अष्टपाशविनिर्मुक्तं शिष्यत्वेनोपकल्पयेत् ॥

(३) गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्।
उपदेशं ददन् गृह्णन् प्राप्नुयात्तौ पिशाचताम् ॥

अदीक्ष्य शिष्य का विद्या या मन्त्र ग्रहण एवं अपात्र गुरु द्वारा दीक्षा-दान दोनों कर्म दोनों को पिशाच योनि में डाल देते हैं। अतः गुरु भी अधिकारी होना चाहिए और शिष्य भी।

ब्रह्मास्त्रविद्या और उसकी महत्ता

सांख्यायन ऋषि की दृष्टि—नारद के दीक्षित शिष्य ऋषिप्रवर सांख्यायन के अनुसार बगला महाविद्या की अनेक विशेषताएँ हैं। यथा—यह—

१. स्वविद्या की रक्षिका है।
२. स्वमन्त्र को फल प्रदान करती है अर्थात् फलदायिका है।
३. स्वकीर्ति की रक्षा करती है।
४. शत्रुओं का संहार करती है।
५. परविद्या का विनाश करती है।
६. परमन्त्रों का भी विनाश करती है।
७. परमन्त्रों की सहायता से किये गये प्रयोगों का विध्वंस करती है।
८. परानुष्ठानों का भी विध्वंस करती है।
९. परकीर्ति का भी विनाश करती है।
१०. दूसरों के द्वारा आरोपित आपदाओं का नाश करती है।
११. दूसरों को भ्रम में डाल देती है।
१२. विजयेच्छा को पूर्ण करती है।
१३. यह मारण, सम्मोहन, वशीकरण, विद्वेषण, उच्चाटन आदि क्रियाओं को सिद्ध करती है—

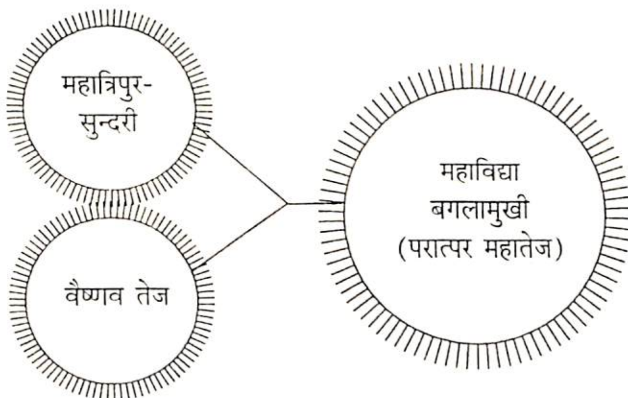
'स्वविद्यारक्षिणी विद्या स्वमन्त्रफलदायिका।
स्वकीर्तिरक्षिणी विद्या शत्रुसंहारकारिका ॥

परविद्याछेदिनी च परमन्त्रविदारिणी ।
परमन्त्रप्रयोगेषु सदा विध्वंसकारिका ॥
परानुष्ठानहारिणी परकीर्तिविनाशिनी ।
पराऽऽपन्नाशकृद् विद्या परेषां भ्रमकारिणी ॥
ये वा विजयमिच्छन्ति ये वा जन्तुक्षयं कलौ ।
ये वा क्रूरमृगेभ्यश्च जयमिच्छन्ति मानवाः ॥
इच्छन्ति शान्तिकर्माणि वश्यं सम्मोहनादिकम् ।
विद्वेषोच्चाटनं पुत्र ! तेनोपास्यस्त्वयं मनुः'[१] ॥

परमात्मा ही अमृत का सेतु है—'अमृतस्यैष सेतुः'[२] । उस अमृत तक जाने का साधन है—ब्रह्मविद्या । ब्रह्मास्त्रविद्या ब्रह्मविद्या है ।

१४. यह ब्रह्मास्त्रविद्या त्रैलोक्य को स्तम्भित कर देने वाली विद्या है—'ब्रह्मास्त्र-विद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भिनी' । यह विष्णुतेज से पूर्ण है, क्योंकि भगवती बगला स्वयमेव भगवती महात्रिपुरसुन्दरी एवं विष्णु के परम तेज का चमत्कार है—

'तत् तेजो विष्णुजं तेजो' । (सां.तन्त्र)
'श्रीविद्यासम्भवं तेजो' । (सां.तन्त्र)



ब्रह्मास्त्रविद्या के प्रभाव की विलक्षणता

ब्रह्मास्त्रविद्या अपने प्रभावों की दृष्टि से इतनी विलक्षण है कि विद्वान् मनुष्यों की तो बात ही क्या यह अपने प्रभाव से—१. सिद्ध, २. देवता, ३. विद्याधर, ४. महासर्प, ५. यक्ष, ६. ऋषि, ७. गन्धर्व, ८. नाग, ९. पिशाच, १०. ब्रह्मराक्षस एवं ११. समस्त इन्द्रिय-सञ्चारों एवं इन्द्रियसञ्चरित समस्त जीवों के प्रभावों को नष्ट कर देती है—

'ऋषिसिद्धाऽमरैश्चैव विद्याधरमहोरगैः ।
यक्षगन्धर्वनागैश्च पिशाचब्रह्मराक्षसैः ॥

१. सांख्यायनतन्त्र । २. मुण्डकोपनिषद् ।

पञ्चेन्द्रियैश्च सञ्चारं सद्यो हन्त्यनिशं मनुः ।
पण्डितोऽपण्डितो जीवः किं पुनः क्रौञ्चभेदन[1] ॥

वह्निपुराण की दृष्टि—

(१) कलियुग में तो यह सर्वकामप्रदायिनीसिद्धा महाविद्या केवल जप करने मात्र से ही सिद्ध हो जाती है ।

'केवलेन जपेनैव लक्षेण कालि सिद्ध्यति' ॥

हाँ, इतना अवश्य है कि इसे सिद्ध करने के लिए इसका कम-से-कम एक लाख जप अवश्य कर लेना चाहिए ।

(२) वशीकार आदि आभिचारिक कृत्यों की सिद्धि के लिए १ लाख की भी नहीं, केवल १०,००० जप ही पर्याप्त है—'वशीकरणकर्मादि दशसाहस्रतो भवेत्' ।

(३) पुरश्चरण-सिद्धि हेतु एक लाख जप करना अनिवार्य है ।

(४) शरीर की आरोग्यता एवं धनेच्छा के लिए अयुतसंख्यक जप आवश्यक है ।

(५) कलियुग में एक हजार होम से ही समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । इसमें तो ऋषि, स्तुतिपाठ, स्तुति, कवच, ऋष्यादिन्यास आदि विधानों की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि बगला स्वयमेव सिद्धविद्या है ।

(६) यदि मार्ग में 'बगले बगले' इस प्रकार दो बार भी बोल दे तो पथ के सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं । बगला नाम के जापक से सभी भयभीत हो जाते हैं—

'बगलाजापिनं दृष्ट्वा सर्वे भीतिमवाप्नुयुः'[2] ॥

बगलामन्त्रों की प्रयोजनीयता को अभिचारोन्मुख प्रदर्शित करते हुए कहा गया है—

'ब्रह्मास्त्रं सम्प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
साधकानां हितार्थाय स्तम्भनाय च वैरिणाम् ॥
यस्याः स्मरणमात्रेण पवनोऽपि स्थिरायते' ॥

भाव यह कि कल्याण-सम्पादनार्थ शत्रुओं को स्तम्भित करने हेतु ब्रह्मास्त्र स्वरूप बगलामुखी मन्त्र के विषय में प्रकाश डाला जा रहा है जो कि प्रयोग मात्र से परिणाम प्रदान करने लगता है और लोकप्रत्यय (जनविश्वास) को पुष्ट करता है । इसके मन्त्र का स्मरण करने मात्र से पवन स्थिर हो जाता है ।

रुद्रयामलतन्त्र में कहा गया है कि हे भगवती ! आपके मन्त्र के जप करने वाले व्यक्ति के समक्ष सारे वादी मूक बन जाते हैं । राजा दरिद्र बन जाते हैं, अग्नि शीतल बन

---

१. सांख्यायनतन्त्र (प्रथम पटल) । २. वह्निपुराण ।

जाती है, क्रोधियों का क्रोध भी शान्त हो जाता है, दुर्जन व्यक्ति भी मधुर बोलने लगता है, द्रुतगामी लँगड़ा जैसा हो जाता है, अहङ्कारी व्यक्ति का अहङ्कार ध्वस्त हो जाता है और सर्वज्ञ ज्ञानी भी जड़ बन जाता है—ऐसी शाश्वतसत्ताक, नित्य, पराशक्ति एवं कल्याणमयी भगवती बगलामुखी को मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ—

'वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा मन्त्रितः
श्रीर्नित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः' ॥

देवी बगलामुखी की साधना मुख्यतः शत्रुदमन के उद्देश्य से अनुष्ठित की जाती है। शत्रुकृत उपद्रव, तान्त्रिक षट्कर्म, अभिचार (मारण, मोहन, उच्चारण, वशीकरण, स्तम्भन, द्वेषण आदि), वाद-विवाद, मुकदमा आदि समस्याओं के निराकरणार्थ इस बगला के मन्त्र की अधिक साधना की जाती है।

बगला महाविद्या की साधना

बगलासाधना-पूर्व ध्यातव्य बिन्दु (सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि)—

(१) साधक को 'सत् सम्प्रदाय' की पद्धति के अनुरूप सद्गुरु के मुख से उपदेश ग्रहण करके क्रम-तारतम्य के अनुरूप साधना करनी चाहिए।

(२) साधक को कुलाचार का पालन करते हुए कुलपद्धति के अनुसार गुरु-दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

(३) कुलमार्गानुरूप मन्त्र-ग्रहण एवं तदनुरूप मन्त्र-प्रयोग ही शास्त्रानुशासन है[१]।

(४) साधक द्वारा पहने गये वस्त्र, उसकी माला, उसका आसन, देवी को समर्पणार्थ लिये गये फूल, भोजन-सामग्री, फल, समस्त नैवेद्य, अधोवस्त्र, उत्तरीय तथा साधनास्थल—सभी पीले रंग के हों। क्योंकि देवी स्वतः पीतवर्णा, पीताम्बरा, पीतमालावृता, पीताभरणा आदि हैं—

'सुवर्णाभरणां देवीं पीतमाल्याम्बरावृताम्।
ब्रह्मास्त्रविद्यां बगलां, वैरिणां स्तम्भिनीं भजे' ॥

'पीतवाससं पीतालङ्कारसम्पन्नां दृढपीनोन्नतपयोधरयुग्माढ्याम्'।

(५) दीक्षा अनिवार्य है—

'दीक्षामार्गं विना मन्त्रं शैवं शाक्तं च वैष्णवम्।
यो जपेत् तं दहत्याशु देवता च जुगुप्स्यति ॥

१. सांख्यायनतन्त्र (प्रथम पटल)।

दीक्षाविधिं विना मन्त्रं यो जपेत् कोटिकोटिशः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति सिन्धुसैकतवर्णवत् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षा कुलगुरोर्मुखात् ।
उपदेशक्रमेणैव मन्त्रग्रहणमादरात्'[१] ॥

क्योंकि—'पुस्तके लिखितान् मन्त्रान् अवलोक्य जपन्ति ये ।
स जीवन्नेव चाण्डालो, मृतः श्वानो भविष्यति' ॥

(६) दीक्षा-गुरु भी योग्य हो, अन्यथा पिशाचत्व की प्राप्ति होगी ।

'गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम् ।
उपदेशं ददन गृह्णन् प्राप्नुयात् तौ पिशाचताम्' ॥

(७) यह विद्या 'श्रीविद्या' एवं वैष्णव तेज से आच्छादित है अतः बगला को भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से पूर्णतः पृथक् मानकर उपासना नहीं करनी चाहिए ।

(८) माँ बगला का प्रसिद्ध मन्त्र ३६ अक्षरों का है अतः इस मन्त्र का पुरश्चरण ३६०० या ३६००० जप से निष्पादित होता है । 'ह्लीं' (स्तब्धमाया) भगवती का एकाक्षर बीजमन्त्र है । इसका अशप्त रूप 'ह्ल्रीं' है । इसी का प्रयोग करके (इसी के द्वारा 'कृत्या' का प्रयोग करके) देवता दानवों पर प्रहार करते थे । यही विद्या है—भ्रामरी, स्तम्भिनी, क्षोभिणी, पीताम्बरा देवी, त्रिनेत्री, रौद्ररूपिणी, ब्रह्मास्त्रविद्या आदि[२] ।

साधना की सामान्य प्रक्रिया—सर्वप्रथम किसी शुभ तिथि का सन्धान करके सोने, चाँदी या ताँबें के पत्तर पर बगलामुखी यन्त्र की रचना की जानी चाहिए । यन्त्र उभरे रेखाङ्कन द्वारा निर्मित होना चाहिए । यन्त्र तैयार हो जाय तो उसकी प्राणप्रतिष्ठा करके उसकी शास्त्रोक्त विधि से पूजा करनी चाहिए ।

साधना के अग्रिम सोपान—यन्त्र को शास्त्रोक्त विधि से प्राणप्रतिष्ठित करके उसे अपने पूजागृह या घर के किसी एकान्त एवं पावन स्थान में काष्ठखण्ड पर पीत वस्त्र पर आसनस्थ (स्थापित) करना चाहिए । इसके अतिरिक्त भगवती बगलामुखी का चित्र भी यन्त्र के साथ स्थापित करना चाहिए । यन्त्र-स्थापना के अनन्तर उसकी प्रतिदिन पूजा की जानी चाहिए एवं मन्त्र-जप भी किया जाना चाहिए ।

जपारम्भ के समय सर्वप्रथम बगलामुखी देवी का विनियोग करना चाहिए । एतदर्थ दायें हाथ में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए उसे चित्र एवं यन्त्र के समक्ष छोड़ना चाहिए ।

---

१. सांख्यायनतन्त्र-प्रथम पटल । २. भगवती बगला के तीन नेत्र एवं मुकुट पर चन्द्रमा होने के कारण इन्हें महारुद्र की महाशक्ति भी माना जाता है । इन 'वल्गामुखी' या 'वल्गा' (बगलामुखी) का मन्त्र सिद्धविद्या कहलाता है ।

विनियोग-मन्त्र—'ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमहाविद्यामन्त्रस्य नारद ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, बगलामुखी महाविद्या देवता, ह्लीं बीजम्, स्वाहा शक्तिः, ॐ कीलकं ममाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ॥

न्यास-विधान—विनियोगोपरान्त ऋष्यादिन्यास, करन्यास, हृदयादिन्यास आदि करके देवी भगवती बगलामुखी का ध्यान करना चाहिए। ध्यान का स्वरूप निम्नांकित है—

'मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनो परिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं भजामि धृतमुद्गवैरिजिह्वाम्' ॥
'जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन, पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि' ॥

उक्त ध्यान-मन्त्र द्वारा भगवती बगलामुखी मन्त्र का जप प्रारम्भ करना चाहिए। भगवती बगलामुखी के मन्त्र का जप रुद्राक्ष की माला से किया जाय तो अधिक उत्कृष्ट होगा। जपोपरान्त तर्पण, मार्जन, हवन एवं ब्राह्मण-भोजन आदि अङ्गों की पूर्ति भी आवश्यक है।

कवच—तान्त्रिक साधना में 'कवच' उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार युद्ध के मैदान में वक्ष पर धारण किया हुआ कवच एवं शिर पर धारण किया हुआ शिरस्त्राण। युद्ध में यह मात्र रक्षा करता है किन्तु साधना क्षेत्र का कवच केवल रक्षा ही नहीं करता प्रत्युत यह दैवी विभूतियाँ भी प्रदान करता है। भगवती बगलामुखी का कवच इस प्रकार है—

'ॐ ह्रीं में हृदयं पातु पादौ श्रीबगलामुखी।
ललाटं सततं पातु दुष्टग्रहनिवारिणी ॥
रसनां पातु कौमारी भैरवी चक्षुषोर्मम।
कटौ पृष्ठे महेशानी कर्णौ शङ्करभामिनी ॥
वर्जितानि तु स्थानानि यानि च कवचेन हि।
तानि सर्वाणि मे देवी सततं पातु स्तम्भिनी' ॥

भगवती बगलामुखी का मन्त्र—'ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।

सामान्य नियम—भगवती बगलामुखी की साधना के समय निम्न विशिष्ट नियमों का पालन करना अधिक लाभप्रद होगा—

(१) साधना करते समय साधक के वस्त्र पीले हों। आसन पीले रंग का हो। पीला ऊनी आसन हो तो अधिक प्रशस्त है। भगवती को चढ़ाने हेतु पीले पुष्प हों। चन्दन भी पीला हो, माला भी पीली हो और नैवेद्य भी पीला हो।

(२) ध्यानोपरान्त किये जाने वाले मन्त्र जप के पूर्व दस बार—'ॐ ह्रीं' का जप करके वाणी का शोधन करना चाहिए।

(३) भगवती के मन्त्र का उपांशु या मानसिक दोनों प्रकार से जप किया जा सकता है।

(४) जिस समय मन्त्र-जप किया जाय उस समय यन्त्र के सम्मुख घृत का दीपक भी अनवरत चलता रहना चाहिए।

(५) साधना-काल में ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, वाक्संयम, मन:संयम, चर्यासंयम, नियमितता, भक्तिभाव, उत्साह एवं अन्य सात्त्विक भाव आवश्यक हैं।

(६) साधना की अनुभूतियों को गोपनीय रखना भी आवश्यक है।

साधना में गोपनीयता भङ्ग करना अनर्थकारी होता है—'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं मातृजारवत्'; 'गोपनीयं प्रयत्नत:'। इस्लामी साधना में इसे ही 'खिल्वतदर अञ्जुमन' कहते हैं। साधना में गोपनीयता साधक की साधना को अधिक शक्ति देती है एवं गोपनीयता को भङ्ग करने से साधक की शक्ति क्षीण होती है। कभी-कभी उसे शापग्रस्तता का दुष्परिणाम भी भोगना पड़ता है।

इसका एक अनुभवं मेरा स्वयं का है। मुझे स्वप्न में प्राय: सदैव ओङ्कार की ध्वनि श्रुतिगोचर होती थी। स्वप्न में ओंकार ध्वनि नाभि से अपने आप उठती थी और उसे कितना भी बन्द करने का प्रयास क्यों न करता किन्तु वह बन्द नहीं होती थी। मैं इसी अवस्था में आकाश की अनन्त ऊँचाइयों तक उड़ जाता था और समस्त व्योम ओङ्कार के सङ्गीत से भर जाता था। फिर धीरे-धीरे (अवरोह क्रम में) पृथ्वी की ओर लौटते हुए महासमुद्र की अनन्त गोद में पहुँचकर उसके अन्तस्तल की गहराइयों में प्रवेश करने लगता था। समुद्र के जल में भी ओंकार की ध्वनि गूँजती रहती थी। यही है अनाहत ओङ्कार का स्वयम्भू अजपा जप। भगवती ने अपनी अनुकम्पा से मुझे इसकी अनुभूति स्वप्नावस्था में करायी। स्वप्न में ही मुझे अघोर शिव, भगवान् राम, हनुमान्, भगवती वैदेही, शुकदेव आदि के दर्शन एवं उनके निर्देश प्राप्त होते थे। भविष्यगत घटनाओं के आभास भी होते थे और भविष्य के गर्भ में पल रही घटनाओं का साक्षात्कार भी हो जाता था—जो पता लगाने पर पता चलता था कि वे भविष्य में अक्षरश: वैसे ही घटीं। किन्तु मैंने गोपनीयता के शास्त्रीय सिद्धान्त पर शोध करने हेतु उन घटनाओं को प्रकाशित कर दिया। परिणाम यह हुआ कि वे सारी अनुभूतियाँ एवं स्वप्नगत दृश्य आने बन्द हो गये।

गोपनीयता का सिद्धान्त—इसी तारतम्य में 'श्रीयन्त्र' की उपासना में मैंने ९ त्रिकोणों के स्थान पर अष्ट त्रिकोण बनाकर (एक अनुभवी साधक द्वारा 'साधनाङ्क' में अपने द्वारा बनाये गये अष्टयोन्यात्मक श्रीचक्र के आधार पर) श्रीयन्त्र की उपासना की। परिणाम भयानक हुआ। साइटिका के रोग से बुरी तरह कष्टापन्न हुआ। सारी चिकित्साएँ व्यर्थ हो गईं। भगवती से अनवरत प्रार्थना करते रहने पर ही लगभग एक वर्ष के बाद ही मैं इस व्याधि से मुक्त हो पाया।

(७) साधनाकालगत प्रतिकूल या भयावह दृश्यों से भी डरना नहीं चाहिए। मनोविज्ञान के सिद्धान्तानुसार ये भयावह दृश्य साधक की वासनाओं, दबी आकांक्षाओं, कुण्ठाओं, मनोविकारों एवं काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्रोह, घृणा, हिंसा, प्रतीकार आदि मनोवृत्तियों के साकार दृश्य हैं।

इनसे अप्रभावित रहने के लिए ही सारे साधनाशास्त्रों में यम-नियम के विधान हैं और साधना के प्रथमाङ्ग के रूप में उनका सर्वत्र एवं समस्त साधनाओं में अनिवार्य पालन का विधान किया गया है।

(८) जन्मराशि से चतुर्थ, अष्टम या द्वादश भाव में चन्द्रमा का स्थिति-काल चन्द्रमा की विपरीत स्थिति का द्योतक है। यह स्थिति साधक की साधना के लिए उपयुक्त नहीं है—प्रत्युत निषिद्ध है। इस नियम का पालन न करने से अनिष्ट की पूर्ण सम्भावना है।

तान्त्रिक साधना में नियमातिक्रम एक अक्षम्य एवं दण्डनीय अपराध है—मेरा स्वयं का एक अनुभव साधकों का मार्गदर्शन करेगा। मैं १९७०-७१ में इस्लामी साधना 'हमजाद' पर प्रयोग कर रहा था। मैं अपनी साधना की सफलताओं पर आश्चर्यचकित था। इसी प्रकार साधना अग्रपद होती गई। अपनी छाया अदृश्य हो जाती और उसके स्थान पर अत्यन्त प्रकाशवान् छाया प्रकट हो जाती तथा अनेक चमत्कार दृष्टिगत होने लगते किन्तु इसी अन्तराल में मेरे द्वारा एक नियम टूटा। नियम टूटने पर विधान यह है कि साधना का तारतम्य तोड़ दिया जाय अर्थात् साधना रोक दी जाय और पुन: प्रारम्भ से ही साधनारम्भ की जाय। (अर्थात् यह मान लिया जाय कि अब तक की गई साधना का कालखण्ड, जप-संख्या, दिनों की संख्या आदि सभी निरर्थक हो गई और अब मुझे प्रारम्भ से ही पुन: साधनारम्भ करना है।)

चूँकि मैं अत्यन्त तार्किक था और शास्त्र-निर्देशों पर स्वानुभव की मुहर लगाने के लिए उनकी वैधता का परीक्षण करना चाहता था, अत: मैंने साधना को बीच में तोड़ा नहीं। एक-दो दिन तो साधना निरापद चलती रही किन्तु सम्भवत: तीसरे या चौथे दिन भयानक परिणाम सामने आया। आधी रात के समय मैं अकस्मात् भयाक्रान्त होकर (सोते से) जग उठा और मैंने बिस्तर पर से ही लेटे-लेटे दीवाल पर टँगा ज्वालामयी भगवती काली का चित्र देखा तो इतना भयभीत हुआ कि बेहोश हो गया। डॉक्टर बुलाये गये। इण्ट्रावेनस इञ्जेक्शन लगाये गये। ८-१० घण्टे के बाद होश आया। उसके बाद लगभग ८-१० वर्षों तक मैं प्रतिदिन स्वप्न में देखता कि मैं पागल हूँ। पागलपन की स्थिति में एक पागल को कितनी मानसिक वेदना होती है और उसमें दिखाई पड़ने वाली असामान्य विस्मृतियों, तज्जन्य हानियों एवं मानसिक सन्तापों से वह कितना संक्षुब्ध होता है—उसका अनुभव तो मैंने अपने स्वप्नों में ही अनुभव किया।

सारांश यह कि तान्त्रिक साधनाओं, अनुष्ठानों एवं सङ्कल्पित साधना-विधानों में

नियमातिक्रम मृत्यु का कारण भी बन सकता है या अक्षम्य अपराध बनकर असह्य हानियाँ कर सकता है। इसी हानि से रक्षा हेतु 'कवच' का पाठ भी आवश्यक है।

न्यास—'ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। बगलामुखि तर्जनीभ्यां नमः। सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां नमः। वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां नमः। जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः'।

इसी प्रकार हृदयादिन्यास करना चाहिए।

ध्यान—भगवती बगलामुखी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—

'चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्॥
बिम्बोष्ठीं कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम्।
पीताम्बरां मदाघूर्णं ध्यायेत् ब्रह्मास्त्रदेवताम्॥
पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रत्नोज्ज्वले मण्डपे
तत्सिंहासनमूलपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम्।
स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां विभ्रमां
स्वप्ने पश्यति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽथ सर्वापदः'॥

मुद्रा— 'त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां किरीटकम्।
कुण्डलं योनिरित्यादि मुद्राः पीताम्बराप्रियाः'॥

मुद्रा दिखाकर पूजा करनी चाहिए।

मन्त्र—''ॐ ह्लीं बगलामुखि! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा''[१]।

इस मन्त्र को सौ बार जपकर उत्तर न्यासों का निष्पादन करके मन्त्र देवी को समर्पित करना चाहिए।

'श्रीबगलामुखी ब्रह्मास्त्राम्बा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः'।

भगवती बगलामुखी का मन्त्र—सांख्यायनतन्त्र के पञ्चम पटल के १०वें छन्द के रूप में जो मन्त्र लिखा गया है उसका स्वरूप थोड़ा भिन्न है। इसमें भगवती बगलामुखी के बीज मन्त्र 'ह्लीं' को दो बार लिखा गया है—

'ॐ ह्लीं ह्लीं बगलामुखि! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' ॥१०॥

कवच—सांख्यायनतन्त्र में जो कवच दिया गया है उसका स्वरूप इस प्रकार है (इसे यहाँ 'कवच' न कहकर 'न्यास-विधि' कहा गया है)—

---

१. सप्तविंशतिरहस्यम् (पीताम्बरापीठ दतिया से प्रकाशित), पृ. ३७।

'विन्यसेदङ्गुलीभिश्च षडङ्गेषु तथैव च।
वक्ष्येऽहं पञ्जरं न्यासं मन्त्रसिद्धिकरं नृणाम् ॥११॥
बगला पूर्वतो रक्षेदाग्नेय्यां च गदाधरी।
पीताम्बरा दक्षिणे च स्तम्भिनी चैव नैर्ऋते ॥१२॥
जिह्वां कीलिन्यतो रक्षेत्पश्चिमे सर्वदा मम।
वायव्ये च मदोन्मत्ता कौबेर्यां च त्रिशूलिनी ॥१३॥
ब्रह्मास्त्रदेवता पातु ऐशान्यां सततं मम।
संरक्षेन्मां तु सततं पाताले स्तब्धमातृका ॥१४॥
ऊर्ध्वं रक्षेन्महादेवी जिह्वास्तम्भनकारिणी।
एवं दश दिशो रक्षेद्बगला सर्वसिद्धिदा[1] ॥१५॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा यत् किञ्चिज्जपमारभेत्।
तस्याः स्मरणमात्रेण शत्रूणां स्तम्भनं भवेत्' ॥१६॥

न्यास—भगवती बगला के मन्त्र का जपारम्भ किया जाय तो स्मरण मात्र से शत्रु का स्तम्भन हो जाता है।

भगवती बगला के मन्त्र की मातृकाओं का भी न्यास किया जाना चाहिए—

'सर्वं न्यासविधिं कृत्वा बगलामातृकां न्यसेत्।
तन्मातृकाविधिं वक्ष्ये सारात्सारतरं परम् ॥१७॥
तारं च मातृकावर्णां बगलाबीजमेव च।
नमोऽन्तेन च विन्यस्य मातृकास्थानतोऽनघ' ॥१८॥

ध्यान तत्त्व और उसका महत्त्व—भगवती बगला की उपासना में भी ध्यान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि यह मन्त्रसिद्धि प्रदान करता है, सर्वार्थसाधक है। ध्यान के बिना साधक जिह्वा होते हुए भी मूकवत् है—भले ही वह मन्त्रों को सिद्ध भी क्यों न कर चुका हो या स्वयं मन्त्र 'सिद्धमन्त्र' (दशमहाविद्या को सिद्ध कहा जाता है) ही क्यों न हो—

'ध्यानेन मन्त्रसिद्धिः स्याद्ध्यानं सर्वार्थसाधनम्।
ध्यानं विना भवेन्मूकः सिद्धमन्त्रोऽपि पुत्रक' ॥१९॥

भगवती के स्वरूप का तो ध्यान करना ही चाहिये, साथ ही भगवती बगला की विलक्षण क्षमताओं का भी इस प्रकार ध्यान करके उनको प्रणाम करना चाहिए कि—हे भगवती ! यदि आप अपने भक्त पर प्रसन्न हो जायें तो उसके द्वारा यन्त्रित किये जाने पर वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) करने वाला मूक हो जाता है, वसुपति राजा भी निर्धन हो जाता

१. सांख्यायनतन्त्र (पञ्चमः पटलः, श्लोक १५)।

है, अग्नि शीतल हो जाती है, क्रोधी व्यक्ति शान्त हो जाता है, दुष्ट सज्जन बन जाता है; वह चरणानुगामी हो जाता है, द्रुतगामी लँगडे के समान हो जाता है। अहङ्कारी व्यक्तियों का समस्त गर्व चूर्ण हो जाता है, समस्त धन-धान्यसम्पन्न व्यक्ति पत्थर के समान जड़ हो जाता है; हे देवी ! ऐसी आप कृपामन्दाकिनी एवं शाश्वतसत्ताक महाशक्ति को मैं प्रतिदिन अभिवादन करता हूँ—

'वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये बगलामुखि ! प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः' ॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं सुबुद्धिमान् ॥

हवन—भगवती को सन्तर्पित करने हेतु गुड़ के पानी का प्रयोग करना चाहिए। त्रिकोण कुण्ड में जप के दशमांश का हवन करना चाहिए। हवन में घी एवं पुष्पादि का भी प्रयोग किया जाना चाहिए—

'गुडोदकेन जुहुयात् हस्तनिम्नोन्नते शुभे।
हयारिकुसुमेनैव सुरक्तेनाज्यसंयुतम्' ॥

ब्राह्मण-भोजन—इसके उपरान्त ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए। इससे अवश्य-मेव सिद्धि प्राप्त होती है; यह शिव का अमोघ वचन-दान है—

'ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात् तत्त्वसंख्याञ्च युग्मकम्।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्पुत्र नान्यथा शिवभाषितम्' ॥

यह विधान वाममार्गी विधान है। यह मन्त्रसिद्धि शत्रुनाश, सद्यःस्तम्भन आदि व्यापारों की दिशा में अचूक है—

'सद्यःस्तम्भनविद्या च बगला नात्र संशयः'।

बगला-महाविद्या का वैलक्षण्य एवं उसकी महत्ता

सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि—महर्षि नारद मेरु पर्वत की कन्दरा में ऋषि सांख्यायन से ब्रह्मास्त्रविद्या की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि यह महाविद्या—

(१) ब्रह्मास्त्र का भी स्तम्भन करने वाली विद्या है और यह स्तब्धमाया का मन्त्र है—

'ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या स्तब्धमायामनुस्तथा'।

(२) (यह) प्रवृत्तियों को अवरुद्ध कर देने वाली विद्या है—

'प्रवृत्तिरोधिनी विद्या बगला च कुमारकः'।

(३) (यह) मन्त्रों के जीवन की विद्या है और प्राणियों तथा प्रजाओं का अपहरण करने वाली है—

'मन्त्रजीवनविद्या च प्राणिप्रज्ञाऽपहारिका'।

(४) (यह) रात्रि का पर्यायवाचक है और षट्कर्मों का मूलाधार है—

'षट्कर्माऽऽधारविद्या च रात्रेः पर्यायवाचकाः'।

(५) (यह) षट् प्रयोगों से युक्त तथा षड्विद्या-पूजित विद्या है—

'षट् प्रयोगमयी विद्या षड्विद्यागमपूजिता'।

(६) (यह) तीनों शक्तियों से पूर्ण है। अन्य समस्त विद्याएँ इस विद्या के समक्ष तिरस्करणीय हैं—

'तिरस्कृताऽखिला विद्याः त्रिशक्तिमयमेव च'॥

(७) (यह) विद्या स्तम्भन-क्रिया के बिना ही वशीकरण एवं शान्तिकर्म आदि को सिद्ध कर देती है—

'स्तम्भनेन विना वश्यं शान्तिश्चैव तु तद्विना'॥

(८) (यह) विद्या मोहन, आकर्षण, विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण आदि षट्कर्मों की निष्पादिका है। यह समस्त उद्वेगोत्पत्ति का भी केन्द्र है[१]।

(९) यह परमपावनी एवं मुनिग्राह्य है[२]।

(१०) अपनी महान्-से-महान् विद्या भी इस स्तम्भनकारिणी बगला महाविद्या के बिना प्रकाशित नहीं हो पाती[3] (महत्त्व नहीं प्राप्त कर पाती)।

(११) यह 'कमलासनजीवितम्' (ब्रह्मा का जीवन = विधाता का प्राण) विद्या है[४]।

(१२) यह देवी का कृपाप्रसाद है[५]।

(१३) यह विद्या स्वरक्षिका, स्वमन्त्रफलप्रदा, स्वकीर्तिरक्षिणी, शत्रुसंहारकारिणी, परविद्याविनाशिनी, परमन्त्रविदारिणी, परानुष्ठानछेदिनी, परकीर्तिविनाशिनी, परारोपित आपदाओं की विनाशिनी, परभ्रमोत्पादिका एवं षट्कर्मनिष्पादिनी है[६]। षट्कर्म-सिद्धि के

---

१. मोहनाकर्षणे चैव विद्वेषोच्चाटने तथा।
मारणं भ्रान्तिरुद्वेगकरणं च कुमारक॥

२. विद्या च बगलानाम्नी मुनिविद्यासुपावनी।

३. विना वाक्-स्तम्भिनीविद्या स्वविद्या न च भासते।

४. तस्मादेतन्महाविद्यां कमलासनजीवितम्।

५. तेन देवी कटाक्षेण कृतवानागमं भुवि।

६. स्वविद्यारक्षिणी विद्या स्वमन्त्रफलदायिका।

आकांक्षियों को इस विद्या की उपासना अवश्य करनी चाहिए[1]।

बगला महाविद्या के प्रयोग के विशिष्ट उद्देश्य

बगला महाविद्या का सामान्य उद्देश्य तो आमुष्मिक कल्याण एवं मुक्ति है किन्तु जागतिक उद्देश्यों के लिए भी उसके प्रयोग हैं जो निम्नाङ्कित हैं—

१. समस्त कर्मों का ध्वंस हो जाने पर,
२. सारे उपद्रवों, अनर्थों एवं व्युत्सर्गों के उपस्थित होने पर,
३. जातिस्तम्भ एवं मन:स्तम्भ की अवस्था में,
४. क्रूर कृत्या का निवारण करने के लिए,
५. अष्टवेतालों के शमन के लिए,
६. समस्त भैरवों को विनष्ट करने के लिए,
७. शान्ति, स्तम्भन एवं जल रक्षण के लिए,
८. देवता-दानव-दैत्यादि के उपद्रवों को शमित करने के लिए,
९. उत्पन्न भ्रमपूर्ण परिस्थिति के विनाश के लिए,
१०. पूतना-विनाश एवं सारे उपद्रवों के ध्वंस के लिए,
११. कारागृह से मुक्ति के लिए,
१२. प्राण-संकट उपस्थित होने पर उसके विनाश के लिए,
१३. मुष्टि के ध्वंस के लिए (मुष्टिप्रयोगध्वंसार्थ),
१४. ३६ प्रकार के बाणों के नाश के लिए,
१५. सूची-प्रयोग को नष्ट करने के लिए,
१६. महाशस्त्रास्त्र के प्रयोग से रक्षा के लिए,
१७. गति-मति-सूर्य-अग्नि को स्तम्भित करने के लिए,
१८. अनेक रोगों को निराकृत करने के लिए,
१९. अनेक प्रकार के केशों को निराकृत करने के लिए,
२०. रण एवं राजकुल में उत्पन्न अशान्ति हटाने के एवं शान्ति स्थापित करने के लिए,
२१. दूसरों के द्वारा किये गये प्रयोगों से रक्षा करने के लिए,

स्वकीर्तिरक्षिणी विद्या शत्रुसंहारकारिका ॥
परविद्याछेदिनी च परमन्त्रविदारिणी ।
परमन्त्रप्रयोगेषु सदा विध्वंसकारिका ॥
परानुष्ठानहारिणी परकीर्तिविनाशिनी ।
पराऽऽपन्नाशकृद् विद्या परेषां भ्रमकारिणी ॥ आदि ।

१. 'तेनोपास्यस्त्वयं मनु' ॥२१॥ (सांख्यायनतन्त्र)

२२. दूसरों के द्वारा प्रयुक्त या दूसरों पर प्रयुक्त कृत्या के प्रभावों को नष्ट करने के लिए,

२३. कृत्या के द्वारा प्रयुक्त विषप्रयोग निराकृत करने के लिए और

२४. सारे दोषों का निराकरण करने के लिए निम्नाङ्कित पद्धति से अधोवर्ती बगला साधना-विधि का अनुसरण करना चाहिए।

क्रम-दीक्षा और महाविद्या बगलामुखी की उपासना

अन्य दीक्षाओं की ही भाँति क्रमदीक्षा में भी प्रयोग-प्रकार तो पूर्ववत् ही है किन्तु मन्त्रोपदेशक्रम में परिवर्तन अवश्य है—'काली च सुन्दरी, तारा क्रमदीक्षाऽभिगामिनी'—के निर्देशानुसार इन तीनों (काली, सुन्दरी एवं तारा महाविद्या) विद्याओं के लिए क्रमोपदेश का विधान है। इतना होने पर भी 'पुरश्चर्यार्णव' नामक ग्रन्थ के अनुसार बगलामुखी महाविद्या के लिए भी क्रम-विधान है और तदनुकूल गुरु के उपदेश की पद्धति भी है। इस दिशा में कहा गया है कि—

'बगलाया महेशानि साम्राज्यपरमे स्थिता।
चन्द्रवेदसूक्ष्ममेरुमन्त्रहीनं शिवाऽन्तरम्॥
हृदयं च शतार्णं च पञ्चास्त्रं कुल्लुका तथा।
गायत्रीक्रमयोगेन साम्राज्यपरमेष्ठ्यधृक्'॥

विद्योपदेश का यही क्रम-विधान है।

चन्द्र १, वेद ४, सूक्ष्ममेरु ८, षट्त्रिंशदक्षरी विद्या, गणेश, बटुक, मृत्युञ्जय, दक्षिणा काली, सौभाग्यविद्या, हृदय, शताक्षर, पञ्चास्त्र, कुल्लुका एवं ब्रह्मास्त्रगायत्री—का क्रम ही आगमोक्त क्रम-विधान है।

'पुरश्चर्यार्णव' नामक ग्रन्थ में महाविद्या भगवती छिन्नमस्ता को भी क्रमान्तर्गत गृहीत किया गया है, किन्तु चूँकि इस प्रसङ्ग में दिव्य चीनाचार गृहीत है अतः इनका अन्तर्भाव तारा महाविद्या के अन्दर ही माना जाना चाहिए। जहाँ तक महाविद्या भगवती बगलामुखी का प्रश्न है वे महात्रिपुरसुन्दरी का ही रूपान्तर होने के कारण भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के ही क्रमान्तर्गत अन्तर्भूत हैं। इस प्रकार केवल क्रम-विधान में 'क्रमत्रय' ही प्रचलित है। इसी प्रसङ्ग में कहा गया है कि 'क्रमदीक्षा' पाँच विद्याओं में मान्य हैं—

'क्रमदीक्षा महेशानि पञ्चविद्यासु भेदतः।
तदङ्गमन्त्रा गायत्री कुल्लुकापञ्चकं शिवे'॥

क्रमदीक्षा का अपना विशेष ही महत्त्व है। क्रमदीक्षा के विधानानुसार उपासना करने पर मान्त्रिक-साधना भुक्ति एवं मुक्ति दोनों प्रदान करती है।

क्रमदीक्षा में क्रम-विधान

एकाक्षर मन्त्र	चतुरक्षर मन्त्र	अष्टाक्षर मन्त्र	षट्त्रिंशक्षर	गणेश	बटुक	मृत्युञ्जय
दक्षिणा काली	सौभाग्य-विद्या	हृदय	शताक्षर	पञ्चास्त्र	कुल्लुका	ब्रह्मास्त्र गायत्री

पूर्वोक्त क्रमानुसार मन्त्र की साधना करके गुरु के द्वारा 'अभिषेक' कराना चाहिए।

भगवती बगलामुखी एवं ऊर्ध्वाम्नाय

महाविद्या भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के साथ महाविद्या बगलामुखी की अभिन्नता है अतः उनकी आराधना ऊर्ध्वाम्नाय-विधान से भी की जाती है। ऊर्ध्वाम्नाय में महाविद्या बगला को भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न रूप में विभावित करके तदनुकूल मन्त्र का जप एवं ध्यान आदि करना चाहिए।

श्री षोडशी के कूटत्रय के पूर्व "ऐं ह्रीं श्रीं सौः क्लीं ऐं ह्रीं श्रीं १ जोड़कर अन्त में—"ह्री ऐं क्लीं सौः श्रीं" बीज को योजित करके परा-षोडशी मन्त्र का जप किया जाता है। षोडशी के ध्यान में भी पीत वर्ण का प्राधान्य है—

'ध्यायेत् पद्मासनस्थां विकसितवदनां पद्मपत्रायताक्षीं
हेमाभां पीतवस्त्रां करकलिततलसद् हेमपद्मां वराङ्गीम्।
सर्वालङ्कारयुक्तां सततमभयदां भक्तनम्रां भवानीं
श्रीविद्यां शान्तमूर्तिं सकलसुरनुतां सर्वसम्पत्प्रदाताम्'॥

भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के ध्यान में उनके वस्त्रों, आभूषणों, पुष्पमालाओं आदि सभी को पीले रंग में ही कल्पित किया जाता है। श्रीविद्या को भी दो भुजाओं वाली देवी के रूप में श्रीबगलासुन्दरी के रूप में कल्पित करना पड़ता है और साथ ही षोडशी की ही भाँति भगवती बगलासुन्दरी को भी पञ्चप्रेतासना के रूप में कल्पित किया जाता है।

आम्नाय और विद्याएँ

ऊर्ध्वाम्नाय में–	पूर्वाम्नाय में–	दक्षिणाम्नाय में–	पश्चिमाम्नाय में–
भगवती बगला की भगवती महात्रिपुर-सुन्दरी के रूप में कल्पना और तद्वत् ध्यान एवं पूजा।	ब्रह्मास्त्र गायत्री, हृदय, नवाक्षर, एकादशाक्षर और शेष भगवती षोडशी के समान।	(मन्त्र) ३६ अक्षर, एकाक्षर, चतुरक्षर, अष्टाक्षर, शेष यथापूर्ववत्।	त्र्यक्षर, शताक्षर, मालामन्त्र, शाबर मन्त्र, परप्रयोग, भक्षिणी। शेष पूर्ववत्।

उत्तराम्नाय में

पञ्चास्त्र, बगलास्त्र, कवच विद्या, शेष यथापूर्ववत्।

ब्रह्मास्त्र गायत्री के रूप

'ब्रह्मास्त्राय विद्महे स्तम्भनं तन्न बगला प्रचोदयात्'।

ऊर्ध्वाम्नाय-ब्रह्मास्त्रगायत्री 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स ४ ह ६ क-५, परा षोडशी हंस: सोऽहं ह्लौं ह्लौं'।

भगवती बगलामुखी का मूल मन्त्र मूल बीज/स्थिरमाया/स्तब्धमाया या बगला-बीज कहलाता है।

स्थिरमाया—'गगनार्ण' (आकाश-वर्ण) = 'ह' है। स्थिरबीज = 'ल'। 'रति-बिन्दु:' = 'ईं' है। समष्टिगत बीज वर्ण है = 'ह्लीं' या 'ह्लीं'। 'ह्लीं अभिशप्त है अत: इसमें अग्निबीज 'र' को भी संयोजित किया जाता है और वर्ण बनता है—''ह्लीं''। यही जप्य है। साधना-समाज में ये दोनों रूप प्रचलित हैं।

साधक-समाज में मान्यता है कि क्रम-दीक्षा के पूर्वोक्त क्रम को तीन वर्षों में अनुष्ठित करके समाप्त कर लेना चाहिए। बगला-मन्त्रों के पाठान्तर एवं स्वरूपान्तर भी प्राप्त होते हैं। उनके विनियोग, ऋष्यादि न्यास एवं ध्यान आदि के विषय में—१. शाक्तप्रमोद, २. मन्त्रमहोदधि, ३. मन्त्रमहार्णव, ४. सांख्यायनतन्त्र आदि ग्रन्थों में परस्पर भिन्नता है।

'बगलामुखीरहस्यम्' में उल्लिखित अष्टाक्षर मन्त्र—'ॐ ह्लीं ओं ह्लीं क्रों बगला' सांख्यायनतन्त्र के अष्टाक्षर मन्त्र से स्वरूपत: भिन्न है।

भगवती षोडशी (त्रिपुरसुन्दरी) का पञ्चप्रेतासन—'पञ्चब्रह्ममयैकपीठनिलयाम्'।

भगवती बगला का पञ्चप्रेतासन—'पीतवासो मते पुत्र! पञ्चप्रेतगतां स्मरेत्'।

जहाँ क्रमदीक्षा का विधान है वहाँ 'पूर्णाभिषेक' भी स्वीकृत है। चूँकि षोडशी एवं बगला अभिन्न हैं अत: भगवती षोडशी की ही भाँति बगलोपासना में भी षडाम्नायविद्योपदेश एवं पूर्णाभिषेक स्वीकृत है।

ऊर्ध्वाम्नाय में 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं, क ए ई ल ह्रीं'—इस प्रकार **पराषोडशी** 'हंस: सोऽहं ह्लौं ह्लौं' बगलागायत्री स्वीकृत है तथा अन्य पूर्ववत् ही है। वैसे 'दिव्यौघ गुरु' एवं 'मानवौघ गुरु' अभिन्न हैं और केवल सिद्धौघ गुरु-मण्डल ही भिन्न है।

अनुत्तराम्नाय में मात्र ऐक्य ही स्वीकृत है।

मन्त्राभिषेक

जो साधक अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त करने के आकांक्षी हो उनके लिए अभिषेक अत्यावश्यक है, क्योंकि—

'मन्त्राभिषेक: कर्तव्य: सद्य: सिद्धिकरो भुवि'।

अभिषेक का उचित समय—आश्विन, कार्तिक या चैत्र मास अभिषेक के लिए अत्युत्तम काल स्वीकृत किये गये हैं। दिनों में गुरुवार एवं रविवार के दिन अत्यन्त शुभ हैं। इन शुभ मासों में से किसी मास के गुरु या रवि के दिन पूर्वाह्ण में सत्पात्र साधक को पञ्चगव्य एवं फिर आमलक से स्नान करना चाहिए। उचित तो यही है कि उक्त मास के उक्त दिन पर रोहिणी, श्रवण, स्वाती एवं विशाखा में से कोई एक नक्षत्र भी हो।

अभिषेक-विधान (सांख्यायनतन्त्र)

शुभ मास	**शुभ दिन**	**समय**	**शुभ नक्षत्र**
१. आश्विन मास	१. रविवार	पूर्वाह्ण	१. रोहिणी
२. कार्तिक मास	२. गुरुवार		२. श्रवण
३. चैत्र मास			३. स्वाती
			४. विशाखा

क्रिया—(१) साधक पञ्चगव्य एवं आमलक से स्नान करे।

(२) स्नानोपरान्त साधक को देवसान्निध्य में लाया जाता है और वहाँ वेदमाता गायत्री का अयुत जप करना होता है।

(३) देवता के ईशान भाग को गोमय से लीपकर रक्त, पीत, असित एवं सित वर्णों वाली रङ्गावली से 'यन्त्र' निर्मित करना चाहिए।

इसमें बिन्दु, वृत्त, अष्टपत्र आदि निर्मित करके उसके मध्य में—प्रियङ्गु, शालि, गोधूम, माषक, कुलत्थ एवं नीवार आदि का विन्यास करना चाहिए। इसके बाद कलश की पूजा करनी चाहिए। कलश को प्रक्षालित, वासित एवं शुद्ध करके ही उसकी स्थापना करनी चाहिए। इसके बाद उसकी षोडशोपचार से पूजा करनी चाहिए।

'क्षालितं वासितं शुद्धं कलशं तु समर्चयेत्।
षोडशैरुपचारैश्च धूपाद्येनैव विन्यसेत्'॥

कलश के जल एवं जल के दिव्य स्वरूप का ध्यान मन्त्र—'ॐ आपो व इदं सर्वं विश्वाभूतानि आप: प्राणा वा आप: पशव: आपोऽन्नमापोऽमृतमाप: सम्राडापो विराडापो स्वराडापश्छन्दस्यापो ज्योतींष्यापो यजूंषि आपस्सत्यमापस्सर्वा देवता आपो भूर्भुवस्सु वराप: ॐ'।

यह पढ़कर कलश में सरिता का स्वच्छ जल भरना चाहिए।

९ नये भाण्डों में नव रत्न डालना चाहिए। इसमें कस्तूरी एवं चन्दन का भी निक्षेप होना चाहिए। इसके बाद इस कलश के मध्यभाग में चिन्मयी भगवती बगलामुखी का आवाहन करना चाहिए। यह क्रिया केरलोक्त विधान से प्राणस्थापनमार्ग से निष्पादित

की जानी चाहिए और वाणी, रमा, गौरी, शची, स्वाहा, रति, दुर्गा एवं छाया की अर्चना करनी चाहिए। नव्य ९ वस्त्रों से इसे वेष्टित भी करना चाहिए। कलश के भीतर सुगन्धित पुष्पादिक का विन्यास करना चाहिए। इसी स्थान पर शिष्य एवं वेदवेदाङ्गपारीण आठ (ऋत्विक् आदि) ब्राह्मणों को बुलाकर और उनका वस्त्राभूषण से सत्कार करके मन्त्रों के द्वारा कलशार्चन करना चाहिए।

प्रथम कलशार्चन—मन्त्रों के द्वारा।
द्वितीय कलशार्चन—लक्ष्मीसूक्त एवं श्रीसूक्त के द्वारा।
तृतीय कलशार्चन—पुरुषसूक्त द्वारा।
चतुर्थ कलशार्चन—नारायणानुवाक द्वारा।
पञ्चम कलशार्चन—पञ्चब्रह्ममय मन्त्रों द्वारा।

षष्ठ कलशार्चन—'षष्ठं चाम्भस्य पारेण ब्रह्मवल्या तु सप्तमम्'।
सप्तम कलशार्चन—तैत्तिरीयोपनिषद् की 'ब्रह्मवल्ली' के द्वारा।

अष्टम कलशार्चन—तैत्तिरीयोपनिषद् की 'भृगुवल्ली' के द्वारा—'अष्टमं भृगुवल्ल्या तु मार्जयेन्मन्त्रकोविद:'।

मध्य स्थित पूर्वकलश का मूल मन्त्र से मार्जन करना चाहिए और उसको नव्य वस्त्रों एवं भूषणों से अलंकृत करके शिष्य को मध्य में बुलाकर वामवर्ती जघनस्थल पर शिष्य का शिर रखकर एवं उसे आदर से सूँघकर उसे मूल मन्त्र की दीक्षा देकर गुरु को कल्पना करनी चाहिए कि 'मेरे हृदयकमल में स्थित ज्योतिर्मयी विद्या शिष्य के हृदय में प्रवेश कर रही है'।

इसके बाद गुरु को चाहिए कि वह उसी मन्त्र के ही द्वारा षट्चक्रभेदन करके दोनों की आत्मा में ऐक्य स्थापन करे—

'षट्चक्रभेदनं कृत्वा स्वात्मैक्यं च विभावयेत्'।

अभिषेक-क्रिया, मन्त्र-दान, षट्चक्रभेदन आदि सारी क्रियाओं में ब्रह्मास्त्रविद्या का ही प्रयोग करना चाहिए—

'एवं मन्त्राभिषेकं च कुर्याद् ब्रह्मास्त्रविद्यया'[१]।

अभिषेक, मन्त्र-दान, स्वात्मैक्य-विधान का फल—

'विद्यारूपो भवेत् पुत्र साम्राज्यं परमेष्ठिना।
एवं मन्त्राभिषेकं च कुर्याद् ब्रह्मास्त्रविद्यया।
सद्य: सिद्धिर्भवेत् पुत्र पुरश्चर्यां विना भुवि'[२]॥



८. सांख्यायनतन्त्र (तृतीय पटल)। २. सांख्यायनतन्त्र।

चतुर्थ अध्याय

साधना एवं उपासना का यथार्थ स्वरूप

'साधना' क्या है ? ऐन्द्रिय स्तर से ऊपर उठकर—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' वाले इन्द्रियातीत परमपद (स्वस्वरूप आत्मिक तीर्थ) की यात्रा करना ही साधना है। आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो भी आध्यात्मिक यात्रा की जाती है वही साधना है। 'स्वर्ग' प्राप्त करना है तो पहले आपके हृदय में स्वर्ग रहना चाहिए क्योंकि तभी स्वर्ग प्राप्त हो सकता है। Bible में ठीक ही कहा गया है—'Heaven will be inherited by every man who has heaven in his soul'। ऋषि भी कहते हैं—'शिवो भूत्वा शिवं भजेत्' यही साधना का सिद्धान्त है।

सांसारिक प्राण, सांसारिक मन, सांसारिक शरीर एवं सांसारिक हृदय भगवान् की साधना का अधिकारी ही नहीं है। जब 'शिव' शव बनता है तभी उसके वक्षःस्थल पर 'शक्ति' का पदार्पण हो पाता है। साधना 'साध्य' को प्राप्त करने की तैयारी है—तीर्थ तक पहुँचने की एक यात्रा है या 'उसके' आने के लिए तुम्हारे द्वारा पथ-निर्माण है, क्योंकि इसीलिए कहा गया है कि—

'Prepare the way of the lord.
Make his path straight.' (Bible)

इस साधना के कुछ सिद्धान्त हैं—इस यात्रा के कुछ नियम हैं। इसका प्रथम सिद्धान्त है एकनिष्ठता—'No one can serve two masters for either he will hate the one and love the other or he will be devoted to the one and despire the other. You can not serve God and mammon.'

(Bible : Mathew)

इसका दूसरा सिद्धान्त है—अटल प्रेम। इसीलिए कहा गया है—

'You shall love the Lord your God with all your heart and with all your soul and with all your mind. This is the great and first commandment.' (Bible : Mathew)

बाइबिल के मतानुसार इसका दूसरा सिद्धान्त है पड़ोसियों से प्रेम—'Second is like it, you shall love your neighbour as your self '—इस सूत्र में अहं-त्वं की भेदक भावना को नष्ट करके समत्व दृष्टि के विकास की ओर उत्प्रेरित किया गया है।

भौतिक और शारीरिक आवश्यकताओं की गुलामी पर भी अंकुश आवश्यक है। इसीलिए कहा गया है—

'I tell you, do not be anxious about your life, what you shall eat or what you shall drink, nor about your body, what you shall put on. Is not life more than food and the body more than clothing ?

(Bible : Mathew)

यह भी विश्वास करना आवश्यक है कि जो कुछ भी तुम करते हो परमात्मा सब कुछ देख रहा है। अपने लिए जो भी भलाई पहले से भेज दोगे उसे परमात्मा के यहाँ अवश्य पाओगे।

'व मा तुक़दिदमू लिअन्कुसिकुम् मिन् ख़ैरिऩ तजिदूहु अिन्दल्लाहि अिन्नल्लाह विमा तड़मलून बसीरुन'। (सूरलुल बक़रति ११०)

अपनी प्रार्थना-शक्ति में भी अपना पूर्ण विश्वास होना चाहिए—I tell you, whatever you ask in prayer belive, you have received it and it will be yours. (Bible : Mark)

साधना में ऐकात्म्य तत्त्व

एकनिष्ठता, एकीभाव, ताद्रूप्य, तदात्मकता, 'तत्' में 'त्वं' का लय ही ऐकात्म्य की भावना है। एक उदाहरण लें—'लेक अज़ लैला वजूदेमन पुरस्त। ईं सदक़पुर अज़ सिक़ाते आदुरस्त तरसम ऐ क़स्साद अगर क़स्दमकुनी। नेश रा नागाह बर लैला ज़नी। दानद आं अक्ले कि ऊ दिल रौशनीस्त। दरमियाने लैलए मन फ़र्कनीस्त मन केअम लैला व लैला कीस्तमन। मायके रूहेम अंदर दो बदन'॥ अर्थात् 'मेरे सम्पूर्ण शरीर में लैला ही व्याप्त है और इस शरीर रूपी सीपी में उस मोती की झलक भरी हुई है। इसलिए ऐ क़स्साद ! मुझे डर है कि यदि तू मेरी क़सद खोलेगा तो यह नश्तर कहीं लैला को न लग जाय। जो रहस्यविद् है वह जानता है कि मुझमें और लैला में कुछ भी अन्तर नहीं है। 'मैं' लैला हूँ और 'लैला' मैं है। प्रत्यक्ष दो शरीर दिखाई पड़ते हैं किन्तु यथार्थतः प्राण एक ही हैं'।

ईसाई धर्म की मान्यता : ईसाई धर्म 'अद्वैतवाद' का समर्थक एवं 'सायुज्यमुक्ति' का प्रतिपादक तो नहीं है तथापि ईसामसीह कहते हैं—

(1) 'I and my father are one.'

(2) सेण्टपाल कहते हैं—'In live and yet no longer I, but Christ live in me.'

(3) 'And that life which I now live in the flesh, I live in faith, the faith which is in the son of God, who loved me and gave himself'.

पतङ्गा दीपक को देखकर सब कुछ यहाँ तक कि अपने को भी भूल जाता है—'क्या देखते नहीं कि दीपक और पतङ्गे में कितना प्रेम है ? पतङ्गा सदैव उसी के प्रणय में भावविभोर रहता है। वह कभी दूसरे का ध्यान नहीं करता'।

'न बीनी कि परवानओ शमा हरगिज़।
कि बर बातिनश खीरा गरदद बिदादे'॥

सारे द्वैताभासों में अद्वैत (अभेद) की प्रतीति—अनन्त भेदों एवं द्वैतभावों से भरे जगत् में साधक भेद में अभेद की खोज करता है। तुलसी के शब्दों में वह अभेदात्मकता इस प्रकार है—

'सियाराममय सब जग जानी। करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी'॥

एक सूफी को मन्दिर और काबा, मस्जिद एवं गिर्जा, तसबीह और माला सबमें 'एक' ही दृष्टिगत है 'दूसरा' कोई दिखाई नहीं पड़ता—

'बुतखानआ काबाखानए बन्दगी अस्त।
नाक़स ज़दन तरानए बन्दगी अस्त॥
मेहराबो कलीसाओ तसबीहो सलीब।
हक्का कि हमा निशानए बन्दगी अस्त'॥

अर्थात् मन्दिर और काबा दोनों ईश्वर की पूजा के स्थान हैं। शङ्ख बजाना उसी का आह्वान या आजान है। मस्जिद की मेहराब और गिर्जा की वेदी, तसबीह और माला सभी में एक ही सत्य स्थित है। ये सभी उसी एक ही पूजा की स्मृतियाँ हैं।

इस ऐकात्म्यभाव के लिए दो के एक हो जाने के लिए केवल एक बात आवश्यक है और वह है—अपनी पृथक् पहचान एवं अपने पृथक् अस्तित्व को भुलाकर दूसरे के अस्तित्व में अपने को लय कर देना—

'शवज खुद बरी गर्दतावर हक़ीक़त।
तुरा बे तो हासिल शवद इनहिदादे'॥

अर्थात् अपने आपको विस्मृत कर दो। हक़ीक़त (ईश्वरीय याथार्थ्य = सत्यता) तक पहुँचने का यही मार्ग है। इसी उपाय से तू अपने आपको भी दूर कर सकेगा।

'मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है'॥

इसीलिए Lord Christ ने Bible में कहा था—'Take my cross'। शास्त्र कहता है—'and follow me' क्रौस लेना ही अपने 'मैं' को मिटाना है।

'देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्'। कहकर देवतादात्म्य को ही देवतात्त्व का पर्याय स्वीकार किया गया है।

परमात्मा की इस प्रतिज्ञा एवं वचन पर पूर्ण विश्वास करना चाहिए कि 'मैं तो तेरे पास हूँ। जब कभी कोई मुझे पुकारता है तो मैं प्रत्येक पुकारने वाले की प्रार्थना स्वीकार कर लेता हूँ'—

'व अिजा सअलक अिवादी अन्नी क़ अिन्नी क़रीबुन अजीबु दड़वतद्दाज़्यि अिज़ा दज़्यानि कलय स्तजीबूली वल्युअमिनू बी लज़्यल्लहुम् यर्शुदन' ॥

(सूरतुल बक़रति)

जो मांस के पिण्ड से जन्म लेता है वह तब तक मांस का पिण्ड ही बना रहता है जब तक कि आध्यात्मिक जन्म लेकर आत्मा के राज्य में प्रवेश नहीं कर लेता। आध्यात्मिक लोक में प्रवेश करने के लिए एक नया जन्म लेना ही पड़ेगा। इसीलिए हिन्दू शास्त्र द्विजत्व (दुबारा जन्म) में विश्वास रखता है। क्योंकि—

'You must be born a new.' ''Truly truly I say to you, unless one is born of water and the spirit he can not enter the kingdom of God. That which is born of the flesh is flesh and that which is born of the spirit is spirit." (Bible : John)

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में युक्ताहार, युक्तविहार, युक्तचेष्टा, युक्तस्वप्नावबोध को भी योगसाधनार्थ आवश्यक माना है।

'युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा' ॥

योग-साधना हेतु उचित स्थान एवं मनोवृत्ति-निर्धारण—गोरक्षनाथ 'अमनस्क योग' में इस दिशा में यह निर्देश दिया है कि—

'विविक्तदेशे सुखसन्निविष्टः, समासने किञ्चिदुपेत्य पश्चात्।
बाहुप्रमाणं स्थिरदृक् स्थिराङ्गश्चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व ॥
एवमभ्यसतो योगं मनो भवति सुस्थिरम्' ॥

अर्थात् (१) एकान्त स्थान हो, (२) सुखपूर्वक आसन ग्रहण करके स्थित हो जाये, (३) एक हाथ की दूरी पर दृष्टि को स्थिर रखें, (४) शरीर के प्रत्येक अङ्ग स्थिर हों, (५) साधना के समय चिन्ता से रहित मनोवृत्ति हो। उसके बाद ही योग-साधना करें।

भगवान् पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। उनके इस कथन पर विश्वास होना चाहिए कि—

'नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद' ॥

साधक में इतनी तन्मयता एवं ऐकात्म्यभाव की प्रगाढ़ता होनी चाहिए कि वह यह अनुभव कर सके कि—

'अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्' ॥

जब अक्षर पर क्षर (Perishable or imperishable) एवं अमर्त्य पर मर्त्य (Mortal on immortal) आरोहण (पद-विक्षेप) करता है तब वह मृत्युञ्जयत्व प्राप्त करके मृत्यु को चुनौती देता हुआ कह उठता है—

'O Death! where is thy victory ?'
'O Death! where is thy sting ?'

क्योंकि वह देखता है कि—
Death is swallowed up in victory.

(Bible : Corinthians)

साधना में 'मैं' और 'तू' दोनों एक साथ नहीं रह सकते। इसीलिए कहा गया है—

'If any man would come after me, let him deny himself and take up his cross daily and follow me.' Cross लेने का अर्थ है अपनी वासनाओं को शूली पर चढ़ा देना है। क्योंकि जो अपना जीवन बचायेगा वह उसे खो देगा और जो उसे ईश्वर की राह में खो देगा वह उसे सदा अक्षर रखेगा—'Whoever would save his life will lose it, and whoever loses his life for my save, he will save it.' ठीक भी है—

'मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है' ॥

अध्यात्म राज्य में जो कुछ सुना जाता है उसे मांस के कान नहीं सुन सकते, वहाँ जो देखा जाता है उसे मांस की आँखें नहीं देख सकती, वहाँ जो समझा जाता है उसे मांस का दिमाग समझ नहीं सकता। क्योंकि—

'You shall indeed hear but never understand and you shall indeed see but never perceive'.[१]

व्रत एवं उपवास प्रदर्शन की वस्तु नहीं है अत:—'When you fast, do not look dismal, like the Hypocrites, for they difigure their faces that their fasting may be seen by men'.

सबसे बड़ी साधना है परमात्मा में लय हो जाना। सूफ़ी इस अवस्था को 'फ़ना' कहते हैं[२]।

हिन्दू इसे समाधि कहते हैं। योगी इसे 'समाधि' एवं 'योग' कहते हैं।

समाधि और योग

सारी साधनाओं की अन्तिम भूमि समाधि है। समाधि क्या है ? 'योग: समाधि:'।

---

१. Bible : Mathew। २. क़िताबुत्तवासीन।

अर्थात् योग समाधि है। योग क्या है ? योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'। योग समत्वभाव है—'समत्वं योग उच्यते' (गीता)। योग कर्म में कौशल है—'योगः कर्मसु कौशलम्'। योग वियोग है—'वियोगं योगसंज्ञितम्'।

(गीता)

समाधि का स्वरूप

उत्तरगीताकार की दृष्टि—श्रीकृष्ण उत्तरगीता में कहते हैं—

'आकाशं मानसं कृत्वा मनः कृत्वा निरास्पदम्।
निश्चलत्वं विजानीयात् समाधिस्थस्य लक्षणम्॥
योगामृतरसं पीत्वा वायुभक्षः सदा सुखी।
यममभ्यसते नित्यं समाधिमृत्युनाशकः॥
ऊर्ध्वशून्यमधःशून्यं मध्यशून्यं यदात्मकम्।
सर्वशून्यं स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम्॥
ऊर्ध्वपूर्णमधःपूर्णं मध्यपूर्णं यदात्मकम्।
सर्वपूर्णं स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम्'[१]॥

हृदय को आकाशवत् निर्मल एवं विराट् बनाकर, मन को निरास्पद (निर्विषय) बनाकर; सम्पूर्ण अन्तःकरणचतुष्टय, इन्द्रियसमूह एवं शरीर को निश्चल बनाकर, प्राणायाम की साधना में निरत रहकर; ऊर्ध्वशून्य, मध्यशून्य एवं अधःशून्य (ऊर्ध्वदेश, मध्यदेश एवं अधोदेश) के तथा देशकालादि के परिच्छेद से रहित आत्मा की भावना करते हुए तथा ऊर्ध्व, मध्य एवं अधोदेश अर्थात् सर्वत्र पूर्णतम रूप में स्थित आत्मा की पूर्ण व्याप्ति की अनुभूति करके जो आत्मप्रतिष्ठ परमा स्थिति प्राप्त की जाती है वही 'समाधि' है।

पतञ्जलि की दृष्टि—

'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः'॥ (योगसूत्र ३।३)

'Take my cross and follow me' का संदेश सांसारिक एषणाओं को शूली पर चढ़ा देना है। Cross सांसारिक जीवन, जागतिक एषणा एवं अहं का बलिदान है।

भागवतकार की दृष्टि—भागवतकार कहते हैं कि मनोनिग्रह युक्त मन की परावस्था ही 'समाधि' है और वही 'परयोग' है—

'सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः'।

योग क्या है ? जीवात्मा-परमात्मा का ऐक्य ही योग है[२]।

---

१. उत्तरगीता।

२. संसारोत्तारणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः॥ (योगवासिष्ठ)

साधना और उसके सामान्य नियम

जप करने हेतु स्थान-चयन—

(१) **नित्यातन्त्र की दृष्टि**—भूमि के मध्य स्थल पर, शक्तिपीठ पर, महापीठ पर प्राणप्रतिष्ठित शिवमन्दिर में एवं आँवले के वृक्ष के नीचे जप करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

(२) **शारदातन्त्र की दृष्टि**—पार्वतशिखर, सरितापुलिन, सङ्गम, तीर्थ, गुफा, बिल्ववृक्ष एवं प्राणप्रतिष्ठित देवमन्दिर, समुद्रतट या अपना घर जप-सिद्धि हेतु प्रशस्त स्थान है।

(३) **समयासारतन्त्र की दृष्टि**—इस ग्रन्थ के अनुसार शिवालय, गुफा, पार्वत शिखर, सिद्धपीठ, शक्तिपीठ, बरगद के वन या वृक्ष के नीचे, बिल्ववृक्ष, केला, चौराहा एवं खाट—सभी स्थान जप-सिद्धि के लिए प्रशस्त हैं।

(४) गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, कावेरी, सतलज आदि पवित्र नदियों को छोड़कर शेष अन्य नदियों पर साधना करने का निषेध भी किया गया है।

(५) **'अन्नदाकल्प' की दृष्टि**—इस ग्रन्थ के अनुसार केले का पेड़, बेल, शक्ति-पीठ, नवयुवती नारी, माता की प्रतिमा, प्राणप्रतिष्ठित शिवलिङ्ग, गाय, गुरु के निकट एवं अपने घर में की जाने वाली साधना एवं दीक्षा भी श्रेयस्कर होती है।

(६) **तान्त्रिक आचार्य राघव भट्ट की दृष्टि**—आचार्य राघवभट्ट के अनुसार—

(क) अपने घर पर निष्पादित सविधि जप साधारण फल देता है।

(ख) गोशाला में निष्पादित जप १०० गुना अधिक फल देता है।

(ग) किसी अरण्य में निष्पादित जप १००० गुना अधिक फल देता है।

(घ) पर्वत पर निष्पादित जप १०,००० गुना अधिक फल देता है।

(ङ) नदी-तट या संगम पर निष्पादित जप १ लाख गुना अधिक फल प्रदान करता है।

(च) प्राणप्रतिष्ठित देवालय की प्राणप्रतिष्ठित मूर्ति के सामने निष्पादित जप एक करोड़ गुना फल प्रदान करता है।

(छ) प्राणप्रतिष्ठित शिवलिङ्ग एवं एकलिङ्ग के निकट निष्पादित जप अनन्तगुणित फल प्रदान करता है।

(ज) भगवती के निकट या शक्तिपीठ पर आसीन होकर निष्पादित जप भी शीघ्रातिशीघ्र एवं अनन्तगुणित फल प्रदान करता है।

(झ) 'कामरूप पीठ' में निष्पादित जप एवं अन्य साधनाएँ शीघ्र फल प्रदान करती हैं, क्योंकि वहाँ की जाग्रत् शक्ति साधक के शरीर में स्थित होकर उसकी साधना पूर्ण

कराती है। 'कामरूप पीठ' में भी 'कामाख्या योनिमण्डल' सौ गुना अधिक फलप्रद एवं सिद्धिप्रदायक है, क्योंकि वहाँ शक्ति १०० गुना और अधिक जाग्रत् है।

(ञ) साधकों ने अपने अनुभव के आधार पर बताया है कि यदि 'जप' को त्रिकुटी के मध्य स्थित रखकर मन्त्र-जाप किया जाय तो वह तत्काल फलीभूत होता है।

(ट) पीठ की अर्चना करके उस सिद्ध पीठ पर मन एवं मन्त्र को भ्रूद्वय के मध्य केन्द्रित रखकर सप्रेम किया हुआ जप (एवं अन्य साधना) कभी निष्फल नहीं होती। मुख्यत: कामरूप में कामरूप-योनिमण्डल के पास जप (या अन्य साधना) सर्वाधिक फलीभूत होती है।

भगवती बगलामुखी की उपासना

आद्य साधन-विधान—साधक को भगवती बगलामुखी की उपासना या पूजा करने के समय निम्न बिन्दुओं पर ध्यान अवश्य देना चाहिए। इन्हें 'साधन' कहा गया है—'साधनं सम्प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै' ॥

(क) साधन

सर्वपीताचार	पीताम्बरधारण	जपमाला (हरिद्रा ग्रन्थि से निर्मित हो)	पीतासन	पीतध्यान

पीतपुष्पार्चन	प्रतिदिन अयुत जप	दशांश हवन (पीत द्रव्यों द्वारा दशांश हवन)	साधना का सुनिश्चित स्थान (एकान्त, निर्जन, शुचिदेश में; गृह में या पुर में)

'साधनं सम्प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै।
सर्वपीतोपचारेण पीताम्बरधरो नर: ॥
जपमालां च देवेशि हरिद्राग्रन्थिसम्भवाम्।
पीतासनसमारूढ: पीतध्यानपरायण: ॥
दशांशैश्च कृतो होम: पीतद्रव्यै: सुशोभनै:।
संज्ञामुच्चारयेत् साध्यं स्तम्भनं च महाद्भुतम् ॥
शृणु प्राज्ञे महागुह्यं प्रकटीकृतसाधनम्।
एकान्ते निर्जने स्थाने शुचौ देशे गृहे पुरे'[१] ॥

स्थान-चयन—कोलाहलशून्य की साधना कोलाहल में किया जाना स्वत:विरोधी है, अत: कोलाहल से भरे घर एवं कोलाहलाक्रान्त स्थान में आध्यात्मिक साधनाएँ सफल

---

१. षट्कर्मदीपिका।

नहीं होती; अतः एतदर्थ स्थान का चयन किया जाना चाहिए। इसी दिशा में कहा गया है कि—

'एकान्ते निर्जने रम्ये शुचौ देशे गृहेऽपि वा।
पर्वताग्रे महारण्ये सिद्धशैलमये गृहे।
सङ्गमे च महानद्यो निशायामपि साधयेत्'॥

यह भी निर्देश दिया गया है कि—

'नैकवासा न च द्वीपे नाऽन्तरिक्षे कदाचन।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित्'॥

'नान्तरिक्षे' से तात्पर्य है कि खुले स्थान में भी साधना नहीं करनी चाहिए।

(ख) आसन-विधान—भगवती बगलामुखी की उपासना एवं पूजा के समय आसन पीला होना चाहिए—यह तो सामान्य नियम है किन्तु प्रयोजनों की भिन्नता के अनुरूप ही आसन के लिए प्रयुक्त वस्तु में भिन्नता होना आवश्यक है। यथा—

(१) वशीकरण (अभिचार) हेतु	:	मेषासन
(२) आकर्षण (अभिचार) हेतु	:	व्याघ्रचर्म
(३) शान्त कार्य हेतु	:	मृगासन
(४) स्तम्भन (अभिचार) हेतु	:	गोचर्म
(५) उच्चाटन (अभिचार) हेतु	:	उष्ट्रासन
(६) विद्वेषण (अभिचार) हेतु	:	तुरगासन
(७) मारण (अभिचार) हेतु	:	महिषीचर्म
(८) मोक्ष (चतुर्थ पुरुषार्थ) हेतु	:	गजाजिन

'वश्ये मेषासनं प्रोक्तं कर्षणे व्याघ्रचर्मणि।
शान्तौ मृगासनं प्रोक्तं गोचर्म स्तम्भने मतम्॥
उष्ट्रासनं तथैवोच्चाटे विद्वेषे तुरगासनम्।
मारणे महिषीचर्म मोक्षे चैव गजाजिनम्॥
नानाविधानि ते देवि! क्रमाद् द्रव्यं समाचरेत्'[१]॥

ऐहिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए तो ये आसन उपयुक्त हैं ही किन्तु क्या मोक्ष पाने के लिए इन स्थूल एवं नश्वर आसनों से ही उद्देश्य-सिद्धि सम्भव है? नहीं।

'आसन' से क्या प्राप्त होता है? कायिक स्थिरत्व। आध्यात्मिक साधना के लिए कैसा स्थिरत्व चाहिए? योगी कौन है? योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं—

---

१. षट्कर्मदीपिका।

'दृष्टि: स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं, वायु: स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्।
स एव योगी स गुरु: स सेव्य:' ॥ (अमनस्कयोग)

इसके लिए यह साधना इस प्रकार निष्पाद्य है—

'विविक्तदेशे सुखसन्निविष्ट:, समासने किञ्चिदुपेत्य पश्चात्।
बाहुप्रमाणं स्थिरदृक् स्थिराङ्गश्चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व' ॥

मुख्यता है मन के स्थिरत्व की अत:—

'न किञ्चिन्मनसा ध्यायेत्सर्वचिन्तविवर्जित:।
स बाह्याभ्यन्तरे योगी जायते तत्त्वसम्मुख:'[१] ॥

हवन और यज्ञ

हवन यज्ञ एवं पूजा का एक अङ्ग है। यज्ञ और विष्णु में अभिन्नता है—'यज्ञो वै विष्णु:'।

पूजा की सार्थकता और निरर्थकता—यदि सर्वाकार एवं निरामय परमात्म तत्त्व का बोध हो ही गया हो तब तो सारी बाह्य क्रियाएँ व्यर्थ हैं—

'विदिते तु परे तत्त्वे सर्वाकारे निरामये।
क्व पूजा क्व जपो होम: क्व च लिङ्गपरिग्रह:'[२] ॥

अर्थात् जब तक उस परम शान्त परतत्त्व का बोध नहीं हो पाता तभी तक पूजा, जप, ध्यान, होम एवं लिङ्गार्चन आदि (सभी) आवश्यक हैं—

'यावत् तत् परमं शान्तं न विजानन्ति सुन्दरि।
तावत् पूजाजपध्यानहोमलिङ्गार्चनादिकम्' ॥

अद्वैतावस्था में पदार्पण करने पर सारी पूजन-पद्धति निरर्थक हो जाती है, क्योंकि—

'यैरेव पूज्यते द्रव्यैस्तर्प्यते वा परापर:।
यश्चैव पूजक: सर्व: स एवैक: क्व पूजनम्'[३] ॥

होम का यथार्थ स्वरूप

क्या अग्नि में हव्यान्न या हवि डालना ही हवन है ? क्या 'हवन' बाह्य कर्म मात्र है ? भगवान् शिव कहते हैं कि ऐसा सोचना भ्रामक है, क्योंकि होम या हवन अपने यथार्थ स्वरूप में उस क्रिया का नाम है जहाँ बोधभैरव रूपी चिदग्नि में पञ्चमहाभूत, इन्द्रियगण, विषय, भुवन तत्त्व एवं संकल्प-विकल्पात्मक समस्त जगत् को मन के समेत समर्पित करके भस्म कर दिया जाता है। यही हवन का यथार्थ स्वरूप है।

---

१. अमनस्कयोग। २. प्रभाकौल। ३. विज्ञानभैरव।

हवन

शून्यातिशून्य (अग्नि) (महाशून्यालय) पर भैरवस्वरूप चिदग्नि	(हवन सामग्री-आहुति-पदार्थ)	हवन का स्रुवा चैतन्य रूपी स्रुवा
	१. पञ्चभूत	
	२. इन्द्रिय-समूह	
	३. पञ्च महाविषय (तन्मात्राएँ)	
	४. मनस्तत्त्व	

'महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम् ।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतनास्रुचा'[१] ॥

चेतना के पात्र में समस्त जागतिक पदार्थों को रखकर उन्हें बोधभैरव की अग्नि में लीन कर दिया जाता है। इसके कारण मात्र शुद्ध अद्वय तत्त्व मात्र शेष रह जाता है। शुद्ध अद्वय तत्त्व के अतिरिक्त सब-कुछ भस्म हो जाता है। यही 'होम' है।

स्वच्छन्दतन्त्र की दृष्टि—तन्त्र बाह्योपासना का अनुवर्ती नहीं है इसीलिए स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है कि जिस क्रिया में शुद्ध अद्वय तत्त्व को छोड़कर सब कुछ भस्म हो जाता है और शुद्ध स्वात्मस्वरूप मात्र शेष रह जाता है वही यथार्थ हवन होम या यजन है। कहा गया है कि—

'एवं हृदम्बुजावस्थो यष्टव्यो भैरवो विभुः ।
सबाह्याभ्यन्तरं कृत्वा पश्चाद्यजनमारभेत्' ॥

अर्थात् हृदयकमल में स्थित भैरव ही यष्टव्य है। बाह्य को आभ्यन्तर करने के बाद ही यजन करना चाहिए। अर्थात् हवन की इस क्रिया में बाह्योपासना के लिए कोई भी स्थान नहीं है[२]।

योगिनीहृदयदीपिका की दृष्टि—योगिनीहृदयदीपिकाकार कहते हैं कि धर्म एवं अधर्म की हवि से प्रदीप्त आत्मा रूपी अग्नि में मन रूपी स्रुवा के द्वारा सुषुम्णा के मार्ग से मैं इन्द्रियवृत्तियों का प्रतिदिन हवन किया करता हूँ[३]—

'धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्णावर्त्मना नित्यमसवृत्तीर्जुहोम्यहम्' ॥

इस हवन में अहन्ता एवं विश्व दोनों का हवन किया जाता है—

'नैदानैस्तर्पणैः सम्यग् विशुद्धैरमृतात्मभिः ।
मदहन्तां करोमीदं विश्वं हव्यपुरस्सरम्' ॥ (सुभगोदयवासना)

शिवसूत्रकार की दृष्टि—शिवसूत्रकार ने भी पूजाद्रव्यों को प्रतीकार्थ में ग्रहण

---

१. विज्ञानभैरव। २. स्वच्छन्दतन्त्र २।१५४। ३. ज्ञानार्णवतन्त्र।

करते हुए कहा है कि हवि के रूप में जौ, तिल, घी आदि ग्राह्य नहीं हैं यहाँ तो शरीर ही हवि-सामग्री है—'शरीरं हविः'। (शिवसूत्र २।८)

आचार्य वरदराज की दृष्टि—आचार्य वरदराज कहते हैं—

'शून्यं धीः प्राण इत्येतत्सृज्यते क्षीयतेऽपि च।
स्थैर्यमस्ति परं देहापेक्षया न तु तत्त्वतः॥
इत्युक्तनीत्या शून्यादेः प्रमाता त्वस्य भित्तिभूः।
शरीरं स्थूलसूक्ष्मादि चिदग्नौ परयोगिनः।
हूयमानं हविः प्रोक्तं तन्मातृत्वनिमज्ञात्'[१]॥

भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि—श्रीकृष्ण कहते हैं कि आत्मसंयम रूपी उस योगाग्नि में जो कि ज्ञान से प्रदीप्त है, योगी लोग सारी इन्द्रियों की क्रियाओं एवं सारे प्राणकर्मों को हवि के रूप में हवन कर देते हैं—

'सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते'॥

इस यज्ञ एवं हवन में अर्पण, हवि, अग्नि, होता आदि बाह्योपादान नहीं होते प्रत्युत यहाँ ब्रह्माग्नि में ब्रह्म के द्वारा, ब्रह्म रूप हवि-सामग्री ब्रह्म के लिए समर्पित की जाती है—

'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना'॥

आचार्य क्षेमराज की दृष्टि—त्रिकाचार्य क्षेमराज त्रिक दृष्टि को स्थापित करते हुए उसके अनुरूप हवि-स्वरूप का इस प्रकार निरूपण करते हैं—'सर्वैश्वर्यप्रमातृत्वेन अभिषिक्तं स्थूलसूक्ष्मादिस्वरूपं शरीरं तत् महायोगिनः परस्मिन् चिदग्नौ हूयमानं हविः, शरीरप्रमातृताप्रशमनेन सदैव चिन्मातृताभिनिष्टत्वात्'।

अर्थात् योगी परात्पर चिदग्नि में शरीर के प्रति प्रमातृताहङ्कार का जो त्याग करता है मानो वही चिदग्नि में शरीर रूपी हवि अर्पित करना है। ऐसा योगी चिन्मातृता में अभिनिविष्ट होने के कारण शरीर के प्रति अस्मिता का त्याग कर देता है। यही त्याग मानो शरीर को हवि बनाकर अग्नि में उसकी आहुति डालना है[२]।

विज्ञानभैरवकार की दृष्टि—भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! समाधि में अनुभूयमान आनन्दातिशयात्मक सन्तुष्टि ही 'याग' है—'यागोऽत्र परमेशानि तुष्टिरानन्दलक्षणा'।

---

१. शिवसूत्रवार्तिक २।८; ५२-५४। २. शिवसूत्रवार्तिक।

सुभगोदय की दृष्टि—सुभगोदय में कहा गया है कि—पराहन्ता स्वरूप संविदग्नि में 'इदन्ता' रूप हवन सामग्री का हवन करना ही 'हवन' है।

'पराहन्तामये संविदग्नौ संवेद्यतर्पणे।
इदन्तालक्षणं हव्यं जुहुयादबहिर्मुखः' ॥

महार्थोदय की दृष्टि—इसके अनुसार 'इदन्ता' रूप द्वैतबोध ही हव्य पदार्थ है और उसे ही चिन्मुख सत्ता में हवन कर देना यथार्थ हवन है—

'अथ हव्यमिदन्ताख्यं हावं हावं स्वचिन्मुखे'।

ऐसा करने से योगी मायामालिन्य को पार करके मेरु पर्वत के समान स्वेच्छापूर्वक निश्चल रूप में स्थित रह सकता है—

'उल्लंघ्य मायामालिन्यं स्वैरमासीत मेरुवत्' ॥

महामोह रूपी ३६ तत्त्वों की समष्टि इस जगत् का शिव रूप संवित् की अग्नि में हवन करना चाहिए। इसीलिए कहा गया है कि—

'अन्तर्निरन्तरमनिन्धनमेधमाने मोहान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासमाने विश्वं जुहोमि वसुधादि शिवावसानम्' ॥

योगी अमृतानन्द की दृष्टि—योगी अमृतानन्द ने 'योगिनीहृदयदीपिका' में कहा है कि शब्द-स्पर्शरूप-रस-गन्ध आदि जिन पञ्चविषयों से इन्द्रियों की पूजा की जाती है और जो द्रव्य उन्हें प्रसन्नता प्रदान करते हैं उन्हीं से इन्द्रियों की नहीं प्रत्युत आत्मदेवता का पूजन करना ही महामख है—

'इन्द्रियद्वारसंग्राह्यैर्गन्धाद्यैरात्मदेवताम् ।
स्वभावेन समाराध्य ज्ञातुः सोऽयं महामखः' ॥

'इन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि तेषां प्रीणनानि द्रव्याणि विशिष्टशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः, तैर्विहितं स्वात्मदेवतायाः पूजनं येन तथाविधः'[१]।

'इन्द्रियप्रीणनद्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजनः'[२]।

पूजा वह साधन है जिसके प्रबोधमात्र से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है—

'पूजासङ्केतमधुना कथयामि तवानघे।
यस्य प्रबोधमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रमोदते'[३] ॥

मन्त्र एवं जप तथा होम का निष्पादन करने से मन्त्र की सिद्धि अवश्य होती है—

'मन्त्रैश्च मन्त्रसिद्धिस्तु जपहोमार्चनाद्भवेत्'[४]।

---

१. योगिनीहृदयदीपिका। २. योगिनीहृदय। ३. योगिनीहृदय ३।१।
४. आचार्य जयरथ द्वारा उद्धृत ('विवेक' टीका)।

जप-साधना में नक्षत्रों की भूमिका

ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से विचार किया जाय तो विभिन्न नक्षत्रों में निष्पादित जप के फलों मे परस्पर भिन्नता है; यथा—

नक्षत्र	जपसंख्या	लाभ एवं कामना-सिद्धि
१. अश्विनी नक्षत्र	१००० जप करने पर	सिद्धि।
२. भरणी नक्षत्र	२००० जप	लाभ होता है।
३. कृत्तिका नक्षत्र	२००० जप	लाभ प्राप्त होता है।
४. रोहिणी नक्षत्र	१०० या १०००	अपनी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।
५. मृगशिरा नक्षत्र	५००० जप	बुद्धि में तीक्ष्णता आती है।
६. आर्द्रा नक्षत्र	६००० जप	समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं।
७. पुनर्वसु नक्षत्र	१००० जप	देवत्व की प्राप्ति होती है।
८. पुष्य नक्षत्र	७००० जप	सिद्धि प्राप्त होती है।
९. आश्लेषा नक्षत्र	६००० जप	इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।
१०. मघा नक्षत्र	१०,००० जप	अधिकार प्राप्त होता है।
११. पूर्वा नक्षत्र	११,००० जप	धन-प्राप्ति होती है।
१२. उत्तरा नक्षत्र	१२,००० जप	कामनाओं की पूर्ति होती है।
१३. हस्त नक्षत्र	१३,००० जप	तेज में वृद्धि होती है।
१४. चित्रा नक्षत्र	२००० जप	कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।
१५. विशाखा नक्षत्र	४००० जप	सौम्य स्वभाव प्राप्त होता है।
१६. अनुराधा नक्षत्र	पूर्णकाल तक जप	पारिवारिक सुखाप्ति होती है।
१७. ज्येष्ठा नक्षत्र	२००० जप	मन्त्र की सिद्धि होती है।
१८. मूल नक्षत्र	५००० जप	साधना में साफल्य प्राप्त होता है।
१९. श्रवण नक्षत्र	२००० जप	सारे कार्य सिद्ध होते हैं।
२०. धनिष्ठा नक्षत्र	२००० जप	साधक यशस्वी होता है।
२१. शतभिषा नक्षत्र	२००० जप	पापों का नाश होता है।
२२. रेवती नक्षत्र	४००० जप	अधिकारों में वृद्धि होती है आदि।

विशेष—मन्त्रजप के लिए किसी जप-सिद्ध गुरु से जाग्रत् मन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिए।

धन-प्राप्ति एवं शत्रु-विनाशार्थ साधना-विधान—'मन्दारविद्या' नामक मन्त्र का जप करने से साधक के शत्रुओं का तो विनाश हो ही जाता है, साथ ही उसे कभी धनाभाव (दारिद्र्य) का सामना नहीं करना पड़ता।

मन्दारविद्या—'श्रीं ह्रीं ऐं भगवति बगले ! मे श्रियं देहि देहि स्वाहा'।

अन्तर्यजन

'अथान्तर्यजनं वक्ष्ये यथावदवधारय।
वामनाडीं समाकृष्य किञ्चिदाकुञ्चयेद् हृदा॥
रेचयेत् सव्यमार्गेण जिह्वां तालुगतां चरेत्।
शक्तिः शिवपदे योज्या किञ्चिदाकुञ्चयेदधः॥
अन्तर्यागमिमं देवि! गुरुभाषितमुक्तवान्॥
लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि।
हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि।
यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि।
रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि।
वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि।
सं सोमात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि'।

इसी प्रकार काल्पनिक पञ्चोपचार-पूजन करके मानसी पूजा निष्पादित किये जाने का विधान है।

'कौलावलीनिर्णय' के अनुसार अन्तर्यजन—हृदय में सुधासागर का ध्यान करके, उसके मध्य में स्वर्ण की बालुका वाले रत्नद्वीप की कल्पना करके और उसके चतुर्दिक् पारिजात वृक्षों और उनके बीच पञ्चाशत् अक्षरमय कल्पवृक्ष और उसके मूल में शत योजन विस्तीर्ण प्रदेश में स्वर्णप्राचीर युक्त एवं चतुर्द्वारात्मक सूर्यवत् मन्दिर के मध्य रत्नमयी वेदिका के रत्नसिंहासन—अन्तर्यजन की अनेक विधियाँ हैं। उनमें से किसी का निष्पादन करके तब बहिर्यजन (बहिर्याग) करना चाहिए।

बहिर्याग

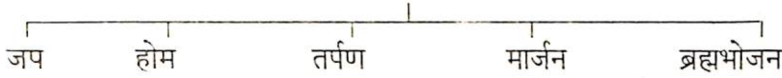
प्रथमतः यन्त्रराज का निर्माण करना चाहिए। उसके बाद यन्त्रराज को मिश्रित गन्ध से लिखना चाहिए। यह भी ध्यातव्य है कि—अपराजिता, श्वेत-रक्त कनेर, गुड़हल एवं द्रोणपुष्प में देवी का सदैव निवास रहता है। इन्हें यन्त्रराज के रूप में ग्रहण करके इनमें चण्डिका का पूजन किया जा सकता है। भगवती बगला को पीत पुष्प चम्पा आदि पुष्प प्रिय है। यन्त्र लिखकर उसे आसन पर स्थापित करना चाहिए। शीशे, कांसे, राङ्गे, काष्ठपीठ या दीवार पर यन्त्र कभी नहीं रखना चाहिए। यन्त्र को पुष्प पर रखकर तभी उस पर यन्त्र स्थापित करना चाहिए। गन्ध-चन्दन आदि का प्रयोग करना चाहिए। देवी का ध्यान करके अपने को उनसे अभिन्न रूप में कल्पित करके एक पुष्प अपने सिर पर भी रखना चाहिए। फिर पूजा करनी चाहिए[१]।

---

१. कौलावलीनिर्णय।

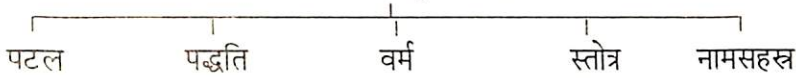
पूजन के दो प्रकार हैं—१. आन्तर, २. बाह्य। आन्तर याग में सारी पूजन-क्रियाएँ मानसिक एवं कल्पना-प्रसूत होती हैं। बहिर्याग बाह्य पूजन की पद्धति है।

बहिर्याग के मुख्य अङ्ग



जप होम तर्पण मार्जन ब्रह्मभोजन

अन्तर्याग के मुख्य अङ्ग



पटल पद्धति वर्म स्तोत्र नामसहस्र

देवी के स्वरूप-बोधमन्त्र के अक्षरों से पिण्ड के नाड़ीव्यूह में सविस्तार भावना का पटल बनाना होता है। मन्त्राक्षरों द्वारा मूलाधारादि सहस्रान्त चक्र में देवी के स्वरूप की भावना करके चित्त को शक्तिसम्पन्न बनाना **'पटल'** है। मन्त्रपटल के द्वारा पाँच या सोलह उपचारों से हृदयादि पीठ में देवी-पूजन करना **'पद्धति'** है। नाड़ियों एवं हृदयादि पीठस्थानों मे पटल और पद्धति बनाने के बाद इष्ट मन्त्र के अक्षरों द्वारा स्थूल देह पर कवच बनाकर देवी के नामों के द्वारा पिण्ड की रक्षण भावना करना **'वर्म'** या **कवच** है। फिर देवी के मन्त्र को स्मरण रखने हेतु देवी के सहस्र गुणों के बोधक नामों के द्वारा आन्तर भूमिका में देवी को नमन करना **नामसहस्र** है। ये ही पाँच अङ्ग अन्तर्याग के अङ्ग हैं।

दीक्षा की परिभाषा और उसका अर्थ

जो जन्म-जन्मान्तरों के कल्मषों का क्षालन करती हो, दिव्यभाव प्रदान करती हो और भव-बन्धन का विमोचन करती हो वही 'दीक्षा' है।

कुलार्णवतन्त्रोक्त मत—

'दिव्यभावप्रदानाच्च क्षालनात् कल्मषस्य च।
दीक्षेति कथिता सद्भिर्भवबन्धविमोचनात्'[१]॥

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर दीक्षा उसे मानते हैं जो कि—

(१) साधक को दिव्यभाव प्रदान करे, (२) साधक के पापों को नष्ट करे, (३) जगत् का हित करे और (४) सिद्धि प्रदान करे।

'अथ प्रवक्ष्ये विधिवन्मनूनां दीक्षाविधानं जगतो हिताय।
येनोपलब्धेन समाप्नुवन्ति सिद्धिं परत्रेह च साधकेशाः।
दद्याच्च दिव्यभावं क्षिणुयाद्दुरितान्यतो भवेद्दीक्षा'।

आचार्य शङ्कर ने 'दीक्षा' शब्द में दो धातुओं की अनुस्यूतता मानी है। वे हैं—

(क) दाञ् दाने, (ख) क्षि क्षये।

१. कुलार्णवतन्त्र (१७।५१)।

(क) 'दाञ् दाने'—'दद्याच्च दिव्यभावम्।

(ख) 'क्षि क्षये—'क्षिणुयाद्दुरितान्यतो दीक्षा'।

'दीक्षा' आत्म-शोधन की प्रक्रिया है। यह शक्ति के आयत्तीकरण की विधि है। वैधी आदि दीक्षाएँ आत्म-शोधन, शक्तिपात एवं स्वरूपावस्थान की प्रणालियाँ हैं।

दीक्षा दुरित-क्षय एवं गुरु द्वारा प्रदत्त शाम्भवी शक्ति का दान है। दाता गुरु है और दानग्राहक शिष्य है।

स्वात्मदीक्षा और स्वात्मविज्ञान

लाखों जप करने पर भी सिद्धि न मिले तो साधक को चाहिए कि वह 'स्वात्म-विज्ञान' का आश्रय ग्रहण करे और 'स्वात्मदीक्षा' का आत्मीकरण करे—

'अनेन स्वात्मविज्ञानं सस्फुरत्वप्रसाधकम्।
उक्तं मुख्यतयाऽऽचार्यो भवेद्यदि न सस्फुरः'॥ (४।६२)

रक्ता देवी की आराधना और साधकों के भेद

एक मास पर्यन्त आराधना करने पर 'आचार्य'	एक पक्ष साधना करने पर साधक 'ब्रह्मयामल'	सात दिन साधना करने पर 'पुत्रक'	तीन दिन साधना करने पर 'समयी'

दीक्षागुरु कौन है?

आचार्य अभिनव गुप्त जी कहते हैं कि दीक्षागुरु वही है जिसमें 'शिवतापत्ति-स्वातन्त्र्यावेश' हो—

'तत्रादौ शिवतापत्तिस्वातन्त्र्यावेश एव यः।
स एव हि गुरुः कार्यस्ततोऽसौ दीक्षणे क्षमः'[१]॥

संवित्तादात्म्य से हीन शास्ता 'गुरु' नहीं है। दीक्षा में शिवतावेशाहन्ता का स्वरूप इत्याकारक है—

'शिवोऽयं शिव एवामीत्येवमाचार्यशिष्ययोः।
हेतुतद्वत्तया दार्ढ्याभिमानो मोचको ह्यणोः'॥

'मेरा आराध्य गुरु शिव है, मैं भी शिव ही हूँ'। यही शिवावेश है।

दीक्षा का उद्देश्य

दीक्षा का उद्देश्य बन्धनों से मुक्ति है। इसीलए अभिनव गुप्तपादाचार्य कहते हैं कि मुख्य दीक्षा तो शिवदायिनी दीक्षा है—

---

१. तन्त्रालोक (आह्निक १५।३८)।

'यत्सैव मुख्यदीक्षा स्याच्छिष्यस्य शिवदायिनी'[१]।

इससे मुक्ति प्राप्त होती है—

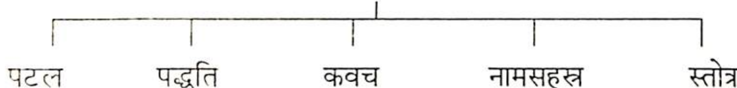
'अविकल्पस्तथाद्यैव जीवन्मुक्तो न संशयः'[२]।

पूजा एवं उपासना के अन्य अङ्ग और उनका स्वरूप

पूजा का यथार्थ स्वरूप—

'पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्या मतिः क्रियते दृढा।
निर्विकल्पे महाव्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः' ॥

उपासना के पञ्चाङ्ग (हिन्दू एवं बौद्ध)



पटल पद्धति कवच नामसहस्र स्तोत्र

सुरा और मांस

'सुरा शक्तिः शिवो मांसमानन्दो मोक्ष उच्यते'[३] ॥

बलि—

'श्वासद्वयनिरोधेन कुण्डलीत्रयमेलनात्।
यावज्जीवशिवयोरैक्यं तेनासावान्तरो बलिः' ॥

('प्राणापानयोः सञ्चारे शान्ते निरस्ते त्रित्वलक्षणे भेदे शिवोऽहमनस्मीति स्वान्तरो बलिरित्यर्थः')।

संविदैकात्म्यभाव से अवस्थान ही पूजा है[४]।

पूजा का यथार्थ स्वरूप

आचार्य अभिनवगुप्त तन्त्रालोक (आ. ४) में कहते हैं कि—

जिस-जिस चक्र में जैसे-जैसे भगवती संविद्देवता का आवेशात्मक स्पर्श या आनन्दानुभूति होती है वहाँ-वहाँ उसे उसी रूप में प्राप्त कर लेना–उसके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेना ही पूर्ण पूजा है—

'तदस्याः संविदो देव्या यत्र क्वापि प्रवर्तनम्।
तत्र तादात्म्ययोगेन पूजा पूर्णैव वर्तते' ॥ (तन्त्रालोक आ. ४।१८०)

---

१. तन्त्रालोक (आ. १४।४२)। २. तन्त्रालोक (१४।४५)। ३. अमृतानन्द योगी : योगिनी-हृदयदीपिका ४. योगिनीहृदयदीपिका।

योगिनीहृदयोक्त पूजासङ्केत

पूजासङ्केत वह साधन है जिसकी सहायता से साधक 'जीवन्मुक्त' हो जाता है—

'पूजासङ्केतमधुना कथयामि तवानघे।
यस्य प्रबोधमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रमोदते'[1] ॥

प्रकाशात्मा शिव की विमर्शशक्ति (विमर्शरूपिणी शक्ति) की नित्योदिता पूजा तीन प्रकार की है—

(१) **उत्तमा पूजा** = परा पूजा : प्रथमा पूजा। यह परमशिवाद्वैतप्रथात्म है—'परमशिवाद्वैतप्रथात्मकत्वादितरपूजाभ्यामुत्तमत्वम्'। इसका स्वरूप इस प्रकार है—

'न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम्।
स्वे महिम्नद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थिता'॥

(२) **अधमा पूजा** = द्वितीया पूजा : अपरा पूजा—

'अपरा द्वितीया पूजा भेदप्रथामात्रसारा बाह्यचक्रा वरणार्चनारूपा अधमा'—

'न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्या प्रथिताऽनिशम्'।

(३) **मध्यमा पूजा** = तृतीया पूजा : परापरा पूजा—

'तृतीया पूजा परापरा। बाह्यस्यान्तरे धाम्न्यद्वये चिल्लयभावनामयी मध्यमा, परापरात्मकत्वात्'॥

'चतुःशती' में उपदिष्टा पूजा 'नित्या पूजा' है, वह 'काम्या' या 'नैमित्तिकी पूजा' नहीं है[2]।

योगिनीहृदय की दृष्टि—

'प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रचरगोचरा।
द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया॥
एवं ज्ञानमये देवि! तृतीया तु परापरा।
उत्तमा सा परा ज्ञेया विधानं शृणु साम्प्रतम्'॥

उत्तमा परा पूजा का स्वरूप

'महापद्मवनान्तस्थे वाग्भवे गुरुपादुकाम्।
आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम्॥
सञ्चिन्त्य परमाद्वैतभावनामृतघूर्णितः।
दहरान्तरसंसर्पन्नादालोकनतत्परः॥
विकल्परूपसञ्जल्पविमुखोऽन्तर्मुखः सदा।

१. योगिनीहृदय (३।१)। २. सेतुबन्ध।

इन्द्रियप्रीणनद्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजन:[१] ॥
न्यासं निर्वर्तयेद्देहे षोढ़ान्यासपुर:सरम् ।
स एव पूज्य: सर्वेषां स स्वयं परमेश्वर: ॥
एतांस्तु विन्यसेद्देहे मातृकान्यासवत्प्रिये ।
पीठानि विन्यसेद्देवि ! मातृकास्थानके पुन: ॥
एते पीठा: समुद्दिष्टा मातृकारूपका: स्थिता: ।
एवं षोढा पुर: कृत्वा श्रीचक्रन्यासमाचरेत् ।
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्याश्चक्रन्यासं शृणु प्रिये ॥
त्रिकोणस्थे महाबिन्दौ महात्रिपुरसुन्दरीम् ।
शिरस्त्रिकोणपूर्वादि कामेश्वर्यादिकं न्यसेत्' ॥

श्रीचक्र के आवरण देवताओं के न्यास के अनन्तर मूल देवी के अणिमान्त श्रीचक्रावरण देवतान्यास का न्यास पुन: करना चाहिए ।

'विद्यान्यास' करना चाहिए—

'एवं चतुर्विधो न्यास: कर्तव्यो वीरवन्दिते' ॥

प्रात:काल उठकर—

करशुद्धि (षोडशावयवक) होमकर्म कर लेना चाहिए । प्रात:काल षोढ़ान्यास, पूजा के समय अणिमादि न्यास, होम के समय मूलदेव्यादिक न्यास एवं जपकाल में करशुद्ध्यादि न्यास करना चाहिए तथा सबका पृथक्-पृथक् विनियोग करना चाहिए[२] ।

पूजाकाल में इन्हीं चतुर्विध न्यास-निष्पादन मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

आसन का स्वरूप क्या है ?

३६ तत्त्वों का आसन—

'षट्त्रिंशत्तत्त्वपर्यन्तमासनं परिकल्प्य च' ॥

फिर 'बलि' दी जानी चाहिए—

'गुप्तादियोगिनीनां च मन्त्रेणाऽथ बलिं ददेत्' ।

बलि क्या है ? 'बलि: पूजोपहार:' । 'अवचितबलिपुष्पा' (कुमारसम्भव) । बलि अर्थात् पूजा[३] ।

योगिनीहृदयोक्त पूजा-क्रम

'अलिना पिशितैर्गन्धैर्धूपैराराध्य देवता: ।
चक्रपूजां विधायेत्थं कुलदीपं निवेदयेत् ॥
अन्तर्बहिर्भासमानं स्वप्रकाशोज्ज्वलं प्रिये ।

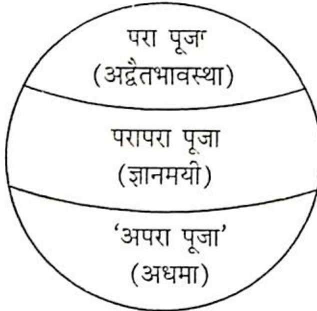
१. चित्कलोल्लासदलितसङ्कोचस्त्वतिसुन्दर: । २. योगिनीहृदय । ३. योगिनीहृदय (पूजा-सङ्केत) ।

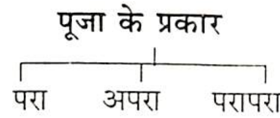
पुष्पाञ्जलिं ततः कृत्वा जपं कुर्यात् समाहितः'[१] ।।

(१) चिल्लयलक्षणाद्वैतप्रथा परापूजा ।

(२) अपरापूजा = चक्रपूजा (चतुरस्रादि बैन्दवान्त चक्रसदनावरणदेवतार्चनपरा पूजा) ।

(३) अभेदप्रतीतीत्यर्थमपरा पूजा । द्वितीया पूजा भेदप्रथा मात्रसारा पूजा ।





योगिनीहृदय में परा पूजा को सर्वोत्तमा पूजा कहा गया है। उसके लक्षण निम्नाङ्कित हैं—

'यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाऽभ्यन्तरे प्रिये ।
तत्र तत्र परावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति ।।
तत्र तत्राक्षमार्गेण चैतन्यं व्यज्यते प्रभोः ।
तस्य तन्मात्रधर्मित्वाच्चिल्लयाद्धरिता स्थिता' ।।

यह अद्वैतप्रथात्मक पूजा है। (विज्ञानभैरव भट्टारक)

योगिनीहृदयोक्त पूजा की दृष्टि

नित्योदिता पूजा के प्रकार

परा पूजा	अपरा पूजा	परापरा पूजा[२]
('प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रसर-गोचरा') 'आत्मा मनसा युज्यते, मन इन्द्रियेण, इन्द्रियमर्थेनेति पूर्वोक्तपरिपाट्या सर्वेषामिन्द्रि-याणां गोचरीभूता । चिल्लक्षणा-द्वैतप्रथा परापूजेत्यर्थः' 'उत्तमा सा पराज्ञेया' ।	(द्वितीया चक्रपूजा च, सदा निष्पाद्यते मया) चक्रपूजा— चक्रपूजा अपरा, अधमा एवं निकृष्ट पूजा कोटि में आती है ।	'एवं ज्ञानमये देवि तृतीया तु परापरा' । (ज्ञान-मये पूर्वोक्ता द्वैतभावनामये धाम्नि बाह्यस्य पृथगात्म-कावरणार्चनारूपा)

१. पूजासङ्केत (१७०-१७१)। २. परापरा पूजा : अमृतानन्द—'ज्ञानमये पूर्वोक्तद्वैतभा-वनामये धाम्नि बाह्यस्य पृथगात्मकावरणार्चनारूपस्य कर्मणा ज्ञानमयताविश्रान्तिस्तृतीया परापरापूजा' ।

'तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता ।
परा चाप्यपरा गौरि ! तृतीया च परापरा' ॥ (योगिनीहृदय, पटल ३)

मन्त्र-जप के अवयव

शून्यषट्क	अवस्थापञ्चक	विषुवसप्तक	१५ प्रकार के अर्थ

जप का तात्त्विक स्वरूप—'संयमेन्द्रियसञ्चारं प्रोच्चरेन्नादमान्तरम् । एष एव जपः प्रोक्तः' ॥

(क) योगिनीहृदयकार की दृष्टि—योगिनीहृदय में मन्त्रजप के निम्न अङ्ग बताये गये हैं—

(१) 'शून्यषट्कं तथा देवि ह्यवस्थापञ्चकं पुनः ।
विषुवं सप्तरूपं च भावयन् मनसा जपेत्' ॥

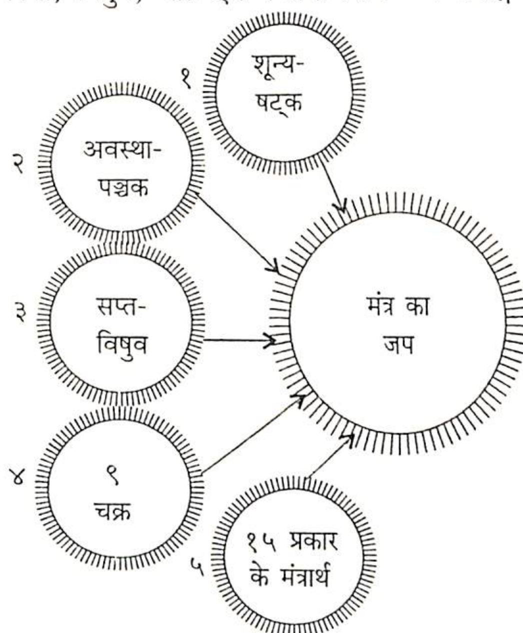
(२) 'शून्यत्रयं विजानीयादेकैकान्तरतः प्रिये ।
शून्यत्रयात् परे स्थाने महाशून्यं विभावयेत्' ॥

(ख) वरिवस्यारहस्यकार की दृष्टि—आचार्य भास्करराय जप के अङ्गभूत तत्त्वों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

'एवमवस्थाशून्यविषुवन्ति चक्राणि पञ्च षट् सप्त नव च मनोरर्थाश्च वर्णोच्चारणं तु जपः' ।

जप का सम्बन्ध इन पाँचों तत्त्वों से है ।

शून्य, अवस्था, विषुव, चक्र एवं मन्त्रार्थचिन्तन—ये जपाङ्ग हैं ।



'नियतेन्द्रियो नादरूपमन्त्रोच्चारणलक्षणं जपं कुर्यात्'। (अमृतानन्द)

भगवती बगलामुखी का पूजा-विधान

भगवती महाविद्या बगलामुखी के पूजा का विधान एवं स्वरूप इत्याकारक है—

(१) (पूजा के प्रारम्भिक अङ्ग)—द्वारा पर पूर्वादिक्रमानुसार गणेश, बटुकभैरव, योगिनी और क्षेत्रपाल की पूजा की जाय।

(२) बिन्दु के ईशान कोण से अग्निकोण पर्यन्त;

(३) भीतर पूर्वादि क्रमानुकूल—

(क) मंगला, (ख) स्तम्भिनी, (ग) जृम्भिणी, (घ) मोहिनी, (ङ) वश्या, (च) अचला, (छ) चला, (ज) दुर्धरा, (झ) अकल्मषा, (ञ) धीरा, (ट) कलना, (ठ) कालकर्षिणी, (ड) भ्रामिका; (ढ) मन्दगमना, (ण) भोगदा और (त) योगिका की षोडश दलों में पूजा करनी चाहिए।

(४) अष्ट दलों में—

(क) ब्राह्मी, (ख) माहेश्वरी, (ग) कौमारी, (घ) वैष्णवी, (ङ) वाराही, (च) नारसिंही, (छ) चामुण्डा तथा (ज) महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए।

(५) छत्रिकोणों के मध्य में—

(क) डाकिनी, (ख) राकिनी, (ग) लाकिनी, (घ) काकिनी, (ङ) शाकिनी तथा (च) हाकिनी की पूजा 'ॐ ह्रीं' मन्त्र के द्वारा करनी चाहिए।

(६) इसके उपरान्त १० दिक्पालों की सम्पूर्ण परिवार, वाहन, अस्त्र के साथ भूगृह के बाह्य भाग में पूजा करनी चाहिए। ये १० दिक्पाल निम्नाङ्कित हैं—

(क) इन्द्र, (ख) अग्नि, (ग) यम, (घ) निर्ऋति, (ङ) वरुण, (च) वायु, (छ) कुबेर, (ज) ईशान, (झ) प्रजापति और (ञ) नागेश (अनन्त)।

(७) त्रिकोण के कोणत्रय में रति, प्रीति एवं मनोभवा की पूजा करनी चाहिए—

'अङ्गमाद्यं द्वारतो गणेशं वटुकं योगिनीं क्षेत्राधीशं च पूर्वादिकमभ्यर्च्य, गुरुपंक्तिमीशासुरान्तमन्तः प्राच्यादौ क्रमानुगता मङ्गला, स्तम्भिनी, जृम्भिणी, मोहिनी, वश्या, अचला, चला, दुर्धरा, अकल्मषा, धीरा, कलना, कालकर्षिणी, भ्रामिका, मन्दगमना, भोगदा, यागिका। ह्यष्टदलानुगता पूज्याः—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, चामुण्डा, महालक्ष्मीश्च षड्योनिगर्भान्ता—डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी—वेदाद्यस्थिरमायायाः समभ्यर्च्य शुक्राग्नि-यम-निर्ऋति-वायव्य-धनद-ईशान-प्रजापति-नागेशाः परिवाराभिमताः स्थिरादिवेदाद्याः सवाहनाः सदस्त्रका बाह्यतोऽभ्यर्च्य तां योनिं रति-प्रीति-मनोभवाः एताः सर्वा समाः पीतांशुका ध्येयाः'।

भगवती की पूजा का फल—उक्त उपनिषदोक्त विधान से भगवती की पूजा करने से उपासक या साधक को निम्न उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं—

१. सर्वैश्वर्य, २. वैदुष्य, ३. दीर्घायुष्य, ४. सर्वसिद्धि, ५. सृष्टि-स्थिति-संहार की शक्ति, ६. सर्वेश्वरत्व, ७. ऋषीश्वरत्व, ८. शाक्त, वैष्णव, गणप, शैव एवं जीवन्मुक्त की स्थिति की प्राप्ति और ९. संन्यासित्व की प्राप्ति—'स संन्यासी भवति'।

(पीताम्बरोपनिषद्)

शोधन और पात्रवन्दन

पात्र-वन्दन भी पूजन की पद्धति का एक अङ्ग है जिसे संक्षिप्त स्वरूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) प्रथम पात्र (श्लोक के अन्त में)—
इति स्थूलशरीरं शोधयामि स्वाहा।

(२) द्वितीय पात्र (श्लोक पढ़ने के अन्त में)—
इति सूक्ष्मशरीरं शोधयामि स्वाहा।

(३) तृतीय पात्र (श्लोक-पाठोपरान्त अन्त में)—
इति कारणशरीरं शोधयामि स्वाहा।

(४) चतुर्थ पात्र (श्लोकपाठोपरान्त)—
इति महाकारणशरीरं शोधयामि स्वाहा।

(५) पञ्चम पात्र (श्लोकपाठोपरान्त)—
इति आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

(६) षष्ठ पात्र (श्लोकपाठोपरान्त)—
इति विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

(७) सप्तम पात्र (श्लोकपाठोपरान्त)—
इति कुलतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

(८) अष्टम पात्र (श्लोकपाठोपरान्त)—
इति मूलतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

(९) नवम पात्र (श्लोकपाठोपरान्त)—
इति विशेषतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

(१०) दशम पात्र (श्लोकपाठोपरान्त)—
इति देवीतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

(११) एकादश पात्र (श्लोक)—

'ॐ वामां वामकरे, सुधां च अधरे, मन्त्रं जपन् मानसे
वीणावेणुरवावयन्त्रविधिवद् गायन्ति पञ्चो रसः ।
क्रीडाकेलिकुतूहलेन रसनालावण्यलीलारसः
प्राणोल्लासविलासपूर्णसमये पात्रं च एकादशम्' ॥
इति सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

भगवती की उपासना और अद्वैत-दृष्टि

भगवती की उपासना की सफलता अद्वैतभाव की अनुभूति में निहित है जो इत्याकारक है—

'अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत्' ॥

भगवती की उपासना के फल—भगवती की उपासना चतुर्वर्ग की प्राप्ति तो होती ही है; साथ ही सारी तान्त्रिक अभिचारात्मक शक्तियों की सिद्धि, ज्ञान, वैराग्य, मोक्ष आदि सभी की प्राप्ति होती है । उन्हीं में जीवन्मुक्ति की प्राप्ति सर्वोच्च फल है—

'तदन्तमूलायां दलादिषोडशानुगताः पूज्याः नीराजनैः सहैश्वर्ययुक्तो भवति । य एनां ध्यायति स वाग्मी भवति । सोऽमृतमश्नुते, सर्वसिद्धिकर्ता भवति, सृष्टि-स्थिति-संहार-कर्त्ता भवति । स सर्वेश्वरो भवति । स तु ऋद्धीश्वरो भवति । स शाक्तः, स वैष्णवः, स गणपः, स शैवः, स जीवन्मुक्तो भवति । स संन्यासी भवति न तु मुण्डितमुण्डः । षट्त्रिंशदस्त्रेश्वरो भवेत्, सौभाग्यार्चनेनेति प्रोतं वेद । 'ॐ शिवं सह नाववतु' इति मन्त्रेण शान्तिः'[१] ।

आराधना और उसकी फलाप्ति—साधक को चाहिए कि वह भगवती की इस प्रकार स्तुति करता हुआ आराधना करे—

'मैं शत्रु-संहारिणी पीताम्बरा को प्रणाम करता हूँ । पीत वर्ण के शरीर वाली जिस ब्रह्मपत्नी ब्रह्माणी की आराधना करते हुए जो सिर झुकाता है उससे द्वेष करने वाले परिवार को, व्यक्ति को वे भगवती सन्तप्त करती हैं और वह व्यक्ति नष्ट होता हुआ पतन के गर्त में निपतित होता है'—

'ॐ अथारिमोचिनीं पीतां प्रणमामि, यां ब्रह्मपत्नीं ब्रह्माणीं पीतां भास्वत् तनुमिवाराध्यमानो निपतति शिरः यद् द्वेष्टि कुलं पुरुषं परितापयति सन्नक्ष्यमानो निपतति' ।

जो पीताम्बरा का स्मरण करता है वह सर्वज्ञता प्राप्त करता है । मैं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप पौरुषचतुष्टय को पाणिपद्मों से प्रदान करने वाली पीताम्बरा की शरण प्राप्त करता हूँ—

---

१. पीताम्बरोपनिषद् ।

'यः पीतामनुस्मरति स सर्वज्ञतामेति। अथ ह मणिबन्धे पुरुषचतुष्टयज्ञानवर्तिनीं शरणमहं प्रपद्ये'।

'जो प्रच्छन्न शत्रु को विनष्ट कर देती है वह पीताम्बरा पीतोपचारों द्वारा पूज्या है'—

'यन्नितान्तमाविष्करोति विद्विषः सेयं पीतावयवा पूज्या'।

'जो शत्रु संसार का मर्दन करता है, जिसे काल की आत्मा का ज्ञान नहीं है वह नष्ट हो जाता है'—

'यो यं कालात्मको बोधः संसारमनुमर्दयति शत्रुः स लुप्यते'।

'जो चिन्तनीय है—मैं उसकी चिन्ता करता हूँ। मैं उसकी चिन्ता करता हूँ, मैं उसकी भावना करता हूँ'—'यच्चिन्तनीया तच्चिन्तयामि, तच्चिन्तयामि तद्भावयामि'॥

जो 'ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ॐ ह्लीं स्वाहा'—मन्त्र का जप करता हुआ शत्रुओं का उच्चाटन करता है, नष्ट करता है, वेदों एवं आगमों में प्रख्यात मैं उस बगलामूर्ति के प्रति श्रद्धा रखता हूँ।

भगवती की अर्चा की प्रणालियाँ एवं अर्चा का फल

भगवती बगलामुखी की अर्चा की तीन विधियाँ हैं—

'सृष्टिस्थित्यन्तसंहारैः पूजा च विविधा कलौ'।

(१) केरल की अर्चा-विधि : सृष्टिपूजा—

'केरले सृष्टिपूजा च गर्भकौलागमक्रमात्'।

(२) गौडदेश की अर्चा-विधि : स्थितिमार्ग—

'अर्चनं गौडदेशे तु स्थितिमार्गं कुमारक'।

(३) कामरूप की अर्चा-विधि : सहारार्चन—

'कामरूपप्रदेशे तु संहारार्चनमेव च'।

(क) गौड़देश की अर्चा—गुप्त कौलागम पर आश्रित है।

(ख) कामरूप की अर्चा—संहारक्रमपूजनात्मक अर्चा कामरूपागम पर आश्रित है।

(ग) स्थित्यर्चा—यह गौडागम पर आश्रित है—

'गौडागमं चावलम्ब्य सांख्यायनमुनिस्तथा।
उक्तवानागमं चैव स्थित्यर्चां शृणु पुत्रक'॥

कवच— यस्य स्मरणमात्रेण पशूनां निग्रहो भवेत्।
आत्मानं सततं रक्षेद् व्याघ्राग्निरिपुराजतः॥

यस्य स्मरणमात्रेण बगलामुखी प्रसीदति।
इत्येतत् कवचं दिव्यं धर्मकामार्थसाधनम् ॥
स सर्वान् लभते कामान् मूर्खो विद्यामवाप्नुयात्।
वैरिनाशकरं दिव्यं सर्वाशुभविनाशनम् ॥
पठित्वा धारयित्वा तु त्रैलोक्ये विजयी भवेत्।
वश्ये चाकर्षणे चैव मारणे मोहने तथा।
महाभये विपत्तौ च पठेद् वा पाठयेत् तु यः।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद्भक्तियुक्तस्य पार्वति ॥

अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र—

नानाविद्यां च लभते राज्यं प्राप्नोति निश्चितम्।
भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति साक्षात् शिवसमो भवेत् ॥

बगलासहस्रनामस्तोत्र—

'परब्रह्मास्त्रविद्यायाश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
एकचित्तः पठेदेतत् सर्वसिद्धिर्भविष्यति' ॥

बगलापञ्जरस्तोत्र—

'इति कथितमशेषं श्रेयसामादिबीजं
भवशतदुरितघ्नं ध्वस्तमोहान्धकारम्'।

बगलाहृदय—'न किञ्चिद्दुर्लभं तस्य दृश्यते जगतीतले।
शत्रवो ग्लानिमायान्ति तस्य दर्शनमात्रतः' ॥

'तारं मायां तदनु बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशयेति पदं तारं मायां वह्निवल्लभान्तं जपन्नरीन् प्रोच्चाटयति प्रोत्सादयति। इत्थं वेदेष्वामेषु प्रसिद्धमूर्तिं बगलां श्रद्धामि'।

जो इस उपनिषद् को पवित्र वाणी से सुनता है उसके शत्रु का अवश्य उच्चाटन होगा। यह तामसी शक्ति है, राजसी शक्ति है—ऐसा कालाग्निरुद्र ने कहा है—'यः श्रावयति सूनृतया गिरा, तद्द्वेष्टुरुच्चाटनयैव कल्पेरन्। एषा तामसी शक्तिरित्याह भगवान् कालाग्निरुद्रः'। (पीताम्बरोपनिषद्)

उपासना से होने वाली उपलब्धियाँ—उक्त ध्यान एवं देवी के मन्त्रजप का निम्नाङ्कित फल होगा—(१) स्तम्भेश्वरत्व की प्राप्ति, (२) सर्वेश्वरत्व, (३) सैन्य-स्तम्भन की शक्ति, (४) सूर्य की गति का स्तम्भन, (५) सम्पूर्ण वायु का स्तम्भन, (६) दिन का आकर्षण, (७) सर्वमन्त्रेश्वरत्व, (८) सर्वविद्येश्वरत्व और (९) त्रैलोक्यस्तम्भन—

'स महास्तम्भेश्वरः सर्वेश्वरः, स सेनास्तम्भं करोति। किं बहुना, विवस्वद्धृति-

स्तम्भकर्त्ता सर्ववातस्तम्भकर्तेति किं दिवा कर्षयति स सर्वविघ्नेश्वरः सर्वमन्त्रेश्वरो भूत्वा पूजाया आवर्तनं त्रैलोक्यस्तम्भिन्याः कुर्यात्' ।

याग—भगवती बगला की उपासना में उनके प्रत्येक मन्त्र के साथ हवन का विधान है । यहाँ यज्ञ एवं हवन अत्यधिक महिमान्वित हैं ।

यज्ञ का यथार्थ स्वरूप—

'यागोऽत्र परमेशानि तुष्टिरानन्दलक्षणा ।
क्षपणात् सर्वपापानां त्राणात् सर्वस्य पार्वति ।।
रुद्रशक्तिसमावेशस्तत्क्षेत्रं भावना परा ।
अन्यथा तस्य तत्त्वस्य का पूजा कश्च तृप्यति' ।। (विज्ञानभैरव)

'महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम् ।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतनास्रुचा' ।। (विज्ञानभैरव)

महाशून्य की वह्नि में इन्द्रियों के विषयों को मन के सहित चेतना के स्रुवा से हवन करना ही यथार्थ 'होम' है ।

गुरु तत्त्व

गुरु की परिभाषा एवं उसके लक्षण—सामान्य परिभाषा के अनुसार तो गुरु वही है जो ज्ञान प्रदान करता है किन्तु तन्त्राम्नाय में इस शब्द के अर्थ को व्यापक आयाम प्रदान किया गया है ।

कुलार्णवोक्त दृष्टि—कुलार्णवतन्त्र में गुरु को उसके अनेक कार्यक्षेत्रों के कारण अनेक अर्थ प्रदान किये गये हैं; यथा—

(१) गुरु शब्द में 'गु' = अन्धकार । 'रु' = अन्धकार का नाश । गुरु = अन्धकार रूप अज्ञान का ध्वंस करके ज्ञान का प्रकाश देने वाला व्यक्ति ही गुरु है—

'गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते' ।।

(२) 'ग' = सिद्धिप्रदायक, 'र' = अग्निबीज, पापों का दाहक । 'ग' में 'उ' = विष्णु ।

गुरु सिद्धिप्रदायक, पापनाशक एवं विष्णुस्वरूप है—

'गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेकः पापस्य दाहकः ।
उकारो विष्णुरित्युक्तस्त्रितयात्मा गुरुः परः' ।।

(३) 'ग' = ज्ञान-सम्पत्ति । 'र' = ज्ञापक एवं प्रकाशक । उ = शिवतादात्म्य-प्रदायक । इन तीनों गुणों एवं शक्तियों से सम्पन्न व्यक्ति ही गुरु है—

'गकारो ज्ञानसम्पत्ती रेफस्तत्र प्रकाशक: ।
उकार: शिवतादात्म्यं गुरुरित्यभिधीयते' ॥

गुह्यागम में वर्णित गोपनीय आत्मतत्त्व के अज्ञान से जो अन्धे हैं उन्हें इनका ज्ञान प्रदान करने वाला होने के कारण और रुद्रादिक देवता का स्वरूप होने के कारण ही (शास्ता को) गुरु कहा जाता है—

'गुह्यागमात्मतत्त्वान्धनद्धानां बोधनादपि ।
रुद्रादिदेवरूपत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते' ॥ (कुलार्णवतन्त्र)

सांख्यायनतन्त्र में कहा गया है कि सिद्धिमार्ग में गुरु-कृपा के बिना कोई भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती—

'सिद्धिमार्गमिदं पुत्र ! नास्ति सिद्धिं गुरोर्विना ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अर्चयेद्गुरुमादरात्' ॥

माहेश्वर तन्त्र (नारदपाञ्चरात्रान्तर्गत) में कहा गया है कि साधक को चाहिए कि वह ब्राह्ममुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम ब्रह्मरन्ध्र में गुरु का ध्यान करे—

'तुर्ये यामे समुत्थाय शय्यायामेव सुव्रते ।
ब्रह्मरन्ध्रे गुरुं ध्यायेत्कर्पूरधवलप्रभम् ॥
द्विनेत्रं द्विभुजं चैव श्वेतवस्त्रानुलेपनम् ।
पञ्चभूतात्मकैरेव पञ्चभिरुपचारकै: ॥
पूजयेद्देव देवेशि ! आत्मानं तद्गतं स्मरेत् ।
तच्चरणोदकधारानिपतितं स्वमूर्द्धनि ॥
क्षालितं निर्मलं शुद्धमात्मानं परिचिन्तयेत् ।
नमोऽस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देव: सदाशिव: ।
गुरुरेव परं तत्त्वं तस्मै श्रीगुरवे नम:' ॥
(माहे.त. ज्ञानखण्ड, पटल ३१)

शक्तिपात के बिना दीक्षा एवं गुरु के बिना शक्तिपात असम्भव है !

गुरु → शक्तिपात → शिष्य की दीक्षा ।

गुरु का महत्त्व—जगत् का मूल गुरु है, गुरु का मूल तप है—

'गुरुमूलं जगत् सर्वं गुरुमूलं परं तप:' ।

गुरु के प्रसाद से ही मुक्ति प्राप्त होती है—

'गुरो: प्रसादमात्रेण मोक्षमाप्नोति सद्वशी ॥
गुरुरेव शिव: साक्षाद् गुरु: सर्वार्थसाधक: ।
गुरुरेव परं तत्त्वं सर्वं गुरुमयं जगत्' ॥

गुरु का यथार्थ स्वरूप क्या है ?

क्या मर्त्यशरीरी शास्ता ही गुरु है या कि इस गुरु-परम्परा के मूल में कोई अनादिकालीन, सार्वभौम, अक्षर पराशक्ति अवस्थित है ? इसी प्रश्न के समाधानार्थ योगसूत्रकार ने कहा—'स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'[१] ॥

काल से अनवच्छिन्न (कालातीत) एवं ब्रह्मा आदि देवताओं का उपदेष्टा, हिरण्यगर्भ आदि का भी उपदेष्टा, ज्ञानचक्षु, शिव एवं विष्णु आदि को भी ज्ञान प्रदान करने वाला वह 'ईश्वर' ही गुरु है—

(१) 'आद्यानां स्रष्टॄणां ब्रह्मादीनामपि स गुरुरुपदेष्टा' । (भोजराज)

(२) 'स एष ईश्वरः पूर्वेषां पूर्वसर्गोत्पन्नानामपि ब्रह्म-विष्णु-हरादीनामपि गुरुः' । (भावगणेश)

(३) 'स एष ईश्वरः पूर्वेषां हिरण्यगर्भादीनामपि गुरुरन्तर्यामिविधया ज्ञानचक्षुप्रदः' । (राजमार्तण्ड : भोजराज)

(४) 'ब्रह्मविष्णुमहेश्वरादीनामपि गुरुः' । 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' । (योगवार्तिकम् : विज्ञानभिक्षु)

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु मर्त्यशरीरी मानवपिण्ड नहीं है प्रत्युत अनादि, अनन्त, अविनाशी, अक्षर, सार्वभौम और सर्वदेवशास्ता है ।

महास्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है कि स्वयं भगवान् सदाशिव ही आदिगुरु हैं । शिष्य के अभाव में उन्होंने अपने को ही गुरु एवं शिष्य के रूप में विभाजित करके उपदेश देना प्रारम्भ किया—

'गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः ।
प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्' ॥

इसी प्रश्नोत्तर-पद्धति से उन्होंने तन्त्र की भी अवतारणा की ।

योगी अमृतानन्द ने भी इसी बात को शब्दान्तर में इस प्रकार व्यक्त किया है—'प्रकाशात्मकः परमशिवोऽहमेव विश्वानुग्रहपरः सन् परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीक्रमेण व्यापृत्य विमर्शांशेन प्रष्टा भूत्वा प्रकाशांशेन प्रतिवचनदातापि सन् तन्त्रं समवतारयामि'[२] ।

रुद्रयामलतन्त्र के अनुसार गुरु के प्रकार निम्नाङ्कित हैं—प्रेरक, सूचक आदि ।

---

१. योगसूत्र (समाधिपाद १।२६) । २. योगिनीहृदयदीपिका ।

गुरु के प्रकार

प्रेरक | सूचक | वाचक | दर्शक | शिक्षक | बोधक

'प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा।
शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः' ॥

इन ६ गुरुओं में ५ गुरु—'कार्यभूत गुरु' हैं। 'कारण गुरु' तो केवल एक ही है और उसका नाम है—'बोधक गुरु'—

'पञ्चैते कार्यभूताः स्युः कारणं बोधको भवेत्' ॥

दीक्षा और गुरु—सांख्यायनतन्त्र के अनुसार—

'दीक्षाविधिं विना मन्त्रं यो जपेत् कोटिकोटिशः।
न स सिद्धिमवाप्नोति सिन्धुसैकतवर्षवत्' ॥

दीक्षा के लिए योग्य गुरु चाहिए। दीक्षा का मूल गुरु है।

दीक्षा के भेद—

आणवी दीक्षा के १० भेद

स्मार्ती | मानसी | यौगी | चाक्षुषी | स्पार्शिकी | वाचिकी | मान्त्री | हौत्री | शास्त्री | अभिषेचिका[1]

वर्णमयी दीक्षा से देवता भाव की उत्पत्ति होती है।

दीक्षा के मूल भेद

शाक्ती | शाम्भवी | मान्त्री[2]

ब्रह्मस्वरूप गुरु

गुरु | परगुरु | परापर गुरु | स्वगुरु

'गुरुः परगुरुश्चैव परापरगुरुस्तथा।
स्वगुरुः परमेशानि साक्षाद् ब्रह्म न संशयः' ॥

बृहन्नीलतन्त्र में प्रतिपादित दृष्टि—

'परापरगुरूणां च निर्णयं शृणु पार्वति।

---

१. राघवभट्ट। २. मान्त्री = क्रियावती दीक्षा।
'त्रिविधा सा भवेद् दीक्षा प्रथमा आणवी मता।
शाक्तेयी शाम्भवी चाऽन्या सद्योमुक्तिविधायिनी' ॥

आदौ सर्वत्र देवेशि! मन्त्रदः परमो गुरुः ।
परापरगुरुस्त्वं हि परमेष्ठी त्वहं गुरुः' ॥

गुरु का महत्त्व—गुरु के बिना किसी भी साधक को अध्यात्म जगत् में प्रवेश करने की पात्रता ही नहीं है—

'गुरुं विना यतस्तन्त्रे नाधिकारः कथञ्चन ।
अत एव महेशानि गुरुः कर्तव्य उत्तमः' ॥

जो भी व्यक्ति बिना गुरु के पुस्तकादि का अध्ययन करके जप करते हैं वे पाप का सञ्चय करते हैं—

'गुरुं विना यस्तु मूढः पुस्तकादिविलोकनात् ।
जपबन्धं समाप्नोति किल्बिषं परमेश्वरि' ॥

अकेले गुरु ही पापों का नाश करता है क्योंकि—

'न माता न पिता भ्राता तस्य को वा गतिः प्रिये ।
गुरुरेको वरारोहे पापं नाशयति क्षणात्' ॥

यहाँ तक कि समस्त इदमात्मक जगत् गुरु में ही स्थित है—

'गुरुमूलमिदं शास्त्रं नाऽन्यः शिवतमः प्रभुः ।
अत एव महेशानि यत्नतो गुरुमाश्रयेत्' ॥

योगसूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने ईश्वर को प्रथम गुरु स्वीकार किया है ।

गुरु की आवश्यकता—नारदपाञ्चरात्र में कहा गया है कि मनुष्य का (शिष्य का) शरीर असंस्कृत रहता है । असंस्कृत शरीर साधनोपयोगी नहीं होता अतः गुरु को चाहिए कि वह सर्वप्रथम उसके शरीर को शुद्ध करे—

'आदौ शिष्यस्य देहं तु शोधयेन्निपुणः गुरुः ।
असंस्कृतशरीरस्तु न योग्यः स्यात्कथञ्चन' ॥

गुरु का कर्तव्य है कि वह फिर हृदयाम्भोज में प्रदीपकलिकाकार आत्मचैतन्य का बोध कराकर उसे अपनी आत्मा से योजित करे—

'बोधयेत्तद्हृदाम्भोजे प्रदीपकलिकाकृतिः ।
आत्मचैतन्यमीशानि तच्च स्वात्मनि योजयेत्'[1] ॥

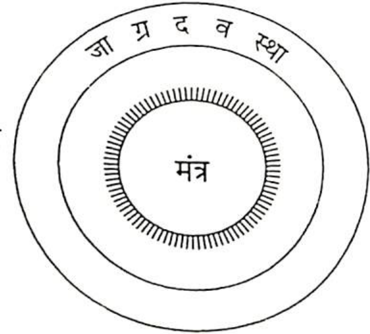
मन्त्र की अवस्थाएँ

(१) जाग्रदवस्था और मन्त्र[2]—

---

१. माहेश्वरतन्त्र (ज्ञानखण्ड) । २. इन्द्रियदशकव्यवहृतिरूपा या जागरावस्था ।

जाग्रदवस्था—(१) चेतना का नेत्रावस्थान—



१. चेतना की बहिर्मुखता।

२. मन्त्र की बहिर्मुखता।

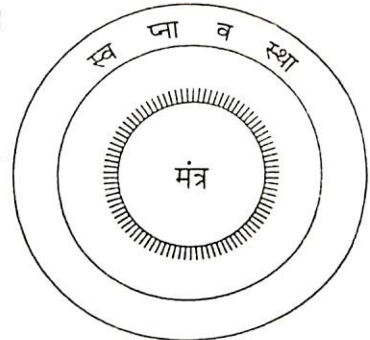
३. ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान का पृथक्त्व (पार्थिव पृथक्त्व) (बाह्य पृथक्त्व)।

४. पूर्ण भेदावस्था।

५. प्रत्येक पदार्थ की यथार्थतः पृथक् सत्ता।

(२) स्वप्नावस्था और मन्त्र[१]—

स्वप्नावस्था—(२) चेतना का कण्ठावस्थान।



१. चेतना की अन्तरोन्मुखता।

२. मन्त्र की अन्तरोन्मुखता।

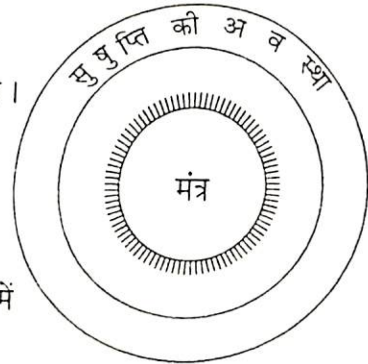
३. ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान का पृथक्त्व (मानसिक पृथक्त्व) (आन्तर पृथक्त्व)।

४. भेदाभेदावस्था।

५. प्रत्येक पदार्थ की एकानुस्यूतता (तथापि पृथक्त्व की मिथ्या अनुभूति)।

(३) सुषुप्त्यवस्था और मन्त्र[२]—

सुषुप्त्यवस्था—(३) चेतना का हृदयावस्थान।



(४) तुरीयावस्था और मन्त्र[३]—

तुरीयावस्था—(४)

चेतना का अर्धचन्द्र: रोधिनी एवं नाद में अवस्थान—

'तुर्यावस्था चिदभिव्यञ्जकनादस्य वेदनं प्रोक्तम्, तद्भावनार्धचन्द्रादिकं त्रयं व्याप्य कर्तव्या'। (वरिवस्यारहस्यम्)

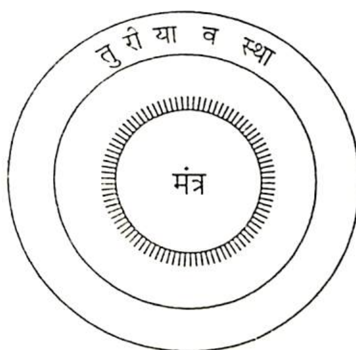
---

१. अन्तःकरणचतुष्कव्यवहारः स्वाप्निकावस्था। (वरिवस्यारहस्यम्)

२. आन्तरवृत्तेर्लयतो लीनप्रायस्य जीवस्य।
वेदनमेव सुषुप्तिश्चिन्त्या तार्तीयबिन्दौ सा॥ (वरिवस्यारहस्यम्)

(५) तुरीयातीतावस्था और मन्त्र—

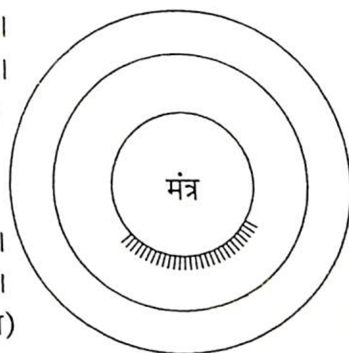
तुरीयातीतावस्था—(५)





चेतना का नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना एवं उन्मना में अवस्थान—

'आनन्दैकघनत्वं यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम् ।
तुर्यातीतावस्था सा नादादिपञ्चके भाव्या' ॥
(भास्करराय-वरि.)



नादनवक—

'बिन्द्वर्धचन्द्ररोधिन्यो नाद-नादान्त-शक्तय: ।
व्यापिका-समनोन्मन्य इति द्वादश संहति: ॥
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते' ॥
(वरिवस्यारहस्यम्-भास्करराय)

वराहाकार भगवान् नारायण की दृष्टि—

(१) 'निद्रा' का स्वरूप क्या है ?

जिस समय अपने व्यापार सहित बुद्धि अपने कारण अज्ञान में विलीन हो जाती है उसे ही विज्ञ पुरुष 'निद्रा' कहते हैं—

'अज्ञाने बुद्धिविलये, निद्रा सा भण्यते बुधै:' ॥

यदि प्रकाशस्वरूप चिदात्मा में अज्ञान विलीन हो जाय तब भला 'निद्रा' कहाँ ?

'विलीनाज्ञाततत्कार्ये मयि निद्रा कथं भवेत् ?

(२) जाग्रदवस्था का स्वरूप क्या है ?

'बुद्धे: पूर्णविकाशोऽयं जागर: परिकीर्त्यते ।
विकारादिविहीनत्वाज्जागरो मे न विद्यते' ॥

(३) 'स्वप्नावस्था' का स्वरूप क्या है ?

'सूक्ष्मनाडिषु सञ्चारो बुद्धे: स्वप्न: प्रजायते ।
सञ्चार: धर्म-रहिते मयि स्वप्नो न विद्यते' ॥

(४) 'सुषुप्त्यवस्था' का स्वरूप क्या है ?

'सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमसावृते।
स्वरूपं महदानन्दं भुंक्ते विश्वविवर्जितः'[१] ॥

आचार्य भास्करराय की दृष्टि—

(१) जागरावस्था—

'इन्द्रियदशकव्यवहृतिरूपा या जागरावस्था'।

(२) स्वप्नावस्था—

'अन्तःकरणचतुष्कव्यवहारः स्वाप्निकावस्था'।

(३) सुषुप्त्यवस्था—

'आन्तरवृत्तेर्लयतो लीनप्रायस्य जीवस्य।
वेदनमेव सुषुप्तिश्चिन्त्या तार्तीयबिन्दौ सा' ॥

(४) तुर्यावस्था—

'तुर्यावस्था चिदभिव्यञ्जकनादस्य वेदनं प्रोक्तम्'।

(५) तुरीयातीतावस्था—

'आनन्दैकघनत्वं यद्वाचामपि न गोचरो नृणाम्।
तुर्यातीतावस्था सा नादान्तादिपञ्चके भाव्या'[२] ॥

(१) जागरावस्था—'कर्मेन्द्रियाणि पञ्च वाक्पाणिपादपायूपस्थानि ज्ञानेन्द्रियाण्यपि पञ्च घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणि एतेषां दशानां स्वस्वविषयोत्पादकत्वं व्यवहारः स एव जागरावस्था' ॥

(२) स्वप्नावस्था—'मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेत्यन्तःकरणानि चत्वारि। तैरेव व्यवहारः स्वप्नः'।

(३) सुषुप्ति की अवस्था—'विवरणमते आत्मसुखाज्ञानविषयिस्तिस्रोऽविद्यावृतः स्वीकृता इत्यत आह—आन्तरवृत्तेरिति। अन्तःकरणपरिणामरूपवृत्तेरित्यर्थः'।

वार्तिकमते—वृत्तिसामान्याभाव एव सुषुप्तिः।

(४) तुर्यावस्था—चैतन्य को अभिव्यक्त करने वाले नाद की अवस्था को तुरीयावस्था कहते हैं।

(५) तुरीयातीतावस्था—परिपूर्ण आनन्द (आनन्दैकघन) की अवस्था जो व्यक्ति के वाणीगोचर नहीं है 'तुरीयातीतावस्था' कहलाती है। इसकी भावना नादान्त आदि ५ वर्णों में करनी चाहिए।

---

१. वराहोपनिषद्, द्वितीय अध्याय। २. वरिवस्यारहस्यम्।

तृतीय कूट के बिन्दु में—सुषुप्ति भावनीय है। अर्धचन्द्रादि आगे के ३ वर्णों में भावनीय अवस्था ही 'तुर्यावस्था' है जो कि नादावस्था है।

तृतीय कूट के रेक, बिन्दु, रोधनी, नादान्त एवं व्यापिका स्थानों में ५ शून्यों की भावना मयूरपङ्ख के अर्धचन्द्र के रूप में करनी चाहिए[१]। यही तुरीयातीतावस्था है।

योगिनीहृदयकार की दृष्टि—

(१) जागर—'प्रबोधकरणस्याऽथ जागरत्वेन भावनम्'।

(२) महाजाग्रदवस्था—'वह्नौ देवि महाजाग्रदवस्था त्विन्द्रियद्वयैः'॥

(३) स्वप्नावस्था—'आन्तरैः करणैरेव स्वप्नमायावबोधकः'।

(४) सुषुप्त्यवस्था—

'गलदेशे सुषुप्तिस्तु लीनपूर्वस्य वेदनम्।
अन्तःकरणवृत्तीनां लयतो विषयस्य तु'॥

(५) तुर्यावस्था—

'पूर्वार्णानां विलोमेन भ्रूमध्ये बिन्दुसंस्थिता।
तुर्यरूपं तथा चात्र वृत्तार्धादेस्तु संग्रहः॥
चैतन्यव्यक्तिहेतोस्तु नादरूपस्य वेदनम्'।

(६) तुर्यातीतावस्था—

'तुर्यातीतं सुखस्थानं नादान्तादिस्थितं प्रिये।
अत्रैव जपकाले तु पञ्चावस्था स्मरेद् बुधः'[२]॥

अमृतानन्द एवं भास्करराय की दृष्टि

जागरितावस्थाभावना—'ज्ञानकर्मेन्द्रियद्वयैः दशेन्द्रियैः जाग्रद्व्यवहारो जागरणं प्रबोधो जागर इत्युच्यते, तत्करणस्य प्रकाशस्य जागरत्वेन भावनम्'।

महाजाग्रदवस्था—'प्रकाशवाचके वह्नौ तार्तीयबीजशिखरवर्तिनि रेके महाजाग्रदवस्था सर्वकालिकनिद्राक्षयलक्षणा परप्रबोधदशा भावनीया'।

स्वप्नावस्था—'गलदेशे स्वप्नस्य स्थानम्। बाह्येन्द्रियरहितैरान्तरैः करणैर्मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्यैरेव व्यवहारः प्रमातृस्वप्नः समायया तार्तीयबीजस्थेन चतुर्थस्वरेण अवगतबोधनस्तद्वाच्यः'।

सुषुप्त्यवस्था—"स्वप्ने विद्यमानानामन्तःकरणवृत्तीनां लयतः सर्वेन्द्रियोपरतिः सुषुप्तिः। अतो हि लीनपूर्वस्य देहाक्षादिषु क्रोडीकृतस्य लीनस्यैव स्वात्मनो वेदनं प्रकाशनं भवति। 'सुखमहमस्वाप्सम्' इति पश्चात्सुखमयं स्वात्मरूपं परामृश्यते सेयं सुषुप्तिः"॥

---

१. वरिवस्यारहस्यम् (प्रकाश टीका)। २. योगिनीहृदय (पूजासङ्केत)।

तुरीयावस्था—'तुर्यरूपम्। चैतन्यस्य संविदो व्यक्तेः परामर्शस्य हेतोः। वेदनम् अभिव्यक्तिस्तुरीयरूपम्। नादरूपस्य वेदनम् अभिव्यक्तिस्तुरीयम्। तार्तीयबीजशिखर-वर्त्यर्धचन्द्ररोधिनीनादेषु स्वात्मचैतन्याभिव्यक्तिकारणनादकलनात्मकं तुरीयं तुर्यं भाव-नीयम्'[१] ॥

तुर्यातीतावस्था—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'; 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' इति उपनिषद्रीत्या मनोवागतीतपरमानन्दस्वरूपा। 'सुखस्थानं' नादान्तादिस्थितं विलोमसुखस्थाने स्थितं नादान्तशक्तिव्यापिकासमनोन्मनासु स्थितं तुरीयातीतं भाव-नीयम्[२] ॥

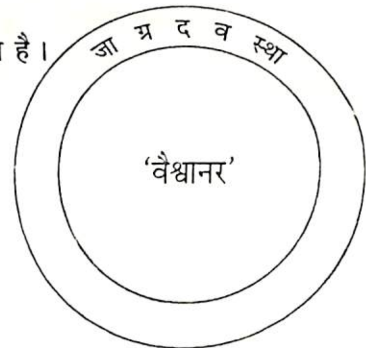
तुर्यावस्था नाम चैतन्याभिव्यक्तिहेतुर्यो नादस्तस्यानुसन्धानात्मिका दशा। सा बिन्द्वर्धश्चन्द्ररोधिनीनादेषु भावनीया। तुर्यातीतदशा। सा नादान्तादिपञ्चके वाच्यत्वादिना स्थिता भावनीया[३] ॥

आत्मा

'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा.उप.) अर्थात् यह सब कुछ आत्मा मात्र ही है।

आत्मा की अवस्थाएँ—

आत्मा का प्रथम पाद : जाग्रदवस्था—



१. जाग्रदवस्था इसकी अभिव्यक्ति का स्थान है।
२. यह बहिष्प्रज्ञ है।
३. यह सप्ताङ्ग है।
४. इसके १९ मुख हैं।
५. यह स्थूल विषयों का भोक्ता है।
६. इसका नाम है—वैश्वानर।

वैश्वानर का स्वरूप—

'जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः' ॥३॥ (माण्डूक्योपनिषद्)

(१) यह सब ब्रह्म ही है। यह आत्मा ही ब्रह्म है। वह यह आत्मा चार पादों (अंशों) वाला है—

'सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्' ॥२॥ (माण्डूक्योपनिषद्)

आत्मा के चार पाद हैं—(१) प्रथम तीन पादों में 'पाद' शब्द करणवाच्य है किन्तु तुरीय में प्रयुक्त 'पाद' शब्द कर्मवाच्य है।

१-२. अमृतानन्द : यो.हृ. दीपिका। ३. भास्करराय : सेतुबन्ध।

(क) बहिष्प्रज्ञ—अपने से भिन्न विषयों में प्रज्ञा वाला। यहाँ अविद्याकृत बुद्धि बाह्य विषयों से सम्बद्ध-सी प्रतीत होती है।

(ख) सप्ताङ्ग—इस आत्मा का शिर द्युलोक है, नेत्र सूर्य है, प्राण वायु है, देह आकाश है, मूत्रस्थान अन्न है, चरण पृथ्वी है और मुख आहवनीय अग्नि है—

'तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मा सन्दोहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ'। (छा.उप. ५।१८।२)

(ग) एकोनविंशतिमुखः—१० इन्द्रियाँ, ५ प्राण, अन्तःकरण, ४ वैश्वानर। सम्पूर्ण प्राणियों को अनेक प्रकार की योनियों में नयन (वहन) करने के कारण 'वैश्वानर' कहलाता है। वह विश्वरूप एवं नररूप भी है इसलिए भी उसे वैश्वानर कहा गया है—समस्त देहों से अभिन्न होने के कारण वही प्रथम पाद है।

साधना की दृष्टि से अवस्थाएँ—जप एवं ध्यान की साधना में सारी अवस्थाओं का प्रादुर्भाव होता है। इसीलिए भास्करराय मखिन् ने जप के अङ्गों का निरूपण करने के प्रसङ्ग में १. विषुव, २. शून्य, ३. चक्र आदि अङ्गों के साथ-ही-साथ 'अवस्थाओं' को भी इनमें अन्तर्निविष्ट किया था। भाव यह कि जप करने की साधना में (१) जप की जाग्रदवस्था, (२) जप की स्वप्नावस्था, (३) जप की सुषुप्ति की अवस्था, (४) जप की तुरीय अवस्था एवं (५) जप की तुरीयातीत अवस्था भी आती है जो कि यथार्थतः साधक की मानसिक एवं आध्यात्मिक अवस्थाएँ हैं।

जो ज्ञान की भूमिकाए हैं उनमें भी ये अवस्थाएँ हैं।

साधना के उत्तरोत्तर विकास की दिशा में ज्ञान की भूमिकाएँ—

योगवासिष्ठ में ज्ञान की भूमिकाएँ (योग की भूमिकाएँ)

शुभेच्छा	विचारणा	असङ्ग	विलापिनी
(प्रथम भूमिका) श्रवणभूमिका (अङ्कुरण की अवस्था)	(द्वितीय भूमिका) श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान (मनन भूमिका, विकास की अवस्था) भेद बुद्धि वाली जाग्रत् भूमिका।	(असंसक्ति) (काल की भूमिका) (तृतीयभूमिका) फल की अवस्था, निदिध्यासन भूमिका, सङ्कल्पशून्यता की अवस्था।	भूमिका—मृत चित्त की अवस्था (भेददृष्टि से परे अद्वैत की भूमिका, जगत् को स्वप्न रूप में देखने की भूमिका), समत्वभाव, जगत् में सर्वत्र ब्रह्म-दर्शन, स्वप्न की भूमिका।

(अद्वैत की भूमिका) शुद्धसंविन्मयानन्दरूपा पञ्चमी	स्वसंवेदन रूप (अद्वैत की भूमिका) (चिज्जड	तुर्यातीत भूमिका (अद्वैत की भूमिका) विदेह

(पञ्चम भूमिका) (जीवन्मुक्त की अवस्था) (तन्द्रावत् भूमिका) अर्धसुषुप्ति की भूमिका (अन्तर्मुखी वृत्ति की भूमिका), समस्त विकारों से शून्य अवस्था	ग्रन्थि से परे) जीवन्मुक्ति की अवस्था। निर्विकल्प एवं द्वैताद्वैत की भावना से भी निर्मुक्त बाह्यज्ञान शून्य अवस्था। सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि।	मुक्त की अवस्था, वाणी से अगम्य अवस्था।

आत्मा का द्वितीय पाद : स्वप्नावस्था—

(१) यह स्वप्नावस्था वाला है—क्योंकि स्वप्न ही इसका स्थान है।

(२) यह अन्त:प्रज्ञ है।

(३) यह भी सप्ताङ्ग है।

(४) यह भी १९ मुखों वाला है।

(५) यह (स्थूल नहीं) सूक्ष्म विषयों का भोक्ता है।

(६) इसका नाम है 'तैजस'।



तैजस का स्वरूप—

'स्वप्नस्थानोऽन्त:प्रज्ञ: सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखो विविक्तभुक्तैजसो द्वितीय: पाद:' ॥४॥
(माण्डूक्योपनिषद्)

(१) चूँकि स्वप्न इस तैजस का स्थान है अत: यह 'स्वप्नस्थान' कहा गया है।

(२) चित्रित वस्त्रवत्, संस्कारों से रञ्जित यह मन अविद्या, कामना एवं कर्म के कारण बाह्य साधन की अपेक्षा के बिना ही प्रेरित होकर जाग्रत् के समान प्रतीत होता है। यथा—'अत्रैष देव: स्वप्ने महिमानमनुभवति' (प्र.उ. ४।५); 'परे देवे मनस्येकीभवति' (प्र.उ. ४।२)।

(३) स्वप्नावस्था में जिसकी प्रज्ञा उस मन की वासना के अनुरूप रहती है उसे अन्त:प्रज्ञ कहते हैं।

(४) यह अपनी विषयशून्य और केवल प्रकाशस्वरूप प्रज्ञा का अनुभविता (प्रज्ञा का विषयी) होने के कारण तैजस कहा जाता है।

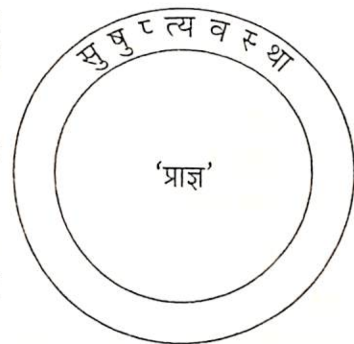
(५) विश्व बाह्य विषययुक्त होता है अत: जागरित अवस्था में उसका भोज्य स्थूल-प्रज्ञा होता है। तैजस के लिए वासना मात्र प्रज्ञा भोज्य है। अत: इसका भोग सूक्ष्म है (विविक्तभुक् है)[१]।

---

१. शङ्कराचार्य : माण्डूक्यकारिकाभाष्य।

आत्मा का तृतीय पाद : सुषुप्त्यवस्था—

(१) सुषुप्ति जिस अवस्था में सोया हुआ पुरुष किसी भोग की इच्छा नहीं करता और न कोई स्वप्न देखता है उसे सुषुप्ति कहते हैं।



(२) प्राज्ञ की अभिव्यक्ति स्थान ही सुषुप्ति की अवस्था है।

(३) यह एकभूत, प्रकृष्ट ज्ञान वाला, आनन्दमय, आनन्द का भोक्ता एवं चेतना रूप मुख वाला है।

(४) इसका नाम 'प्राज्ञ' है।

प्राज्ञ का स्वरूप—

'यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्'।

'सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः' ॥५॥ (माण्डूक्यकारिका)

(१) जाग्रदवस्था एवं स्वप्नावस्था की भाँति सुषुप्ति में अन्यथा ग्रहण नहीं होता और यहाँ कोई कामना भी नहीं रहती।

(२) जाग्रत् एवं स्वप्न की अवस्थाओं में (रात्रि के अन्धकार से आच्छादित दिन की भाँति) विभिन्न रूप से प्रतीत होने वाला मन का स्फुरण रूप द्वैत समूह प्रपञ्च के सहित अपने उस विशिष्ट स्वरूप का त्याग न करके अज्ञान से आच्छादित हो जाता है इसीलिए उसे 'एकीभूत' कहा गया है।

(३) 'प्रज्ञानघन' जिस अवस्था में स्वप्न एवं जाग्रत्—ये मन के स्फुरण रूप प्रज्ञान घनीभूत-से हो जाते हैं, वह यह अवस्था अविवेकरूपा होने के कारण 'प्रज्ञानघन' कहलाती है। यथा–रात्रि के अन्धकार से पृथक्त्व की प्रतीति न होने के कारण सम्पूर्ण प्रपञ्च घनीभूत-सा प्रतीत होता है। उसी प्रकार यह प्रज्ञानघन है। उस समय प्रज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य जाति नहीं रहती।

(४) आनन्दमय—मन का विषय एवं विषयी के रूप से स्फुरण रूप जो दुःख है उससे मुक्त होने के कारण यह आनन्दमय है।

प्राज्ञ का सर्वकारणत्व—'एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्'[१] ॥६॥

---

१. माण्डूक्योपनिषद्।

एक ही आत्मा के तीन भेद—

'बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः ।
घनप्रज्ञस्तु प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः' ॥

(क) दक्षिणनेत्र रूप द्वार में विश्व रहता है ।
(ख) मन के भीतर तैजस रहता है । } गौडपादाचार्य
(ग) हृदयाकाश में प्राज्ञ रहता है ।

एक ही आत्मा शरीर में तीन प्रकार से रहती है । दक्षिणनेत्र ही मुख (उपलब्धि का स्थान) है, इसी में प्रधानता से स्थूल पदार्थों के साक्षी विश्व का अनुभव होता है । जाग्रदवस्था स्थूल पदार्थों का भोक्ता होने के कारण दक्षिण नेत्र में स्थित पुरुष 'इन्ध' 'इद्ध' (दीप्त) कहलाता है ।

आदित्यान्तर्गत वैराजसंज्ञक आत्मा और नेत्रों में स्थित साक्षी—ये दोनों एक ही हैं । सम्पूर्ण इन्द्रियों में समान रूप से स्थित होने पर भी दक्षिण नेत्र में उसकी उपलब्धि की स्पष्टता होने से 'विश्व' का विशेषतः निर्देश किया गया है । दक्षिण नेत्र में स्थित जीवात्मा रूप को देखकर फिर नेत्र मूँदकर मन में उसी का स्मरण करता हुआ वासना रूप से अभिव्यक्त उसी रूप का स्वप्न में उपलब्धवत् दर्शन करता है; इसी प्रकार स्वप्न में भी होता है अतः यह जाग्रत् अवस्था में स्वप्न ही है अतः मन के भीतर स्थित तैजस भी विश्व ही है ।

दर्शन और स्मरण ही मन के स्फुरण हैं । उनका अभाव हो जाने पर जीव का हृदय के भीतर प्राणरूप से स्थित होना ही जाग्रत् में सुषुप्ति है ।

मनः स्थित होने के कारण तैजस ही हिरण्यगर्भ है । तैजस की उपाधि 'व्यष्टिमन' है और हिरण्यगर्भ की 'समष्टिमन' है[१] ।

आचार्य गौडपाद की दृष्टि—

(१) 'बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः ।
घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः' ॥

(२) 'दक्षिणाक्षिमुखे विश्वो मनस्यन्तस्तु तैजसः ।
आकाशे च हृदि प्राज्ञस्त्रिधा देहे व्यवस्थितः' ॥

(३) 'विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ।
आनन्दभुक्तस्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत' ॥

(४) 'स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तं तु तैजसम् ।
आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत' ॥

---

१. शङ्कराचार्य : माण्डूक्यकारिकाभाष्य ।

(५) 'त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः ।
वेदैतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते' ॥

माण्डूक्योपनिषद् में ओङ्कार की तीन मात्रा—

१. 'अ' २. 'उ' एवं ३. 'म' के द्वारा १. स्थूल, २. सूक्ष्म एवं ३. कारण—शरीर के अभिमानी १. विश्व, २. तैजस एवं ३. प्राज्ञ का वर्णन करते हुए उनके समष्टि-अभिमानी—१. वैश्वानर, २. हिरण्यगर्भ एवं ३. ईश्वर के साथ अभेद स्थापित किया गया है। इनकी अभिव्यक्ति की अवस्थाएँ—१. जाग्रत्, २. स्वप्न एवं ३. सुषुप्ति हैं। इनके भोग—१. स्थूल, २. सूक्ष्म एवं ३. आनन्द हैं।

जीव के अवस्थान

जाग्रदवस्था में	स्वप्नावस्था में	सुषुप्त्यवस्था में
(दक्षिणनेत्र में)	(कण्ठ में)	(हृदय में)

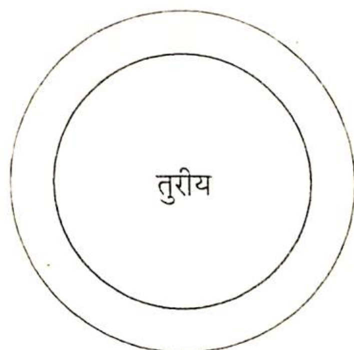
परमार्थतत्त्व ओङ्कार के चतुर्थ पाद अमात्र तुरीयात्मा है, प्रपञ्च भ्रम है तो प्रपञ्चभ्रम का अधिष्ठान कौन है ? यह अधिष्ठान 'तुरीय' है। यह तुरीय तत्त्व नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, सर्वात्मा, प्रकाशस्वरूप एवं सर्वसाक्षी है। इसका ज्ञान अनादि माया से जाग्रत् होने पर ही होता है—

'अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा' ॥

आत्मा का तुरीयस्वरूप : अवस्थातीत—

(१) यह न तो अन्तःप्रज्ञ है, न बहिष्प्रज्ञ है, न अन्तर्बहिष्प्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ है और न अप्रज्ञ है।

(२) यह अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य, एकात्मप्रत्यय-सार, प्रपञ्चोपशम, शान्त, शिव और अद्वैतरूप है। यही आत्मा है और यही ज्ञेय है।



तुरीय आत्मा या आत्मा का तुरीय स्वरूप—

'नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः'। (माण्डूक्योपनिषद्)

विज्ञानभैरव में इस अवस्था की अनुभूति इस प्रकार बताई गई है—

'यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाऽभ्यन्तरे प्रिये।
तत्र तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात् प्रकाश्यते' ॥

यहाँ अहन्ता और इदन्ता में ऐक्य भी हो जाता है—'अहन्तेदन्तयोरैक्यं भावयन् विहरेत् सुखम्। अहन्ता ज्ञातृधर्मः, इदन्ता ज्ञेयधर्मः; तयोरैक्यं–'यत्र यत्र मिलिता मरीचयस्तत्र तत्र विभुरेव जृम्भते'।

न्यास तत्त्व और उसका स्वरूप

'न्यास' देवैक्य, सायुज्य एवं तद्रूपता की साधना है। साधक देवता को अपनी सत्ता अधिकृत करने के लिए उसका आवाहन करता है और चाहता है कि वह मेरी सत्ता में प्रवेश करके उसका शासनसूत्र अपने हाथों में ले ले। देवता साधक के सम्पूर्ण शरीर या शरीर के विशेषाङ्ग को अपने सजातीय अङ्ग से अधिकृत कर ले—इसी उद्देश्य से आहूत देवता एवं उसके ही मन्त्र या मन्त्रांश के साथ साधक अपनी अँगुलियों या हथेली का उसी अङ्ग में न्यास करता है। साधक इस क्रिया की, शरीर के प्रत्येक अङ्ग पर पुनरावृत्ति करता है और फिर वह अपनी अँगुलियों को पूरे शरीर पर फैला देता है। इसे 'व्यापक न्यास' कहते हैं। इससे यह अर्थ लिया जाता है कि देवशक्ति (या परमात्मा) साधक की सम्पूर्ण सत्ता में फैल गई है। इसीलिए तो कहा गया है कि 'देवो भूत्वा यजेद्देवम्'।

'न्यास के द्वारा देवत्व की प्राप्ति एवं मन्त्रसिद्धि होती है। यथा 'वरिवस्यारहस्यम्' के लेखक भास्करराय मखिन् को 'षोढ़ा न्यास' सिद्ध होने से हुई थी और उसके परिणाम स्वरूप उन्होंने जैसे ही एक प्रतिद्वन्द्वी संन्यासी के कमण्डल को दण्डवत् किया तो उसके कमण्डल के सैकड़ों टुकड़े हो गये। न्यास की इसी महत्ता के कारण भगवान् शिव ने पार्वती से कहा था—

'न्यासं निर्वर्तयेद्देहे षोढान्यासपुरःसरम्'।

न्यास तत्त्व—अपने शरीर एवं शरीराङ्गों में मन्त्र के अक्षर, देवता, लोक, राशि, नक्षत्र, पीठ आदि की स्थापना करके अपने को मन्त्रमय, देवतामय एवं विश्वमय बनाने की अद्वैतात्मिका प्रक्रिया ही न्यास है।

'न्यायोपार्जितवित्तानामङ्गेषु विनिवेशनात्।
सर्वरक्षाकराद्देवि न्यास इत्यभिधीयते'[१]।

तान्त्रिक प्रक्रिया में न्यास का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। उसमें 'षोढान्यास' अतीव महत्त्वपूर्ण है—

(१) 'एवं यो न्यस्तगात्रस्तु स पूज्यः सर्वयोगिभिः'।

१. कुलार्णवतन्त्र १७/५६।

(२) नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखो जन: ।
स एव पूज्य: सर्वेषां स स्वयं परमेश्वर:' ॥
(३) 'षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्त: सर्वत्रैवापराजित:'[१] ॥

षोढान्यास का स्वरूप

'गणेशै: प्रथमो न्यासो' 'द्वितीयस्तु ग्रहैर्मत:' 'नक्षत्रैश्च तृतीय: स्यात्' 'योगिनीभि चतुर्थक:'

'राशिभि: पञ्चमो न्यास:' 'षष्ठ: पीठैर्निगद्यते'

'षोढान्यासविहीनं यं प्रणमेदेष पार्वति ।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपद्यते' ॥
(योगिनीहृदय : पूजासङ्केत)

न्यास के प्रकार

न्यास के अनेक प्रकार हैं; यथा—

(१) मातृका न्यास—स्वर एवं वर्णों का न्यास ।

(२) मन्त्रन्यास—सम्पूर्ण मन्त्र, मन्त्र के पद, मन्त्र के एक-एक अक्षर या एक साथ ही सबका न्यास ।

(३) देवतान्यास—शरीर के बाह्य एवं आभ्यन्तर अङ्गों में इष्टदेव या अन्य देवों की यथास्थान स्थापना ।

(४) ऋष्यादिन्यास—शिर, मुख, हृदय, गुह्यस्थान, पैर एवं सर्वाङ्ग में ऋषि-बीजादि की स्थापना ।

न्यास का अर्थ है 'स्थापन' । किसी स्थान, केन्द्रचक्र, अङ्ग या शरीर के बाह्याभ्यन्तर अङ्गों में इष्टदेवता, मन्त्र या मातृकाओं की स्थापना करना ही न्यास है । शरीर शुक्र, रक्त, रस आदि संप्तधातु; प्राण, मन संस्कार एवं चेतना आदि सभी दृष्टियों से अपवित्र है अत: उसे पवित्रतम (भगवान्) की पूजा करने का तब तक अधिकार नहीं मिलता जब तक कि वह शरीर को पवित्र न बना ले । देवपूजा के लिए शरीर को पवित्र करना आवश्यक है ।

चित्तगत क्षोभ, चित्त में उत्पन्न ग्लानि के रहते हुए (ग्लानि युक्त चित्त में) प्रसाद एवं भावों का उद्रेक नहीं होता । विक्षेप एवं अवसाद से आक्रान्त होने के कारण ही चित्त में बार-बार प्रमाद एवं तन्द्रा का उदय होता रहता है । क्षोभकलुषित चित्त किसी भी वस्तु या विषय का एकतार स्मरण नहीं कर सकता और न तो वह विधि-विधानपूर्वक किसी भी कृत्य का साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान ही निष्पादित कर सकता है । इन दोषों के परिहार के लिए न्यास श्रेष्ठतम उपाय स्वीकार किया गया है ।

१. योगिनीहृदय : पूजासंकेत ।

शरीर के प्रत्येक अवयव में क्रियाशक्ति प्रगाढ़ सुषुप्ति की अवस्था में सोती रहती है किन्तु हृदयान्तराल में जो भावशक्ति सम्मूर्च्छित रहती है उसको जागृत करने के लिए न्यास एक उत्कृष्ट साधन है। न्यासों के अनेक प्रकार हैं।

मातृकान्यास का सम्बन्ध स्वर एवं व्यञ्जनों से निर्मित वर्णमाला या मातृकाओं (वर्णों का मूल स्वरूप) से होता है।

मन्त्रन्यास का संम्बन्ध मन्त्र का, मन्त्रों के पदों का, मन्त्र के एक-एक वर्ण का और एक साथ ही सब प्रकार का होता है।

देवतान्यास शरीर के बाह्यान्तर अङ्गों में अपने इष्टदेव या अन्य देवों के यथा-स्थान न्यास को कहते हैं।

तत्त्वन्यास न्यास का वह रूप है जिसमें संसार के कार्य-कारण के रूप परिणत एवं इनसे परे रहने वाले तत्त्वों का शरीर में यथानिर्दिष्ट स्थानों में न्यास किया जाता है। इसे ही पीठन्यास भी कहते हैं।

हाथों की समस्त अँगुलियों एवं करतल तथा करपृष्ठ में किया गया न्यास **कर-न्यास** कहा जाता है।

न्यास मुख्यतया चार प्रकार से किया जाता है। न्यास में १. तत्तत् स्थानों में देवता, २. मन्त्रवर्ण, ३. तत्त्व आदि की भावना की जाती है।

जिस न्यास में किसी भी अङ्ग का स्पर्श नहीं किया जाता किन्तु फिर भी सर्वाङ्ग में मन्त्र-न्यास किया जाता है उसे **व्यापक-न्यास** कहा जाता है।

ऋष्यादि न्यास के षडङ्गात्मक हैं—

(क) शिर में ऋषि, (ख) मुख में छन्द, (ग) हृदय में देवता, (घ) गुह्यस्थान में बीज, (ङ) पैरों में शक्ति और (च) सर्वाङ्ग में कीलक।

न्यास-प्रक्रिया

न्यास चार प्रकार से निष्पादित किया जाता है—अन्तर्न्यास केवल मन से निष्पादित किया जाता है। मन से उन-उन स्थानों में देवता, मन्त्रवर्ण, तत्त्व आदि की स्थिति की भावना की जाती है।

बहिर्न्यास केवल मन से भी किया जाता है और साथ ही उन-उन स्थानों के स्पर्श से भी किया जाता है।

स्पर्श दो प्रकार से किये जाने का विधान है—

१. किसी पुष्प से या २. अँगुलियों से।

अँगुलियों का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है—

(१) अङ्गुष्ठ एवं अनामिका मिलाकर सभी अङ्गों का स्पर्श करने से ।

(२) भिन्न-भिन्न अङ्गों के स्पर्श के लिए भिन्न-भिन्न अँगुलियों का प्रयोग किया जाता है।

विभिन्न अँगुलियों के द्वारा न्यास करने का भी एक क्रम है—मध्यमा, अनामिका और तर्जनी द्वारा हृदय; मध्यमा और तर्जनी द्वारा शिर; अङ्गुष्ठ के द्वारा शिर, दसों अँगुलियों के द्वारा कवच; तर्जनी, मध्यमा और अनामिका द्वारा नेत्र; तर्जनी और मध्यमा द्वारा करतल एवं करपृष्ठ में न्यास करना चाहिए।

यदि देवता त्रिनेत्री हो तो तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से एवं यदि देवता द्विनेत्री हो तो मध्यमा और तर्जनी द्वारा नेत्र में न्यास करना चाहिए।

पञ्चाङ्गन्यास नेत्र को छोड़कर ही किया जाता है। वैष्णव-क्रम भिन्न है। इसमें अँगूठों को छोड़कर सीधी अँगुलियों से हृदय और मस्तक में न्यास किये जाने का विधान है। अङ्गुष्ठ को भीतर करके और मुष्टि बाँधकर शिखा-स्पर्श करना चाहिए। सभी अँगुलियों से कवच, तर्जनी और मध्यमा से नेत्र, नाराच मुद्रा से हस्तद्वय को ऊपर उठाकर अङ्गुष्ठ और तर्जनी द्वारा मस्तक के चतुर्दिक् करतल ध्वनि करनी चाहिए। जहाँ अङ्गन्यास का मन्त्र नहीं प्राप्त होता वहाँ देवता के नाम के पूर्व के अक्षर (प्रथमाक्षर) से अङ्गन्यास करने का विधान है।

न्यास का महत्त्व

न्यास मान्त्री शक्ति, देवशक्ति, पीठशक्ति एवं चक्रशक्ति को जाग्रत् करता है और देवत्व की प्राप्ति कराने के अतिरिक्त मन्त्र की सिद्धि भी करता है। मन्त्रशास्त्र यह मानता है कि मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में देवों का निवास है और हमारा अन्तस्तल तथा बाह्य शरीर देवशक्ति तथा मान्त्री शक्तियों से ज्योतित है।

न्यास के सिद्ध होने पर साधक का परमात्मा से एकत्व प्राप्त हो जाता है।

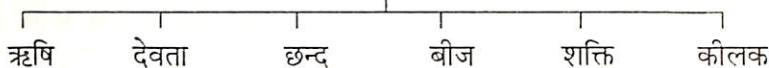
न्यास कवच का भी कार्य करता है क्योंकि न्यास करने पर आध्यात्मिक–आधिभौतिक कोई भी विघ्न साधक के मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर पाता—बिना न्यास के जप, ध्यान आदि की क्रियाओं में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

न्यास-क्रिया में ऋषि, देवता आदि का स्थान

न्यास-क्रिया में मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता, बीजशक्ति एवं कीलक आदि सभी का अपना एवं नियत स्थान है।

प्रत्येक मन्त्र के प्रत्येक पद के और मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के पृथक्-पृथक् ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति एवं कीलक होते हैं।

मन्त्राङ्ग



ऋषि देवता छन्द बीज शक्ति कीलक

(१) **ऋषि**—वह ऋषि जो कि भगवान् शङ्कर से मन्त्र प्राप्त करके सर्वप्रथम उस मन्त्र की साधना करता है उसे उस मन्त्र का ऋषि कहा जाता है।

वैसे ऋषि उसे कहते हैं जो मन्त्रों का द्रष्टा होता है—'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार:'।

ऋषि गुरुतुल्य होता है अत: उसका स्थान मस्तक माना जाता है।

(२) **छन्द**—मन्त्र के स्वर वर्णों की विशिष्ट गति, जिसके द्वारा मन्त्रार्थ एवं मन्त्रतत्त्व आच्छादित रहते हैं और जिसका उच्चारण मुख के द्वारा होता है उसे छन्द कहते हैं। छन्द का स्थान मुख माना जाता है।

(३) **देवता**—देवता ही मन्त्र का आराध्य होता है। वही सारे भावों का प्रेरक एवं हृदय का अधिकारी होता है। उसके न्यास का स्थान हृदय है। सिर में ऋषि, मुख में मन्त्र का छन्द और हृदय में इष्ट देवता तथा शरीराङ्गों में मन्त्र के अक्षरों का न्यास करने से रोम-रोम में अपने इष्ट देवता का वास हो जाता है। न्यास से रोम-रोम एवं अणु-अणु में देवता होने से समस्त शरीर ही देवतामय हो जाता है। चिन्मय के ध्यान से सारा अचित् जगत् भी चिन्मय हो जाता है। जड़ चित्त भी चिन्मय हो जाता है और जड़ शरीर भी; जड़ जगत् भी चिन्मय हो जाता है और अपनी जड़ चेतना भी।

प्रत्येक मन्त्र के १. ऋषि, २. देवता, ३. छन्द, ४. बीज, ५. शक्ति और ६. कीलक होते हैं। मन्त्रसिद्ध्यर्थ इनके ज्ञान, इनकी कृपा एवं सहायता की आवश्यकता होती है।

पीठन्यास को लें। देवता के निवास योग्य स्थान को 'पीठ' कहते हैं। पीठन्यास की साधना से साधक का शरीर एवं अन्त:करण भी देवता के निवास योग्य पीठ बन जाता है। ये पीठ मुख्यत: द्विविध हैं—(१) अमन्त्रक और (२) समन्त्रक। पीठन्यास साधक को देवता का पीठ बना देता है।

जब जगत् की सृष्टि हुई तब सबसे पूर्व कम्पन के रूप में 'प्रणव' प्रकट हुआ। प्रणव से ही समस्त स्वर-वर्णों का विस्तार हुआ। प्रणव से ही वेद हुआ एवं वेदों से ही सृष्टि हुई। प्रणव से ही स्वर-व्यञ्जनात्मक वर्ण-समाम्नाय का प्रकटीकरण हुआ। यह जो नामरूपात्मक जगत् है उसमें अन्तर्गर्भित दिव्य शक्ति को व्यक्त करने के लिए 'वर्णन्यास' या 'मन्त्रन्यास' से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है।

पीठन्यास

प्रत्येक चतुर्थ्यन्त पद के साथ पहले 'ॐ' और पीछे 'नम:' जोड़कर यथास्थान

न्यास करना चाहिए। जैसे—'ॐ आधारशक्तये नमः'। हृदय में—ॐ आधारशक्तये नमः। ॐ प्रकृत्यै नमः। ॐ कूर्माय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ पृथिव्यै नमः। ॐ क्षीरसमुद्राय नमः। ॐ श्वेतद्वीपाय नमः। ॐ मणिमण्डपाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। ॐ मणिवेदिकायै नमः। ॐ रत्नसिंहासनाय नमः।

दाहिने कन्धे पर—ॐ धर्माय नमः।
बायें कन्धे पर—ॐ ज्ञानाय नमः।
बायें उरु पर—ॐ वैराग्याय नमः।
दाहिने उरु पर—ॐ ऐश्वर्याय नमः।
मुख पर—ॐ अधर्माय नमः।
वाम पार्श्व में—ॐ अज्ञानाय नमः।
नाभि में—ॐ अवैराग्याय नमः।
दक्षिण पार्श्व में—ॐ अनैश्वर्याय नमः।

फिर हृदय में—ॐ अनन्ताय नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः। ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः। ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः। ॐ सं सत्त्वाय नमः। ॐ रं रजसे नमः। ॐ तं तमसे नमः। ॐ आं आत्मने नमः। ॐ अं अन्तरात्मने नमः। ॐ पं परमात्मने नमः। ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।

न्यासोपरान्त हृदयकमल के पूर्व-पश्चिम के केसरों पर इष्टदेवतानुसार पीठशक्तियों का न्यास करना चाहिए। उनके मध्य इष्ट मन्त्र की स्थापना करनी चाहिए। ऐसा करने से हृदय में पीठोत्पत्ति हो जाती है। यह सम्बद्ध देवता को अवश्यमेव आकृष्ट करता है।

षोढान्यास अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न न्यास है। षोढान्यास की अपूर्व महिमा है।

लघु षोढान्यास के अन्तर्गत न्यासों के प्रकार[१]

गणेश-न्यास	ग्रह-न्यास	नक्षत्र-न्यास	योगिनी-न्यास	राशि-न्यास	पीठ-न्यास

योगिनीहृदय में कहा गया है—

'गणेशैः प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः।
नक्षत्रैश्च तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः॥
राशिभिः पञ्चमो न्यासः षष्ठः पीठैर्निगद्यते।
षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वत्रैवापराजितः'॥

१. षोढा षट्प्रकारको न्यासः (यो.हृ.दी.)।

न्यास का महत्त्व—भगवान् महादेव देवी से न्यास के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

(१) षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वत्रैवापराजितः ।
(२) एवं यो न्यस्तगात्रस्तु स पूज्यः सर्वयोगिभिः ।
(३) नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखो जनः ।
(४) स एव पूज्यः सर्वेषां स स्वयं परमेश्वरः ।
(५) षोढान्यासविहीनं यं प्रणमेदेष पार्वति ।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपद्यते[१] ॥

अमृतानन्द की दृष्टि—

(१) 'षोढान्यासः सर्वत्र सर्वलोकेष्वपि अपराजितः अप्रतिहतसामर्थ्यः' ।

(२) 'एवं वक्ष्यमाणक्रमेण यो न्यस्तगात्रः षोढान्याससामर्थ्याच्छिन्नपाशत्वात् स्वयमेव परमेश्वरः । अत एव लोकेषु जनेषु स योगिभिः पूज्यः' ।

(३) 'अस्ति यदि चेदेष बलादन्यस्मै प्रणमति स मृतो भवेत् नरकं च प्रयाति'[२] ॥

शरीर एवं उसके अङ्ग में जो शक्तियाँ सुषुप्त हैं उन्हें जागृत करने का अन्यतम साधन भी न्यास ही है । यदि न्यास सिद्ध हो जाय तो न्यास साधक एवं भगवान् में ऐक्य होना स्वयं सिद्ध हो जाता है ।

पीठन्यास और पीठतत्त्व

जिस किसी भी स्थान में देवता (परमात्मा/जगदम्बा) अपने जाग्रत् स्वरूप में स्थित रहता है अर्थात् जहाँ उनकी शक्ति सदैव क्रियाशील, स्फुरित, स्फुट, स्पन्दित एवं जाग्रत् रहती है वही तीर्थ, शक्तिकेन्द्र, उपासना-स्थली या स्थानपीठ कहलाता है । भगवती सती के कटे हुए शरीराङ्ग जहाँ गिरे वे स्थान भी पीठ कहलाते हैं । पीठ जाग्रत् शक्ति के अनिर्वचनीय महाशक्तिकेन्द्र हैं ।

(क) आचार्य महेश्वरानन्द की दृष्टि—

आचार्य महेश्वरानन्द (गोरक्षनाथ) का मत है कि—

(१) शरीर ही महापीठ है ।

(२) इसमें ९ कलाएँ या ९ शक्तियाँ हैं ।

(३) इसी महापीठ में पञ्चवाह शक्तियाँ स्थित हैं ।

(४) इसी में भालनेत्र के स्थान में सप्तदश कलाएँ स्थित हैं ।

(५) इसी में—दक्षिणावर्ती नेत्र के स्थान में १२ एवं वामवर्ती नेत्र के स्थान में १६ कलाएँ या शक्तियाँ अधिष्ठित हैं—

१. योगिनीहृदय (पूजासङ्केत) । २. अमृतानन्द ।

'पीठे कला नव पञ्चैव पञ्चवाहपदव्याम्।
सप्तदश भालनेत्रे द्वादश षोडश चान्यनेत्रयो:' ॥

अर्थात् ९ कला + ५ पञ्चवाह शक्तियाँ + भालनेत्र में १७ कलाएँ + दक्षिणावर्ती नेत्र में १२ + वामनेत्र में १६ कलाएँ हैं।

परमेश्वर की ५ महाशक्तियाँ ही पञ्चस्फुरणाएँ हैं। प्रमेयवर्ग एवं पञ्चतत्त्व के रूप में रूपायित पीठनिकेत ही महापीठ चक्र है। परमेश्वर की स्फुरण धारणा ही प्रवृत्ति है। इसकी ५ कलाएँ ही पञ्चवाह हैं। ये हैं—

व्योमवामेश्वरी, खेचरी, चिक्चरी, गोचरी एवं भूचरी। भालनेत्र ही 'मूर्तिचक्र' कहा जाता है।

(ख) महर्षि अङ्गिरा की दृष्टि—

महर्षि अङ्गिरा कहते हैं—

(१) पीठ का उदय प्राणमय कोष में होता है।

(२) पीठ देवयोनि का अधिष्ठान-स्थान है।

(३) आकर्षण-विकर्षण की भाँति रजोमूलक राग एवं तमोमूलक द्वेष—इन दोनों शक्तियों के सम्बन्ध से पीठ का आविर्भाव होता है[१]।

पीठों के मुख्यत: चार भेद हैं—

पीठों के प्रकार

स्थावर पीठ (तीर्थादिक)	सहज पीठ (नर-नारी के सङ्गम से उत्पन्न पीठ)	दैवी पीठ (इन्द्रलोकादि)	यौगिक पीठ (भगवद्विग्रह आदि)

देशशुद्धि, कालशुद्धि, मन की शुद्धि, क्रिया की शुद्धि एवं द्रव्य की शुद्धि—ये पञ्चविध शुद्धियाँ—पीठशुद्धि से भी सम्बद्ध हैं।

ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड के प्राणमय विभाग में जहाँ कहीं आकर्षण और विकर्षण शक्तिरूपिणी परस्पर द्वन्द्व शक्तियों का समन्वय अपने आप होता है या कौशलपूर्वक निष्पादित किया जाता है वहीं पीठ उत्पन्न हो जाता है।

सूर्य, पृथ्वी आदि ग्रहों के पीठ; तीर्थादिक पीठ, नर-नारी सम्बन्ध के पीठ; मूर्ति, यन्त्र, चित्र आदि में उपासना पीठ आदि सभी पीठों में आकर्षण-विकर्षण शक्तियों के समन्वय से ही अलौकिक पीठ का आविर्भाव होता है। कतिपय पीठों में प्रेत एवं तामसिक असुर आदि दैवी शक्तियों का ही आविर्भाव होता है। इनमें (तमोगुणी पीठों में) देवाविर्भाव असम्भव है। पीठोत्पादिका शक्तियाँ रजस्तमोमूलक हैं।

---

१. दैवी मीमांसादर्शन।

सारांश—(१) पीठस्याविर्भाव: प्राणमये ।

(२) 'देव्या: शक्तेर्विकाशस्य देवानामासनस्य वा ।
उपयोगी जायतेऽसावावावर्त्त: पीठ उच्यते' ॥

(३) 'यदि प्राणमये कोशे पीठं स्थापयितुं क्षम: ।
कथञ्चित् स हिमे शक्तिर्दैवमनुभवत्यसौ' ॥

(४) 'तदधिष्ठानं देवयोने:' ॥१७॥

(५) 'तदाविर्भाव: शक्त्यो: साम्यात्' ॥१८॥

(६) 'ते तु रजस्तमोमूले ॥१९॥

(७) 'पीठमानन्दप्रदं सत्त्वप्राधान्यात्' ॥२०॥

(८) 'तत्पञ्चविधं सृष्टे: पञ्चविधत्वात्' ॥२१॥

(९) यह उपासना में सहायक होता है—
'तदुपास्तावपेक्ष्यमधिष्ठानभूमित्वात्' । (दैवीमीमांसादर्शन : महर्षि अङ्गिरा)

भूतशुद्धि

बगलोपासना में भूतशुद्धि भी स्वीकृत है (सां.तन्त्र) ।

भूतशुद्धि का अर्थ है—ब्रह्म के संयोग से शरीर के रूप में परिणत पञ्चभूतों का शोधन । इसमें दो क्रियाएँ प्रधान हैं—(१) भावना एवं मन्त्रशक्ति के संयोग से क्रियाविशेष द्वारा शरीरस्थ मलिन भूतों को भस्म करना तथा (२) नवीन दिव्य भूतों का निर्माण करना और इस प्रकार स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का शोधन करना ।

भूतशुद्धि में प्रत्येक अवयव देवता को समर्पित किया जाता है । इसके बिना प्राणप्रतिष्ठा, शक्ति और उपस्थिति की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है । इस अपरिहार्यत: अनिवार्य प्रतिष्ठा (जिस पर अन्य वस्तुएँ निर्भर हैं) के बिना बाह्य एवं आन्तर दोनों पूजा निर्जीव हो जाती हैं ।

भूतशुद्धि बाह्यपूजा और मन्त्र-साधन दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं—यह तो प्राथमिक आचार पद्धति है । यही पद्धति साधक को आन्तरिक जीवन की ओर अग्रसर करती है ।

मन्त्रमहोदधितरङ्ग में प्रतिपादित दृष्टि—

इस ग्रन्थ में कहा गया है कि देवार्चन में योग्यता प्राप्त करने के लिए भूतशुद्धि अवश्य करनी चाहिए—

'देवार्चयोग्यताप्राप्त्यै भूतशुद्धिं समाचरेत्' ।

भूतशुद्धि पञ्चमहाभूतों का शुद्धिकरण है । मानव-शरीर पञ्चभूत महामण्डल है—(१) पृथ्वीमण्डल, (२) जलमण्डल, (३) अग्निमण्डल, (४) वायुमण्डल, (५)

आकाशमण्डल। शरीर में इन्हीं पञ्चमहाभूतों को पञ्च तत्त्व कहा गया है। शरीर के विभिन्न भागों में इन पञ्चभूतों के केन्द्र भी हैं और उनकी रचनाएँ भी हैं। साधना का उद्देश्य है अपने विशेष तत्त्व से शासित सत्ता के प्रत्येक स्तर की चेतना पर दबाव डालकर मानव सत्ता के विभिन्न स्तरों को उच्चतर स्तर के अनुरूप उत्तरोत्तर शुद्ध एवं सूक्ष्मतर बनाना। इसके द्वारा परमात्मक्रिया के क्षेत्र में पदार्पण हो जाता है।

भूतशुद्धि उपासक के चतुर्दिक् स्थित वातावरण को पवित्र करती है और पाँच-भौतिक सत्ताओं (शक्तियों) के आधिपत्य एवं निरङ्कुश आधिपत्य को दूर करती है। मानव की नैतिक दुर्बलताओं का कारण ये ही शक्तियाँ हैं। इस साधना में पाँचभौतिक प्रकृति की तामसिक प्रकृतियों को शिथिल बनाकर अन्त में उनका परित्याग किया जाता है। व्यक्ति की साधना के गम्भीरतम स्तरों पर या अपनी सत्ता के उच्चतर आधिभौतिक स्तरों पर देवों से सम्बन्ध स्थापित करना ही इसका उद्देश्य है। बिना भूतशुद्धि के प्राणप्रतिष्ठा असम्भव है। प्राणप्रतिष्ठा का लक्ष्य है—देवता की शक्ति या उपस्थिति को अपनी आत्मसत्ता से आमन्त्रित करना है। यह देवशक्ति परमात्मा एवं सर्वभूतस्थ अन्तर्यामी ईश्वर का अंश है।

मन्त्रसाधना के क्षेत्र में तो भूतशुद्धि अत्यावश्यक है। जब पञ्चभूत शुद्ध हो जायेंगे तब तत्त्वों का 'पञ्चीकरण' भी अस्तित्व में नहीं रह जायेगा। पञ्चबिन्दु एक बिन्दु में परिणत हो जायेंगे। इसके बाद चित्त की शुद्धि होगी। एक बिन्दु के निर्मल होने पर ज्ञान-चक्षु (तृतीय नेत्र) का उन्मीलन होता है। यही जीव की विशुद्धावस्था है। इसी स्थिति में जीव ईश्वर के निकट (उप) आसीन होने की ओर (उपासना की ओर) अग्रसर होता है। उपासना की स्थिति में आज्ञाचक्र के बिन्दु एवं सहस्रार के महाबिन्दु दोनों में भेदाभेद (भेदांश और अभेदांश) रहता है।

भूतशुद्धि और चित्तशुद्धि की साधना सुषुप्त शक्ति को जगाकर षट् चक्रों का वेधन करते हुए कुण्डलिनी का महाबिन्दु में आरोहण की ही क्रिया है।

चित्त में भी महाभूतों के अंश विद्यमान हैं। चित्त और भूतों के मिलने से ही देहाविर्भाव होता है। यदि भूतों से चित्त के अंश दूर हो गये तो भूतों में अपहृत चित्तांश भी और चित्त से भूतों के अंश भी दूर हो जाते हैं। इस स्थिति में चित्त में अपहृत चित्तांश लौट आते हैं अत: पञ्चभूत अपने-अपने केन्द्र में लौट जाते हैं। उनका बिखराव बन्द हो जाता है। इसे ही भूतशुद्धि कहते हैं। इस समय चित्त का भी बिखरना बन्द हो जाता है। इसे ही 'चित्तशुद्धि' कहते हैं। पञ्चीकरण की अतीतावस्था में जाकर देहतत्त्व की साधना से ही षट्चक्र का भेदन होता है और तभी तृतीय नेत्र का उन्मीलन हो पाता है।

गोपीनाथ जी कविराज का कथन है—'आज्ञाचक्र से आगे सहस्रार की ओर जाना और उसे प्राप्त करना ही मुख्य उपासना का लक्ष्य है'।

मन्त्रसिद्धि भूतशुद्धि एवं चित्तशुद्धि द्वारा ही होती है।

मनोभौतिक केन्द्रों पर ध्यान एकाग्र करके उनके द्वारों को अनावृत करने के लिए भी भूतशुद्धि आवश्यक है। उसके बिना देवोपस्थिति को ग्रहण करना सम्भव नहीं है, भले ही वह आवाहन स्वरूप सामने उपस्थित ही क्यों न हो।

मेरुतन्त्र में कहा गया है कि जब शरीर देवता के साथ सम्बन्ध-स्थापनार्थ उपयुक्त बन जाता है तब साधक को तत्त्वों को उनके उपयुक्त स्थान पर प्रतिष्ठित कर देना चाहिए। साधक को चाहिए कि वह हृदयकमल से आत्मज्योति को निकाले और हंस मन्त्र से शरीर को ज्योतिर्मय बनाकर देवपूजनार्थ उपयुक्त बनाये।

समस्त वैश्विक प्रकृति और उसकी नि:शेष शक्तियाँ शरीर के भीतर स्थित हैं और परमात्मा साधक की सत्ता के गुह्यतम केन्द्र की अतल गहराई में निवास करता है। परमात्मा शरीर की शुद्धता भौतिक धरातल पर नहीं प्रत्युत उसके सांस्कारिक एवं पञ्चभूतात्मक स्तर पर चाहता है। इसके लिए तो शरीर में इस प्रकार की शुद्धि लानी चाहिए कि देवता या देवसमूह इसमें अपने उदय या अभिव्यक्ति के लिए इसमें अपने निवास योग्य देवालय प्राप्त कर सकें।

भूतशुद्धि के दो पक्ष हैं—

(१) **अभावात्मक पक्ष**—विरुद्ध एवं प्रतिकूल वातावरण की अपसारण—पञ्चमहाभूतों के स्वच्छन्द सर्वाधिपत्य का दूरीकरण। अनपेक्षित शक्तियों का अपहस्तन।

(२) **भावात्मक पक्ष**—रिक्त स्थानों एवं केन्द्रों पर पारमात्मिक दिव्य शक्ति का आधिपत्य।

संक्षिप्त भूतशुद्धि-प्रक्रिया

'अथवान्यप्रकारेण भूतशुद्धिर्विधीयते।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभितम्॥
ऐश्वर्याष्टदलोपेतं परवैराग्यकर्णिकम्।
स्वीयहृत्कमले ध्यायेत्प्रणवेन प्रकाशितम्॥
कृत्वा तत्कर्णिकासंस्थं प्रदीपकलिकानिभम्।
जीवात्मानं हृदि ध्यात्वा मूले सञ्चिन्त्य कुण्डलीम्।
सुषुम्णावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत्'॥

सारांश यह कि कल्पना करें कि—(१) हृदय में एक कमल है। उसका मूल तो धर्म है और नाल ज्ञान है। आठ प्रकार के ऐश्वर्य उसके दल हैं। परवैराग्य उसकी कर्णिका है और वह प्रणव से उद्भासित हो रहा है। उस कर्णिका पर दीपशिखावत् ज्योति:स्वरूप जीवात्मा अवस्थित है।

(२) मूलाधार में भगवती कुण्डलिनी का ध्यान करके यह कल्पना करनी चाहिए कि कुण्डलिनी जीवात्मा को मुख में डालकर सुषुम्णा मार्ग से जाकर सहस्रार में परमात्मा से मिल जाती है। उसके बाद फिर कल्पना करनी चाहिए कि जीवात्मा पुनः हृदयकमल में लौट आया है।

भूतशुद्धि की दूसरी पद्धति महात्माओं द्वारा स्वानुभूत पद्धति है। इसमें चार मन्त्र हैं—

(१) ॐ भूतशृङ्गाटात् शिरःसुषुम्णापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा।

(२) ॐ यं लिङ्गशरीरं शोषय शोषय स्वाहा।

(३) ॐ रं सङ्कोचशरीरं दह दह स्वाहा।

(४) ॐ परमशिवसुषुम्णापथेन मूलशृङ्गाटम् उल्लस उल्लस, ज्वल ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, सोऽहं हंसः स्वाहा।

इन चारों मन्त्रों की अर्थ समझते हुए बार-बार आवृत्ति करनी चाहिए। इससे विचित्र-विचित्र अनुभव होते हैं।

भूतशुद्धि की अन्य प्रक्रिया

(१) **प्रथम सोपान**—स्नान, सन्ध्या आदि नित्य क्रियाओं से निवृत्त होने पर एक आसन पर बैठकर अपने चतुर्दिक् जल छिड़कना चाहिए और ऐसी भावना करनी चाहिए कि मेरे चतुर्दिक् अग्नि की एक दिव्य प्राचीर खड़ी है। इस समय अग्निबीज 'रं' का जप करते हुए विघ्नबाधा से अस्पृष्ट रहने का सङ्कल्प करना चाहिए। फिर भूतशुद्धि का सङ्कल्प लेना चाहिए—'ॐ अद्य देवपूजाद्यधिकारसिद्धये भूतशुद्ध्याद्यहं करिष्ये'।

तदनन्तर कुण्डलिनी देवी का चिन्तन करते हुए यह कल्पना करनी चाहिए कि सहस्र-सहस्र विद्युत् के समान एवं मूलाधार चक्र में प्रसुप्त कुण्डलिनी अनाहत चक्र में जाकर जीवात्मा को निगल लेती हैं। फिर वह विशुद्ध एवं आज्ञा को अतिक्रान्त करके सहस्र में पहुँच गई। कुण्डलिनी 'हंसः' मन्त्र द्वारा जीवात्मा के साथ परमात्मा में लयीभूत हो जाती है।

(२) **द्वितीय सोपान**—साधक को कल्पना करनी चाहिए कि शरीर में पैर के तलवे से जानुपर्यन्त पृथ्वीमण्डल है। उसी में पादेन्द्रिय, चलने की शक्ति, गन्तव्य स्थान, गन्ध, घ्राण, पृथ्वी, ब्रह्मा, निवृत्तिकला एवं समान वायु स्थित है। निम्न मन्त्र—'ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा' का उच्चारण करते हुए उन सभी पदार्थों को कुण्डलिनी के द्वारा जलस्थान में विलीन कर देना चाहिए।

(३) **तृतीय सोपान**—जानु से नाभि तक श्वेतवर्ण का अर्द्धचन्द्राकार जलमण्डल है। उसी में हस्तेन्द्रिय, दानक्रिया, दातव्य, रस, रसनेन्द्रिय, जल, विष्णु, प्रतिष्ठा कला

एवं उदान वायु स्थित हैं। उनका स्मरण करके—'ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा' मन्त्र का जप करते हुए कुण्डलिनी द्वारा उन सभी को अग्निस्थान में विलीन कर देना चाहिए।

(४) **चतुर्थ सोपान**—नाभि से हृदय पर्यन्त रक्त वर्ण का त्रिकोणाकार अग्निमण्डल है। उसमें पायु इन्द्रिय, विसर्ग क्रिया, विसर्जनीय, रूप, चक्षु, तेज, रुद्र, विद्या कला एवं व्यान वायु अवस्थित हैं। उनका स्मरण करके तथा निम्नांकित मन्त्र पढ़ते हुए—

'ॐ ह्रूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा'—कुण्डलिनी के द्वारा वायुमण्डल में विलीन कर देना चाहिए।

(५) **पञ्चम सोपान**—हृदय से भ्रूपर्यन्त स्थान में ६ बिन्दुओं से चिह्नित एवं काले रङ्ग का वायुमण्डल है। उसमें उपस्थ इन्द्रिय, आनन्द क्रिया, इन्द्रिय-विषय, स्पर्श, स्पर्श के विषय, वायु, ईशान, शान्तिकला एवं अपान वायु स्थित हैं। उनका स्मरण करके—'ॐ ह्रैं ईशानाय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने स्वाहा'—इस मन्त्र का पाठ करते हुए कुण्डलिनी के द्वारा उन सभी पदार्थों को आकाशमण्डल में विलीन कर देना चाहिए।

(६) **षष्ठ सोपान**—भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त आकाशमण्डल का स्थान है। उसमें वागिन्द्रिय, वचन क्रिया, वक्तव्य, शब्द, श्रोत्र, आकाश, सदाशिव, शान्त्यतीत कला और प्राणवायु स्थित है। उन सब का स्मरण करते हुए और निम्न मन्त्र का जप करते हुए—'ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा'—उन सभी का कुण्डलिनी के द्वारा अहंकार में लय कर देना चाहिए।

(७) **सप्तम सोपान**—अहङ्कार को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को शब्दब्रह्मस्वरूप हृदय शब्द के सूक्ष्मतम अर्थ प्रकृति में विलीन कर देना चाहिए। अवशिष्ट प्रकृति को नित्य शुद्ध-बुद्धस्वभाव एवं स्वयंप्रकाश परमात्मा मे लयीभूत कर देना चाहिए।

(८) **अष्टम सोपान**—पापपुरुष का शोषण—पापपुरुष के शोषणार्थ विनियोग पढ़े—'ॐ शरीरस्यान्तर्यामी ऋषिः सत्यं देवता प्रकृतिपुरुषश्छन्दः पापपुरुषशोषणे विनयोगः'।

पापपुरुष और उसके स्वरूप का चिन्तन—मेरी वाम कुक्षि में अनादिकालीन पाप मूर्तिमान् पुरुष के आकार में स्थित है। उसका शरीर अङ्गुष्ठ के समान है। वह कान्तिहीन, महापाप-निर्मित, ब्रह्महत्या रूप सिर वाला, स्वर्ण स्तेय रूप हस्तद्वय वाला, सुरापान रूप हृदय वाला, गुरुतल्पगमन रूप कटि वाला, पापी पुरुषों के संसर्ग रूप पैरों वाला, पाप से निर्मित अङ्ग-प्रत्यङ्ग वाला, उपपातक रूप रोमवाला, अविवेक रूप खड्ग एवं अहन्ता रूप ढाल वाला, असत्य की सवारी एवं पिशुनतारूप चेहरे वाला, क्रोध रूप

दाँत एवं काम रूप कवच वाला, गर्दन की भाँति बोलने वाला, व्याधिग्रस्त, मरणासन्न एवं लाल दाढ़ी एवं लाल आँखों वाला पुरुष 'पापपुरुष' है।

वायुबीज 'यं' है। इसके ऋषि किष्किन्ध ऋषि हैं। देवता वायु है। छन्द जगती है। विनियोग पापपुरुष का शोषण है।

नाभि के मूल में षड्बिन्दुचिह्नित एक मण्डल है। उस पर धूम्रवर्ण का वायुबीज 'यं' स्थित है। उसकी ध्वजाएँ चञ्चल हैं और उसमें से 'घूं घूं' शब्द निकलता रहता है। यह सभी को सुखा डालने वाला है। साधक को चाहिए कि वह उक्त चिन्तन करके 'यं' बीज का चिन्तन करते हुए पूरक के द्वारा १६ बार उसकी आवृत्ति करके उस बीज से समुत्थित वायु के द्वारा पापपुरुष को सशरीर सूखा हुआ कल्पित करें।

(९) **नवम सोपान**—इसके अनन्तर अग्निबीज 'रं' का चिन्तन करना चाहिए। इसके ऋषि कश्यप, देवता अग्नि, छन्द त्रिष्टुप् हैं। हृदय में स्थित है रक्त वर्ण का अग्निमण्डल। इसके देवता रुद्र हैं। उसी में विद्याकला का निवास है। उसमें बीज 'रं' है—इस प्रकार चिन्तन करते हुए कुम्भक प्राणायाम द्वारा ६४ या ५० बार 'रं' की आवृत्ति करके पापपुरुष के सूखे शरीर को भस्म कर देना चाहिए।

'यं' बीज — पापपुरुष का शोषण।
'रं' बीज — पापपुरुष का दाहन।

(१०) **दशम सोपान**—इसके बाद वायुबीज 'यं' की ३२ बार आवृत्ति करके रेचक प्राणायाम के द्वारा पापपुरुष की भस्म को उड़ा देना चाहिए। इसके बाद वरुणबीज 'वं' का चिन्तन करना चाहिए। इसके ऋषि हिरण्यगर्भ हैं, देवता हंस है और छन्द त्रिष्टुप् है।

सिर में अर्द्धचन्द्राकार दो श्वेत पद्मवाले वरुण दैवत वरुणबीज 'वं' का ध्यान करना चाहिए और उससे प्रवाहित अमृत से पिण्डभूत भस्म को सिञ्चित करना चाहिए।

(११) **एकादश सोपान**—इसके अनन्तर पृथ्वीबीज 'लं' का ध्यान करना चाहिए। इसके ऋषि ब्रह्मा, देवता इन्द्र एवं छन्द गायत्री हैं।

आधारमण्डल में वज्रलाञ्छित पृथ्वी का चौकोर, कड़ी, पीतवर्णा एवं इन्द्रदैवत रूप में ध्यान करना चाहिए। उसके ऊपर 'लं' बीज का ध्यान करना चाहिए। उसके प्रभाव से अपने शरीर को दृढ़ एवं कठोर अनुभव करते हुए व्योमबीज 'हं' का चिन्तन करना चाहिए।

आकाशमण्डल वृत्ताकार, स्वच्छ, शान्त्यतीतकलायुक्त, आकाशदैवत एवं हंसस्वरूप है। इसको अपना शरीर कल्पित करके यथापूर्वक वर्णित पद्धति के अनुसार परमात्मा में लयीभूत तत्त्वों को अपने-अपने स्थान पर पुनः स्थापित करने की कल्पना करनी चाहिए।

(१२) **द्वादश सोपान**—उक्त समस्त लयक्रियाओं से स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों की दिव्यता सम्पन्न हो जाने पर 'ॐ सोऽहं' मन्त्र के द्वारा जीव को परमात्मा से पृथक् करके उसे हृदय-कमल में प्रत्यावर्तित करना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि मैं परम पवित्र, दिव्य, परमात्मसायुज्यप्राप्त, परमात्मानुग्रहप्राप्त हो गया हूँ। मेरा शरीर पापशून्य, नव्य, निर्मल एवं देवाराधन योग्य हो गया है।

पापपुरुष— 'वामकुक्षिस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम्।
ब्रह्महत्याशिर:स्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्वयम्॥
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम्।
तत्संसर्गपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम्॥
उपपातकरोमाण रक्तश्मश्रुविलोचनम्।
खड्गचर्मधरं क्रुद्धं कुक्षौ पापं विचिन्तयेत्'॥

सहस्रार में परमात्मा के साथ सामरस्यापन्न (एकीभूत) परब्रह्मरूपिणी परा शक्ति को 'ॐ ह्रीं नम:' मन्त्र द्वारा अपने स्थान पर स्थापित करके, फिर नादशक्ति एवं बिन्दुशक्ति को यथाक्रम प्रणव से उत्पन्न करके, बिन्दुशक्ति से प्रणव द्वारा कुण्डलिनी की सृष्टि करके कुण्डलिनी से आकाश को, आकाश से वायु को, वायु से अग्नि को, अग्नि से जल को, जल से पृथ्वी को निकाल कर एवं उन्हें अपने-अपने स्थानों में स्थापित करके; नादशक्ति, बिन्दुशक्ति एवं प्रणव से अपनी शक्ति की कल्पना करके परमात्मा के पास कुण्डलिनी द्वारा जीवात्मा को अपने पास खींचकर वर्ण एवं वर्णाधिदेवताओं को आज्ञा आदि चक्रों में स्थापित कर देना चाहिए। इसके बाद जीव को हृदयकमल में लाकर 'सोऽहं' मन्त्र से स्थापित करते हुए कुण्डलिनी को सुषुम्णामार्ग के पथ से सहस्रार से उतार कर आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान से लाते हुए मूलाधार चक्र में पुन: स्थापित कर देना चाहिए।

यन्त्र-साधना और उसका तात्त्विक स्वरूप

यन्त्र की परिभाषा एवं उसके लक्षण—कुलार्णवतन्त्र में यन्त्र को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—जो यम एवं भूतादिक के भयों से सबको मुक्त करता है और जो सबका त्राण करता है उसे ही 'यन्त्र' कहते हैं—

'यमभूतादिसर्वेभ्यो भयेभ्योऽपि कुलेश्वरी।
त्रायते सततञ्चैव तस्मात् यन्त्रमितीरितम्'॥
(कुलार्णवतन्त्र १७।६१)

यन्त्रतत्त्व—यन्त्रतत्त्व भगवती का स्वस्वरूप है। भगवती की उपासना के लिए यन्त्र-पूजन का भी विधान है। मन्त्र-जप एवं स्तोत्र-पाठ के पूर्व यन्त्र-पूजन अनिवार्य है।

यन्त्र-पूजन क्यों ? चूँकि किसी भी देवता की उपासना एवं पूजा के लिए उस

देवता का आह्वान करना पड़ता है और आहूत (आमन्त्रित) देवता को आसनस्थ होने के लिए उसे कोई आसन देना पड़ता है, अत: यन्त्र-स्थापना और यन्त्र की पूजा का विधान है।

यन्त्र देवता का आसन है—देवता उसी आसन पर बैठकर साधक (पुजारी) की पूजा को ग्रहण करता है। चूँकि देवता पवित्र होता है और वह साधक द्वारा अर्पित पदार्थों का नहीं प्रत्युत उसके भाव, उसकी भक्ति एवं उसके प्रेम का भूखा होता है, अत: देवता को आमन्त्रित करने के पूर्व उसके प्रीत्यर्थ उसके आसन की पूजा करके उसको भौतिक स्तर पर पुष्प, आरती, गन्ध, चन्दन आदि से एवं मानसिक स्तर पर अपनी भावात्मक सम्बद्धता एवं भक्ति से पवित्र और स्वच्छ करना पड़ता है। पवित्रतम (देवता) पवित्रासन को ही ग्रहण कर सकता है अत: यन्त्र-पूजन द्वारा यन्त्र को पवित्र किया जाता है। भावों का प्रेमी (देवता) भावानुप्रविष्ट आसन को ही (अपने बैठने के लिए) ग्रहण कर सकता है, अत: साधक आसन की पूजा के द्वारा देवता के आसन में अपने भाव एवं प्रेम की मन्दाकिनी प्रवाहित करता है और तभी सम्बद्ध देवता उस पवित्रीकृत एवं भक्त्यामृत-सिञ्चित आसन को अपने बैठने के लिए स्वीकार करता है, अन्यथा नहीं।

यदि आमन्त्रित देवता आये ही नहीं तो पूजा किसकी की जायेगी ? यदि आमन्त्रित देवता को बैठने के लिए उसके अनुकूल आसन प्रदान ही नहीं किया जायेगा तो वह आकर बैठेगा ही कहाँ ?

प्रश्न उठता है कि आमन्त्रित देवता को बैठने के लिए यन्त्र को ही आसन के रूप में क्यों प्रस्तुत किया जाय ? इसका सीधा उत्तर यह है कि यदि आप हाथी को आमन्त्रित करते हैं तो क्या उसको बैठने के लिए एक फीट का पीढ़ा देंगे ? यदि नहीं तो स्पष्ट है कि 'विश्वमय' को बैठने के लिए विश्व का ही आसन देना पड़ेगा, अन्यशा अनन्त ब्रह्माण्डों के आसन पर आसीन वह आमन्त्रित विश्वमय अतिथि किसी छोटे आसन पर बैठ ही नहीं पायेगा। प्रश्न फिर उठता है कि उस आमन्त्रित अतिथि को बैठने के लिए अनन्त ब्रह्माण्डों का आसन दिया ही कैसे जाय ? बस इसी का उत्तर है—यन्त्र।

यन्त्र भगवान् की अनन्त सृष्टि एवं अनन्त पिण्डाण्डों, ब्रह्माण्डों, प्रकृत्यण्डों एवं शाक्ताण्डों को अपने में समाहित करने वाला विराट् विश्वासन है। इसीलिए कहा गया है कि—

यन्त्र अनन्त सृष्टि एवं अनन्त ब्रह्माण्डों का रेखाचित्र है और भगवान् का आसन है।

परमात्मा तो निराकार है किन्तु साधक जब उस परमात्मा को आमन्त्रित करता है तो उसके निराकार स्वरूप को नहीं प्रत्युत उसके साकार एवं सशरीर स्वरूप को आमन्त्रित करता है। उस आमन्त्रित अशरीरी अतिथि को (साधक के पास आने के लिए)

शरीर देना होगा। यदि साधक उसे शरीर नहीं देगा तो वह किसमें स्थित होकर साकार बन पायेगा ? वह शरीर पाये बिना साकार कैसे हो पायेगा ? बिना साकार हुए वह साधक के पास कैसे आ सकेगा ? इसीलिए साधक अशरीरी अतिथि को सशरीर उपस्थित होने के लिए शरीर प्रदान करता है।

यन्त्र ही भगवान् का शरीर है—वह आमन्त्रित निराकार एवं अशरीरी देवता उस यन्त्र रूप शरीर में प्रविष्ट होकर ही उस शरीर रूप आसन पर आसीन होता है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि—

यन्त्र भगवान् का शरीर है—विश्वातीत का विश्वमय स्वरूप विश्वशरीरी है। विश्व उसका शरीर है। इसीलिए कहा गया है—'भगवान् विश्वशरीरः'। (प्र.हृ.)[१]

एक प्रश्न फिर उठता है कि यदि यन्त्र भगवान् का आसन है तो उसे भगवान् क्यों कहा गया है ? आसन तो सदैव आसीन से पृथक् होता है; यथा—अश्व और अश्वारोही, रथ और रथी, वायुयान और वायुयानचालक (प्लेन और पाइलट)—फिर आसन को ही आसीन सत्ता से अभिन्न कैसे कहा जा सकता है ? पुजारी का आसन है कम्बल, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म। क्या कम्बल, मृगचर्म एवं व्याघ्रचर्म ही पुजारी भी है ? क्या वे दोनों पृथक्-पृथक् नहीं हैं ? यदि हैं तो उन्हें अपृथक् एवं अभिन्न क्यों कहा गया है ?

कारण सुस्पष्ट है। आसन पर आसीन साधक (या पुजारी) आसन के भीतर नहीं है—आसन के अणु-परमाणुओं में व्याप्त नहीं है—आसन से पृथक् है किन्तु परमात्मा का जो विश्वरूप आसन है उस आसन में तो परमात्मा समाया हुआ है—उसके प्रत्येक अणु-परमाणु में वह स्पन्दित है—उसकी सत्ता बनकर उसी में स्थित है। उसके अस्तित्व से ही उसके आसन (विश्व) का अस्तित्व है। उसका आसन अपने आसीनस्थ देवता से पूर्णतया अपृथक् है—उससे अभिन्न है—तदात्मक है, क्योंकि परमात्मा विश्व के प्रत्येक अणु-परमाणु में उसकी सत्ता बनकर विराजमान है अतः पुजारी और उसके आसन के सम्बन्ध के समान भगवान् और उसके आसन का सम्बन्ध नहीं है प्रत्युत—

(१) पुजारी और उसके आसन में—आधार-आधेय सम्बन्ध है (अतः दोनों की सत्ता पृथक्-पृथक् है)।

(२) भगवान् और उसके आसन (विश्व) में—कारण-कार्य का सम्बन्ध है (अतः दोनों की सत्ता अपृथक् है)।

विश्व भगवान् का महायन्त्र है।

यन्त्र विश्व का संक्षिप्त संस्करण है।

यन्त्र ब्रह्माण्ड की मायाण्ड एवं शाक्ताण्ड की प्रतिकृति है।

भगवान् के मुख्यतः तीन स्वरूप हैं।

---

१. आचार्य क्षेमराज।

भगवान् के स्वरूप एवं यन्त्र, मन्त्र आदि

१. **स्थूल स्वरूप**—

(क) भगवान् का साङ्ग स्वरूप (हाथ, पैर, आँख, कान आदि से युक्त शरीर)।

(ख) श्रीविग्रह (अर्चावतार)।

(ग) यन्त्र।

२. **सूक्ष्म स्वरूप**—मन्त्र रूप स्वरूप (मन्त्रात्मक स्वरूप)।

३. **कारण स्वरूप**—निराकार ब्रह्मस्वरूप।

(क) भगवान् का श्रोत्रगम्य सूक्ष्म स्वरूप मन्त्र है।

(ख) भगवान् का चक्षुगम्य स्थूल स्वरूप मूर्ति एवं यन्त्र है।

(ग) भगवान् का ध्वन्यात्मक या नादात्मक स्वरूप मन्त्र है।

(घ) भगवान् का विश्वात्मक किन्तु रेखाङ्कित स्थूल स्वरूप यन्त्र है।

(ङ) भगवान् का विराट् स्थूल स्वरूप विश्व है।

(च) भगवान् का विश्वातीत एवं कारण स्वरूप ब्रह्म है। वेदान्त में यही निर्गुण, निराकार स्वरूप कहा गया है।

क्या भगवती को यन्त्रस्वरूप कहा गया है ? निश्चित रूप से।

उदाहरण लीजिए—

१. सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी।

२. महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना।

३. विश्वरूपा जागरिणी स्वपन्ती तैजसात्मिका।

यह विश्व ही यन्त्र और यन्त्र ही विश्व है। विश्वगर्भा, स्वर्णगर्भावरदा वागीश्वरी यन्त्र पीठ भी है और देवी पीठस्वरूपा भी है—

'प्राणेश्वरी प्राणदात्री पञ्चाशत् पीठरूपिणी'।
'श्रीचक्रराज(यन्त्र)निलया श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी'[1]।

क्या भगवती विश्वशरीरी हैं ? निश्चित रूप से ? (शिव एवं शिवा दोनों विश्वशरीरी हैं)

(१) ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किञ्चित्[2]।

(२) चिदेव भगवती स्वच्छन्दस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्तजगदात्मना स्फुरति। ···परमार्थोऽयं कार्यकारणभावः।

(३) जगतः प्रकाशैकात्म्येन अवस्थानम् उक्तम्।

---

१. ललितासहस्रनाम। २. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्।

(४) श्रीमत्परमशिवस्य पुनः विश्वोत्तीर्णविश्वात्मकपरमानन्दमयप्रकाशैकघनस्य एवंविधमेव शिवादिधरण्यन्तम् अखिलम् अभेदेनैव स्फुरति[१]।

'श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वम्' (प्र.हृ.)।

'एवं भगवान् विश्वशरीरः' (प्र.हृ.)।

'विश्वशरीरः शिवभट्टारक एव' (प्र.हृ.)।

'न साऽवस्था न यः शिवः' (स्पन्दकारिका)।

'शरीरी परमेश्वरः' (प्र.हृ.)।

'यत्तत्त्वं यस्य विश्वं स्फुरितमयमियद्यन्मयं विश्वमेतत्'। (शिवसूत्रविमर्शिनी)

'शिव एव विश्वस्य आत्मा'।

'जीवजडात्मनो विश्वस्य परमशिवरूपम्'।

यन्त्र और उसका तात्त्विक स्वरूप

यन्त्र भगवती का आसन है, शरीर है, ब्रह्माण्ड या विश्व का प्रतिरूप है तथा स्वयं भगवती का स्वरूप है—यह तो सत्य ही है, किन्तु इसका और गम्भीर एवं सूक्ष्म स्वरूप क्या है ?

जब सिसृक्षु पराशक्ति अपने भीतर की स्फुरता का दर्शन करती है तभी यन्त्र का जन्म होता है अतः यन्त्र भगवती का अपनी स्फुरत्ता का दर्शन है। यह शिवचक्र एवं शक्तिचक्र का सामरस्य है।

भगवती की स्फुरत्ता और यन्त्र

(क) योगिनीहृदयकार की दृष्टि—योगिनीहृदय में कहा गया है कि जब विश्वरूपिणी परमा शक्ति स्वेच्छावश अपनी अन्तर्निहित स्फुरत्ता (विश्वसर्जन रूप स्फुरत्ता) का साक्षात्कार (दर्शन) करती है तभी चक्र (यन्त्र) का जन्म हो जाता है—

'यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवः'[२]॥

(ख) अमृतानन्द योगी की दृष्टि—निष्क्रिय परमशिव से तो सृष्टि हो नहीं सकती फिर सृष्टि होती कैसे है ? वास्तविकता यह है कि जब अर्थात् जिस काल में प्राणियों के अदृष्ट के कारण विमर्शरूपिणी परा शक्ति स्वान्तः संहृत विश्व की सृष्टि करने की इच्छा से विश्व का सृजन करती है उसी काल में चक्र का उदय होता है और तभी षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मक विश्व की सृष्टि के समय विश्वमय चक्र का—परदेवतापूजाचक्र का उदय होता है—

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्र २)। २. योगिनीहृदय (चक्रसंकेत ९)।

(१) 'तदा षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकविश्वसृष्टिकाले चक्रस्य विश्वमयस्य परदेवताचक्रस्य सम्भवः'[१]।

(२) 'यदा यस्मिन् काले प्राणिनामदृष्टवशात् स्वान्तः संहृतविश्वसिसृक्षया सैव परा शक्तिर्विमर्शरूपिणी स्वेच्छया विश्वरूपिणी विश्वं सृजति'[२]।

(ग) भास्करराय की दृष्टि—आचार्य भास्करराय भी इसी बात को अधिक स्पष्टतापूर्वक इस प्रकार कहते हैं—

'सा देवी स्वेच्छया स्वनिष्ठां स्फुरत्तां यदा पश्यति तदा चक्रस्य विश्वाभिन्नस्य त्रिकोणादिचक्रस्य सम्भव उत्पत्तिर्भवति'।

आगे वे कहते हैं कि प्रलयकाल में अर्थात् जीवों के सुषुप्ति-काल में पूर्वकालिक सृष्टि के समय ज्ञानोदय न होने के कारण जो जीव मुक्त नहीं हो पाये थे वे एवं उनके अदृष्ट तथा स्थूल एवं सूक्ष्म पञ्चमहाभूत कपास के बीज में पट की भाँति सूक्ष्म रूप से प्रलयकालीन ब्रह्म में स्थित रहते हैं और सृष्टिकाल में प्राणियों के अदृष्टवश जब विश्वरूपिणी विमर्श शक्ति सृजनेच्छारूपा स्वनिष्ठस्फुरत्ता को अपने भीतर देखती है तब उस इच्छाज्ञानरूपा प्राथमिकी वृत्ति के द्वारा विश्वचक्र का प्रादुर्भाव हो उठता है[३]। 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय', 'सोऽकामयत् बहु स्याम्' आदि श्रुतिवाक्य भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

चक्र का गठन

योगिनीहृदय में कहा गया है कि यह विश्वचक्र पञ्चशक्ति एवं चतुर्वह्नि के संयोग से गठित हुआ है—

'पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भवः' ।

५ शक्तित्रिकोणों और ४ वह्नित्रिकोणों से तथा इस प्रकार नवयोनियों के संवेष्टन से नव अवयवों वाले इस विश्वात्मक महाचक्र (यन्त्र) का प्रादुर्भाव होता है। इसे 'अवतार' कहा गया है—'एतच्चक्रावतारन्तु कथयामि तवानघे'। वेदों में भी जीवों की इसी सुषुप्ति को एवं सृष्टि को इस प्रकार कहा गया है—

'सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति।
पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात् स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः'॥

यह नवयोन्यात्मक श्रीचक्र चिदानन्दघन है—

'नवयोन्यात्मकं चक्रं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमन्त्रकम्'॥

१-२. अमृतानन्द योगी : योगिनीहृदयदीपिका। ३. सेतुबन्ध (भास्करराय)।

चक्र और पीठ

यद्यपि यह सत्य है कि पीठ एवं चक्र में भेद है अत: यद्यपि प्रत्येक पीठ चक्र नहीं है किन्तु प्रत्येक 'चक्र' चक्र और पीठ दोनों हैं। पीठ उसे कहते हैं जहाँ देवता जाग्रत् अवस्था में अवस्थित रहता है; यथा—५१ शक्तिपीठ। चक्र भी देवता का आसन है और पीठ भी। पीठ दैशिक है किन्तु चक्र दैशिक नहीं है। पीठ ब्रह्माण्ड के प्रतीक नहीं है किन्तु चक्र हैं।

पीठोत्पत्ति

पीठों का तात्त्विक उदय तो प्राणमय कोष में होता है।

महर्षि अङ्गिरा की दृष्टि—महर्षि अङ्गिरा 'दैवी मीमांसादर्शन' में कहते हैं—'पीठस्याविर्भाव: प्राणमये'। (स्थितिपाद १६) पीठ है क्या ? प्राणमय कोष की सहायता से दैवी शक्ति का विकाशक या देवों के आसन का उपयोगी जो आवर्त बनता है उसे ही पीठ कहते हैं—

'देव्या: शक्तेर्विकाशस्य देवानामासनस्य वा।
उपयोगी जायतेऽसावावावर्त: 'पीठ' उच्यते'॥

चक्र (यन्त्र) भगवती का स्वस्वरूप है

आचार्य पुण्यानन्द की दृष्टि—आचार्य पुण्यानन्द कहते हैं—स्वयं परा महेशी ही चक्र के रूप में रूपान्तरित हो गई हैं। पहले वे परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के रूप में तदनन्तर चक्र (यन्त्र) के रूप में परिणत या रूपान्तरित हो गई हैं। अत: चक्र (यन्त्र) एवं भगवती महेशी में कोई भेद ही नहीं है—

(क) 'यासान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविताकारा।
स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता'॥

(ख) 'चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यते विबुधै:।
अनयोस्सूक्ष्माकारा परैव सा स्थूलयोश्च कापि भिदा[1]॥

भावनोपनिषद् की दृष्टि—चक्र नवरन्ध्रात्मक शरीर है। भावनोपनिषद् में कहा गया है—'नवरन्ध्ररूपो देहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम्'। यदि चक्र, यन्त्र और पीठ को समीकृत करके देखें तो 'क्रियाशक्ति: पीठम्' अर्थात् क्रियाशक्ति ही पीठतत्त्व है।[2]

अन्तर्यात्रा में शब्दों के प्रतीकार्थ

आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा के अन्तरतम मार्गों पर यात्रा करते समय उपासना, पूजा एवं साधना के सारे तत्त्वों, अंगों, साधनों एवं उपायों के अर्थ बदल जाते हैं, क्योंकि वहाँ का संसार, वहाँ के अनुभव—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' वाले स्तर के हैं।

---

१. कामकलाविलास। २. भावनोपनिषद्।

(१) ज्ञान—'ज्ञानं बन्धः'। (१।२)
(२) उद्यमः—'उद्यमो भैरवः'। (१।५)
(३) शरीर—'दृश्यं शरीरम्'। (१।१४)
(४) ज्ञान—'वितर्क आत्मज्ञानम्'। (१।१७)
(५) मन्त्र—'चित्तं मन्त्रः'। (२।१)
(६) साधक—'प्रयत्नः साधकः'। (२।२)
(७) अन्न—'ज्ञानमन्नम्'[१]। (२।९)

यन्त्र के अङ्ग

यन्त्र के घटक तत्त्वों में से निम्न तत्त्वों का उल्लेख किया गया है जो कि संख्या में दस हैं—

'बीजं प्राणं च शक्तिं च दृष्टिं वश्यादिकं तथा।
मन्त्रयन्त्राख्यगायत्रीप्राणस्थापनमेव च।
भूतदिक्पालबीजानि यन्त्रस्याङ्गानि वै दश'॥

बीज, प्राण, शक्ति, दृष्टि, मन्त्र, गायत्री, प्राणस्थापन, भूत और दिक्पाल यन्त्र के १० अङ्ग हैं।

इसके अतिरिक्त त्रिकोण, अष्टकोण, दशार, वृत्त एवं भूपुर आदि भी यन्त्र के अङ्ग हैं। परदेवता के श्रीचक्र के स्वरूप को ही देखिए—

'बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च, श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः'[२]॥

इसी महाचक्र के भीतर—

(१) त्रैलोक्यमोहन, (२) सर्वाशापरिपूरक, (३) सर्वसंक्षोभण, (४) सर्वसौभाग्यदायक, (५) सर्वार्थसाधक, (६) सर्वरक्षाकर, (७) सर्वरोगहर, (८) सर्वसिद्धिप्रद और (९) चक्रनायक नवम चक्र सर्वानन्दमय—अर्थात् ९ चक्र स्थित हैं[३]।

इसी चक्र में महात्रिपुरसुन्दरी की क्षीर, चन्दन, बिल्वपत्र आदि के द्वारा पूजा की जाती है—

'क्षीरेण स्नापिते देवि! चन्दनेन विलेपिते।
बिल्वपत्रार्चिते देवि! दुर्गेऽहं शरणं गतः'[४]॥

कुण्ड एवं चक्राङ्गों में हवन के फल—

(१) पुरुषे हुत्वा वर्तुले वा हुत्वा श्रियमतुलां प्राप्नोति।

---

१. शिवसूत्र। २. त्रिपुरतापिन्युपनिषद्। ३. त्रिपुरतापिन्युपनिषद्। (३।२३-३१)।
४. त्रिपुरतापिन्युपनिषद्।

(२) चतुरस्रे हुत्वा वृष्टिर्भवति।

(३) त्रिकोणे हुत्वा शत्रून् मारयति गतिं स्तम्भयति।

(४) पुष्पाणि हुत्वा विजयी भवति।

(५) महारसैर्हुत्वा परमानन्दनिर्भरो भवति।

'महारसाः षड्रसाः'[१] ॥

चक्र की व्याख्या पिण्ड के अर्थ में—

उपनिषदों में चक्र को भगवती के शरीर, आसन, शक्तिचक्र, स्फुरत्ता-साक्षात्कार आदि के अतिरिक्त पिण्ड के अर्थ में निरूपित किया गया है। यथा—

'नवरन्ध्ररूपो देहो नवशक्तिमयं श्रीचक्रम्'[२] ॥

साधनाङ्गों का यथार्थ स्वरूप

चाहे चक्र हो और चाहे यन्त्र, चाहे पीठ हो और चाहे तीर्थ, चाहे बलि हो और चाहे नीराजना, चाहे धूप हो और चाहे नैवेद्य, चाहे पूजा हो और चाहे हवन, चाहे ध्यान हो और चाहे भक्ति—सभी अपने स्थूल अर्थों में ही गृहीत हैं; उनका तात्त्विक व पारमार्थिक एवं यथार्थ स्वरूप दूसरा ही है। यथा—

(१) देह—'देहो नवरत्नद्वीपः' ॥६॥

(२) श्रीचक्रपूजन—'ज्ञानमर्घ्यं, ज्ञेयं हविः, ज्ञाता होता, ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम्'।

(३) मन — 'मन इक्षुधनुः'।
(४) राग — 'रागः पाशः'।
(५) द्वेष — 'द्वेषोऽङ्कुशः'।
} (भगवती त्रिपुरसुन्दरी के आयुधों का तात्त्विक अर्थ)

(६) देवता — 'स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा'। (तन्त्रराज)

(७) विमर्श — 'लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः'।

(८) ललिता — 'सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता'।

(९) होम — 'अहं त्वमस्ति नास्ति कर्तव्यमकर्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानात्मनि विलापनं होमः'।

(१०) तर्पण—'भावना विषयाणामभेदभावना तर्पणम्'[३] ॥

(११) ज्ञान — 'ज्ञानं जाग्रत्'।

(१२) स्वप्न — 'स्वप्नो विकल्पाः'।

(१३) सुषुप्ति — 'अविवेको माया सौषुप्तम्'।

(१४) हवि—'शरीरं हविः'[४]।

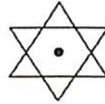


---

१. त्रिपुरतापिन्युपनिषद्। २. भावनोपनिषद्। ३. भावनोपनिषद्। ४. शिवसूत्र।

द्वितीय : साधना-खण्ड

(अध्याय : ५-९)



साधनाओं का विभिन्न स्वरूप एवं ब्रह्मास्त्रविद्या

पञ्चम अध्याय

कर्ममार्गीय साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

कर्ममार्गीय साधना

बगलोपासना में कर्मकाण्डीय विधान भी स्वीकृत हैं—

हवन— 'त्रिकोणकुण्डे जुहुयात् हस्तनिम्नोन्नते शुभे।
हयारिकुसुमेनैव सुरक्तेनाज्यसंयुतम्' ॥

हवन और कुण्ड—'अग्निकोणे हुनेत्पुत्र', 'वटमूलं समाश्रित्य कृत्वा कुण्डं त्रिकोणकम्'।

'अश्वत्थमूलमाश्रित्य षट्कोणाकृतिकुण्डके।
तत्फलं च हुनेत्पुत्र अयुतं चाज्यमिश्रितम्' ॥
'औदुम्बरस्य मूले तु षट्कोणाकृतिकुण्डके।
शमीवृक्षं समासाद्य हुनेत्कुण्डे त्रिकोणके' ॥

ब्राह्मणभोजन—'ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्तत्त्वसंख्याच्च युग्मकम्' ॥

हवन-सामग्री—पुष्प, घृत, तेल, सर्षप, नमक, फल, नीम का तेल, पिचुमन्द आदि।

पीतवर्ण के पुष्प की विशेष महिमा—भगवती की अर्चा में (सुगन्धित/निर्गन्ध किसी भी) पीले फूल का उपयोग करने पर साधक को वाक्सिद्धि, सर्वसिद्धियाँ एवं देवीसारूप्य प्राप्त होता है—

'पीतपुष्पेण निर्गन्धेन सुगन्धिना।
अर्चयेदयुतं पुत्र षोडशैरुपचारकैः।
वाक्सिद्धिस्तु भवेत्तस्य देवीरूपो न संशयः।
तस्य दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्' ॥

(सांख्यायनतन्त्र)

भगवती बगला की साधना में सारे उपकरण (पीत वर्ण की महिमा) पीले होने चाहिए—

'पीताशी: पीतवस्त्राद्याः पीतयज्ञोपवीतवान्।
पीताशनी पीतमक्षी पीतशय्यापरायणः।
हरिद्राक्षेण मणिना सर्वं कार्यं जपादिकम्' ॥

'पीतपुष्पैः', 'हरिद्रया' आदि।

तर्पण और मार्जन—

'होमस्य तु दशांशेन तर्पणं मार्जनं तथा'।
'सुरया तर्पणं पुत्र! तेन मार्जनमाचरेत्'॥

दक्षिणा—'इति संक्षेपतः प्रोक्तं तोषयेद्दक्षिणादिना'।

गणपति-पूजन—प्रत्येक कर्मकाण्डीय विधान में गणपति-पूजन आवश्यक है। उसी प्रकार बगलोपासना में भी—'आदौ गणपतिं पूज्यं द्वारपूजादिसंयुतम्'।

गोपनीयता—भक्ति, योग एवं तन्त्र के साथ कर्ममार्ग में भी गोपनीयता आवश्यक है। इसका उल्लङ्घन करने पर देवता शाप दे देते हैं—

'प्रकाशयेन्न कस्यापि देवता शापमाप्नुयात्'।

कर्ममार्गीय साधना और उसका स्वरूप

भौतिक से अभौतिक, इन्द्रिय से अतीन्द्रिय, मन से मनसातीत, विचार से विचारातीत, स्थूल से सूक्ष्म एवं विश्व से विश्वातीत स्तर पर कदम बढ़ाने के लिए शरीर एवं मन के साथ निष्ठापूर्वक जो आत्मसंयमात्मक व्यापार करना पड़ता है उसे ही 'साधना' कहते हैं। इस साधना को निष्पन्न करने वाला व्यक्ति ही 'साधक' कहलाता है। साधक वह है जो सार तत्त्व का संग्रहण करे, धर्ममार्ग का प्रवर्तन करे एवं इन्द्रियग्राम का संयम करे—

'सारसंग्रहणाच्चैव धर्ममार्गप्रवर्तनात्।
करणग्रामनियमात् साधकः सोऽभिधीयते'[१]॥

यह साधना मुख्यतः चतुर्विधात्मिका है।

साधना के भेद

कर्ममार्गीय साधना	ज्ञानमार्गीय साधना	भक्तिमार्गीय साधना	तन्त्रमार्गीय साधना	योगमार्गीय साधना

साधना में मार्ग-भेद होने के कारण ही उपदेशों में भी भेद हैं। यथा—

(१) कर्मोपदेश—कर्ममार्ग हेतु।
(२) धर्मोपदेश—भक्तिमार्ग हेतु।
(३) ज्ञानोपदेश—ज्ञानमार्ग एवं योगमार्ग हेतु। (कुला. तन्त्र)

कुलार्णवतन्त्र में प्रतिपादित दृष्टि—

(क) कर्मोपदेश—

'यथा पिपीलिका मन्दमन्दं वृक्षाग्रगं फलम्।
चिरेणाप्नोति कर्मोपदेशश्चापि तथा स्मृतः'॥

१. कुलार्णवतन्त्र (१७वाँ उल्लास)।

(ख) धर्मोपदेश—

'यथा कपिश्च शाखायां शाखामुल्लंघ्य यत्नतः।
फलं प्राप्नोति धर्मस्य चोपदेशस्तथा प्रिये'॥

(ग) ज्ञानोपदेश—

'यथा वियद्गमः शीघ्रं फल एव निषीदति।
तथा ज्ञानोपदेशश्च कथितः कुलनायिके'[१]॥

स्वात्मानन्द-प्राप्ति के बाद कर्म निरर्थक है—

'यथामृतेन तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम्।
स्वात्मानन्दोदये तद्वत्कर्मभिर्न प्रयोजनम्'[२]॥

वेदमतानुसार कर्म से पितृयान एवं उपासना से देवयान की प्राप्ति मानी जाती थी। पितृयान में गति कराने वाले मार्ग को 'धूममार्ग' (अविद्यामार्ग) एवं देवयान में गति कराने वाले मार्ग को अर्चिर्मार्ग (विद्यामार्ग) कहा जाता है।

गीता में कर्मों के भेद

(१) सात्त्विक कर्म—

'नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत् सात्त्विकमुच्यते'॥ (१८।२३)

(२) राजस कर्म—

'यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्'॥ (१८।२४)

(३) तामस कर्म—

'अनुबन्धक्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म तत् तामसमुच्यते'॥ (१८।२५)

कर्ता के भेद

(१) सात्त्विक कर्ता—

'मुक्तसङ्गोऽहनं वादी, धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्मसिद्ध्योर्निकारः, कर्ता सात्त्विक उच्यते'॥ (१८।२६)

(२) राजस कर्ता—

'रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः'॥ (१८।२७)

---

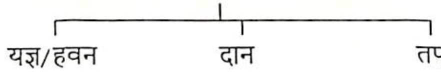
१. कुलार्णवतन्त्र (उल्लास १४)। २. माहेश्वरतन्त्र।

(३) तामस कर्ता—

'अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूची च कर्ता तामस उच्यते' ॥ (१८।२८)

कर्म के प्रधान रूप

'यज्ञदानतपःक्रियाः' ।

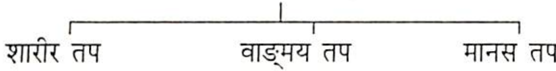


यज्ञ/हवन दान तप

'यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्' ।
'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्' ।
'यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे' ।

'सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्' ॥ (१८।५६)
'चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव' ॥ (१८।५७)
तपः—'देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते' ॥

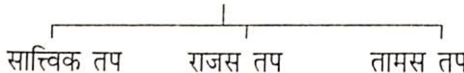
तप के प्रकार : 'तपस्तत् त्रिविधं नरैः'



शारीर तप वाङ्मय तप मानस तप

(१) शारीर तप—'देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते' ॥
(२) वाङ्मय तप—'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते' ॥
(३) मानस तप—'मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते' ॥

तप के प्रकार



सात्त्विक तप राजस तप तामस तप

सात्त्विक तप—

'श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते' ॥

राजस तप—

'सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्' ।।

तामस तप—

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्' ।।

कर्म की महिमा और त्याग—

'कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन'। (सात्त्विक त्याग)
'न हि देहभृतां शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः'।
'यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते'।
'सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः' ।।

कर्ममार्ग के प्रति ज्ञानियों, भक्तों एवं योगियों की दृष्टि

ज्ञानमार्गियों, भक्तिमार्गियों एवं योगमार्गियों की दृष्टि तो यह है कि कर्ममार्ग मुक्ति नहीं दे सकता। ज्ञानमार्गी आचार्य शङ्कर कहते हैं कि कर्म आवश्यक तो है किन्तु केवल चित्त की शुद्धि के लिए न कि वस्तु (आत्मा) की प्राप्ति के लिए—'चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये'[१]। क्योंकि वस्तु-सिद्धि (परमात्मा-प्राप्ति/आत्मावस्थान) मात्र विचार के द्वारा ही होती है। चाहे करोड़ों कर्म क्यों न कर डाले जायें किन्तु मुक्ति उससे प्राप्त नहीं हो सकती—

'वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित् कर्मकोटिभिः'।

कर्म की उपयोगिता चित्त-शोधन मात्र के लिए है न कि मुक्ति दिलाने के लिए। भव-बन्धन से विमुक्ति के लिए कर्म का त्याग आवश्यक है—

'संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये'[२] ।।

कर्ममार्गीय साधना से मुक्ति सम्भव नहीं है

आचार्य शङ्कर कहते हैं—

'न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा' ।।

अर्थात् योग, सांख्य, कर्म एवं विद्या से मोक्ष पाना सम्भव नहीं है। इसकी प्राप्ति मात्र 'ब्रह्मात्मैकत्वबोध' से ही सम्भव है।

---

१. विवेकचूडामणि। २. विवेकचूडामणि।

(क) आचार्य सुरेश्वर की दृष्टि—आचार्य सुरेश्वर कहते हैं कि—(१) ज्ञान ही मोक्ष का साधन है कर्म नहीं—

'मोहापिधानभङ्गाय नैव कर्माणि कारणम्।
ज्ञानेनैव फलावाप्तेस्तत्र कर्म निरर्थकम्'[१] ॥

(२) ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद की दृष्टि भी असमीचीन है। कर्म का प्रयोजन अणुमात्र भी मुक्ति में सम्भावित नहीं है। मुक्ति का स्वरूप है—स्वरूप में स्थिति। इस स्वरूपावस्थान के लिए कर्म की अपेक्षा नहीं है—'न च कर्मण: कार्यमण्वपि मुक्तौ सम्भाव्यते, नापि मुक्तौ यत्सम्भवति तत्कर्माऽपेक्षते'—

'नैवं मुक्तिर्यतस्तस्मात्कर्म तस्या न साधनम्'।

(३) कर्म की उपयोगिता अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य है।

(क) सुरेश्वराचार्य कहते हैं कि—

(i) नित्य-नैमित्तिक कर्मानुष्ठानों से धर्मोत्पत्ति होती है।

(ii) धर्मोत्पत्ति से पापों का नाश होता है।

(iii) पापों के नाश से चित्त की शुद्धि होती है।

(iv) चित्तशुद्धि से संसार का स्वरूपावबोध होता है।

(v) संसार के यथार्थ स्वरूप के बोध से वैराग्य उत्पन्न होता है।

(vi) वैराग्योदय से मुमुक्षा का उदय होता है।

(vii) मुमुक्षा के उदय से उपायों की अनुसन्धित्सा होती है।

(viii) उपायगवेषणा से कर्मों एवं साधनों का परित्याग होता है।

(ix) उससे योगाभ्यास के प्रति रुचि बढ़ती है।

(x) योगाभ्यास से प्रत्यक्प्रवणता (चित्त की आत्मोन्मुख प्रवृत्ति) होती है।

(xi) प्रत्यक्प्रवणता से 'तत्त्वमसि' (ज्ञान) वाक्यों के अर्थभूत शुद्ध ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

(xii) ब्रह्मसाक्षात्कार से अविद्या की निवृत्ति होती है।

(xiii) अविद्या की निवृत्ति से आत्मस्वरूप से परमात्मा में स्थिति होती है।

(xiv) कर्मपरम्परा से अविद्या के नाश का कारण है किन्तु प्रत्यक्ष कारण तो मात्र ज्ञान है।

'पारम्पर्येण कर्मैवं स्यादविद्यानिवृत्तये।
ज्ञानवन्नाविरोधित्वात्कर्माऽविद्यां निरस्यति'[२] ॥

---

१. नैष्कर्म्यसिद्धि। २. नैष्कर्म्यसिद्धि।

(ख) भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि—भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

(१) आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
(२) योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते[१]॥

(ग) मीमांसादर्शन के आचार्यों की दृष्टि—मीमांसकों की दृष्टि यह है कि काम्य, निषिद्ध एवं नित्य (कर्मों के तीन प्रकार) में नित्य-कर्म सार्वभौम महाव्रत हैं। द्विकालिक सन्ध्या, वर्णाश्रम धर्म का पालन आदि कर्म नित्य कर्म हैं।

(घ) कुमारिल भट्ट के मतानुसार (भाट्ट मत)—

नित्य कर्म भी फलाभिलाषा के साथ निष्पादित किये जाते हैं और इनसे अतीत एवं अनागत दोष नष्ट होते हैं। नित्य कर्म के दो फल हैं—

१. दुरित-क्षय और २. प्रत्यवायों से विमुक्ति। नित्य कर्म न करने से पाप होता है।

(ङ) प्रभाकर के मतानुसार—नित्यकर्म प्रभाकर और कुमारिल भट्ट दोनों मानते हैं। नित्यकर्म काम्य कर्मों की भाँति विशिष्ट फल तो नहीं प्रदान करते तथापि ये सदैव कर्तव्य हैं। प्रभाकर की दृष्टि में नित्य कर्म काम्य कर्मों से श्रेष्ठतर हैं। 'कर्तव्य कर्तव्य के लिए' (Duty for duty sake) का सिद्धान्त प्रभाकर को मान्य है। भाट्टमत में नित्य कर्मों की इतनी प्रतिष्ठा नहीं है। नित्य-कर्म श्रेय-साधन में सहायक मात्र हैं। सुरेश्वराचार्य (पूर्वाश्रम का नाम मण्डन मिश्र) की मान्यता है कि काम्य एवं निषिद्ध कर्मों का तो त्याग कर दिया किन्तु नित्य-नैमित्तिक कर्म अवश्य किये जायें। ऐसा करते रहने से मुक्ति मिलती है—

'अकुर्वतः क्रियाः काम्या निषिद्धास्त्यजतस्तथा।
नित्यनैमित्तिकं कर्म विधिवच्चानुतिष्ठतः॥
काम्यकर्मफलं तस्माद्देवादीमं न ढौकते।
निषिद्धस्य निरस्तत्त्वान्नारकीं नैत्यधोगतिम्'[२]॥

कर्ममार्गी मीमांसकों की मुक्ति का स्वरूप

(१) मुक्ति की अवस्था में आत्मा में बुद्धि, सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्माधर्म, आनन्द, मन और ज्ञान आदि किसी का भी अस्तित्व नहीं रहता।

(२) इस अवस्था में आत्मज्ञान तो नहीं किन्तु ज्ञानशक्ति अवश्य रहती है। दुःख का आत्यन्तिक नाश रूप परम पुरुषार्थ ही 'मोक्ष' है। मुक्ति की स्थिति में जीव में ज्ञान-शक्ति, सत्ता एवं द्रव्यत्वादि अपने स्वाभाविक धर्ममात्र रहते हैं।

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता। २. नैष्कर्म्यसिद्धि।

योगवाशिष्ठकार की दृष्टि

योगवाशिष्ठकार की मान्यता है कि ऐसी कोई क्रिया (कर्म) ही नहीं है जो माया (अज्ञान) से उपहित न हो। वे पूछते हैं—

'कास्ता दृशो यासु न सन्ति दोषाः ? कास्ताः दिशो यासु न दुःखदाहः ?।
कास्ताः प्रजा यासु न भङ्गुरत्वं ? कास्ताः क्रिया यासु न नाम माया' ?॥

वेदान्त के मतानुसार मोक्ष के साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासन हैं क़िन्तु ये क्रियाएँ नहीं हैं।

उपनिषदों की दृष्टि

'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च'॥

ये ही ब्रह्मानुभूति के साधन हैं कर्म नहीं।

'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः' (शुकाष्टक) का कथन सत्य तो है किन्तु जीवन्मुक्तों के लिए ही यह दृष्टि व्यवहार्य है, अन्य के लिए नहीं।

आचार्य रामानुज की दृष्टि

मीमांसाचार्य कुमारिल भट्ट की भाँति रामानुजाचार्य भी कहते हैं कि नित्य कर्मों का अनुष्ठान अनिवार्यतः किया जाना चाहिए। उनकी दृष्टि में मोक्ष के लिए संन्यास आवश्यक नहीं है। न्याय-वैशेषिक-सांख्य के द्वारा प्रतिपादित यह दृष्टि ठीक नहीं है कि समस्त अनुभवों का अवरुद्ध हो जाना ही मुक्ति है। मुक्त जीव की अनुभूति अवरुद्ध नहीं होती प्रत्युत अधिक चेतन होने के कारण और अधिक बढ़ जाती है।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि

अज्ञान का उच्छेद ही मुक्ति का पर्याय है। माया या अज्ञान की दो शक्तियाँ हैं—(१) आवरण शक्ति तथा (२) विक्षेप शक्ति। आवरण शक्ति आत्मा के यथार्थ स्वरूप को ढक लेती है तथा विक्षेप शक्ति जागतिक पदार्थों की (द्वैत की, अध्यास की, अध्यारोप की) सृष्टि करती है। सर्वज्ञमुनि कहते हैं—

'आच्छाद्य विक्षिपति संस्फुरदात्मरूपं
जीवेश्वरत्वजगदाकृतिभिर्मृषैव।
अज्ञानमावरणविभ्रमशक्तियोगात्
अत्मत्वमात्रविषयाश्रयता बलेन'॥ (संक्षेपशारीरक १।२०)

बगलोपासना में कुण्ड-विधान

भगवती बगलामुखी की पूजा में जो हवन करने का विधान किया गया है उसमें प्रयोजनों की भिन्नता के अनरूप हवन-कुण्डों के स्वरूप में भी भिन्नता आवश्यक मानी गई है। यथा—

(१) वशीकरणार्थ : चतुरस्र कुण्ड हो।
(२) आकर्षणार्थ : त्रिकोणात्मक कुण्ड हो।
(३) उच्चाटनार्थ : त्रिकोणात्मक कुण्ड हो।
(४) मारणार्थ : षट्कोणात्मक कुण्ड हो।
} (कुण्डों के आकार में भेद)

'वश्ये तु चतुरस्रं च, आकर्षणे त्रिकोणकम्।
तथैवोच्चाटने प्रोक्तं, षट्कोणं मारणे स्मृतम्'[१] ॥

हवन में कुण्ड का प्रयोग—(सांख्यायनतन्त्रानुसार)

'उत्तमं कुण्डहोमं च स्थण्डिलं चैव मध्यमम्।
स्थण्डिलेन विना होमं निष्फलं भवति ध्रुवम्' ॥ (सां. तन्त्र)

स्थण्डिल होम के प्रकार—षट्कोण + अष्टकोण + चतुष्कोण—

'षट्कोणं चाष्टकोणं चतुष्कोणं च पुत्रक।
त्रिविधं स्थण्डिलं चैव वक्ष्येऽहं कर्म ह्यादरात्' ॥ (सां. तन्त्र)

कुण्डों का आकार-विधान—(१) चतस्रकोण का विधान—

'लक्ष्मीः शान्तिस्तथ पुष्टिर्विद्या विघ्ननिवारिणी।
चतस्रेण हुनेत् कुण्डे तत्र तत्प्रतिपादिते' ॥ (सां. तं.)

(२) त्रिकोणाकार कुण्ड का विधान—वशीकरण आदि हेतु—

'वशीकरणसम्मोहे वाणिज्ये द्रव्यसंग्रहे।
कीर्तिकामस्तु जुहुयात् त्रिकोणाकारकुण्डके ॥
वश्येन्द्रियस्तम्भने च दिव्यगन्धैस्तथैव च।
त्रिकोणकुण्डे जुहुयाद् गुरुमार्गेण बुद्धिमान्' ॥ (सां.तं.)

(३) वर्तुलाकार कुण्ड का विधान—विद्वेषण कार्य हेतु—'विद्वेषणे तु जुहुयाद्वर्तुले कुण्डमध्यमे'।

(४) षट्कोणाकार कुण्ड का विधान—उच्चाटन हेतु—'उच्चाटने च जुहुयात् षट्कोणाख्ये च कुण्डके'।

(५) अष्टकोणाकार कुण्ड का विधान—मारण हेतु—

मारणे चाष्टकुण्डे च तत्तत्कर्मानुसारतः'।
तत्तद्द्रव्येन जुहुयात्तत्तन्मन्त्रोक्तमेव च'[२] ॥

रक्षार्थ—

'रक्षार्थं स्थण्डिले होमः षट्कर्मसु कुमारक।
जुहुयाच्छान्तिवश्ये च स्थण्डिले चतुरस्रके[३] ॥

---

१. षट्कर्मदीपिका। २-३. सांख्यायनतन्त्र।

कलश-स्थापन

कर्मकाण्डीय विधानों में प्रायः सर्वत्र कलश-स्थापन किया जाता है। भगवती बगलामुखी के मन्त्रों के प्रयोग में कलश-स्थापन का भी विधान है। 'चतुरक्षरी विद्या' के प्रयोग में कलशस्थापन—

'गृहीत्वा कलशं सम्यगर्चयेन्मूलविद्यया।
संस्थाप्य पाणिना सम्यग् पूजयेद्विधिना ततः॥
आपो वा इति मन्त्रेण मन्त्रयेत्तज्जलं पुनः।
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्कुम्भमादरात्॥
तेनोक्तविधिना सम्यक् पूजनं तदुदाहृतम्'। (सांख्यायनतन्त्र)

आचार्य सांख्यायन कलश की व्यावहारिक पद्धति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

(१) शक्रादिदिक्षु मन्त्रैश्च प्रथमं कलशार्चनम्।
(२) लक्ष्मीश्रीसूक्तकाभ्याञ्च द्वितीयकलशार्चनम्॥
(३) पौरुषेणैव सूक्तेन तृतीयं कलशं तथा।
(४) नारायणानुवाक्येन चतुर्थं कलशं तथा।
(५) पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रैः पञ्चमं कलशं तथा।
(६) षष्ठं चाम्भस्य पारेण..... (षष्ठ कलश)।
(७) ब्रह्मवल्ल्या तु सप्तमम्।
(८) अष्टमं भृगुवल्ल्या तु मार्जयेन्मन्त्रकोविदः॥ (तृतीय पटल ३।२०-२३)

'मध्यस्थं पूर्वकलशं मूलमन्त्रेण मार्जयेत्।
एवं च मार्जनं कृत्वा नवीनैर्वस्त्रभूषणैः॥
अलङ्कृत्वा तु शिष्यं तमानीय मण्डपान्तरे'॥

(सांख्यायनतन्त्र ३।२३-२४)

मार्जन-विधान

कर्मकाण्डीय व्यवस्थानुकूल बगलोपासना में भी मार्जन-विधान है—

(१) तेन मूलेन सम्मार्ज्य मार्जनं क्रमशोऽर्भक।
(२) त्रिधा सम्मार्जयेदङ्घ्रयोः सम्यक् कर्म स्वयं क्रमः॥
(३) पादादिमूर्ध्नि पर्यन्तं क्रूरकर्मसु मार्जयेत्।
(४) एवं च मार्जनं कृत्वा गायत्रीं बगलाह्वयम्॥

(सांख्यायनतन्त्र ४।१३-१५)

(५) अष्टपत्रं न्यसेत् पुत्र कलशाष्टकमादरात्। (३।१२)

प्रयोग (हवन-विधान)

क्रौंचभेदन के यह निवेदन करने पर कि—'चन्द्रचूड नमस्तेऽस्तु प्रयोगं वद शङ्कर'। (१८।२) तो भगवान् शङ्कर ने हवन-विधान पर प्रकाश डालते हुए निम्न निर्देश दिये हैं—

हवन की संख्या	विधि	द्रव्य	फल
६०००	(अतन्द्रित	दूर्वा से हवन, कुश से	तत्काल ताप-ज्वर की शान्ति
६०००	होकर)	हवन, फिर कुश एवं दूर्वा से हवन।	शीतज्वर-निवारण, चातुर्थिक निवारण।
६०००	,,	मधुत्रय + श्वेत दूर्वा	सभी प्रकार के ज्वरों का निवारण।
६०००	,,	शर्करा, गुड़, दधि, गुडूची }	सभी प्रकार के मेहों का निवारण।
६०००	,,	सर्षप, लवण	गुल्मरोग-निवारण।
६०००	,,	शर्करा-घृत	पैत्त्यादि सर्व रोगों का निवारण।
६०००	,,	शालि, सक्तु, घृत	वशीकरण की सिद्धि।
६०००	,,	लाजा	वांछित कन्या की प्राप्ति।
६०००	,,	हरिद्राखण्ड	गर्भस्तम्भ/वन्ध्यात्व।
६०००	,,	केतकीदल	वेश्या को वशीभूत करने की सामर्थ्य-प्राप्ति।
६०००	,,	कमल के दल	नेत्ररोग-निवारण।
६०००	,,	मल्लिका-पुष्प	सुमति-प्राप्ति।
६०००	,,	जातीफल	शत्रु उन्मत्त हो जायेगा।
६०००	,,	देवपुष्प, शर्करा एवं घृत	उद्वेग, चाञ्चल्य, उच्चाटन, अविवेक, क्षुद्रमतित्व, मन्दबुद्धित्व, सूर्योदय काल में मृत्यु।
१०,०००	,,	रात्रि के समय कुक्कुट एवं मांस से हवन (समान मात्रा में ही हवन द्रव्य रहे)	सद्यः धन की प्राप्ति।
३०००		छाग का मांस, मधुत्रय	तत्काल ग्रामाधिपतित्व।
५०००		गौड़ी द्रव्य	बहुमूत्रता रोग का नाश।
६०००		माध्वी द्रव्य	पैत्त्यादि ज्वरों का निवारण।

हवन की संख्या	हवन की विधि	हवन करने का द्रव्य	हवन का फल
	ध्यानपूर्वक	अन्न-हवन	अन्न की अत्यन्त परिपूर्णता।
६०००	अर्थात्	क्षीर-हवन	भ्रमनाश व तापनिवारण।
,,	पूर्ण ध्यान	पञ्चगव्य-हवन	ताप-शान्ति।
,,	योग से	गोमूत्र-हवन	शत्रु की बुद्धि भ्रमित हो जायेगी।
,,	बगला का	तालद्रव्य-हवन	नारी का प्रयोक्ता के प्रति आकर्षण।
,,	ध्यान करते	खजूर-हवन	पुरुष का आकर्षण।
,,	हुए	तिल+तैल-हवन	सर्वाकर्षण।
,,		एरण्ड तैल-हवन	गजाकर्षण।
,,		कुसुमतैल-हवन	जलजों का आकर्षण।
,,		करञ्जतैल-हवन	कौए, गृध्र आदि एवं अन्य पक्षियों का आकर्षण।
,,		आरनाल-हवन	शत्रु में अग्निमान्द्याविर्भाव, रोगाविर्भाव (मात्र एक माह में), पैत्त्यरोगाविर्भाव।
,,		निम्बपत्रद्रव्य-हवन	वातरोग की उत्पत्ति।
,,		अर्कपत्रद्रव्य-हवन	क्षयरोग की उत्पत्ति।
६०००	बगला का ध्यान करते हुए।	वज्रक्षीर+आरनाल-हवन	६ मास में मृत्यु।
,,		अर्क का दूध+आरनाल-हवन	भगन्दर रोग से पीड़ित होकर ६ मास में मृत्यु।
,,		गर+तिल+तैल+आरनाल-हवन	शत्रु की स्फोटव्रणोत्पत्ति, फिर मृत्यु।
,,		तिल+ तैल आरनालान्त-हवन	रिपु की मण्डल के भीतर मृत्यु।
,,		कर्पूर-मिश्रित तिल+तैल-हवन	रिपु की मण्डल काल के भीतर मृत्यु।

कर्मकाण्डीय विधान में स्वीकृत जप, हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन आदि समस्त कर्मकाण्डीय क्रियाएँ बगलोपासना में स्वीकृत हैं—

'एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमर्कलक्षं कुमारक।
तर्पयेत्तद्दशांशं च गुडोदकसमन्वितम्।
तालकेन हुनेत्तस्य दशांशं संस्कृताग्निना।
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्तद्दशांशं कुमारक'॥

(सांख्यायनतन्त्र)

सांख्यायनतन्त्र के अनुसार आभिचारिक होम—

हवन-सामग्री	हवन की संख्या	कुण्ड/स्थान	फल
१. पिचुमन्द फल	अयुत		शत्रु-संहार
२. करवीर, शलाटु, आज्य	अयुत (हवन)	त्रिकोणाकार कुण्ड में	रिपुमृत्यु
३. पलाशबीज	अयुत (हवन)	ग्राम के मध्य/ कुण्ड	
(धोबी के घर की आग में ही हवन करें। यह हवन दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिए।)			
४. (राजवृक्ष की जड़ में) राजवृक्ष के फल को नीम के तेल से अभिसिञ्चित करके हवन किया जाय।	अयुत (हवन)	हाथभर का भगाकार कुण्ड	शत्रु की मृत्यु
५. सरसों, नमक एवं तिल के तेल को आपस मे मिलाकर हवन किया जाय।	अयुत (हवन)		ज्वराक्रान्तता/रोग
६. पिचुमन्द के फल को तेल एवं नमक के साथ मिश्रित करके अग्निकोण में हवन किया जाय।	अयुत (प्रेत-पावक में हवन किया जाय)		समस्त शास्त्रों का विस्मरण
७. वटवृक्ष के मूल में वट के फल से रात्रि में हवन करने पर। (फल के साथ घी भी लगा हो)	अयुत (हवन)	त्रिकोणाकार कुण्ड में	विद्वान् से विद्वान् व्यक्ति भी भ्रान्ति में पड़ जायेगा
८. अश्वत्थ के मूल में अश्वत्थ के फल से (किन्तु घी मिश्रित करके) हवन।	अयुत (हवन)	षट्कोणात्मक कुण्ड में	व्रणसंयुक्त होकर मृत्यु
९. औदुम्बर के फल को घी से भिगोकर हवन।	अयुत (हवन)	षट्कोणाकार कुण्ड में	कुष्ठरोग एवं मृत्यु।
१०. शमी के वृक्ष के मूल में शमी के फल को तिल के तेल से भिगोकर हवन करने पर।	अयुत (हवन)	त्रिकोणाकार कुण्ड में	वातरोगी होकर मृत्यु

हवन-सामग्री	हवन संख्या	कुण्ड/स्थान	विधि	फल
अपामार्ग का बीज लेकर उसे तिल के तेल से मिलाकर हवन	अयुत (हवन)	शमी के मूल में हवन	ध्यानपूर्वक	शत्रु की भार्या एवं अन्य स्त्रियाँ वन्ध्या हो जायेगीं।
तेल-मिश्रित शलाटु लेकर उसका हवन	अयुत (हवन)	शमीवृक्ष के मूल में प्रेताग्नि या रजकाग्नि में हवन	शत्रु का नाम लेकर कुण्ड में हवन	शत्रु की पत्नी को निरन्तर रक्तस्राव की बीमारी।
शाल्मली वृक्ष से उत्पन्न विलासिता और शलाटु	अयुत (हवन)	शमीवृक्ष के मूल में प्रेताग्नि या रजकाग्नि मे हवन	शत्रु का नाम लेकर कुण्ड में हवन	शत्रु मेहरोगी हो जायेगा।

१. ये सारे प्रयोग रात्रि में ही किये जायें—

'एवं होमप्रयोगं तु रात्रौ कुर्यात्कुमारक। प्रयोगं मन्त्रतन्त्राणि सत्यमेव न संशयः' ॥

२. 'नानलङ्कारशोभाढ्यां नर नारायणप्रियाम्।
वन्देऽहं बगलां देवीं परब्रह्माधिदैवतम्' ॥

इस प्रकार भगवती बगला का ध्यान करके एवं उन्हें नमन करके किये गये होम-प्रयोग ही सफल होते हैं।

मन्त्र—'ॐ आं ह्लीं क्रौं' (चतुरक्षरी विद्या)।

ये सारे होम-प्रयोग चतुरक्षरी बगला से सम्बद्ध हैं—'वद होम प्रयोगञ्च बगला चतुरक्षरे'।

यज्ञीय सामग्रियों हेतु विधान

भगवती वल्गा की पूजा में प्रयोजनों के अनुरूप ही सामग्रियों में भी भिन्नता का विधान किया गया है। यथा—

(१) वशीकरण-कर्म (अभिचार) के लिए मधुतिल, लाजा, आज्य (घृत) से हवन।

(२) आकर्षण-कर्म (अभिचार) के लिए लोध्र, तिल, मधुरत्रय से हवन।

(३) विद्वेषण-कर्म (अभिचार) के लिए तैलाक्त नीम के पत्ते से हवन (दशांश हवन)।

(४) स्तम्भन-कर्म (अभिचार) के लिए नमक से हरताल और हरिद्रा मिलाकर हवन।

(५) मारण-कर्म (अभिचार) के लिए चिता की अग्नि में सरसों का तेल एवं भैंस के रुधिर का हवन, गृहधूम के साथ काकपक्ष का हवन[१]।

(६) समस्त रोगों की प्रशान्ति (अभिचार कर्म) के लिए लाजा, त्रिमधुर (घृत-मधु-शक्कर) का हवन (कुम्हार की चाक की मिट्टी, चार-चार अङ्गुल रेंड़ की लकड़ी, त्रिमधुर युक्त लाजा का हवन)।

(७) आकर्षण कर्म (अभिचार) के लिए—बित्ते भर की योनियुक्त एवं मेखलायुक्त सुन्दर कुण्ड की रचना करके कुशकुण्डिका आदि के साथ मधु, घृत, शक्कर-मिश्रित नमक से हवन।

(८) स्तम्भन कर्म (अभिचार) के लिए—बगलामुखी मन्त्र के साथ शत्रु का नाम जोड़कर—'स्तम्भय स्तम्भय' पद भी जोड़कर १० हजार जप करने से शत्रु एवं उसकी गति का स्तम्भन होता है। इस मन्त्र के द्वारा बुद्धि, शस्त्र, देव-दानव एवं सर्पादि का भी स्तम्भन हो जाता है। विधान (जप का स्वरूप)—"ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं मम अमुकनामकं शत्रुं स्तम्भय स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं स्वाहा'।

विशेष—ध्यातव्य बिन्दु यह है कि इन अभिचार आदि कर्मों या प्रयोजनों की सिद्धि के लिए पहले यथानियत मन्त्र-जप पूर्ण कर लिया जाय तभी प्रयोग किया जाय।

वशीकरण कर्म (अभिचार) की सिद्धि के लिए—भगवती बगला के मन्त्र का जप के उपरान्त सरसों से दशांश का हवन किया जाय। इससे निःसन्देह सिद्धि की प्राप्ति होगी।

यथेच्छ धन की प्राप्ति के लिए—दूधमिश्रित तिल एवं चावल द्वारा हवन किया जाय।

सन्तान-प्राप्ति के लिए—अशोक एवं करवीर के पत्र द्वारा हवन किया जाय।

शत्रु पर विजय प्राप्त करने हेतु—साधक का कर्तव्य है कि वह सेमर के फलों से हवन करे।

राजा का वशीकरण करने हेतु—गुग्गुल और घी से हवन करने पर यथेष्ट काल तक राजा वशीभूत रहता है।

कारागार में किसी बन्दी की मुक्ति के लिए—एतदर्थ गुग्गुल एवं तिल द्वारा हवन करने से बन्दी (कैदी) अवश्यमेव कारागार से मुक्त हो जाता है।

ज्वरशान्त्यर्थ—बगलाहृदय का पाठ एवं मल्लिका पुष्प से १०८ हवन। वेदशास्त्रों के अज्ञेयांशों का ज्ञानप्राप्त्यर्थ—श्यमन्तक पुष्प से हवन एवं बगलाहृदय का पाठ।

---

१. षट्कर्मदीपिका।

पुत्र-प्राप्त्यर्थ—बगुल पुष्पों से हवन करने पर पुत्र-प्राप्ति होती है।

विद्या-सिद्धिप्राप्त्यर्थ—पलाश पुष्पों से भगवती के यन्त्रराज की पूजा।

समस्त सम्पत्तियों के प्राप्त्यर्थ—कुबेरवत् सम्पत्ति मन्त्रजपपूर्वक कमल पुष्पों से हवन।

त्रैलोक्य-वशीकरणार्थ—नन्द्यावर्त द्वारा पूर्ववत् राजयन्त्र की अर्चा।

प्रतिवादी की पराजय हेतु—चम्पा के फूलों से भगवती एवं यन्त्र की पूजा।

धन-प्राप्ति हेतु—बिल्वपत्र से पूजन एवं जप करना चाहिए।

राज्य-लाभ हेतु—तुलसीमञ्जरी से पूजन।

भ्रष्टराज्य को पुन: राज्यप्राप्ति हेतु—अशोक पुष्प से पूजन करना चाहिए।

सर्वाभीष्ट प्राप्त्यर्थ—केतकी पुष्प से पूजन करना चाहिए।

तर्पण-क्रिया

तर्पण, यज्ञ, हवन, बलि, तप, दान, तीर्थयात्रा, तीर्थस्नान आदि पुण्य-कर्म-भले ही भक्ति या उपासना के अङ्ग हों तथापि हैं तो कर्म ही, अत: इन्हें भी कर्ममार्ग का अङ्ग स्वीकार करने में विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सांख्यायनतन्त्र में तर्पण का महत्त्व—यहाँ भगवती बगलामुखी को 'जगज्जननी' कहने के पहले उन्हें 'जातवेदमुखी' कहा गया है अर्थात् वे अग्निमुखी हैं। भाव यह है कि बगला देवी हवनप्रिया हैं, क्योंकि हवन अग्नि में ही किया जाता है। भगवती बगला को नमन करते हुए कहा गया है—

'जातवेदमुखीदेवि ! जगज्जननकारिणि।
जय पीताम्बरधरे ! बगले ! ते नमो नम:'॥

यहीं बगलामुखी के चार अक्षरों वाले मन्त्र को केन्द्र में रखकर कहा गया है—

'बगला चतुरक्षर्या: प्रयोगं वद शङ्कर'।

इसके प्रत्युत्तर में ईश्वर कहते हैं—

'प्रयोग-तर्पणे चैव वक्ष्येऽहं तव पुत्रक।
तर्पणं देवतावासं तर्पणं सर्वसिद्धिदम्॥
तर्पणं मन्त्रसंस्कारं सर्वं च तर्पणं भवेत्।
तर्पणं द्रव्ययोगं च तत्संसिद्धं न संशय:'॥

तर्पण-योग—

(१) 'उलूकछेदनेनैव पवित्रग्रन्थिमाचरेत्।
तत्पवित्रेण संयुक्तं तर्पणस्यायुतेन च'॥ (सां.तं.)

(२) 'खररक्तेण सम्मिश्रमर्चितं जलतर्पणात्' । (सां.तं.)

(३) 'श्वानरक्तेण सम्मिश्रमर्चितं जलतर्पणात्' । (सां.तं.)

(४) 'उलूकरक्तसम्मिश्रवारिणा पूरितेन च ।
अयुततर्पणादेव जात्यन्धो भवति ध्रुवम्' ।। (सां.तं.)

(५) 'मार्जारबालरक्तेन मिश्रितं जलतर्पणात् ।
भ्रान्तचित्तो भवेच्छत्रुरयुताच्च न संशयः' ।।

(६) 'उलूकरक्तसम्मिश्रजलेनैव तु तर्पयेत्' । (सां.तं.)

(७) 'मेषस्य पुच्छरक्तेन मिश्रितं जलतर्पणात् ।
एतत् तर्पणयोगं च सिद्धात्सिद्धतरं सुत' ।। (सां.तं.)

तर्पण-प्रयोग

क्रौंचभेदन के—'तर्पणस्य प्रयोगं च वद मे करुणाकर'—कहकर प्रार्थना करने पर भगवान् शंकर ने तर्पण-प्रयोग के विधान का सुविस्तृत वर्णन किया है ।

तर्पणप्रयोग का विधान—

(क) **कृत्या-शान्तिक्रिया**—(१) सबसे पूर्व षोडशोपचार से यन्त्रराज की अर्चना की जानी चाहिए । उसके अनन्तर यन्त्र का तर्पण करना चाहिए । गुडोदक से ५०,००० तर्पण करना चाहिए—

'गुडोदकैस्तर्पणेन कुर्यात् पञ्चायुतं तथा' ।

इससे कृत्या-शान्ति सफल हो जायेगी ।

(ख) **वशीकरण एवं सम्मोहन क्रिया**—५०,००० की संख्या में तर्पण करने का विधान इस अभिचार-सिद्धि के लिए भी आवश्यक है ।

'वश्यं सम्मोहनं चैव भवेत्तर्पणमादरात्' ।

(ग) **जिह्वास्तम्भन क्रिया**—जिह्वा-स्तम्भन के लिए मोहिनी द्रव्य से सम्मिश्रित जल से तर्पण करना चाहिए । यह तर्पण नेत्रायुत (२०,०००) संख्या में निष्पादित होना चाहिए । इससे क्षुधा-तृष्णा-निद्रा का स्तम्भन भी हो जाता है । अर्थात् सारी इन्द्रियों की, सारी क्रियाओं एवं गतियों का स्तम्भन हो जाता है—

'गते भङ्गं च वाग्मौनं गात्रश्रोत्रे तथाक्षिकम् ।
क्षुधा तृष्णा च निद्रा च स्तम्भनं भवति ध्रुवम्' ।।

(घ) **विद्वेषण-क्रिया**—नीम और अर्क के पत्ते के रस को मिलाकर कुँए के जल से ५० हजार तर्पण करने पर विद्वेषण-क्रिया निष्पन्न हो जाती है ।

(ङ) **उच्चाटन-क्रिया**—वज्रार्क और क्षीर को परस्पर मिलाकर करकाम्भ (नारियल के जल) से अयुतत्रय तर्पण करने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ।

(च) **शत्रु के विनाश की क्रिया**—प्रेतान्न (प्रेतार्पित अन्न), प्रेतभूमि एवं प्रेताङ्गार को समान-समान मात्रा में रविवार के दिन लेकर और उसे जल से मिलाकर उसके निशायुत तर्पण से एक पक्ष में शत्रु का विनाश हो जायेगा।

(छ) **मारण**—यदि उक्त तर्पण में हयारि पत्र के द्रव्य को मिश्रित कर लिया जाय तो शत्रु की मारण-क्रिया सिद्ध हो जायेगी।

(ज) **पित्तरोगों का नाश एवं अन्य फल**—(१) यदि कर्पूर-मिश्रित जल से ५००० तर्पण किये जायें किन्तु इसे निष्ठापूर्वक अतन्द्रित होकर एक मास तक किया जाय तो पुराना ज्वर एवं पित्तरोग दोनों नष्ट हो जाते हैं। यदि चन्दनमिश्रित जल से तर्पण किया जाय तो कृत्रिमज ताप नष्ट हो जायेगा। यदि कस्तूरीमिश्रित जल से तर्पण किया जाय तो प्रयोक्ता को राज्य-प्राप्ति हो जायेगी।

(२) यदि पैष्टी से ऋषि अयुत (सप्तायुत = ७०,०००) तर्पण किये जायें तो वह व्यक्ति कुबेर के समान धनी बन जायेगा—'कुबेरसदृशः श्रीमान् जायते नात्र संशयः'।

(३) यदि माध्वी द्रव्य से मिश्रित शुद्ध जल से तर्पण किया जाय (१० हजार तर्पण किया जाय) तो व्यक्ति लक्ष्मीवान् बन जायेगा।

(४) यदि गोक्षीर से १०,००० तर्पण किया जाय तो प्रयोक्ता यथाभीष्ट धन की प्राप्ति कर लेगा।

(५) यदि प्रयोक्ता मट्ठा से तर्पण करे तो पैत्त्य-रोग नष्ट हो जायेगा।

(६) यदि प्रयोक्ता नारियल के जल से तर्पण करे तो जलदोष का निवारण हो जायेगा।

(७) यदि प्रयोक्ता हल्दी के जल से तर्पण करेगा तो यथाभीष्ट नारी उसकी ओर आकृष्ट हो जायेगी।

(८) यदि प्रयोक्ता श्यमन्त फूल से वासित जल से तर्पण करेगा तो पुत्र-प्राप्ति करेगा किन्तु तर्पण की संख्या १० हजार से न्यून नहीं होनी चाहिए।

(झ) **मूकत्व एवं सर्वनाश**—यदि प्रयोक्ता कदली के फल, गोक्षीर एवं शर्करा को समान-समान भाग में मिलाकर पलाष्टक (पल = ४ कर्ष की एक नाप) के माप का बनाकर जल के साथ उसका तर्पण करें तो शत्रु मूक हो जायेगा एवं उसका पूर्ण विनाश हो जायेगा।

(ञ) **उन्मादोत्पादन**—यदि प्रयोक्ता गधे एवं घोड़े के रक्त को जल से मिश्रित करके वेदायुत (४०,०००) तर्पण करे तो उसका शत्रु उन्मादरोग से आक्रान्त हो जायेगा।

(ट) (१) **मारण**—यदि प्रयोक्ता कौए के रक्त से मिश्रित जल से १० हजार तर्पण करे तो शत्रु व्रणाक्रान्त होकर मर जायेगा।

(२) **मारण**—यदि प्रयोक्ता कुत्ते के रक्त को जल में मिलाकर उससे तर्पण करे तो शत्रु श्वान की भाँति मृत्यु-कवलित होगा।

(३) **मारण**—यदि प्रयोक्ता बिल्ली के रक्त को जल में मिलाकर तर्पण करे तो उसका शत्रु ६ मास में क्षयरोगी होकर मर जायेगा।

(ठ) **शत्रु का विनाश**—यदि प्रयोक्ता सर्प के रक्त से मिश्रित जल द्वारा तर्पण करे तो शीघ्र ही शत्रु का विनाश हो जायेगा (जपसंख्या निशासहस्र होनी चाहिए)।

विशेष ध्यातव्य बिन्दु—जहाँ जप की संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है वहाँ जपसंख्या पंचायुत (५०,०००) माननी चाहिए—

'जपसंख्या यत्र नोक्ता भवेत् पञ्चायुतं सुत'।

जहाँ दिनों की संख्या का उल्लेख न किया गया हो वहाँ १५ दिन मानना चाहिए—

'दिनसंख्या यत्र नोक्ता पक्षमेकं न संशयः'।

सौभाग्यार्चा—सौभाग्यार्चा कर्म, ज्ञान, भक्ति, योग आदि किसी भी अर्चा में सम्मिलित नहीं है किन्तु तन्त्रपद्धति में है और बगलोपासना में भी स्वीकृत है—

(१) 'सौभाग्यार्चा विना पुत्र मन्त्रसिद्धिर्न जायते'[१]।
(२) 'मन्त्रान्ते च प्रकर्तव्यं सौभाग्यार्चनमेव च'[२]।

बलिदान

भगवती बगलामुखी की पूजा का एक अङ्ग बलिदान भी है। इसे प्रत्यक्ष एवं प्रतीक दोनों में से किसी भी स्वरूप में ग्रहण करके इस अङ्ग की पूर्ति की जाती है।

सभी धर्मों के साथ इसका तुलनात्मक विश्लेषण—यहूदी-धर्म के धर्मग्रन्थ बाइबिल की प्रथम पुस्तक GENESIS में कहा गया है कि Adam एवं Eve (आदिमानव और उसकी प्रियतमा) की प्रथम सन्तान (Cain) ने परमात्मा को फल चढ़ाया और दूसरी सन्तान (Abel) ने भेंड़ का गोश्त चढ़ाया। परमात्मा ने उपहार के रूप में भेंड़ का मांस तो स्वीकार कर लिया किन्तु Cain द्वारा समर्पित फल अस्वीकार कर दिया। यरुशलम के पूजागृह में आज भी हर पर्व पर यहोवा (परमात्मा) को बलि चढ़ाई जाती है। इसकी स्वीकृति ईसाई एवं इस्लाम धर्म में भी है। तन्त्र की शैव, शाक्त, वाममार्गी, अघोरी आदि अधिकांश शाखाओं में आज भी इसका प्रचलन है। पञ्च मकारों में मांस एवं मीन पूजा के द्रव्यों के रूप में आज भी स्वीकृत हैं। इतना होने पर भी समयमार्गी तान्त्रिक बलि को पूजा का अपरिहार्य अङ्ग मानकर पशुओं की बलि नहीं दिया करते।

१-२. सांख्यायनतन्त्र।

कहते हैं कि यहूदी धर्मावलम्बी राजा (David) ने अपने सबसे प्रिय पुत्र की ही बलि चढ़ा दी थी। अब भी इस्लाम एवं यहूदी आदि अनेक धर्मों में बलिप्रथा विद्यमान है।

किसी-किसी के मत में हवन के बाद या पूजा के बाद बलिदान किया जाना चाहिए।

बलिदान-प्रक्रिया—त्रिकोणावृत चतुरस्रमण्डल का निर्माण करके और 'ॐ आधारशक्तये नमः' यह मन्त्र पढ़कर और उसकी पूजा करके वहाँ आधारपूर्ण बलिपात्र संस्थापित करके—'ॐ बलिद्रव्याय नमः' ऐसा कहकर गन्ध एवं पुष्प से उसकी पूजा करके, अङ्गूठा एवं अनामिका के द्वारा सङ्केतित करके—'ॐ एह्येहि देविपुत्र ! बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर त्रिनेत्रज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' मन्त्र पढ़े और कहे—'एष बलिः बटुकाय नमः'। इसके बाद इस प्रकार प्रार्थना करे—

'बलिदानेन सन्तुष्टः बटुकः सर्वसिद्धिदः।
शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवितः'॥

फिर साधक अँगूठे एवं तर्जनी को मिलाकर इस मन्त्र का उच्चारण करे—

'ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः हुं स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय स्वाहा'। फिर कहे—'एष बलिः क्षेत्रपालाय नमः'। फिर प्रार्थना करे कि—

'वसामि तस्य क्षेत्रेऽस्मिन् क्षेत्रपालस्य किङ्कर।
प्रीतोऽयं बलिदानेन सर्वरक्षा करोतु मे'॥

इसके अनन्तर साधक तर्जनी, मध्यमा एवं अंगुष्ठ जोड़कर—'ॐ ॐ ॐ सर्वयोगिनीभ्यः सर्वडाकिनीभ्यः सर्वशाकिनीभ्यस्त्रैलोक्यवासिनीभ्यो नमः'। 'इमं पूजाबलिं गृह्णीत हुं फट् स्वाहा'। यह कहकर फिर कहे—'एष बलिः योगिनीभ्यां नमः'। इसके बाद प्रार्थना करे कि—

'या काचिद्योगिनी रौद्रा सौम्या घोरतरापरा।
खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीतां सदाऽस्तु मे'॥

इसके अनन्तर अंगूठे एवं मध्यमा अँगुली को मिलाकर साधक निम्न मन्त्र को पढ़ें—'ॐ गां गीं गूं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा'। फिर कहे—'एष बलिः गणपतये नमः'। फिर साधक प्रार्थना करें—

'अनेन बलिदानेन विघ्नवर्गसमन्वितः।
विघ्नराजेश्वरी देवी मे प्रसीदतु सर्वदा'॥

इसके अनन्तर समस्त अँगुलियों के साथ—'ॐ ॐ ॐ सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतपतिभ्यो नमः'। 'एष बलिः सर्वभूतेभ्यो नमः'—ऐसा कहे। फिर प्रार्थना करे—

'ॐ भूता ये विविधाकारा दिव्यभौमान्तरिक्षगाः।
पातालतलसंस्थाश्च शिवयोगेन भाविताः॥
ध्रुवाद्याः सत्यसन्धाश्च इन्द्राद्याश्च व्यवस्थिताः।
तृप्यन्तु प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम्'॥

प्रयुक्त मुद्रा के निम्न लक्षण हैं—

'अङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यां तु बटुकस्य भवेद् बलिः।
तर्जनीमध्यमानामाङ्गुष्ठैः स्यात् योगिनीबलिः॥
अङ्गुलीभिश्च सर्वाभिर्दद्याद् भूतबलिं द्विजः।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु क्षेत्रपालबलिर्भवेत्।
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां तु गणराजेश्वरस्य च'॥

इसके अनन्तर बगलामुखी का यन्त्र निर्मित करके—'ॐ आं आधारशक्तये नमः' ऐसा कहते हुए आधारशक्ति की पूजा करके, वहाँ पर साधार बलि रखकर और 'बलिद्रव्याय नमः' कहकर एवं पूजा करके—

'ॐ हुं हुं हुं ह्लीं बगले देवि! एह्येहि मम शत्रूणां रुद्रसूच्यग्रण वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा'। 'एष बलिः श्रीबगलादेव्यै नमः'। कहे। हवन या पूजा के बाद ही बलि दी जाने का विधान है। शास्त्र में पूजा-विधान के विषय में यह भी कहा गया है—

'बटुकादीन् समर्च्येवं कुलदीपान् प्रदर्शयेत्।
देवीभक्तः सुपिष्टेन कुर्याद् वेदाङ्गुलोन्नतान्॥
दीपान् डमरुकाकारान् त्रिकोणानतिशोभनान्।
कर्षाज्यग्राहिणाः कुर्यान्न सप्ताऽथ पञ्च च॥
अन्नस्तेजो बहिस्तेजः एकीकृत्य मितप्रमान्।
समस्तचक्रचक्रेशि सुते देवि नवात्मके।
आरार्तिकमिदं देवि! गृहाण मम सिद्धये'॥

मुद्रा-प्रदर्शन या मुद्रा-साधन

वैदिक विधान की कर्मकाण्डीय पद्धति में भी यज्ञादि के समय मुद्रा-प्रयोग[1] किया जाता है और भगवती बगलामुखी की साधना में भी। यथा—

'आवाहनस्थापनानि सन्निधापनमेव च।
सन्निवेशनमुद्रा च सम्मुखी प्रार्थनी तथा॥
एता मुद्राश्च तत्तोये दर्शयेत् साधकोत्तमः।
दर्शयेदङ्कुशेनैव अमृतीकरणं ततः'[2]॥

१. देखें—मुद्राविज्ञान एवं साधना। डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी।
२. सांख्यायनतन्त्र (४।८-९)।

भगवती बगलामुखी को आवाहिनी, स्थापिनी, सन्निधापिनी, सन्निरोधिनी तथा सम्मुखीकरणी—इन ५ मुद्राओं को प्रदर्शित करके 'हुं' से अवगुण्ठित करके, धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके, महामुद्रा से परमी करके, देवता के अङ्ग में षडङ्गन्यास करके लेलिहान मुद्रा से 'ॐ आं ह्रीं क्रों वं यं' से 'चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' इतना पढ़कर प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

यन्त्र-साधन और देव्युपासना

यन्त्र-निर्माणपद्धति एवं तज्जन्य सिद्धियाँ—

(१) यन्त्र-निर्माण एवं यन्त्र-पूजा—भगवती बगलामुखी के मन्त्र का जो यन्त्र है वह अत्यन्त तेजोमय है—'एतन्मनोर्यन्त्रमखण्डतेजः'। इस यन्त्र का प्रयोग यतेन्द्रियों के लिए भी दुर्लभ है—'यन्त्र-प्रयोगं यमिनां सुदुर्लभम्'।

इस यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—प्रथमतः बिन्दुत्रिकोण की रचना करे, फिर उसके ऊपर अष्टकोण की रचना करे और उसके ऊपर भूपुरद्वय की रचना करे। बिन्दु के मध्य में बगला के बीज को अंकित करे। उस बीज को कोणत्रितय में लिखे। अष्टपत्र में बगलागायत्री का अङ्कन करे। षट्कोणों में षट्त्रिंशदक्षरी विद्या का अंकन करे। वृत्तों में ५० वर्णों का अङ्कन करे। भूपुर में प्राणस्थापनक मन्त्र लिखे।

यन्त्र का निर्माण स्वर्णपट्ट पर या प्रादेशचतुरस्र में किया जाय। लेखनी स्वर्णवर्ण की हो। इस लेखन-कार्य का दिन भार्गववासर (शुक्रवार) हो। यन्त्र की रचना करने के अनन्तर साधक को चाहिए कि वह यन्त्र की पूजा करे। इसकी पूजा मूलमन्त्र के माध्यम से षोडशोपचारों द्वारा करनी चाहिए। शुद्ध स्थल में उगी हुई कोमल दूर्वा (दूब) इकट्ठी करके मन्त्रराज पढ़कर उसे प्रक्षालित करना चाहिए। मन्त्र के अन्त में 'नमः' पद जोड़ लेना चाहिए और फिर उस दूर्वा को आदरपूर्वक यन्त्र पर चढ़ा देना चाहिए। प्रतिदिन १००० मन्त्र पढ़कर प्रत्येक बार यन्त्र की पूजा करनी चाहिए—

'एवम्भूतं सहस्रं च पूजयेच्च दिने-दिने'।

यन्त्रपूजनोपरान्त की स्थिति—भगवती बगलामुखी के यन्त्र की विधि-विधान से पूजा करने के अन्त में भूत-प्रेत-पिशाचादि क्रूर खेचर एवं भूचर दुष्टात्माएँ आ जाती हैं—

'भूतप्रेतपिशाचाद्याः क्रूरखेचरभूचराः।
पूजनान्ते समायान्ति शिवस्य वचनं यथा'॥

यन्त्रार्चन को छोड़ना नहीं चाहिए प्रत्युत षोडशोपचारों एवं दूर्वा से उसकी पूजा करते ही रहना चाहिए।

(२) आभिचारिक कर्मों का प्रयोग-विधान—इस यन्त्र-पूजन से प्रयोक्ता को

सम्मोहन, वशीकरण, स्तम्भन, उच्चाटन, विद्वेषण, मारण आदि सारे आभिचारिक कृत्यों को निष्पादित करके उससे सिद्धि प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है—

'सम्मोहनं च वश्यं च द्रव्यलाभं भवेद्ध्रुवम्' ।

(१) **स्तम्भन-कार्य**—मंगलवार को बिभीतकोद्भूत पुष्प (बहेड़े का पुष्प) लाकर यन्त्र की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। इससे स्तम्भन-प्रयोग में सिद्धि प्राप्त होती है।

(२) **विद्वेषण-कार्य**—मान्त्रिक को पूर्ववत् पूजा निष्पन्न करके वह नीम और अर्क (मदार) के पुष्प से यन्त्र की पूजा करे। यदि पुष्प न मिले तो उनके पत्तों से ही पूजा करें। इससे विद्वेषण-क्रिया की सिद्धि होगी।

(३) **उच्चाटन-कार्य**—मान्त्रिक को चाहिए कि वह धतूर के पुष्पों से पूजा करे। इससे उच्चाटन-क्रिया की सिद्धि होगी।

(४) **विनाश-क्रिया**—प्रयोगाकांक्षी को जवा, तिन्दुक (तेंदू) का पुष्प लेकर यन्त्र का पूर्ववत् विधि-विधान से पूजन करना चाहिए। इससे प्रयोक्ता द्वारा आकांक्षित शत्रु-विनाश सफलीभूत होगा।

(५) **ज्ञान, शक्ति एवं वैराग्य की प्राप्ति**—यदि प्रयोक्ता का अभीष्ट ज्ञान, शक्ति एवं वैराग्य की प्राप्ति हो तो उसे चाहिए कि वह श्यमन्त पुष्प द्वारा पूर्ववत् यन्त्रार्चन करे। इस अर्चन से वातरोग भी नष्ट होता है किन्तु इसके लिए विधान पृथक् है—

'नन्द्यावर्त्तैश्च कुसुमैर्वातरोगं व्यपोहति' ।

इतना ही नहीं इससे वेद एवं शास्त्रों के ज्ञाता पुत्र-सन्तान की भी प्राप्ति होती है।

(६) **वाग्मिता एवं सर्वज्ञता की प्राप्ति**—पूर्ववत् पूजा से साधक मन्दबुद्धि का होने पर भी वाग्मी एवं सर्वज्ञ हो जाता है। किन्तु इसके लिए पलाश के फूल से पूजा करनी चाहिए।

(७) **ईप्सित प्राप्ति एवं पुत्र-कन्या प्राप्ति**—एतदर्थ अशोकपुष्पों से पूजा करनी चाहिए। एतदर्थ तुलसीमञ्जरी से भी पूजा करनी चाहिए।

(८) **ज्वर एवं शीतज्वर की शान्ति**—यदि चम्पा के फूलों से पूजा की जाय तो शीतज्वर एवं यदि मल्लिका के फूलों से पूजा की जाय तो ज्वरों का निवारण होता है।

(९) **मेहरोग का निवारण**—यदि जाती-कुसुमों (चमेली के फूलों) से पूजा की जाय तो मेहरोग का निवारण होता है।

जो इस प्रकार यन्त्रपूजन करता है उसे जप एवं होम करने की भी आवश्यकता नहीं होती—

'एवं च पूजयेद्यन्त्रं न जपैर्न च होमकैः ।
प्रयोगसिद्धिर्भवति बगलायाः प्रसादतः' ॥

(१०) **राज्य-प्राप्ति**—यदि प्रयोक्ता पूर्वोक्त यन्त्र निर्मित करके उसकी प्राणस्थापनपूर्वक षोडशोपचारों से पूजन करता है और चन्दन का लेपन करता है तथा साथ ही बाणायुत जप (५०,००० जप) करता है तो उसे राज्य की प्राप्ति होती है।

(११) **विनाश-कार्य की सिद्धि**—यन्त्रार्चन करने के बाद यदि यन्त्र पर कस्तूरी का लेपन किया जाय और साथ ही न्यास एवं ध्यानपूर्वक नित्यप्रति बाणसहस्र (५०००) मन्त्र का जप किया जाय तो कृत्या एवं ग्रहादिक सारे विघ्नों एवं आपदाओं का तत्क्षण विनाश हो जाता है।

(१२) **वशीकरण, सम्मोहन एवं द्रव्यसंग्रह हेतु प्रयोग**—इसी अभीष्ट सिद्धि के लिए मास पर्यन्त पूर्ववत् जप करना चाहिए तथा अन्य विधानों का—यथा यन्त्र-लेपन भी पालन करना चाहिए।

(१३) **स्तम्भन**—इस अभीष्ट की प्राप्ति हेतु हरिद्रा और तालक (हरताल) को मदार के दूध में पीसना चाहिए तथा उस द्रव्य से यन्त्र का लेपन करना चाहिए। यह लेपन तीनों सन्ध्याकालों में किया जाना चाहिए। इसे प्रतिदिन ३००० दिनों तक किया जाना चाहिए। इससे नगर, ग्राम और रण तीनों को सम्मोहित किया जा सकता है।

(१४) **विद्वेषण कार्य**—सरसों (सर्षप), कटुत्रय, वज्रार्क के दूध को एक में सम्मिश्रित करके और उसका यन्त्र पर लेपन करे। यह विधान प्रतिदिन ६००० दिनों तक चलता रहे। इससे विद्वेषण कार्य अवश्य सिद्ध हो जायेगा।

(१५) **उच्चाटन-कार्य**—प्रयोगाकांक्षी को चाहिए कि वह धतूर एवं तिन्दुक के बीज को तालक के साथ मिलाकर नीम के पत्तों के रस में मिलाकर उस द्रव से यन्त्र का लेपन करे। ऐसा एक मास तक प्रयोग करते रहने पर नगर, ग्राम, रण एवं राजगृह से उच्चाटन हो जाता है।

(१६) **मारण-कार्य**—

(क) मारण नामक आभिचारिक कर्म को सिद्ध करने हेतु प्रयोक्ता को चाहिए कि वह प्रेतान्न, प्रेतभूमि, प्रेतागार सभी को समान-समान भागों में लेकर अर्कवज्र एवं बकरी के दूध में मिश्रित करके तीनों समय उसका लेपन करके दीप की शिखा से यन्त्र को सन्तप्त करना चाहिए। इसके अतिरिक्त नित्य १० हजार मन्त्रराज का जप करना चाहिए। इससे व्यक्ति १५ दिनों में मर जायेगा।

(ख) वज्रक्षीर का तीनों समयों में पूर्ववत् लेपन से या नीम के तेल से यथापूर्ववत् लेपन करने से भी व्यक्ति का मारण होता है। तिल को तेल से मिलाकर उसका मर्दन करके और यन्त्र का त्रिकाल लेपन करके दीपशिखा से यन्त्र को १५ दिनों तक सन्तप्त करने से भी शीघ्र मारण कर्म सिद्ध होता है। इससे तापज्वर एवं ६ मासों में मृत्यु हो जाती है।

(ग) इसी विधान में थोड़ा परिवर्तन करके प्रथमतः तो पूर्ववत् यन्त्रलेपन करे, फिर जप एवं सन्तापन करे तो शत्रु की २१ दिनों में मृत्यु हो जाती है।

(घ) यदि प्रयोक्ता धतूर को सरसों के साथ मर्दित करके यन्त्र का लेपन करे तो शत्रु गुल्मरोगी हो जाता है।

(ङ) यदि प्रयोक्ता नीम के पत्ते का रस विषकन्द के काँटे एवं विषतिन्दुक के (रस या काँटे) को समान-समान भागों में लेकर उनको मिलाकर उनसे यन्त्र का लिम्पन करके ६००० मन्त्रों का जप करे तो भी शत्रु की मृत्यु १५ या २२ दिनों में हो जायेगी।

(च) यदि मरीचि एवं त्रिफल को आरनाल द्वारा मर्दित करके उससे त्रिकाल यन्त्रलेपन किया जाय, तीनों कालों में जप किया जाय एवं कर-पाद में दाहन किया जाय तो शत्रु मण्डल (कुष्ठरोग) से आक्रान्त होकर मर जायेगा या मण्डल-काल के भीतर मर जायेगा।

(छ) यदि गोमय का लेप किया जाय तो शत्रु गुल्मरोगी हो जायेगा।

(ज) यदि गोमूत्र और बकरी का मूत्र मिश्रित करके उससे लेपन किया जाय तो शत्रु पैत्त्यरोगी होकर शीघ्र मर जायेगा (या अर्धमण्डल काल में मर जायेगा)।

(झ) यदि बकरे (बकरी) के रक्त से यन्त्र का लेपन किया जाय तो शत्रु भ्रान्त हो जाता है। यदि मत्कुण (खटमल) के रक्त से यन्त्र का लेपन किया जाय तो शत्रु उन्मादी हो जायेगा।

यन्त्र-निर्माण और यान्त्रिक अर्चा

यन्त्र-निर्माण का विधान—

'बिन्दुत्रिकोणषट्कोणवृत्तत्रयविभूषितम् ।
षट्कोणं चैव वृत्तं च भूपुरद्वयसंयुतम् ॥
मध्ये लिखेन्महामन्त्रं बगलाहृदयं तथा।
त्रिकोणेषु लिखेद्बीजं बगलाख्यं सुपावनम् ॥
षट्कोणे विलिखेन्मन्त्रं षट्त्रिंशदक्षरं तथा।
शताक्षरीमहामन्त्रमाद्यवृत्ते लिखेत्क्रमात् ॥
तस्योपरि च संवेष्ट्य बगलाबीजमादरात्।
तस्योपरि च षट्कोणं बगलाचतुरक्षरम् ॥
कोणे कोणे लिखेन्मन्त्रं प्रत्येकं च कुमारक।
एवं च विलिखेद्यन्त्रं स्वर्णे च रौप्यताम्रयोः ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां भौमवासरे।
उत्तराभिमुखी भूत्वा लेखिन्या स्वर्णजातया' ॥

(सांख्यायनतन्त्र)

यन्त्र-महत्त्व—तान्त्रिक पूजा, आभिचारिक क्रियाओं के निष्पादन एवं भगवती की किसी भी उद्देश्य से की जाने वाली पूजा में यन्त्र-पूजन आवश्यक है। यन्त्र भगवती का आसन है। यन्त्र भगवती का घर है। यन्त्र भगवती का शरीर है।

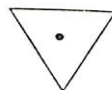
भगवती बगला की यन्त्रान्तर्गत पूजा का विधान

(१) यन्त्र के बिन्दु के मध्य स्वर्णसिंहासनासीन, चिन्मयी एवं सर्वसिद्धिप्रदा, चतुर्भुजा या द्विभुजा, पीतवर्णा, मदाघूर्णा तथा हाथों में गदा एवं जीभ पकड़े हुए स्थित भगवती बगलामुखी की पूजा करनी चाहिए—

'बिन्दुमध्ये च सम्पूज्य स्वर्णसिंहासनोपरि।
चिन्मयीं बगलां देवीं सर्वसिद्धिप्रदायिकाम्॥
चतुर्भुजां वा द्विभुजां गदाजिह्वाञ्च बिभ्रतीम्।
पीतवर्णां मदाघूर्णामर्चयेन्मूलविद्यया'॥

यह पूजा भी भगवती की मूल विद्या को केन्द्र में रखकर की जानी चाहिए—'अर्चयेन्मूलविद्यया'।

(२) यन्त्र में जो त्रिकोण है उसके मध्य बिन्दु है; यथा—



इस बिन्दु में तो भगवती बगलामुखी की उपासना करनी चाहिए किन्तु इसके बाह्य भाग में जो त्रिकोण है उसमें—सरस्वती, उमा (गौरी) एवं रमा की पूजा की जानी चाहिए।

'त्रिकोणे पूजयेत्पुत्र वाणीं गौरीं रमां क्रमात्'।

इनकी पूजा एतत्सम्बद्ध मन्त्र—'बीजाक्षर' एवं उसके वाहन के साथ की जानी चाहिए।

(३) तदुपरान्त पञ्चकोणों में पञ्चास्त्र-पूजन किया जाना चाहिए। पूर्व कोणों में अस्त्र एवं बगलामुखी दोनों की पूजा करनी चाहिए किन्तु द्वितीय कोण में अस्त्रराज की पूजा की जानी चाहिए। इसके साथ ही मन्त्र-समन्वित भगवती उल्कामुखी की पूजा की जानी चाहिए। तृतीय कोण में अस्त्रराज की पूजा करके भगवती ज्वालामुखी की उनके मन्त्र के साथ पूजा की जानी चाहिए। चतुर्थ कोण में अस्त्रराज की पूजा करके जातवेदमुखी की उनके मन्त्र के साथ पूजा की जानी चाहिए। पञ्चम कोण मे अस्त्रराज की पूजा करने के अनन्तर भगवती बृहद्भानुमती देवी की उनके मन्त्र के साथ पूजा की जानी चाहिए। इस प्रकार पञ्चकोणों में पञ्चास्त्र का सम्यक् पूजन करना चाहिए। यन्त्र की पूजा मूल मन्त्र से ही की जानी चाहिए।

(४) इसके ऊपर (पञ्चकोणों के ऊपर) जो अष्टकोण हैं उनमें दिक्पालों की पूजा की जानी चाहिए। इन दिक्पालों की भी पूजा उनके वाहनों, आयुधों एवं उनकी तन्निहित शक्तियों के साथ करनी चाहिए।

(क) उसके ऊपर मातृकाष्टक की पूजा की जानी चाहिए।

(ख) उसके ऊपर विघ्नेशाष्टक की पूजा की जानी चाहिए।

(ग) उसके ऊपर भैरवाष्टक की पूजा की जानी चाहिए।

(५) भगवती बगलामुखी की पूजा—(क) शालग्राम शिला, (ख) वह्निमण्डल या (ग) कन्या के मध्य की जानी चाहिए। इस पूजाधिष्ठानत्रय में श्रेष्ठता का क्रम इस प्रकार है—

(अ) 'उत्तमा युवतीपूजा'।

(ब) 'मध्यमा वह्निमण्डले'।

(स) 'अधमा च शिलापूजा—क्रम एव कुमारक'।

पुरश्चरण-विधान में इन सभी की (भगवती बगलामुखी, दिक्पाल, मातृकाष्टक, विघ्नेशाष्टक, भैरवाष्टक आदि सभी की वाहन, शक्ति, आयुध आदि समेत सभी आवरण-देवताओं एवं अन्य अङ्गों की) पूजा की जानी चाहिए।

(६) **पूजा के विविध द्रव्य**—पूजा के विविध द्रव्यों को ३ वर्गों में विभाजित किया गया है जो निम्नाङ्कित हैं—(क) गौडी, (ख) माध्वी और (ग) पैष्टी। सर्वोत्तम द्रव्य गौडी है—

'गौडी माध्वी च पैष्टी च गौडी चैवोत्तमोत्तमा'।

(७) छाग, कुक्कुट एवं मत्स्य बगला के प्रिय खाद्य हैं। (सां.तं.)

(८) **भगवती की पूजा का समय**—वैसे तो भगवती की पूजा अहर्निश की जा सकती है किन्तु पूजा का सर्वोत्तम काल त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न एवं सूर्यास्त) का काल है। अर्धरात्रि भी उत्तम है तथापि इसकी उपेक्षा की जानी चाहिए, क्योंकि यह समय क्षुद्र देवों के प्राबल्य एवं विचरण का काल होता है—'त्रिकालं पूजयेद्देवीं त्रिकालं प्रजपेन्मनुम्'। इन तीनों कालों में भगवती की पूजा एवं उनके मन्त्र का जप करना चाहिए।

यह सुनिश्चित काल ही पूजा के लिए वरेण्य क्यों है ?

ये तीनों काल सन्ध्याएँ हैं। चतुर्थ याम चतुर्थ सन्ध्या है। कालत्रय की सन्ध्या वेला में इडा-पिङ्गला नाड़ियों की जागतिक गतियाँ एवं व्यापार बन्द हो जाते हैं और उनके स्थान पर सुषुम्णा नाड़ी (कालभोक्त्री सुषुम्णा नाड़ी) की आध्यात्मिक, दैवीय ऊर्जा वाली एवं ऊर्ध्वमुखी गति का सञ्चार होता है जो कि प्रत्येक आध्यात्मिक साधना के लिए वरेण्य होता है।

भगवती की उपर्युक्त साधना में सिद्धि के परिणाम

उक्त साधना में सिद्धि प्राप्त होने पर साधक को अचिन्त्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और परिणामस्वरूप वह असामान्य शक्तिसम्पन्न हो उठता है।

साधना की सिद्धि और तज्जन्य फल

१. ऐसे सिद्ध व्यक्ति को देखकर ही वाग्मी एवं विद्वान् तथा उनकी प्रज्ञा भाग चलती है –'तेषां प्रज्ञा पलायन्ते तमः सूर्योदये यथा'।

२. बगला मन्त्र-सिद्ध व्यक्ति के हृदय में प्रविष्ट होते ही प्रतिवादी (यदि वह बृहस्पति के समान प्रज्ञावान् ही क्यों न हो) स्तब्ध रह जाता है।

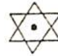
३. इस समय बगला-सिद्ध को भगवती बगलामुखी की प्रज्ञाकर्षण शक्ति एवं उनकी आकर्षण शक्ति का सम्यक् स्मरण करना चाहिए।

१. भगवती बगला के मन्त्र को सिद्ध कर लेने वाले के स्थान से ५ कोस या १० मील पर्यन्त अन्य लोगों की सारी विद्याएँ असिद्ध एवं फलशून्य हो जाती हैं—'बगलामन्त्रसिद्धश्च यत्र तिष्ठति भूतले। पञ्चक्रोशप्रमाणेन विद्या नान्या प्रभासते'॥

२. कोई भी अन्य विद्या, देवशक्ति तथा कोई भी अन्य प्रयोग इस सीमा में सफल नहीं हो पाता।

भगवती बगलामुखी की यह विद्या सिद्ध होने पर सारी विद्याओं को यह कवलित कर लेती है—'ग्रसनी सर्वविद्यानां बगलैकैव भूतले'।

'श्रीपीतां निधाय हृदि वामपाणिना जिह्वां समुत्पाट्य च कोपसंयुताम्।
गदाभिघातेन च भालदेशे अम्बां भजेऽहं बगलां हृदम्बुजे'॥ (१३।१)



षष्ठ अध्याय

भक्तिमार्गीय साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

'पूजयेत् परया भक्त्या पीतद्रव्येण पुत्रक !' (सांख्यायनतन्त्र)

भगवती बगलामुखी की साधना का केन्द्र भक्ति भी है।

भक्ति का स्वरूप

श्रीमद्भागवत (१।८।३६) में कहा गया है कि जो भगवान् के चरित्रों का श्रवण, गान, कीर्तन, स्मरण एवं स्तवन करते हैं वे ही भगवान् के चरणकमलों का दर्शन कर पाते हैं—

'शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं, भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्'॥

नवधा भक्ति और उसका स्वरूप—

(१) श्रवण : 'श्रवणं नामचरितगुणादीनां श्रुतिर्भवेत्'।
(२) कीर्तन : 'नामलीलागुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्तनम्'॥
(३) स्मरण : 'यथा कथञ्चिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते'।
(४) पादसेवन : भगवान् के चरणों की सेवा एवं ध्यान ही पादसेवन है।
(५) अर्चन : 'शुद्धिन्यासादिपूर्वाङ्गकर्मनिर्वाहपूर्वकम्।
अर्चनं तूपचाराणां स्यान्मन्त्रेणोपपादनम्'॥
(६) वन्दन : 'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो, दशाश्वमेधावभृथैर्न तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म, कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय'॥
(७) दास्य : 'दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैङ्कर्यमपि सर्वथा'।
(८) सख्य : 'विश्वासो मित्रवृत्तिश्च सख्यं द्विविधमीरितम्।
प्रति तव गोविन्द न मे भक्तः प्रणश्यति।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् सन्धारयाम्यहम्'॥

(९) आत्मनिवेदन :

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'॥

'मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा, निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो, मयात्मभूताय च कल्पते वै'॥

महर्षि नारद की दृष्टि : भक्ति का स्वरूप—'गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण-

वर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्। तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति'।

गौणी भक्ति

सात्त्विकी भक्ति	राजसी भक्ति	तामसी भक्ति	आर्त की भक्ति	जिज्ञासु की भक्ति	अर्थार्थी की भक्ति

प्रेमाभक्ति—प्रेमाभक्ति के ११ प्रकार हैं।

भक्तिमार्गीय साधना और उसका स्वरूप

भक्ति किसी भक्त की गलदश्रु भावुकता मात्र नहीं है प्रत्युत यह परमात्मा की आह्लादिनी शक्ति है।

'अनिवर्चनीयप्रेमस्वरूपम्' कहकर इसे अकथ्य कहा गया है। भक्ति भगवान् की आनन्द शक्ति है। राधा, सीता तथा कृष्ण की गोपियाँ उसी शक्ति का प्रतीक हैं। नारद ने भक्ति को परमप्रेमरूपा एवं अमृतस्वरूपा कहा है। वे कहते हैं—'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च'।

इसी आह्लादिनी शक्ति में मातृत्वभाव की अनुभूति की अवस्था में भावविह्वल होकर ज्ञानी शंकराचार्य को भक्त की भाँति यह कहना पड़ा कि—'सत्यपि भेदापगमे नाथ! तवैवाहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो वै तरङ्गः, न तु तरङ्गो वै समुद्रः'। ठीक भी है, समुद्र की तरङ्गें होती हैं तरङ्गों का समुद्र नहीं होता। अतः 'तवैवाहं न मामकीनस्त्वं' कथन समीचीन ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में शरणागति रूप भक्ति पर बल देते हुए कहते हैं—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'॥

तुलसीदास की दृष्टि में तो जप, योग, वैराग्य, यज्ञ, दान, दया, दम आदि सारे साधन (भक्ति की तुलना में) व्यर्थ हैं—

'जप जोग बिराग महामख साधन दान दया दम कोटि करै
मुनि-सिद्ध सुरेसु गनेसु महेसु से सेवत जन्म अनेक मरै।
निगमागम ग्यान पुरान पढ़ै, तपसानल में जुगपुञ्ज जरै।
मनसों पनु रोपि कहै तुलसी, रघुनाथ बिना दुख कौन हरै'॥

तप, तीर्थयात्रा, वैराग्य, ज्ञान आदि व्यर्थ के कथन हैं—

'न मिटै भवसङ्कटु, दुर्घट है तप, तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिरागु, न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँठ जटो'॥

अर्थात् ये ज्ञान, वैराग्य आदि के उपदेश झूठे हैं, फोकट हैं और छल (जटने की क्रिया) हैं—

'सबु लागत फोकट झूँठ जटो'।

अत: सुख की कामना हो तो मात्र अहर्निश राम नाम का जप करना ही एक मात्र विकल्प है—

'तुलसी जो सदा सुखु चाहिअ तौ रसना निसि बासर रामु रटो'।

ज्ञानमार्गियों की दृष्टि में भक्ति का स्वरूप

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—

भक्ति साधन तो है किन्तु साध्य नहीं है। भगवान् शङ्कराचार्य विवेकचूडामणि में कहते हैं कि—

(१) मोक्ष की कारण-सामग्री में मात्र भक्ति ही श्रेष्ठ है अर्थात् भक्ति श्रेष्ठतर साधन है—'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'।

(२) भक्ति का तात्त्विक स्वरूप निम्नाङ्कित है—भक्ति स्वस्वरूपानुसन्धान या स्वात्मतत्त्वानुसन्धान है—

'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।
स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगु:'[१]॥

भगवान् शङ्कराचार्य एवं ज्ञानमार्गियों की दृष्टि में भक्ति प्रेम की रसात्मक अनुभूति नहीं है। यह प्रेमाभक्ति एवं भावभक्ति भी नहीं है। यह गौणी या साधन भक्ति भी नहीं है। यह वैष्णवों की साध्यभक्ति भी नहीं है। यह मुक्ति का साधन तो है किन्तु शङ्कराचार्य की दृष्टि से है। वैष्णवों की दृष्टि से तो यह साध्य है अत: उसे मुक्ति की भी अपेक्षा नहीं है। क्योंकि भक्तगण—'मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने'।

भक्तों के मत में भक्ति स्वयमेव साध्य है अत: किसी का साधन नहीं है। भक्तिमार्गियों का आराध्य तो ईश्वर है और ईश्वर का आराधक जीव है। पञ्चदशीकार स्वामी विद्यारण्य की दृष्टि के अनुसार ईश्वर और जीव दोनों मायारूपी कामधेनु के बछड़े हैं—

'मायाया: कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ'[२]॥

भक्ति तो भक्त, भजन एवं भजनीय के द्वैत को लेकर चलती है अत: द्वैतात्मिका होने के कारण वह अज्ञान या अविद्या है[३]।

षोडशोपचारपूजन

बगलामुखी की साधना में षोडशोपचारात्मक पूजा का भी विधान है जो कि भक्ति का एक अङ्ग है—

---

१. विवेकचूडामणि। २. पञ्चदशी (वेदान्त का ग्रन्थ)। ३. शङ्कराचार्य : शारीरक भाष्य।

'षोडशैरुपचारैश्च धूपाद्येनैव विन्यसेत्' ।

भगवती बगला की हृदयकमल में स्थापना—आचार्य या गुरु का कार्य है कि वह भगवती बगला को शिष्य के हृत्कमल में स्थापित करे—

'स्वहृत्कमलमध्यस्थां विद्यां ज्योतिर्मयीं पुनः ।
शिष्यस्य हृदयं चैव प्रविशन्तीं विभावयेत्'[१] ॥

परापूजा तो स्वात्मैक्य है। यह लक्ष्य भी बगलोपासना में अन्तर्निविष्ट है।

स्वात्मैक्य-विधान—षट्चक्रभेदन नामक यौगिक क्रिया के द्वारा साधक को भगवती बगला रूपी परात्मा (जगदात्मा) के साथ एकीभूत हो जाना चाहिए—

'षट्चक्रभेदनं कृत्वा स्वात्मैक्यं च विभाव्य च' ।

ध्यान—भक्ति की साधना में भी ध्यान का महत्त्व कम नहीं है। बगलोपासना में इस तत्त्व का बार-बार उपदेश दिया गया है—

१. 'एवं ध्यात्वा तु देवेशीं प्रातःसन्ध्यां समाचरेत्' ।
२. 'ध्यानेन मन्त्रसिद्धिः स्याद्ध्यानं सर्वार्थसाधनम्' ।
३. ध्यानं विना भवेन्मूकः सिद्धमन्त्रोऽपि पुत्रक' ॥
४. 'ध्यानं यत्नात्प्रवक्ष्यामि ध्यानं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते ध्यानं कुर्यात्समाहितः'[२] ॥

मोक्ष—यद्यपि १० महाविद्याओं के अर्चा-विधान में आभिचारिक कर्मों के अनुष्ठान (निष्पादन) की भी स्वीकृति है किन्तु मोक्ष-साधना का भी कम महत्त्व नहीं है। इसीलिए उत्तम मुमुक्षु साधक के लिए कहा गया है कि—'मुमुक्षुभिर्न कर्तव्या परपीडा कदाचन'।

यन्त्र-निर्माण एवं यन्त्र-पूजन—तान्त्रिक पूजा-विधान में यन्त्र की स्थापना एवं उसके पूजन का अनिवार्य विधान है। बगलोपासना की तो प्रत्येक मन्त्रोपासना में इसकी महत्ता है—

'पूजयेद्यन्त्रराजं च षोडशाद्युपचारकैः' ।

मोक्ष—'तारादि प्रजपेन्मन्त्रं मोक्षार्थी च कुमारक'। बगलोपासना अभिचार सिद्धि ही नहीं ज्ञान-वैराग्य भी प्रदान करता है—'ज्ञानं शक्तिं च वैराग्यं लभते च सुनिश्चितम्'।

भगवती बगलामुखी का अर्चा-विधान

ध्यान— 'सुधाब्धौ रत्नपर्यङ्के मूले कल्पतरोस्तथा ।
ब्रह्मादिभिः परिवृतां बगलां भावयाम्यहम्' ॥ (१४।१)

१. सां. तन्त्र (३।२७)। २. सां. तन्त्र (७।१०)।

पूजा-विधियाँ

सृष्टिपूजा	स्थितिपूजा	संहारपूजा
(केरल में अनुष्ठित)	(गौड देश में अनुष्ठित)	(कामरूप में अनुष्ठित)
(गर्भकौलागम क्रमानुसार)	स्थितिमार्ग (गुप्तकौलागम के क्रमानुसार)	संहारार्चन (कामरूपागम के क्रमानुसार)

प्रश्न—आचार्य सांख्यायन किस मार्ग एवं किस आगमोक्त पूजा-विधान के अनुयायी एवं उपदेष्टा थे ?

उत्तर—गौडागम एवं स्थित्यर्चा के।

गौडागम-विधान (सौभाग्यार्चा)—(१) किसी सर्वाङ्गसुन्दरी, श्यामा, सर्वावयवशोभिता, नवोढा, पुष्पिणी विप्रकन्या की कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णमासी को या भौमवार को या रात्रि के समय भृगुवार को उसकी सविधि अर्चना करनी चाहिए।

इस अर्चना-विधान में (उक्त तिथि पर) पर्यंकासीना कन्या के शरीर पर सुगन्धित तेल से (शरीर की) मालिश, चमेली एवं चम्पक आदि फूलों से अलंकृतीकरण; 'लक्ष्मीसूक्त' से सर्वाङ्गलेपन, चन्दन-लेपन, षोढ़ान्यास, बगलापञ्जरन्यास; 'श्रीसूक्त' के 'गन्धद्वारां' मन्त्र द्वारा कस्तूरीलेपन, मूल मन्त्र द्वारा पुष्पमाला-समर्पण, द्रव्यार्पण एवं मन्त्रजप आदि इस अर्चा-विधान के अङ्ग हैं।

(२) पुरश्चरण के मध्य में प्रति शुक्रवार को या पूर्णमासी की तिथि पर सौभाग्यार्चन किया जाना चाहिए।

इस प्रयोग के बिना कलियुग में सिद्धि पाना सम्भव नहीं है।

सौभाग्यार्चन एवं उसके कठोर नियम

(क) 'सौभाग्यार्चां विना पुत्र न भवेज्जपकोटिभिः'।

(ख) यही सौभाग्यार्चा परम 'मन्त्रसिद्धिकर' है और इसके बिना—'एतत्पूजां विना पुत्र प्रयोगो न भवेत्कलौ'। अर्थात् इस पूजा के बिना करोड़ों जप करने पर भी सिद्धि प्राप्य नहीं है। (१४।१९)

(अ) सौभाग्यार्चन-विधान के नियम

अभिमानाष्टक का त्याग	एषणात्रय का त्याग	पञ्चेन्द्रियासक्ति का त्याग

'अभिमानाष्टकं त्यक्त्वा, त्यक्त्वा चैवेषणात्रयम्।
त्यक्त्वा पञ्चेन्द्रियासक्तिं, सौभाग्यार्चनमाचरेत्'॥

(१४।२०)

(आ) सौभाग्यार्चन के अन्य नियम

सुख-दु:ख में समत्वदृष्टि-स्थापन	लाभ-हानि में समत्व-दृष्टि	जय-पराजय में समत्व दृष्टि	शीत एवं उष्ण की संवेदना में समदृष्टि	षोढान्यास

(१४।२१-२२)

इन नियमों का पालन न करने पर साधक को सिद्धि भी प्राप्त नहीं होगी और वह रौरव नरक में जायेगा—'पतित: स भवेत्पुंसां रौरवं नरकं व्रजेत्'।

(इ) सौभाग्यार्चन के शेष नियम

बाह्याभ्यन्तर में अभेद ज्ञान की प्रतिपत्ति, अन्यथा देवता द्वारा शाप	संकल्प-विकल्प का त्याग	शुद्ध मानसत्व (अन्यथा पतित एवं भ्रष्ट होने के पूर्ण अवसर रहेंगे)	जितेन्द्रियत्व, सुखाभिलाषा का त्याग (सुख-कामना होने पर शाप)	स्वास्थ्यावेश की विधि का परिज्ञान (अन्यथा पतन)

(१४।२३-२६)

सौभाग्यार्चन के दुरुपयोग के परिणाम

जो कोई साधक इस सौभाग्यार्चन के समय प्रयोगार्थ या अर्चनार्थ सत्कन्या के प्रति मन:क्षोभजन्य वासनाओं से आकुल होता है वह तत्काल भ्रान्तचित्त (पागल) हो जाता है, चाहे वह बृहस्पति के समान ही क्यों न हो।

सौभाग्यार्चन-विधान में मानसिक अनुशासन

साधक को चाहिए कि सौभाग्यार्चन के समय अध:पतन की पूर्ण सम्भावनाएँ रहती हैं अत: उसे अपनी चित्तवृत्तियों को सुस्थिर, सुसंस्कृत एवं संयमित रखना चाहिए—

'नोत्पादयेद्वेदनां च मनश्चैव शरीरयो:।
वेदनां जनयेद्यस्तु स नर: पतितो भवेत्॥
सङ्कल्पं च विकल्पं च त्यक्त्वा तु शुद्धमानस:।
कुर्यात्सौभाग्यपूजां च नोचेद् भ्रष्टो भवेन्नर:॥
जितेन्द्रिय: सुखं त्यक्त्वा कुर्यात्सौभाग्यपूजनम्।
सुखार्थं कुरुते योऽसौ देवताशापभाग्भवेत्॥
स्वस्थावेशविधिं चैव न ज्ञात्वा क्रौञ्चभेदन।
य: करोत्यर्चनं पुत्र स विप्र: पतितो भवेत्॥
य: सत्कन्यां मन:क्षोभं करोति भजनेऽर्भक।
भ्रान्तचित्तो भवेत्सद्यो वाचस्पतिसमोऽपि वा'॥

(क) **नारी-चयन का विधान**—सौभाग्यार्चन हेतु जिस कन्या या नारी का चयन किया जाता है उसके सम्बन्ध में भी एक निश्चित अनुशासन-बद्धता या नियम-प्रतिबद्धता है।

(ख) **नारी-चयन और उपयुक्त नारी**—१. स्वपत्नी, २. भ्रातृपत्नी, ३. गुरु-पत्नी, ४. दीक्षित रजकी, ५. कुलालकन्या, ६. पुलिन्दकन्या, ७. ऋषिपत्नी।

१. स्वपत्नी, भ्रातृपत्नी, गुरुभार्या (किन्तु सभी युवती हों) (सांख्यायनमत)।

२. दीक्षित रजकी, कुलाल-कन्या, पुलिन्द-कन्या (मृकण्डु-मत)।

३. ऋषिपत्नी (दुर्वासा ऋषि का मत)।

४. सर्वलक्षणसंयुक्ता पुष्पिणी (मातङ्ग मुनि का मत)।

(ग) **गुरु का मार्ग-निर्देशन**—इस अर्चना-पद्धति में (या सिद्धिमार्ग में) बिना गुरु के सिद्धि पाना सम्भव नहीं है—

'सिद्धिमार्गमिदं पुत्र ! नास्ति सिद्धिं गुरोर्विना।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अर्चयेद् गुरुमादरात्'॥

भगवती बगलामुखी का षोडशोपचारात्मक पूजन और श्रीसूक्त

भगवती का पञ्चोपचार, षोडशोपचार, षट्त्रिंशदुपचार आदि अनेक उपचारों से पूजन किया जाता है। पूजन के समय तत्सम्बद्ध श्लोक या मन्त्रों का भी प्रयोग करना चाहिए।

विशेष ध्यातव्य—यदि वेदों में महामहिमान्वित श्रीसूक्त के मन्त्रों का प्रयोग करते हुए भगवती बगलामुखी का उपचारात्मक पूजन किया जाय तो सर्वोत्तम रहेगा।

श्रीसूक्त के मन्त्रों द्वारा षोडशोपचारपूजन—

(१) **आवाहन**—

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽआवह॥१॥

हे वेदों को प्रकट करने वाले अग्निदेव ! स्वर्णकान्तिमती, हरितवर्णाभा, हरिणीरूपा, स्वर्ण एवं रजत के पुष्पों की माला धारण करने वाली, समस्त प्राणियों को चन्द्रमावत् प्रकाशित करने वाली, हिरण्यरूप वाली लक्ष्मी का अभीष्ट-सिद्ध्यर्थ आह्वान कीजिए।

(२) **आसन**—

तां मऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥२॥

हे जातवेद ! (अग्नि !) उस कभी दूर न होने वाली लक्ष्मी का मेरे लिए आह्वान

कीजिए, जिसके आने पर मैं स्वर्ण, गौ (पशु), अश्व (वाहन) एवं पुरुष (पुत्र, मित्र, परिवार) प्राप्त करूँ।

(३) **पाद्य**—

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥३॥

जिसके अग्रभाग में अश्व हो, जिसके मध्य भाग में रथ हो तथा हाथियों की चिंग्घाड़ से सबको बोधित करने वाली ऐसी देवी (क्रीड़ापरायणा) लक्ष्मी का (मैं) आह्वान करता हूँ। वह देवी (प्रकाशात्मा) लक्ष्मी मुझको सेवित करे।

(४) **अर्घ्य**—

कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥४॥

ब्रह्मस्वरूपिणी, उत्कृष्ट एवं मन्द हास्य से युक्त, स्वर्णावरण वाली, शीतल प्रकृति वाली, ज्योति:स्वरूपा, पूर्णकामा, भक्तो की तृप्तिदात्री, कमलासनस्था, पद्मवर्णा उन लक्ष्मी का यहाँ आह्वान करता हूँ।

(५) **आचमनीय**—

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि॥५॥

मैं चन्द्रोपमा (आह्लादकारिणी), अत्यन्त दीप्तिमती, जगत् में उदारप्रकृतिक, कमलाकृति वाली, ईकार से वाच्य उस लक्ष्मी की शरण में जाता हूँ। मेरी दरिद्रता नष्ट हो अत: तुम्हें वरण करता हूँ।

(६) **स्नानीय**—

आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्व:।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्याऽलक्ष्मी:॥

हे सूर्य के समान कान्तिवाली लक्ष्मी! आपकी तपस्या से ही मङ्गलस्वरूप बिल्वनाम की वनस्पति (अन्य) वृक्ष उत्पन्न हुआ। उस बिल्व के फल तपश्चर्याओं के द्वारा अज्ञान एवं विघ्नों तथा बाह्येन्द्रियों से समुद्भूत दरिद्रताओं को भी दूर करें।

(७) **पञ्चामृत**—

उपैतु मां देवसख: कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥७॥

मुझे भगवान् महादेव के सखा कुबेर और चिन्तामणि के साथ कीर्ति प्राप्त हो। मैं इस राष्ट्र में उत्पन्न हुआ हूँ, (वे) मुझे कीर्ति एवं ऋद्धि (समृद्धि) प्रदान करें।

(८) **वस्त्र**—

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥

मैं भूख एवं प्यास से मलिन, लक्ष्मी से पूर्वोत्पन्न (अग्रज) अलक्ष्मी को नष्ट करता हूँ। (आप) मेरे घर से सभी प्रकार की अभूति (अनैश्वर्य) एवं समृद्धि के अभाव को दूर कीजिए।

(९) **गन्ध**—

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥९॥

मैं सुगन्धवती, दु:सहा, नित्य समृद्धिशालिनी, शुष्क गोमय आदि से सम्भरित, समस्त प्राणियों की स्वामिनी उन भगवती महालक्ष्मी को इस प्रदेश में बुलाता हूँ।

(१०) **अक्षत**—

मनस: काममाकूतिं वाच: सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्री: श्रयतां यश:॥१०॥

हम मन की कामनाओं के सङ्कल्पों को, वाणी की यथार्थता को, पशुओं एवं अन्न के स्वरूप को प्राप्त करें। मुझे सम्पत्ति और कीर्ति प्राप्त हो।

(११) **पुष्प**—

कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥११॥

भगवती लक्ष्मी कर्दम नामक ऋषि के द्वारा ही पुत्रवती हैं अत: हे कर्दम ऋषि! (आप) मेरे घर में समुत्पन्न होइए। (आप) पद्ममालाधारिणी माता लक्ष्मी को मेरे वंश में निवास कराइए।

(१२) **धूप**—

आप: सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥१२॥

जल मेरे लिए स्निग्ध पदार्थ उत्पन्न करे। हे चिक्लीत ऋषि! आप मेरे घर में निवास कीजिए और जगन्माता, प्रकाशात्मिका भगवती लक्ष्मी को भी मेरे वंश में निवास कराइए।

(१३) **दीप**—

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥१३॥

हे अग्निदेव ! (आप) आर्द्र गन्धवाली, पुष्टिकरी, पुष्टिस्वरूपा, पीतवर्णा, अरविन्दधारिणी, आह्लादिनी, स्वर्णमयी महालक्ष्मी का मेरे लिए आह्वान कीजिए।

(१४) **नैवेद्य**—

आर्द्रां यष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१४॥

हे अग्निदेव ! (आप) स्नेहमयी, यशवर्द्धिनी, वेत्रहस्ता, दण्डस्वरूपा, पूज्या, काञ्चनवर्णा, स्वर्णमालाधारिणी, ऐश्वर्यमयी, स्वर्णमयी लक्ष्मी का मेरे लिए आह्वान कीजिए।

(१५) **ताम्बूल**—

तां मऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥

हे अग्निदेव ! (आप) सदा स्थिरस्वभावा उन लक्ष्मी देवी का मेरे लिए आह्वान कीजिए, जिसके आने पर मैं प्रचुर स्वर्ण (धन), गायें, दासियाँ, अश्व एवं सेवक प्राप्त करूँ।

(१६) **दक्षिणा**—

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६॥

जो लक्ष्मी-प्राप्ति की कामना रखता हो वह पवित्र, संयमी होकर प्रतिदिन घृत का हवन करे और श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋचाओं का निरन्तर जप करता रहे।

भगवती का आवाहन—बिना निमन्त्रण, आमन्त्रण एवं आवाहन के कोई भी व्यक्ति नहीं आता। अतः साधक को चाहिए कि वह भगवती महामाया बगलामुखी का आवाहन करे।

आवाहन मन्त्र—

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मी जातवेदो मऽआवह ॥ (श्रीसूक्त)
आगच्छेह महादेवि ! सर्वसम्पत्प्रदायिनि।
यावद् व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधा भव[१] ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, आवाहनं समर्पयामि।

इस श्लोक को पढ़कर भगवती का आवाहन करना चाहिए।

---

१. बगलामुखीरहस्यम्।

स्वागत—इसके बाद भगवती का स्वागत-मन्त्र पढ़कर उनका स्वागत करना चाहिए (स्वागत मन्त्र आगे लिखा हुआ है)।

आसन—स्वागत के अनन्तर भगवती को बैठने हेतु आसन देना चाहिए।

तां मऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥ (श्रीसूक्त)
प्रसीद जगतां मातः संसारार्णवतारिणी।
मया निवेदितं भक्त्या आसनं सफलं कुरु॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, आसनं समर्पयामि[१]।

—पढ़कर भगवती को आसन दिया जाना चाहिए।

पाद्य—आसन के बाद भगवती को पाद्य देना चाहिए। निम्न श्लोक पढ़कर उन्हें पाद्य अर्पित करना चाहिए—

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ (श्रीसूक्त)
गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनया हृतम्।
तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम्[२]॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पाद्यं समर्पयामि।
ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, कुङ्कुमं समर्पयामि।

ऐसा कहकर भगवती बगलामुखी को कुंकुम (रोली) चढ़ाना चाहिए।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥
अक्षतान् निर्मलान् शुद्धान् मुक्ताफलसमन्वितान्।
गृहाणेमान् महादेवि! देहि मे निर्मलां धियम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, अक्षतान् समर्पयामि। (व. रहस्यम्)

ऐसा कहकर उपासक को चाहिए कि वह भगवती को अक्षत चढ़ाये।

अर्घ्य—

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥
निधीनां सर्वदेवानां त्वमनर्घ्यं गुणा ह्यसि।
सिंहोपरिस्थिते देवि! गृहाणाऽर्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

१-२. बगलामुखीरहस्यम्।

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, अर्घ्यं समर्पयामि ।

यह पढ़कर साधक भगवती को अर्घ्य समर्पित करे । (व.र.)

आचमन—

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि ॥
कर्पूरेण सुगन्धेन सुरभि स्वादु शीतलम् ।
तोयमाचमनीयार्थं देवीदं प्रतिगृह्यताम् ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, आचमनीयं समर्पयामि ।

—यह पढ़कर भगवती को आचमनीय समर्पित किया जाना चाहिए । (व.र.)

स्नान—इसके अनन्तर भगवती को स्नान-मन्त्र पढ़कर स्नानार्थ जल समर्पित करना चाहिए ।

पञ्चामृतस्नान—स्नानोपरान्त भगवती को पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए ।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ।
पयो दधि घृतं चैव मधु शर्करयाऽन्वितम् ।
पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।

इस प्रकार पढ़कर भगवती को स्नानार्थ पञ्चामृत समर्पित करना चाहिए ।

इसके अनन्तर भगवती को उद्वर्तन (उबटन) स्नान हेतु देना चाहिए । उद्वर्तन देने के बाद वस्त्रोपवस्त्र, उसके पश्चात् गन्ध समर्पित करना चाहिए—

गन्ध—

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ (श्रीसूक्त)
मलयाचलसम्भूतं चन्दनागरुसम्भवम् ।
विलेपनं च देविशि ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम्[1] ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, गन्धं समर्पयामि ।

कहकर भगवती को गन्ध समर्पित करना चाहिए ।

सौभाग्यसूत्र—भगवती को सौभाग्यसूत्र अर्पित करते समय यह श्लोक पढ़ना चाहिए—

---

१. बगलामुखीरहस्यम् ।

सौभाग्यसूत्रं वरदे सुवर्णमणिसंयुतम्।
कण्ठे बध्नामि देवेशि! सौभाग्यं देहि मे सदा॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, सौभाग्यसूत्रं समर्पयामि। यह कहकर भगवती को सौभाग्यसूत्र अर्पित करना चाहिए[१]।

हरिद्रा—

हरिद्रारञ्जिता देवि! सुखसौभाग्यदायिनि।
तस्मात्त्वं पूजयाम्यत्र दुःखशान्तिं प्रयच्छ मे॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, हरिद्रां समर्पयामि।

—यह कहकर देवी को हरिद्राचूर्ण अर्पित करना चाहिए[२]।

पुष्पमाला—

कर्दमेन प्रजाभूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥
पद्मशङ्खजपुष्पादिशतपत्रैर्विचित्रताम्।
पुष्पमालां प्रयच्छामि ते श्रीपीताम्बरे! शिवे॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।

—कहकर भगवती को पुष्पमाला अर्पित की जानी चाहिए[३]।

स्वागत—भगवती के आह्वानानन्तर उनका स्वागत करना चाहिए। एतदर्थ ६ पीले पुष्प (चम्पा आदि में से कोई भी पीले पुष्प) लेकर उनका मन्त्र पढ़कर उनके चित्र या मूर्ति पर चढ़ा देना चाहिए—

स्वागतं ते महामाये चण्डिके सर्वमङ्गले।
पूजां गृहाण विविधां सर्वकल्याणकारिणि॥

स्थिरीकरण—भगवती के आह्वानान्तोपरान्त उनके पधारने पर उनको स्थिरता पूर्वक आसन ग्रहण करके आसीन रहने हेतु, स्थिरीकरण हेतु निवेदन करते हुए एवं प्रतिमा पर मन्त्र सहित पुष्प चढ़ाते हुए कहना चाहिए कि—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥

आसन—भगवती के स्थैर्यपूर्वक उपस्थित रहने हेतु निवेदन किये जाने के उपरान्त साधक को उनके बैठने हेतु उन्हें आसन प्रदान करते हुए उनसे बैठने हेतु निवेदन करना चाहिए और मन्त्र पढ़कर पीत पुष्प देवी के चरणों पर चढ़ाते हुए प्रार्थना करनी चाहिए—

१-३. बगलामुखीरहस्यम्।

ॐ आसनं भास्वरं तुङ्गं माङ्गल्यं सर्वमङ्गले।
भजस्व जगतां मातः प्रसीद जगदीश्वरि॥
ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, आसनं समर्पयामि।

पाद्य—इसके अनन्तर भगवती के पाद-प्रक्षालनार्थ पाद्य-पात्र के जल में पीली चमेली का पुष्प (न मिलने पर कोई भी पीत पुष्प) केशर, गोरोचन डालकर मन्त्र पढ़कर निम्न श्लोक का वाचन करके देवी से निवेदन करें कि—

ॐ गङ्गादिसलिलाधारं तीर्थं मन्त्राभिमन्त्रितम्।
दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं तत्प्रतिगृह्यताम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पादयोः पाद्यं समर्पयामि।

उद्वर्तन—इसके अनन्तर साधक को चाहिए कि वह भगवती को मैदा, हरिद्रा-चूर्ण एवं सुगन्धित तेलमिश्रित लेप बनाकर मन्त्र पढ़कर इस प्रकार उन्हें समपित करे—

ॐ तिलतैलसमायुक्तं सुगन्धिद्रव्यनिर्मितम्।
उद्वर्तनमिदं देवि! गृहाण त्वं प्रसीद मे॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, उद्वर्तनं समर्पयामि।

अर्घ्य—इसके अनन्तर भगवती के सम्मानार्थ अर्घ्यपात्र के जल में तिल, दूर्वा, अक्षत, पीत पुष्प, कुशाग्रभाग एवं पीली सरसों डालकर उन्हें निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को समर्पित कर देना चाहिए—

ॐ तिलतण्डुलसंयुक्तं कुशपुष्पसमन्वितम्।
सुगन्धफलसंयुक्तमर्घ्यं देवि गृहाण मे॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, हस्तयोः अर्घ्यं समर्पयामि।

आचमनीय—आचमनार्थ प्रयुक्त पञ्चपात्रों में जल लेकर और उसमें लौंग, जायफल एवं ककोल का चूर्ण मिश्रित करके और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर उसे भगवती को समर्पित कर देना चाहिए—

ॐ स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिरवाप्यते।
इदमाचमनीयं हि पीताम्बरायै, देवि प्रगृह्यताम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, आचमनीयं समर्पयामि।

स्नानीय[१]—भगवती के स्नानार्थ एकत्रित जल में केशर एवं गोरोचन डालते हुए उसे सौरभित करके उसे यह मन्त्र पढ़ते हुए भगवती को सादर समर्पित करना चाहिए—

---

१. आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्याऽलक्ष्मीः॥

ॐ स्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिषं वायुरेव च।
लोकसंस्मृतिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, स्नानं समर्पयामि।

अष्टाङ्ग अर्घ्य—निम्नांकित मन्त्र पढ़कर भगवती को अर्घ्य समर्पित करना चाहिए—

ॐ जगत्पूज्ये ! त्रिलोकेशि ! सर्वदानवभञ्जिनि।
अष्टाङ्गार्घ्यं गृहाण त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, अष्टाङ्गार्घ्यं समर्पयामि।

मधुपर्क—अर्घ्यानन्तर देवी को मधुपर्क प्रस्तुत करना चाहिए। एक शुद्ध कांस्य पात्र में शुद्ध घृत, शुद्ध मधु एवं शुद्ध दही लेकर उसे भगवती को निम्न मन्त्र पढ़कर सादर समर्पित करना चाहिए—

ॐ मधुपर्क महादेवि ! ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण गिरिपुत्रिके॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, मधुपर्कं समर्पयामि।

आचमनीय (द्वितीय आचमनीय)—मधुपर्क-समर्पण के अनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर भगवती को पुनः आचमनार्थ जल प्रदान करना चाहिए—

ॐ स्नानादिकं पुरःकृत्वा पुनः शुद्धिरवाप्यते।
पुनराचमनीयं च बगले देवि ! गृह्यताम् ॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पुनराचमनीयं समर्पयामि।

श्वेतचन्दन—अब भगवती को निम्न मन्त्र पढ़कर श्वेत चन्दन समर्पित करना चाहिए—

ॐ मलयाचलसम्भूतं नानागन्धसमन्वितम्।
शीतलं बहुलामोदं चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, श्वेतचन्दनं समर्पयामि।

रक्तचन्दन—भगवती को श्वेत चन्दन समर्पित करने के उपरान्त उन्हें निम्न श्लोक पढ़कर रक्तचन्दन अर्पित करना चाहिए—

मन्दाकिन्याः समानीतैः हेमाम्भोरुहवासितम्।
स्नानं कुरुष्व देवेशि ! सलिलैश्च सुगन्धिभिः॥
ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, स्नानीयं जलं समर्पयामि।

ॐ रक्तानुलेपनं देवि ! स्वयं देव्या प्रकाशितम् ।
तद् गृहाण महाभागे ! शुभं देहि नमोऽस्तु ते ॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, रक्तचन्दनं समर्पयामि ।

सिन्दूर[१]—अब भगवती को निम्न मन्त्र पढ़कर सिन्दूर अर्पित करना चाहिए—

ॐ सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम् ।
गृहाण वरदे देवि ! भूषणानि प्रयच्छ मे ॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, सिन्दूरं समर्पयामि ।

कुंकुम[२]—निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को कुंकुम अर्पित करना चाहिए—

ॐ जपापुष्पप्रभं रम्यं नारीभालविभूषितम् ।
भास्वरं कुङ्कुमं रक्तं देवि ! दत्तं प्रगृह्य मे ॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, कुङ्कुमं समर्पयामि ।

अक्षत—कुङ्कुम अर्पित करने के अनन्तर निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को अक्षत अर्पित करना चाहिए—

ॐ अक्षतं धान्यजं देवि ! ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे ॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, अक्षतान् समर्पयामि ।

पुष्प[३]—अक्षतार्पणोपरान्त साधक को निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को पुष्पार्पण करना चाहिए—

---

१. सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसन्निभम् ।
पूजिताऽसि मया देवि ! प्रसीद बगलामुखि ॥
ह्रीं बगलामुख्यै नमः, सिन्दूरं समर्पयामि ।
यह पढ़कर भगवती बगला को सिन्दूरार्पण करना चाहिए ।

२. कुङ्कुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनीकामसम्भवम् ।
कुङ्कुमेनाऽर्चिते देवि ! प्रसीद बगलामुखि ॥

३. पुष्प—मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ (श्रीसूक्त)
मन्दारपारिजातादि पाटलकेतकानि च ।
जातीचम्पकपुष्पाणि गृहाणेमानि शोभने ॥
ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः पुष्पं समर्पयामि ।
यह पढ़कर भगवती को पुष्प अर्पित करना चाहिए ।

ॐ चलत्परिमलामोदमत्तालिगणसङ्कुलम्।
आनन्दनन्दनोद्भूतं बगलायै कुसुमं नमः॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पुष्पाणि समर्पयामि।

बिल्वपत्र—पुष्पार्पणोपरान्त उपासक को निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को बिल्वपत्र अर्पित करना चाहिए—

ॐ अमृतोद्भवश्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम्।
पवित्रं ते प्रयच्छामि सर्वकार्यार्थसिद्धये॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, बिल्वपत्राणि समर्पयामि।

पुष्पमाला—साधक को चाहिए कि वह करवीर या पीली चमेली के पुष्पों की माला निर्मित करके निम्न मन्त्रों द्वारा भगवती को यह माला अर्पित करे—

ॐ नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम्।
प्रयच्छामि सदा भद्रे! गृहाण परमेश्वरि॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पुष्पमालां समर्पयामि।

वस्त्र (अधोवस्त्र)—पुष्पमालार्पणोपरान्त भगवती को कौषेय आदि सुन्दर वस्त्र अर्पित करते हुए यह मन्त्र पढ़ना चाहिए—

ॐ तन्तुतन्त्वानसंयुक्तं कलाकौशलकल्पितम्।
सर्वाभरणश्रेष्ठं च वसनं परिधीयताम्॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, वस्त्रं समर्पयामि।

द्वितीय वसन (उत्तरीय वस्त्र)—प्रथम वसनोपरान्त भगवती को निम्न मन्त्र पढ़कर द्वितीय वसन अर्पित करना चाहिए—

ॐ यामाश्रित्य महादेवि! जगत्संहारकः सदा।
तस्यै ते परमेशान्यै कल्पयाम्युत्तरीयकम्॥
ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, उत्तरीयवस्त्रं समर्पयामि।

आभरण—इसके अनन्तर उपासक को निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को धातु या पुष्प के आभरण समर्पित करने चाहिए—

ॐ सौवर्णादि अलङ्कारकङ्कणादिविभूषितम्।
हारकेयूरयुक्तानि नूपुराणि गृहाण मे॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, आभरणानि समर्पयामि।

वस्त्रोपवस्त्र—

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ (श्रीसूक्त)

पट्टकूलयुगं देवि कञ्चुकेन समन्वितम्।
परिधेहि कृपां कृत्वा मातः श्रीबगलामुखि[१]।

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः वस्त्रोपवस्त्राणि समर्पयामि।

—कहकर भगवती को सादर वस्त्र समर्पित करना चाहिए।

धूप—

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥
वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

—ऐसा कहकर भगवती को धूप अर्पित करना चाहिए[२]। या तो आभरण-समर्पण के बाद उपासक को निम्न मन्त्र पढ़ते हुए भगवती को धूप अर्पित करना चाहिए।

ॐ गुग्गुलं घृतसंयुक्तं नानाभक्ष्यैश्च संयुतम्।
दशाङ्गं गृह्यतां धूपं बगलादेवि! नमोऽस्तु ते॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, धूपमाघ्रापयामि।

दीप (नीराजना)—शुद्ध आज्य का दीपक प्रज्वलित करके निम्न मन्त्र से इसे अपनी आराध्या भगवती को सादर अर्पित करना चाहिए—

ॐ मार्तण्डमण्डलान्तस्थचन्द्रबिम्बाग्नितेजसाम्।
विधानं देवि बगले! दीपोऽयं निर्मितस्तव॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, दीपं दर्शयामि।

सौरभित द्रव्य—निम्नाङ्कित श्लोक पढ़ते हुए भगवती को इत्रादिक वस्तु प्रस्तुत करनी चाहिए—

ॐ परमानन्दसौरभ्यं परिपूर्णं दिगम्बरम्।
गृहाण सौरभं दिव्यं कृपया जगदम्बिके॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, सुगन्धितद्रव्यं समर्पयामि।

कर्पूर-दीप—सौरभित द्रव्यार्पण के बाद उपासक को चाहिए कि वह निम्न मन्त्र पढ़ते हुए भगवती को कर्पूर जलाकर उनकी नीराजना करे—

ॐ त्वं चन्द्रसूर्ययोर्ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च।
त्वमेव जगतां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, कर्पूरदीपं समर्पयामि।

---

१. बगलामुखीरहस्यम्। २. बगलामुखीरहस्यम्।

नैवेद्य—उपासक को चाहिए कि वह निम्न मन्त्र पढ़ते हुए थाली में पूर्ण भोजन रखकर भगवती को अर्पित करे—

ॐ दिव्यान्नरससंयुक्तं नानाभक्ष्यैस्तु संयुतम्।
चोष्यपेयसमायुक्तमन्नं देवि गृहाण मे॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, नैवेद्यं समर्पयामि।

अथवा—

आर्द्रां यष्करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽआवह॥ (श्रीसूक्त)
अन्नं चतुर्विधं स्वादुरसैः षड्भिः समन्वितम्।
नैवेद्यं गृह्यतां देवि! भक्तिं मे ह्यचलां कुरु॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, नैवेद्यं निवेदयामि।

पायस—नैवेद्योपरान्त निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को पायस (खीर) अर्पित करना चाहिए—

ॐ गव्यसर्पिःपयोयुक्तं नानामधुरमिश्रितम्।
निवेदितं मया भक्त्या परमान्नं प्रगृह्यताम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पायसं समर्पयामि।

मोदक—पायसार्पणोपरान्त उपासक को भगवती के लिए मोदक अर्पित करते हुए निम्नांकित मन्त्र पढ़ना चाहिए—

ॐ मोदकं स्वादु रुचिरं कर्पूरादिभिरन्वितम्।
मिश्रं नानाविधैर्द्रव्यैः प्रतिगृह्याशु भुज्यताम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, मोदकं समर्पयामि।

अपूप—साधक को चाहिए कि वह भगवती के प्रीत्यर्थ निम्न मन्त्रपूर्वक उन्हें मालपुआ अर्पित करे—

ॐ अपूपानि च पक्वानि मण्डका वटकानि च।
पायसापूपमन्नं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, अपूपानि समर्पयामि।

फल—अपूपोपरान्त भगवती को मधुर एवं दिव्य फल प्रदान करते हुए निम्न मन्त्र पढ़कर उनसे यह निवेदन करना चाहिए—

ॐ फलमूलानि सर्वाणि ग्राम्याऽरण्यानि यानि च।
नानाविधसुगन्धीनि गृहाण देवि! ममाचिरम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, फलं समर्पयामि।

पानीय—इसके उपरान्त उपासक को भगवती को सौरभित जल अर्पित करते हुए निवेदन करना चाहिए—

ॐ पानीयं शीतलं स्वच्छं कर्पूरादिसुवासितम्।
भोजने तृप्तिकृद्यस्मात् कृपया प्रतिगृह्यताम्।

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पानीयं समर्पयामि।

करोद्वर्तन जल—केवड़ा-कर्पूर से सुगन्धित जल को एक पात्र में लेकर उसे निम्न मन्त्रपूर्वक भगवती को अर्पित करना चाहिए—

ॐ कर्पूरादीनि द्रव्याणि सुगन्धीनि महेश्वरि।
गृहाण जगतां नाथ! करोद्वर्तनहेतवे॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, करोद्वर्तनं जलं समर्पयामि।

आचमनीय—उपासक को निम्नांकित मन्त्र पढ़कर भगवती को आचमनार्थ जल समर्पित करे—

ॐ आमोदवस्तुसुरभिकृतमेतदनुत्तमम्।
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, आचमनीयं समर्पयामि।

ताम्बूल—निम्नांकित मन्त्र पढ़कर भगवती को सुगन्धित एवं मधुर पान देते हुए निवेदन करना चाहिए—

ॐ पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
कर्पूरैलासमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, ताम्बूलं समर्पयामि।

काजल—साधक को चाहिए कि वह निम्न मन्त्र पढ़ते हुए भगवती को कज्जल समर्पित करते हुए सादर अनुरोध करे—

ॐ स्निग्धमुष्णं हृद्यतमं दृशां शोभाकरं तव।
गृहीत्वा कज्जलं सद्यो नेत्राण्यञ्जय बगुले॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, कज्जलं समर्पयामि।

चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभगे! शान्तिकारके।
कर्पूरज्योतिरुत्पन्नं गृहाण बगलामुखि॥

ह्रीं बगलामुखीदेव्यै नमः, कज्जलं समर्पयामि[१]।

---

१. बगलामुखीरहस्यम्।

सौवीराञ्जन (सुरमा)—उपासक निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को सौवीराञ्जन अर्पित करते हुए निवेदन करें—

ॐ नेत्रत्रयमहामाये ! भषयामलकज्जले: ।
सुसौवीराञ्जनैर्दिव्यैर्जगदम्ब नमोऽस्तु ते ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नम:, सौवीराञ्जनं समर्पयामि ।

अलक्तक (आलता द्रव्य)—उपासक को चाहिए कि वह निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती को अलक्तक समर्पित करे—

ॐ त्वत्पदाम्भोजनखरद्युतिकारि मनोहरम् ।
अलक्तकमिदं देवि ! मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नम:, अलक्तकद्रव्यं समर्पयामि ।

चामर—उपासक भगवती को चामर देते हुए और उन्हें चामर से हवा करते हुए निम्न मन्त्र पढ़े—

ॐ चामरं चमरीपुच्छं हेमदण्डसमन्वितम् ।
मयार्पितं राजचिह्नं चामरं प्रतिगृह्यताम् ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नम:, चामरं समर्पयामि ।

व्यजन—इसके उपरान्त उपासक को चाहिए कि वह निम्न मन्त्र पढ़ते हुए और प्रार्थना करते हुए भगवती को सादर व्यजन अर्पित करे—

ॐ बर्हिबर्हकृताकारं मध्यदण्डसमन्वितम् ।
गृह्यतां व्यजनं बगले ! देहस्वेदापनुत्तये ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नम:, व्यजनं समर्पयामि ।

घण्टावाद्य—अब उपासक (भक्त) निम्न मन्त्र पढ़कर घण्टा-वादन करे—

ॐ यथा भीषयसे दैत्यान् यथा पूरयसेऽसुरम् ।
तां घण्टां सम्प्रयच्छामि महिषघ्नि प्रसीद मे ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नम:, घण्टावाद्यं समर्पयामि ।

दक्षिणा—

य: शुचि: प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकाम: सततं जपेत् ॥ (श्रीसूक्त)
पूजाफलसमृद्ध्यर्थं तवाग्रे स्वर्णमीश्वरि ।
स्थापितं ते च प्रीत्यर्थं पूर्णान् कुरु मनोरथान् ॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नम:, दक्षिणां समर्पयामि ।

यह कहकर दक्षिणा अर्पित करनी चाहिए। (व.र.)

अथवा—भगवती को दक्षिणा अर्पित करते हुए निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिए—

ॐ काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्वितम्।
दक्षिणार्थं च देवेशि! गृहाण त्वं नमोऽस्तु ते॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, दक्षिणां समर्पयामि।

पुष्पाञ्जलि—दक्षिणा देने के उपरान्त उपासक को भगवती को पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए निम्न मन्त्र पढ़ना चाहिए—

ॐ नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्ता गृहाण बगलामुखि[1]॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

कहकर भगवती को पुष्पाञ्जलि अर्पित करना चाहिए।

नीराजना—पुष्पाञ्जलि अर्पित करने के अनन्तर उपासक को चाहिए कि वह निम्न मन्त्र पढ़कर भगवती की नीराजना करे—

ॐ कर्पूरवर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितं च यत्।
नीराजनं च देवेशि! गृह्यतां जगदम्बिके॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, नीराजनं समर्पयामि।

अच्छिद्रावधारण—इसके उपरान्त निम्न मन्त्र पढ़कर देवी को अच्छिद्रावधारण कराये—

ॐ बगलामुखि! महामाये! येषां पूजा मया कृता।
अच्छिद्रास्तु शिवे साङ्गं तव देवि! प्रसादतः॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, अच्छिद्रावधारणं समर्पयामि।

प्रदक्षिणा—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे॥

ह्लीं बगलामुखीदेव्यै नमः, प्रदक्षिणां समर्पयामि।

कहकर भगवती की प्रदक्षिणा की जानी चाहिए।

क्षमायाचना—साधक को चाहिए कि वह अन्त में भगवती से अपने अपराधों, भूलों एवं प्रमादों के लिए क्षमा-याचना करते हुए कहे—

---

१. बगलामुखीरहस्यम्।

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ॥१॥

हे परमेश्वरि ! मेरे द्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध होते रहते हैं 'यह मेरा दास है'— ऐसा समझकर आप उन सभी अपराधों को क्षमा कीजिए ॥१॥

आवाहनं न जानामि न. जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ॥२॥

हे परमेश्वरि ! मैं आवाहन करना नहीं जानता, विसर्जन करना भी नहीं जानता एवं पूजा करने की पद्धति भी मुझे ज्ञात नहीं है। आप क्षमा कीजिए ॥२॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यत्पूजित मया देवि ! परिपूर्णं तदस्तु मे ॥३॥

हे देवि सुरेश्वरि ! मैंने जो मन्त्रहीन, क्रियाहीन एवं भक्तिहीन पूजन किया है वह सब आपकी कृपा से पूर्णता प्राप्त करे ॥३॥

अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत् ।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः ॥४॥

सैकड़ों अपराध करके भी जो तुम्हारी शरण में जाकर 'जगदम्बा-जगदम्बा' पुकारता है उसे वह सुगति प्राप्त होती है जो ब्रह्मादिक देवों के लिए भी दुष्प्राप्य है।

सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके ।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु ॥५॥

हे जगदम्बिके ! मैं अपराधी हूँ किन्तु तुम्हारी शरण में आया हूँ, अतः आपकी दया का पात्र हूँ। आप जैसा चाहे वैसा करें ॥५॥

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ॥६॥

हे देवि ! हे परमेश्वरि ! अज्ञान, भूल या भ्रान्ति के कारण मैंने जो भी विधान के प्रतिकूल न्यूनता या अधिकता कर दी हो उन सबको आप क्षमा कीजिए एवं प्रसन्न होइए ॥६॥

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे ।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ॥७॥

सच्चिदानन्दस्वरूपा हे परमेश्वरि ! हे जगन्माता कामेश्वरि ! आप प्रेमपूर्वक मेरी यह पूजा स्वीकार कीजिए और मुझ पर प्रसन्न होइए ॥७॥

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि ॥८॥

हे देवि ! हे सुरेश्वरि ! आप गोपनीय से भी गोपनीय वस्तु की रक्षा करने वाली हैं। मेरे निवेदन किये हुए इस जप को आप ग्रहण कीजिए। आपकी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो ॥८॥

इसके अनन्तर देवी के अङ्गों एवं परिवार आदि की पूजा की जाती है। यदि देवी के अङ्ग एवं परिवार आदि की पूजा निष्पन्न नहीं की जाती तो साधना फलवती नहीं होती।

भगवती बगला (महाविद्या) की पूजा के द्रव्य

भगवती बगलामुखी के पूजन में द्रव्य भी त्रिविधात्मक हैं—(१) गौडी, (२) माध्वी और (३) पैष्टी। इनमें गौडी सर्वोत्तम है—

'गौडी माध्वी च पैष्टी च गौडी चैवोत्तमोत्तमा'।

भगवती बगला की पूजा में—छाग, कुक्कुट एवं मत्स्य के मांस एवं बलि की भी स्वीकृति है; क्योंकि ये पदार्थ भगवती को प्रिय भी हैं—

'छागकुक्कुटमत्स्याश्च बगलाप्रीतिकारकम्'।

शक्तिसङ्गमतन्त्र के ताराखण्ड में सैभाग्यार्चन का भी वर्णन प्राप्त होता है।

वाम-दक्षिणमार्ग—'वामदक्षिणमार्गो हि कालीताराविधौ स्मृतः'। द्राविड़ दक्षिण-मार्ग से तो गौड वाममार्ग से सम्बद्ध हैं—

'द्राविडो दक्षिणः प्रोक्तः गौडो वामः प्रकीर्तितः'।

दशमहाविद्या और भगवती बगलामुखी

तन्त्रसमाम्नाय में दशमहाविद्याओं के नाम अत्यन्त प्रख्यात हैं, उनमें ही एक बगलामुखी महाविद्या भी है। वे दश महाविद्याएँ निम्नांकित हैं—(१) काली, (२) तारा, (३) षोडशी, (४) भुवनेश्वरी, (५) भैरवी, (६) छिन्नमस्ता, (७) धूमावती, (८) बगला, (९) मातङ्गी और (१०) कमला—

'काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः'॥

अतः भगवती बगला महाविद्या भी हैं और सिद्धविद्या भी हैं।

भगवती बगला की यथार्थ पूजा तो उनकी भक्ति है। इस भक्ति के १० रूप हैं।

प्रेमाभक्ति और भावभक्ति ही श्रेष्ठतम भक्ति हैं

इनके ११ भेद हैं—१. गुणमाहात्म्यासक्ति, २. रूपासक्ति, ३. पूजासक्ति, ४.

स्मरणासक्ति, ५. दास्यासक्ति, ६. सख्यासक्ति, ७. कान्तासक्ति, ८. वात्सल्यासक्ति, ९. आत्मनिवेदनासक्ति, १०. तन्मयतासक्ति तथा ११. परमविरहासक्ति (नारदभक्तिसूत्र)।

भगवती बगला की पूजा-पद्धति

सांख्यायनतन्त्र-प्रतिपादित दृष्टि—सांख्यायनतन्त्र में भगवती बगला की पूजा के तीन प्रकार बताये गये हैं और उन्हें तीन भूखण्डों (प्रदेशों) में प्रचलित कहा गया है।

(क) **भगवती बगला की पूजा के प्रकार**—

सृष्टिपूजा	स्थितिपूजा	संहारपूजा
(केरल प्रदेश)	(गौड देश)	(कामरूप)

'सृष्टिस्थित्यन्तसंहारैः पूजा च त्रिविधा कलौ।
केरलं सृष्टिपूजा च गर्भकौलागमक्रमात्॥
अर्चनं गौडदेशे तु स्थितिमार्गं कुमारक।
कामरूपप्रदेशे तु संहारार्चनमेव च॥
गुप्तकौलागमं नाम गौडदेशार्चनं विधिः।
कामरूपागमं नाम संहारक्रमपूजनम्॥
गौडागमं चावलम्ब्य सांख्यायनमुनिस्तथा।
उक्तवानागमं चैव स्थित्यर्चां शृणु पुत्रक'॥

(ख) **प्रादेशिक स्तर पर पूजा-वैविध्य (पूजा-भेद)**—

१. गौड़ देश = स्थितिमार्ग = गुप्त कौलागम का अनुवर्ती पूजामार्ग।
२. कामरूप प्रदेश = संहारार्चन = कामरूपागम का अनुवर्ती पूजामार्ग।
३. मुनि सांख्यायन का पूजामार्ग गौड़ागमानुवर्ती स्थितिमार्ग = स्थितिपूजा।

(ग) **सांख्यायनानुगत स्थित्यर्चा**—स्थित्यर्चा-विधान में किसी सर्वाङ्गसुन्दरी, श्यामा, सर्वावयवशोभिता, नवोढ़ा एवं पुष्पिणी विप्रकन्या को कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णमासी की तिथि भौमवार के दिन एवं रात्रि के समय बुलाकर अत्यन्त सुगन्धित तेल से उसके शरीराङ्गों का अभ्यञ्जन करना चाहिए। चमेली एवं चम्पक आदि सुगन्धित पुष्प (उसके लेटे हुए) शरीर पर बिखेर देने चाहिए। लक्ष्मीसूक्त पढ़कर उसका सर्वाङ्ग लेपन करना चाहिए। पर्यंक पर लेटी उस कन्या के शरीर पर चन्दन का लेप भी करना चाहिए। ध्रुवाद्य मन्त्र के द्वारा उस दक्षिणोन्मुखी कन्या को ऊर्ध्वमुखी करके शयन कराना चाहिए और इस क्रिया में श्रीसूक्त का पाठ भी करते रहना चाहिए। उसके पैरों को फैलाकर उसका गुप्तार्चन करना चाहिए। इस समय षोढ़ान्यास एवं बगलापञ्जरस्तोत्र का भी प्रयोग करना चाहिए। कन्या के सर्वाङ्गों का न्यास करना चाहिए और उसके शरीराङ्गों का स्मरण करना चाहिए। मूल विद्या के द्वारा धनञ्जयपुर की भी अर्चना करनी चाहिए। गन्धद्वारादि

मन्त्र से उसके शरीर पर कस्तूरी-लेपन करना चाहिए तथा मूल मन्त्र द्वारा उसे पुष्पहार पहनाना चाहिए। उसे 'द्रव्यशुद्धि' निवेदित करके फिर जपारम्भ करना चाहिए। यथाविधान १०० या १००० मन्त्रराज का जप करना चाहिए। पुरश्चरण के मध्य में प्रत्येक भार्गव दिन या पूर्णमासी की तिथि पर सौभाग्यार्चन करना चाहिए। यही कलियुग में मन्त्रसिद्धिप्रदायक प्रयोग है। इसके बिना कलियुग में कोई उत्कृष्टता साधन-विधान नहीं है—

'प्रयोगसिद्धिदं पुंसां मन्त्रसिद्धिकरं परम्।
एतत्पूजां विना पुत्र! प्रयोगो न भवेत्कलौ'॥ (सां.तं.)

सौभाग्यार्चा के बिना करोड़ों जपों के बावजूद भी सिद्धि नहीं मिलती।

सौभाग्यार्चन का आदर्श पक्ष

(१) इस अर्चन के समय प्रयोक्ता को अभिमानाष्टक, एषणात्रय एवं पञ्चेन्द्रियासक्ति का त्याग करके ही यह अर्चन करना चाहिए—

'अभिमानाष्टकं त्यक्त्वा त्यक्त्वा चैवेषणात्रयम्।
त्यक्त्वा पञ्चेन्द्रियासक्तिं सौभाग्यार्चनमाचरेत्'॥

(२) इसके साथ ही इस अर्चन के समय प्रयोक्ता या उपासक को सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, शीत-उष्ण आदि सभी में समत्वभाव रखना चाहिए—

'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
शीतोष्णे समतां कृत्वा सौभाग्यार्चनमाचरेत्'॥

जो षोढ़ान्यास एवं इस अर्चन के नियमों को बिना जाने अर्चन करता है वह व्यक्ति रौरव नरक में जाता है—

'षोढाह्वयं च न ज्ञात्वा यः करोत्यर्चनं भुवि।
पतितः स भवेत् पुंसां रौरवं नरकं व्रजेत्'॥

(३) जो साधक बाह्याभ्यन्तर में समत्व-स्थापन एवं अभेद-बोध के बिना सौभाग्यार्चा करता है उसे देवता शाप देते हैं—

'बाह्याभ्यन्तरयोः पुत्र अभेदज्ञानयोर्विना।
सौभाग्यार्चा न कर्तव्या देवता शापमाप्नुयात्'॥ (सां.तं.)

(४) जो व्यक्ति जितेन्द्रिय रहकर एवं सारे सुखों का त्याग करके सौभाग्य पूजन न करके अपने सुख के लिए सौभाग्य-पूजन करता है उसे भी देवता शाप दे देते हैं—

'जितेन्द्रियः सुखं त्यक्त्वा कुर्यात्सौभाग्यपूजनम्।
सुखार्थं कुरुते योऽसौ देवताशापभाग्भवेत्'॥

जो स्वास्थ्यावेशविधि को बिना जाने यह अर्चन करता है वह भी पतित हो जाता है।

जो सत्कन्या इस पूजन के अन्तराल में मन के उद्दाम आवेग से क्षुब्ध हो उठती है वह भ्रान्तचित्त हो जाती है। इस साधना में मन में वासनात्मक विकार नहीं आना चाहिए। शरीर एवं मन दोनों निर्विकार रहने चाहिए, अन्यथा वह साधक/साधिका पतित हो जाते हैं—

'नोत्पादयेद्वेदनां च मनश्चैव शरीरयोः।
वेदनां जनयेद्यस्तु स नरः पतितो भवेत्'॥

मातङ्गमुनि का मत

इस सौभाग्यार्चा में रजकी, पुलिन्दकन्या, ऋषिपत्नी, कुम्भकारकन्या, स्वभार्या, भ्रातृपत्नी, गुरुभार्या—कोई भी यौवनोपेता एवं पुष्पिणी कन्या क्यों न हो—सभी ग्राह्य एवं पात्र हैं। किन्तु यह मार्ग बिना गुरु की सहायता के सिद्धि नहीं प्रदान करता—

'सिद्धिमार्गमिदं पुत्र ! नास्ति सिद्धिं गुरोर्विना'। (सांख्यायनतन्त्र)

दीक्षा-विधान और बगला महाविद्या

ब्रह्मास्त्रविद्या या बगलामहाविद्या के श्रेष्ठतम ग्रन्थ सांख्यायनतन्त्र में कहा गया है कि दीक्षा ग्रहण किये बिना 'बगलामहाविद्या' के किसी भी अनुष्ठान, जप, होम, यज्ञ आदि क्रिया में प्रवेश निषिद्ध है। सांख्यायनतन्त्र के अनुसार—

(१) जो लोग पुस्तकों के लिखे मन्त्र को पढ़कर या देखकर इसका जप करते हैं वे लोग जीवित अवस्था में ही चाण्डाल हैं तथा मरने के बाद भी उनकी सद्गति नहीं होती, क्योंकि तब वे इस अपराध या पाप के कारण कुत्ते की योनि में जन्म लेते हैं।

'पुस्तके लिखितान् मन्त्रान् अवलोक्य जपन्ति ये।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वानो भविष्यति'॥

(२) बिना दीक्षा ग्रहण किये हुए कोई भी व्यक्ति जो (शैव, शाक्त या वैष्णव सम्प्रदाय के) मन्त्रों का जप करता है उसे वह मन्त्र ही जला डालता है तथा मन्त्रनिष्ठ देवता उस अदीक्षित जापक से प्रेम करने की अपेक्षा घृणा करता है।

(३) जो भी साधक बिना दीक्षा के जप करता है वह भले ही करोड़ों जप क्यों न कर डाले किन्तु वह समुद्र के किनारे स्थित बालू के कणों की गिनती के बराबर अनन्त वर्षों तक भी साधना क्यों न करता रह जाय किन्तु वह कभी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता।

(४) औचित्य यही है कि भगवती की उपासना क्रिया में प्रवेश करने के पूर्व ही किसी दीक्षित कुलगुरु के श्रीमुख से साम्प्रदायिक उपदेश क्रम की पद्धति के अनुसार

आदर सहित मन्त्र ग्रहण करके (दीक्षित होकर) तभी ब्रह्मास्त्रविद्या की उपासना की दिशा में अग्रपद हो।

ब्रह्मास्त्रविद्या रहस्यात्मक एवं स्तम्भन-प्रधान तान्त्रिकी महाविद्या है अतः इसकी उपासना एवं अनुष्ठान के पूर्व साधक को किसी कुलगुरु से दीक्षा ग्रहण करना अनिवार्य है। क्योंकि—

'दीक्षा-मार्गं विना मन्त्रं शैवं शाक्तं च वैष्णवम्।
यो जपेत् तं दहत्याशु देवता च जुगुप्स्यति॥
दीक्षाविधिं विना मन्त्रं यो जपेत् कोटिकोटिशः।
न स सिद्धिमवाप्नोति सिन्धुसैकतवर्षवत्॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षाकुलगुरोर्मुखात्।
उपदेशक्रमेणैव मन्त्रग्रहणमादरात्[1]॥

दीक्षाविधान में अधिकार-निर्णय

शिष्य को न तो किसी अपरीक्षित गुरु से दीक्षा लेनी चाहिए और न तो गुरु को अपरीक्षित शिष्य को दीक्षा ही देनी चाहिए, अन्यथा दीक्षा लेने वाले एवं दीक्षा देने वाले दोनों पिशाच हो जायेंगे—

'गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्।
उपदेशं ददन् गृह्णन् प्राप्नुयात् तौ पिशाचताम्'[2]॥

उपनिषदों में भी ऐसे अनधिकारी गुरु-शिष्य को 'अन्धे के द्वारा अन्धे का मार्ग दर्शन कराने वाले लोग' कहा गया है—

'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः'॥

दीक्षा और भगवती बगलादेवी की उपासना

क्रौंचभेदन के प्रश्न करने पर ईश्वर ने कहा है कि जो भी अदीक्षित व्यक्ति दीक्षा-विधि को बिना जाने हुए मन्त्रों का (बगलामुखी के एवं अन्य देवी-देवताओं का) जप करता है वह भले ही करोड़ों मन्त्रों का जप कर डाले किन्तु उसे कभी मन्त्र-सिद्धि एवं अभीष्ट-सिद्धि अधिगत नहीं हो सकती—

'दीक्षाविधिं विना मन्त्रो यो जपेत् कोटिकोटिशः।
न स सिद्धिमवाप्नोति सिन्धुसैकतवर्षवत्'[3]॥

अर्थात् समुद्र के तट पर बिखरी अनन्त बालुकाराशि के प्रत्येक बालुकाकण की संख्या के वर्षों तक लगातार मन्त्र-जप करने पर भी मन्त्र की सिद्धि नहीं हो सकती।

---

१. सांख्यायनतन्त्र। २. सांख्यायनतन्त्र (द्वितीय पटल)। ३.सांख्यायनतन्त्र (द्वि.पटल ५)।

(क) पुस्तकोल्लिखित मन्त्र के जप के दोष—सांख्यायनतन्त्र के अनुसार जो व्यक्ति बिना दीक्षा लिये हुए पुस्तकोल्लिखित (भगवती के) मन्त्र या मन्त्रों का जप करता है वह—

(क) जीवित अवस्था में ही चाण्डाल हो जाता है।

(ख) मृत्यूपरान्त कुत्ते की योनि में जन्म गहण करता है।

'पुस्तके लिखितान् मन्त्रानवलोक्य जपन्ति ये।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वानो भविष्यति'॥

(ख) दीक्षा प्रत्येक उपासना मार्ग में आवश्यक है—चाहे शैव मार्ग हो या शाक्त, वैष्णव मार्ग हो या स्मार्त, सौर मार्ग हो या गाणपत्य—सभी में दीक्षा अनिवार्य है। जो बिना दीक्षा ग्रहण किये हुए जप करता है उससे देवता घृणा करते हैं और क्रोध के वशीभूत होने पर उन्हें जला डालते हैं—

'दीक्षामार्गं विना मन्त्रं शैवं शाक्तञ्च वैष्णवम्।
यो जपेत्तु दहत्याशु देवता च जुगुप्स्यति'[१]॥

इसलिए कहा गया है कि प्रत्येक साधक को अपने कुलगुरु से उपदेश क्रम विधान से दीक्षा ग्रहण करके ही मन्त्र-साधना करनी चाहिए—

'तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षां कुलगुरोर्मुखात्।
उपदेशक्रमेणैव मन्त्रग्रहणमादरात्'॥

(ग) क्या प्रत्येक गुरु दीक्षा दे सकता है ?—प्रत्येक गुरु दीक्षा एवं मन्त्र प्रदान नहीं कर सकता। दीक्षा देने वाले गुरु एवं दीक्षा ग्रहण करने वाले शिष्य दोनों का सुपात्र या अधिकारी होना आवश्यक है, अन्यथा—'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' (श्रुति) अर्थात् अन्धा पथप्रदर्शक स्वयं तो गिरता ही है साथ ही अपने शिष्य को भी किसी गर्त में गिरा देता है।

(घ) दीक्षागुरु की योग्यताएँ—भगवान् शिव कहते हैं कि दीक्षागुरु में निम्न शक्तियाँ, अर्हताएँ, सामर्थ्य एवं सद्गुण होने चाहिए—

'वेदवेदाङ्गपारीणां वेदान्तार्थविदां वरम्।
वैदिकाचारसंयुक्तं कुर्याद्गुरुमतन्द्रितः॥
गर्भकौलागमासक्तं नानाकौलपरायणम्।
अष्टपाशविनिर्मुक्तं कुर्याद्गुरुमतन्द्रितः॥
पुरश्चरणकृन्मन्त्री मन्त्रागमविशारदम्।
उद्धर्तुश्चैव संहर्तुं समर्थं सत्यवादिनम्॥

१. सांख्यायनतन्त्र (२/४)।

प्रधानज्ञं पराज्ञानहारिणं नीतिकोविदम् ।
श्रीविद्यामन्त्रयन्त्रं च कुर्याद्गुरुमतद्रितः' ॥

शिष्य के लक्षण (शिष्यों के प्रकार एवं उनके लक्षण)—

(क) **अपात्र**—'दुरालस्यसमायुक्तं दुर्गुणेन समन्वितम् ।
सर्वदा वर्जयेच्छिष्यं गुरुसेवाभिमानिनम् ॥
अष्टपाशसमायुक्तमष्टाचारसमन्वितम् ।
सर्वदा वर्जयेच्छिष्यं गुरुसेवाभिमानिनम् ॥
कामुकं काञ्चनासक्तं करुणालेशवर्जितम् ।
सर्वदा वर्जयेच्छिष्यं गुरुसेवाभिमानिनम्' ॥

(ख) **सत्पात्र**—'निर्मत्सरं निरालम्बं नीतिशास्त्रविशारदम् ।
नित्यानित्यविवेकञ्च शिष्यत्वेनोपकल्पयेत्' ॥

गुरु एवं शिष्य दोनों पिशाच भी बन जाते हैं—

यदि शिष्य ने सद्गुरु का चयन नहीं किया और यदि गुरु ने सुपात्र शिष्य का चयन नहीं किया तो मन्त्र (दीक्षा) लेने एवं देने दोनों स्थिति में गुरु-शिष्य दोनों पिशाच बन जाते हैं—

'गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम् ।
उपदेशं ददन् गृह्णन् प्राप्नुयात्तौ पिशाचताम्'[१] ॥

निष्कर्ष यह कि गुरु एवं शिष्य दोनों को एक-दूसरे की परीक्षा करके (उनके अधिकारी होने पर ही) उन्हें दीक्षा देनी एवं लेनी चाहिए।

यदि दीक्षा या मन्त्र-साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करना है तो ऐसे ही अधिकारी गुरु का चयन करना चाहिए जो उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त—चक्रपूजा एवं न्यासपूजा में विशाद हो—

'चक्रपूजासमायुक्तं न्यासपूजाविशारदम् ।
गुरुं यत्नात्प्रकर्तव्यं सततं सिद्धिकांक्षिभिः'[२] ॥

विद्या-प्राप्ति के साधन और उनका श्रेष्ठता-क्रम

'गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा ।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थे नोपलभ्यते' ॥

(१) **उत्तमविद्या-प्राप्ति के लक्षण—**

'शुश्रूषया गुरुं सम्यक् तोषयेच्छिष्य अन्वहम् ।
प्रसन्नचेतसा दत्तं मन्त्रमुत्तममर्भक' ॥

---

१. सांख्यायनतन्त्र (२३)। २. सांख्यायनतन्त्र (२/११)।

(२) **विक्रीत या राजस विद्या-प्राप्ति के लक्षण—**

'स्वल्पं वा बहुलं वाऽर्थे, शिष्यद्रव्यं गुरुः स्वयम्।
गृहीत्वा मन्त्रमादत्ते, विक्रीतं तदुदाहृतम्॥
राजसं चैव तद्विद्याद् रोगदं भुवि पुत्रक'।

(३) **तामस विद्या-प्राप्ति के लक्षण—**

'विद्या प्रतिनिधिं विद्यां, यद्दत्तं तामसं स्मृतम्'।

सर्वसिद्धिदा विद्या (मन्त्र) कौन है ? उसका अधिकारी कौन है ?

'मोक्षार्थी च गुरुं यत्नाच्छुश्रूषेणैव तोषयेत्।
शुश्रूषेणैव यल्लब्धं तद्विद्या सर्वसिद्धिदा'॥
न देया विद्यया विद्या वित्तकांक्षी तथैव च।
सच्छिष्याय प्रदातव्या धनदेहाद्यवञ्चिते'[१]॥

भगवती बगलामुखी की तन्त्रोक्त दीपदान-पद्धति

मेरुतन्त्रोक्त पद्धति—मेरुतन्त्र में भगवती बगलामुखी को दीपदान करने की एक विशिष्ट पद्धति का उल्लेख किया गया है। उसका स्वरूप निम्नानुसार है—

(क) **दीपदान का उचित समय**—साधक को चाहिए वह प्रातः शुभ मुहूर्त में उठे और दीप-दान के लिए उपयोगी सामग्री एकत्रित करे।

(ख) **सामग्री**—उपर्युक्त सामग्री में निम्न वस्तुएँ अन्तर्निविष्ट हैं—(१) शुद्ध मुद्गर के बीज का चयन, (२) दीप-निर्माण, (३) ३६ तन्तुओं की वर्तिका का निर्माण और (४) गोघृत, कुसुमपुष्प या केसर एवं तेल का प्रबन्ध तथा एकत्रीकरण।

(ग) **साधक की तैयारी**—साधक को चाहिए कि वह क्षमा धारण करके (क्षमाव्रत का पालन करते हुए), पवित्र होकर, हरिद्रा-रञ्जित वसन धारण करके, पीतासन पर आसीन होकर, पीतमाला ग्रहण करके, पीत चन्दन लगाकर, उत्तराभिमुखी बैठकर, हल्दी से लिपी पृथ्वी पर त्रिकोण बनाकर और उस पर दीपक स्थापित करके तथा दीपक में घृत भरकर दीपक को प्रज्वलित करे।

(घ) **मन्त्रोच्चारणपूर्वक दीप-संकल्प एवं जप**—अब साधक को चाहिए कि वह भगवती बगला के मूल मन्त्र का उच्चारण करके मूल मन्त्र से ही न्यासपूर्वक दीप का संकल्प करके रात्रि में एक मास पर्यन्त बगलामुखी का जप करे।

(ङ) **सिद्धि**—उक्त साधना करने पर साधक के असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जायेंगे। उसे सारे मनोभिलषित फल प्राप्त हो जायेंगे। शत्रु-वशीकरण, स्तम्भन, द्वेषण, शत्रु-नाश आदि कार्य तत्काल सिद्ध हो जायेंगे।

---

१. सांख्यायनतन्त्र।

'असाध्यान् साधयेत् कामान् वशयेदात्मनो रिपून्।
क्षोभयेत् स्तम्भयेच्चापि द्वेषयेत् प्रक्षिपेदिति' ॥

ब्रह्मास्त्रमन्त्र-सन्ध्या

क्रौञ्चभेदन के प्रश्न करने पर भगवान् शिव ने सांख्यायनतन्त्र के चतुर्थ पटल में ब्रह्मास्त्रविद्या की मन्त्र-सन्ध्या पर प्रकाश डाला है।

कहा गया है कि 'मन्त्रसन्ध्या' के बिना सब कुछ निष्फल हो जाता है—

'मन्त्रसन्ध्याविहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत्'।

पञ्चाङ्ग विधि से स्नान करके फिर साधक को मन्त्रस्नान करना चाहिए। अङ्गमन्त्रों या मूल मन्त्र के द्वारा मार्जन करना चाहिए। धौतवस्त्र पहनकर और नित्य कर्म समाप्त करके मन्त्र-सन्ध्या निष्पादित करना चाहिए। ध्यानयोगपूर्वक एवं अंकुश मुद्रा के साथ सूर्यमण्डलग जल लाना चाहिए और उस जल के मध्य आवाहन-स्थापन-सन्निधापन-सन्निवेशन-सम्मुखी-प्रार्थिनी मुद्राएँ दिखाना चाहिए। उसके बाद अमृतीकरण का भी प्रदर्शन करना चाहिए। उस जल को बायें हाथ के चुल्लू में लेकर मूल मन्त्र से अष्टपत्राम्बुज की रचना करनी चाहिए। मध्यस्थान में एकाक्षर बगलामन्त्र लिखना चाहिए। अष्टपत्र में चार मन्त्रवर्ण लिखना चाहिए। फिर एकाक्षरी मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए। फिर मूल मन्त्र से क्रमशः मार्जन करना चाहिए। मार्जन क्रिया ऐहिक-आमुष्मिक फलप्रदायिनी है। तीन बार मूर्धा, दो बार बाहु, तीन बार हृदय एवं नाभि, तीन बार अंघ्रि और इस प्रकार पाद से मूर्धा पर्यन्त मार्जन करना चाहिए।

मार्जनोपरान्त बगलागायत्री पढ़कर और हृदय में देवता का ध्यान करके अर्घत्रय का निक्षेपण करना चाहिए। मूत्र मन्त्र से अभिमन्त्रित उस जल को तीन बार तीन प्रकार से पीना चाहिए। इस प्रकार 'त्रिकाल मन्त्रसन्ध्या' निष्पादित करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त तीनों कालों में उपस्थान-विधान[1] भी आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना भी साधना निष्फल हो जाती है—'उपस्थानं विना सन्ध्या निष्फला नाम संशयः'।

देवी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—

'गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ॥
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्।
पीताम्बरधरां सान्द्रां दृढपीनपयोधराम् ॥
पीतभूषणभूषाङ्गीं धृतचन्द्रार्द्धशेखराम्।
रत्नसिंहासनासीनामम्बां त्रैलोक्यसुन्दराम्' ॥

---

१. उपस्थान का शाब्दिक अर्थ—निकट आना। पूजा के लिए निकट आना। देवता के सामने खड़े होकर स्तुति या आराधना करना।

—इस स्वरूप वाली भगवती बगलामुखी का ध्यान करके प्रात:कालीन सन्ध्या करनी चाहिए।

मध्याह्न में उपस्थान भी करना चाहिए। क्रूरकर्मनिष्पादनार्थ इसका विधान किया गया है। इस दिशा में प्रार्थना का स्वरूप निम्नाङ्कित है—

'दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं, दारिद्र्यविद्रावणं
भूभृद्भी: समनं सदा मृगदृशां चेत: समाकर्षणम्।
सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशां कारुण्यपूर्णेक्षणाम्
मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपु:'॥

माध्यन्दिन उपासना में (किन्तु क्रूर कर्मों के निष्पादन की दिशा में) सायाह्न उपस्थान में प्रार्थना का स्वरूप इस प्रकार का है—

'मातर्भञ्जय मे विपक्षवदनं जिह्वां चलां कीलय
ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रयाशु धिषणामङ्घ्र्योर्गतिं स्तम्भय।
शत्रूंश्चूर्णय चूर्णयाशु गदया गौराङ्गि पीताम्बरे
विघ्नौधं बगले हर प्रतिदिनं कारुण्यपूर्णेक्षणे'॥

सायं औपास्तिक इसी प्रकार निष्पादित करना चाहिए। विघ्न एवं ग्रहों के विनाशार्थ जगन्मयी भगवती का इसी प्रकार प्रार्थनापूर्वक ध्यान करना चाहिए।

मन्त्रसन्ध्या के बिना करोड़ों जप करने पर भी मन्त्रसिद्धि सम्भव नहीं है।

यदि तीनों सन्ध्याकालों में सन्ध्या एवं उपस्थान का निष्पादन किया जाय तथा १००० जप किया जाय तो छ: मासों में सिद्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है।

पूर्वोक्त विधि के अनुसार सन्ध्या निष्पादित करके १०८ बार जिसका भी स्मरण कर लिया जायेगा वह वस्तु उसे अवश्य प्राप्त हो जायेगी—

'पूर्वोक्तविधिवत्सन्ध्यां कृत्वा चाष्टोत्तरं शतम्।
यं यं वापि स्मरेत् पुत्र तं तं प्राप्नोति निश्चितम्'॥



सप्तम अध्याय

ज्ञानमार्गीय साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

ज्ञान क्या है ?

आत्मैक्यबोध ही तो ज्ञान है। इसी के द्वारा मोक्ष प्राप्त भी होता है—

'आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्तिर्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि'। (शङ्कराचार्य : वि.चू. ६)

शाक्त दार्शनिक शक्ति को ही जगदात्मा मानते हैं और 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' की साधना करके ज्ञानमार्गानुसरण ही तो करते हैं।

भगवती बगला—चिच्छक्ति, ज्ञानरूपा, परमेश्वरी एवं ब्रह्मरूपा है—

१. चिच्छक्तिर्ज्ञानरूपा च ब्रह्मानन्दप्रदायिनी।

२. विष्णुरूपा जगन्मोहा ब्रह्मरूपा हरिप्रिया।

३. भक्तानन्दकरी देवी बगला परमेश्वरी।

४. भगवती बगला महाविद्या, महालक्ष्मी, त्रिपुरसुन्दरी, भुवनेशी, पार्वती, ललिता, भैरवी, शान्ता, वाराही, छिन्नमस्ता, तारा, काली, सरस्वती, शिवरूपा, वेदविद्या, मातङ्गी, भुवनेश्वरी, नारसिंही, विष्णुरूपा, रुद्रशक्ति, चिन्मयी, लोकमाता, महामाया आदि सभी कुछ कही गई हैं अत: मात्र 'बगला' ही नहीं सर्वशक्तिस्वरूपा भी हैं। अत: स्पष्ट है कि वे पराशक्ति एवं ब्रह्म हैं। वेदान्तियों का ब्रह्म भी तो सर्वशक्तिमान् है। हाँ, वेदान्तियों का ब्रह्म निष्क्रिय है जब कि शाक्तों का ब्रह्म सर्वक्रियासम्पन्न है।

जिस प्रकार ज्ञान-साधना में भक्ति स्वीकृत तो है किन्तु प्रेमाभक्ति एवं भावभक्ति के रूप में नहीं, उसी प्रकार बगलोपासना में भी भक्तितत्त्व स्वीकृत तो है तो किन्तु यहाँ भी गलदश्रुभावुकता वाली भक्ति की साधना तिरोहित-सी है। यहाँ ज्ञान एवं योग अवश्य प्रधान है। ज्ञान है क्या ? मन, प्राण, बिन्दु का स्थैर्य एवं उनका सुषुम्णा में प्रवेश तथा ध्यान में सहजतत्त्वावतरण—

'यावन्नैव प्रविशति चरन् मारुतो मध्यमार्गे
यावद्बिन्दुर्न भवति दृढ: प्राणवातप्रबन्धात्।
यावद्ध्याने सहजसदृशं जायते नैव तत्त्वं
तावज्ज्ञानं वदति तदिदं दम्भमिथ्याप्रलाप:'॥

यही दृष्टि शक्ति-उपासना में भी स्वीकृत है।

ज्ञानमार्गीय साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

जब 'अहं ब्रह्मास्मि' की वेदान्ती दृष्टि शाक्त दर्शन में आकर 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' के रूप में रूपान्तरित हो उठती है तब उसे शाक्त दर्शन में ज्ञानमार्ग की आख्या प्राप्त होती है। भगवती बगलामुखी की साधना में ज्ञानमार्गीय दृष्टि भी स्वीकृत है।

ज्ञान का स्वरूप—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' के अनुसार तो ज्ञान ही परब्रह्म है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि ज्ञानी तो हमारी साक्षात् आत्मा है—'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'। (गीता)

(क) **माहेश्वरतन्त्रोक्त दृष्टि**—नारदपाञ्चरात्र में कहा गया है—जिससे आत्मा स्फुट होती है, आवरणों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों) से निर्मुक्त होकर अपने स्वस्वरूप में प्रत्यक्षीकृत हो उठती है उस आन्तरिक बोध-प्रकाश को ज्ञान कहते हैं—

'ज्ञानं तत्तु विजानीयात् येनात्मा भासते स्फुट:'[१] ॥

आचार्य शङ्कर की दृष्टि—आचार्य शङ्कर ज्ञान के तीन लक्षण मानते हैं—१. ब्रह्म सत्य है। २. जगत् मिथ्या है। ३. जीव स्वरूपत: ब्रह्म ही है। इन तीनों सत्यों की अपरोक्षानुभूति ही ज्ञान है।

'श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभि:।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापर:'॥

जब तक अज्ञान है तभी तक 'संसारभाव' है। ज्ञान के उदित होते ही संसार विलीन हो जाता है। अज्ञान से ही ज्ञान आवृत है—

'अज्ञानेनावृतो नित्यं मोहरूपेण नित्यदा।
तावत्संसारभाव: स्याद्यावद् ज्ञानमुल्लसेत्'॥

अज्ञान के कारण ही जगत् रूपी सीपी में चाँदी होने का भ्रम हो रहा है। ज्ञान के उदय होते ही सीपी में रजत की भ्रान्ति रूप संसार परमात्मा में विलीन हो जाता है—

'अज्ञानाद्रजतं भाति शुक्तिकायां यथा प्रिये।
ज्ञानात्तद्रजतं देवि! तस्यामेव विलीयते॥
तथाक्षरे परे ब्रह्मण्याभाति सकलं जगत्'[२]।

फिर मात्र परब्रह्म ही बचता है—'अवशिष्यते परं ब्रह्म'।

ज्ञान स्वस्वरूपावबोध है—'स्वस्वरूपावबोधो हि ज्ञानमित्युच्यते प्रिये'[३]। ज्ञान

---

१. माहेश्वरतन्त्र (प्रथम पटल)। २. मा.तं. (पटल १।३१-३२)। ३. माहेश्वरतन्त्र (पटल १)।

और विकल्प परस्पर विरोधी है। क्योंकि—१. ज्ञान = 'स्वस्वरूपावबोधो हि ज्ञानमित्युच्यते प्रिये'। २. विकल्प = 'स्वस्वरूपभ्रमो देवि ! विकल्पो भवसंज्ञकः'।

भ्रान्तात्मा एवं प्राप्तात्मा में भेद—

(१) 'भ्रान्तात्मनस्तु शयने विकल्पो जायते महान्'।

(२) 'प्राप्तात्मनः समूलोऽपि नश्यते तद्वदेव हि'॥

इस अज्ञान के दो भेद हैं—१. कारण एवं २. कार्य।

'तदज्ञानं द्विधाभूतं कार्यकारणभेदतः'।

अज्ञान के दो भेद हैं—

१. कारणात्मक अज्ञान	**२. कार्यात्मक अज्ञान**
परमानन्द स्वरूप अक्षर तत्त्व में मूलभूत एवं परमकारणात्मक अज्ञान स्थित है—'अक्षरे परमानन्दे मूलं स्यात्कारणं परम्'।	बुद्धि के आभास से दीपित कार्यात्मक अज्ञान है—'कार्यात्मकं बुद्धिभेदात् बुद्धिराभास-दीपिता'। कार्यात्मक पिण्ड।

अज्ञान ही प्रकृति, माया, अव्यक्त, प्रधान, मोह, अदृष्ट आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है—'अज्ञानं प्रकृतिर्माया मोहाव्यक्तं प्रधानकम्।

इसी की दो शक्तियाँ हैं—(१) विक्षेप शक्ति तथा (२) आवरण शक्ति। ये ही विश्वोत्पत्ति का कारण है।

जगत् उसी प्रकार मिथ्या है जिस प्रकार आकाश में नीले रंग की प्रतीति, मरुस्थल में पानी की प्रतीति एवं स्थाणु में पुरुष होने की प्रतीति। ठीक उसी प्रकार चिदात्मा में विश्व के होने की (मिथ्या) प्रतीति हो रही है— 'पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि'।

(ख) **गीता में ज्ञान-दृष्टि—**

गीता में ज्ञान के प्रकार—भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञान के तीन प्रकार माने हैं—

१. सात्त्विक ज्ञान—

'सर्वभूतेषु येनैकं, भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्'॥ (१८।२०)

२. राजस ज्ञान—

'पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषुभूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्'॥ (१८।२१)

३. तामसिक ज्ञान—

'यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च यत् तामसमुदाहृतम्'॥ (१८।२२)

ज्ञानमार्गीय दृष्टि और उसका स्वरूप—आचार्य शंकर ने ज्ञानमार्गीय दृष्टि को इस प्रकार उपन्यस्त किया है—

(ग) **जगन्मिथ्यात्व और आचार्य शंकर—**

१. प्रतिज्ञा—'जाग्रद्दृश्यानां भावानां वैतथ्यमिति प्रतिज्ञा'।

२. हेतु—'दृश्यत्वादिति हेतुः'।

३. दृष्टान्तः—'स्वप्नदृश्यभाववदिति दृष्टान्तः'।

(माण्डूक्यकारिका–वैतथ्य प्रकरण)



गौडपादाचार्य कहते हैं—सब कुछ मिथ्या है, क्योंकि—'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा'।

(घ) **अनुबन्धचतुष्टय—**

सम्बन्ध	विषय	प्रयोजन	अधिकारी (वि.चू.)

एक उदाहरण लीजिए—

वेदान्त दर्शन के ग्रन्थों का विषय आत्मबोध है। शाक्तोपासना में आत्मबोध का स्थान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। (वि.चू.)

वेदान्तशास्त्रानुसार अधिकारी—(१) नित्यानित्य विवेक, (२) अनित्य पदार्थों से वैराग्य, (३) शमादि षट् सम्पत्ति और (४) आत्मज्ञान की तीव्राकांक्षा—तीव्रोत्कण्ठा से युक्त व्यक्ति ही अधिकारी है।

प्रयोजन—बन्धनों से मुक्ति है। (वि.चू.)

ब्रह्मज्ञान का अधिकारी

आचार्य शंकर कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान का अधिकारी केवल वह है जिसमें निम्न लक्षण हो—

'विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्म जिज्ञासायोग्यता मता'[१]॥

जो सदसद्विवेकी, वैराग्यवान्, षट्सम्पत्ति युक्त और मुमुक्षु हो उसी में ब्रह्मजिज्ञासा की योग्यता मानी जाती है।

(आत्मावस्थानार्थ) जिज्ञासा के चार साधन इस प्रकार हैं—१. नित्यानित्यवस्तु विवेक, २. लौकिकालौकिक सुखभोग में वैराग्य, ३. शमादि षट्सम्पत्ति और ४. मुमुक्षुता।

षट् सम्पत्ति

शम | दम | उपरति | तितिक्षा | श्रद्धा | समाधान

'आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम्।
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम्' ॥

वसिष्ठ की दृष्टि—

ज्ञान की सात भूमिकाएँ : योगवासिष्ठ—

'शास्त्रसज्जनसम्पर्कैः प्रज्ञामादौ विवर्धयेत्।
प्रथमा भूमिकैषोक्ता योगस्यैव च योगिनः।
विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीयाऽसङ्गभावना।
विलापिनी चतुर्थी स्याद्वासनाविलयात्मिका ॥
शुद्धसंविन्मयानन्दरूपा भवति पञ्चमी ॥
स्वसंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका।
आनन्दैकघनाकारा सुषुप्तसदृशस्थितिः ॥
तुर्यावस्थोपशान्ताय मुक्तिरेवेह केवलम्।
समता स्वच्छता सौम्या सप्तमी भूमिका भवेत्' ॥
(योगवासिष्ठ-नि.पू. १२०।१-५)

(७) प्रगाढ़ सुषुप्ति की भूमिका (ब्रह्मविद्वरिष्ठ की भूमिका)—विदेहमुक्तों की भूमिका, समता, स्वच्छता, सौम्यता की भूमि; ब्रह्मविद्वरिष्ठ की भूमिका।

(६) तुर्यावस्था की भूमिका (ब्रह्मविद्वरीयान की भूमिका)—स्वसंवेदनरूप शान्तिमय तुरीयावस्था। इस अवस्था में विज्ञानानन्दघन परमात्मा मात्र का ही अनुभव होता है किन्तु संसार का नहीं।

(५) प्राप्ति नामक भूमिका (ब्रह्मविद्वर)—अर्धसुषुप्त की अवस्था, ब्रह्मविद्वर की अवस्था, जीवन्मुक्त।

(४) विलापिनी भूमिका (ब्रह्मवित्)—इसमें वासनाओं का त्याग कर ब्रह्मसाक्षात्कार के द्वारा प्रपञ्च की पूर्णनिवृत्ति, साधना में स्वप्नावस्था।

(३) निदिध्यासन भूमिका—संसार के संग से रहित होकर परमात्मा के ध्यान में नित्य स्थित रहना।

(२) मनन भूमिका—सच्चिदानन्द ब्रह्म के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना।

(१) श्रवण भूमिका—शास्त्र और सज्जनों की सङ्गति से बुद्धि को तीक्ष्ण एवं शुद्ध करना।

१. **नित्यानित्यविवेक**—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः ।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः' ॥ (वि.चू.)

२. **वैराग्य**[1]—

'ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यम् (योगभाष्य), तद्वैराग्यं जुगुप्सया दर्शनश्रवणादिभिः' ।
'देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि' । (वि.चू.)

३. **शम**—

'विरज्य विषयव्राताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः ।
स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते' ॥ (वि.चू.)

४. **दम**—

'विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके ।
उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः' ॥ (वि.चू.)

५. **तितिक्षा**—

'सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम् ।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते' ॥ (वि.चू.)

६. **श्रद्धा**—

'शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम् ।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते' ॥ (वि.चू.)

७. **समाधान**—

'सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वथा ।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्' ॥ (वि.चू.)

८. **मुमुक्षुता**—

'वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते ।
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः' ॥ (वि.चू.)

वैराग्य एवं मुमुक्षुता का विशेष महत्त्व—यदि वैराग्य एवं मुमुक्षुता न हों (अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ साधन न हों तो) या मन्द हों तो शमादि षट् सम्पत्ति मरुस्थल में जलाभास के समान मिथ्याभास मात्र है—

'एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः ।
मरौ सलिलवत्तत्र शमादेर्भासमात्रता' ॥ (वि.चू. ३१)

---

(१) ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं । जानिय ब्रह्म समान सब माहीं ।
कहिय तात सो परम बिरागी ॥

भले ही कोई शास्त्रों की व्याख्या करे, देवताओं का यजन करे, नाना शुभ कर्म करे, देवताओं का भजन करे तथापि 'ब्रह्म और आत्मा की एकता के बोध' के बिना सौ ब्रह्माओं का काल (१०० कल्प) व्यतीत हो जाने पर भी मुक्ति नहीं हो सकती—

'वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्, कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवता: ।
आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्तिर्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि' ॥

तीर्थस्नान, दान एवं सैकड़ों प्राणायामों से भी मुक्ति होना सम्भव नहीं है—'न स्नानेन न दानेन प्राणायामशतेन वा' ।

मोक्ष के साधन क्या है ?

आचार्य शंकर की दृष्टि में ये चार हैं—

मुक्ति के साधन : साधनचतुष्टय[1]

(१) नित्यानित्यवस्तु विवेक
(२) लौकिकालौकिक सुख-भोगों से वैराग्य
(३) शमादि षट् सम्पत्ति
(४) मुमुक्षुता

शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान

मुक्ति के हेतुओं में १. श्रद्धा, २. भक्ति, ३ ध्यान और ४. योग प्रधान हैं—

'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षोर्मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गी: ।
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य, मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात्' ॥

मोक्ष का प्रथम साधन अनित्य वस्तुओं से वैराग्य है। उसके बाद उसके अन्य साधन भी है; यथा—शम, दम, तितिक्षा, सम्पूर्ण आसक्तियुक्त कर्मों का त्याग। इसके बाद इसके साधन हैं—श्रवण, मनन, निदिध्यासन (चिर काल तक निरन्तर आत्मतत्त्व का ध्यान)—

'मोक्षस्य हेतु: प्रथमो निगद्यते वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु ।
तत: शमश्चापि दमस्तितिक्षा न्यास: प्रसक्ताखिलकर्मणां भृशम् ॥
तत: श्रुतिस्तन्मननं सतत्त्व ध्यानं चिरं नित्यनिरन्तरं मुने !
ततोऽविकल्पं परमेत्य विद्वानिहैव निर्वाणसुखं समृच्छति'[2] ॥

---

१. साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभि: ।
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिद्ध्यति ॥
आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेक: परिगण्यते ।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम् ॥
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ॥ (विवेकचूडामणि)

२. विवेकचूडामणि (आचार्य शंकर) ।

सुरेश्वराचार्य की दृष्टि—आचार्य सुरेश्वर कहते हैं कि संसृति के बीज अविद्या का नाश ही आत्मा की मुक्ति है—

'साऽविद्या संसृतेर्बीजं तन्नाशो मुक्तिरात्मन:'।

सांख्यमतावलम्बी कहते हैं कि—शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि रूप अनात्माओं में यह आत्मा है—इस प्रकार भेद का तिरोधान होकर जो ऐक्य का ज्ञान है वही मिथ्या ज्ञान अज्ञान है। इसी मिथ्या ज्ञान से अनन्त अनर्थों की उत्पत्ति होती है। उसका नाश ही मोक्ष है—'शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिष्वनात्मस्वात्मेति नि:सन्धिबन्धनं मिथ्याज्ञानमज्ञानं तन्निबन्धनो ह्यात्मनोऽनेकार्थसम्बन्ध:'[१]।

न्याय, वैशेषिक, सांख्य एवं मीमांसा की मोक्ष सम्बन्धिनी दृष्टि का वैलक्षण्य यह है कि इन दर्शनों में प्रतिपादित मोक्षावस्था में ज्ञान एवं आनन्द के लिए कोई स्थान नहीं है।

रामानुजाचार्य की दृष्टि में मुक्ति की अवस्था में शरीर, ज्ञान एवं आनन्द तीनों की सत्ताएँ रहती हैं किन्तु इस अवस्था का शरीर अप्राकृतिक एवं नित्यविभूति का होता है। इसी उपादान से गठित शरीर धारण करके मुक्त वैकुण्ठ में रहते हैं। रामानुज केवली नाम वाले मुक्तों को भी मानते हैं किन्तु इन (सांख्य दर्शन में मान्य) केवलियों के प्रति रामानुजाचार्य का श्रद्धाभाव नहीं है।

अभिषेक और ब्रह्मास्त्रविद्या

सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि : मन्त्राभिषेक—भगवान् शिव देवी से कहते हैं कि गुरु को चाहिए कि वह शिष्य को ब्रह्मास्त्रविद्या के माध्यम से मन्त्राभिषिक्त करे, क्योंकि मन्त्राभिषेक एक ऐसी शक्तिगर्भा क्रिया है कि इसके द्वारा शिष्य इतना सामर्थ्यवान् हो जाता है कि उसे पुरश्चर्या की अपेक्षा ही नहीं रह जाती तथा वह तत्काल सिद्ध हो जाता है—

'एवं मन्त्राभिषेकञ्च कुर्याद् ब्रह्मास्त्रविद्यया।
सद्य: सिद्धिर्भवेत्पुत्र! पुरश्चर्यां विना भुवि'॥

मन्त्राभिषेक की इस क्रिया में गुरु को यह कल्पना करनी चाहिए कि मेरे हृदय-कमल के मध्य में स्थित ज्योतिर्मयी विद्या शिष्य के हृदय में प्रवेश कर रही है—

'स्वहृत्कमलमध्यस्थां विद्यां ज्योतिर्मयीं पुन:।
शिष्यस्य हृदयं चैव प्रविशन्तीं विभावयेत्'॥

---

१. नैष्कर्म्य सिद्धि उपर्युक्त तत्त्व शाक्तोपासना में भी स्वीकृत है।

षट्चक्रभेदन

(षट्चक्रभेदन यौगिक क्रिया है और ज्ञानमार्ग में अनिवार्य भी नहीं है।) साधक को चाहिए कि वह मन्त्राभिषेक प्राप्त करने के उपरान्त गुरुमुखोक्त निर्देशक्रम के अनुसार अपने पिण्डस्थ ६ चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र) का यौगिक विधि से (प्राण, जीवात्मा एवं कुण्डलिनी को सुषुम्णा में प्रवेश करके) वेधन करे एवं आत्मा तथा अपने सत्स्वरूप में एकत्व की कल्पना करे। इसके बाद वह अपनी सत्ता को पृथक् न मानकर 'विद्या' के रूप में देखे—स्वयं मन्त्रस्वरूप (विद्यास्वरूप) हो जाय।

स्वात्मैक्य एवं विद्यास्वरूप के साथ एकता

'षट्चक्रभेदनं कृत्वा स्वात्मैक्यं च विभाव्य च।
विद्यारूपी भवेत्पुत्र साम्राज्यपरमेष्ठिता' ॥

अभिषेकान्तर्गत क्रियाएँ

मन्त्राभिषेक	ज्योतिर्मयी विद्या का गुरु-हृत्कमल से निकलकर शिष्य के हृदय में प्रवेश	षट्चक्रभेदन	स्वात्मैक्य विभावन	साधक का विद्या स्वरूप बन जाना

मन्त्राभिषेक की संक्षिप्त विधि

(१) **अभिषेक हेतु शुभ काल : सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि**—सांख्यायनतन्त्र के अनुसार अभिषेक के लिए उपयुक्त काल-विधान इस प्रकार है—

(क) मास—आश्विन, कार्तिक एवं चैत्र।

(ख) दिन—गुरुवार, रविवार, शुक्रवार, चन्द्रवार।

'आश्विने कार्तिके चैव चैत्रे मासि कुमारक।
कर्तव्यस्त्वभिषेकश्च मानवैः सिद्धिकांक्षिभिः ॥
गुरौ रवौ भृगाविन्दौ वारकेषु कुमारक।
मन्त्राभिषेकः कर्तव्यः सततं सिद्धिकांक्षिभिः' ॥

(२) **यन्त्र-निर्माण**—साधक को चाहिए कि वह अनन्य बुद्धि होकर १६ अङ्गुल के मान में बिन्दु बनाये, फिर उसके ऊपर अष्टपत्र का निर्माण करे और फिर वह—१. प्रियङ्गु, २. शालि, ३. गोधूम, ४. चना, ५. माष, ६. कुलित्थ, ७. मूँग और ८. नीवार—नामक आठ धान्यों का यथाक्रम मध्य में विन्यास करे।

(३) **कलश-स्थापन**—इसके अनन्तर क्षालित, शुद्ध एवं सित ८ कलशों की स्थापना की जानी चाहिए और उनकी पूजा की जानी चाहिए। इसके अनन्तर इन अष्टकलशों की षोडशोपचारों से पूजा की जानी चाहिए।

(४) **कलशों का जलाप्यायन एवं अन्य क्रियाएँ**—इसके अनन्तर नदी के अकल्मष, पवित्र जल से घड़ों को भरना चाहिए। नव भाण्डों में नव रत्न रखने चाहिए। ये ९ पात्र कस्तूरी एवं चन्दन से भी समलंकृत होने चाहिए। इन्हें भाण्डों में रखना भी चाहिए। चिन्मयी बगलाम्बिका का मध्य भाग में (स्थान-ग्रहणार्थ) आवाहन करना चाहिए। केरलोक्त विधि से उनकी प्राण-स्थापना करनी चाहिए। वाणी, रमा, गौरी, शची, स्वाहा, रति, दुर्गा एवं छाया की समभ्यर्चना करनी चाहिए।

मन्त्राभिषेकार्थ शुभ नक्षत्र एवं अन्य आवश्यक विधान

मन्त्राभिषेक के लिए शुभ नक्षत्र—रोहिणी, श्रवण, स्वाती एवं विशाखा नक्षत्र मन्त्राभिषेक के लिए शुभकाल हैं—

'रोहिण्यां श्रवणे चैव स्वात्याञ्चैव विशाखयोः।
मन्त्राभिषेकः कर्तव्यः सद्यः सिद्धिकरो भुवि'॥

किसी शुभ दिन के पूर्वाह्न में शिष्य को पञ्चगव्य से और फिर आमलक से स्नान कराकर उसे देवता के समीप लाकर गायत्री मन्त्र का १० हजार जप करना चाहिए।

देवता के ईशान भाग को गोमय से लीप करके वहाँ रङ्गावली की रचना करनी चाहिए। यह रङ्गावली रक्त-पीत-सित-असित वर्णों की होनी चाहिए। फिर केरलोक्त विधान के अनुसार पूजा करनी चाहिए और नये नौ वस्त्रों से आवेष्टित करना चाहिए। फिर कलश के भीतर गन्ध, पुष्प एवं पत्रादिक का विन्यास करना चाहिए। फिर वहाँ शिष्य को बुलाकर ऋत्विक्-वरण की क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। फिर वेदवेदाङ्गपारीण ८ विप्रों की यथाविधि वस्त्र-भूषणादि से पूजा की जानी चाहिए।

कलशार्चन-क्रम—

१. प्रथम कलश का अर्चन—शुक्रादिदिक्षु मन्त्रों से।
२. द्वितीय कलश का अर्चन—लक्ष्मीसूक्त एवं श्रीसूक्त से।
३. तृतीय कलश का अर्चन—पुरुषसूक्त से।
४. चतुर्थ कलश का अर्चन—नारायणानुवाक्य से।
५. पञ्चम कलश का अर्चन—पञ्चब्रह्म के मन्त्रों से।
६. षष्ठ कलश का अर्चन—षष्ठ आम्भस्य पारेण से।
७. सप्तम कलश का अर्चन—ब्रह्मवल्ली से।
८. अष्टम कलश का अर्चन—भृगुवल्ली से।

मार्जन क्रिया—मध्यस्थित पूर्वकलश का मूल मन्त्र से मार्जन करना चाहिए।

शिष्य का अलङ्करण—मार्जनोपरान्त शिष्य को नवीन वस्त्र एवं भूषणों से समलंकृत करके मण्डप के भीतर लाना चाहिए। फिर शिष्य को बायीं जङ्घा पर विन्यस्त करके उसके मस्तक को आदर से सूँघना चाहिए।

इसी क्रम में अन्त में गुरु को कल्पना करनी चाहिए कि मेरे हृदय में स्थित ज्योतिर्मयी विद्या शिष्य के हृदय में प्रवेश कर रही है और शिष्य को चाहिए कि वह षट्चक्रभेदन करके अपने एवं आत्मा में ऐक्य स्थापित करे और स्वयमेव मन्त्रस्वरूप बन जाय।

बगलोपासना शक्ति की उपासना है और अद्वैतपरक है। समस्त शाक्त दर्शन अद्वैतभावापन्न है अत: यह ज्ञानमार्गीय साधनान्तर्गत भी आता है।

'अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत्'॥

की शाक्त दृष्टि एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' की अद्वैतवादी ज्ञानदृष्टि में क्या भेद है? भुवनन्यास, राशिन्यास, नक्षत्रन्यास आदि की प्रक्रिया में साधक की विश्व के साथ अभेद भावना-स्थापना एवं शङ्कराचार्य के इस कथन में कि—

'यदिदं सकलं विश्वं नानारूपं प्रतीतमज्ञानात्।
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम्'॥

साम्य है। न्यास-विधान तो बगलोपासना में भी स्वीकृत है। न्यास स्वयं में ज्ञानियों की अद्वैतात्मक दृष्टि की साधना है। सांख्यायनतन्त्र में देवी के साथ सायुज्य प्राप्त करने का लक्ष्य प्रतिपादित है अत: साधक का देवी के साथ सामरस्य-स्थापन ज्ञानमार्गीय साधना है।

वेदान्तियों का ज्ञानमार्ग और शाक्तों का ज्ञानमार्ग यत्किञ्चित् भिन्न होते हुए भी एकरूप है, क्योंकि दोनों अद्वैतवाद में विश्वास रखते हैं। दोनों ज्ञानमार्ग में विश्वास रखते हैं। दोनों की ज्ञान-दृष्टि ब्रह्मात्मैक्यवादी है! हाँ, शाक्तों की दृष्टि विश्वात्मैक्यवादी भी है। एक का ज्ञान विवर्तवाद-परिणामवाद गर्भित है तो दूसरे का ज्ञान आभासवाद-स्वातन्त्र्यवाद गर्भित है।



अष्टम अध्याय

योगमार्गीय साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

योग शब्द का अर्थ

योग का अर्थ है जुड़ना या जुड़ाना। दो वस्तुओं को परस्पर जोड़ देने को योग कहते हैं, अतः इस अर्थ में परमात्मा तथा जीवात्मा को परस्पर जोड़ देने को भी 'योग' कहा गया है।

योग के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों की दृष्टियाँ पृथक्-पृथक् हैं; यथा—

(क) **शारदातिलक**—आचार्य लक्ष्मणदेशिक कहते हैं कि जीवात्मा एवं परमात्मा के ऐक्य को ही योग कहते हैं—'ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः'।

(ख) **प्रयोगसार**—प्रयोगसार के रचयिता का कथन है कि निष्कल एवं अप्रमेय देवता भगवान् के सन्धान को ही योग कहते हैं, जो कि जगत् के उच्छेद का भी कारण है—

'निष्कलस्याऽप्रमेयस्य देवस्य परमात्मनः।
सन्धानं योगमित्याहुः संसारोच्छित्तिसाधना'॥

शैवों की दृष्टि—शैवमतानुयायी लोग तो यह कहते हैं कि शिव एवं आत्मा में अभेद भाव की प्रतिपत्ति की अनुभूति ही योग है—

'शिवात्मनोरभेदेन प्रतिपत्तिः परे विदुः'[१]।

(ग) **शैव-शाक्त योगियों की दृष्टि**—तान्त्रिक शैव-शाक्त योगी शिव एवं शक्ति के ज्ञान को ही योग कहते हैं—

'शिवशक्त्यात्मकं ज्ञानं जगुरागमवेदिनः'[२]।

(घ) **पौराणिकों की दृष्टि**—पुराणानुवर्ती विद्वानों की दृष्टि है कि जिस ज्ञान से पुराणपुरुष का अवबोध या उसकी अनुभूति हो वह ज्ञान ही योग है—

'पुराणपुरुषस्यान्ये ज्ञानमाहुर्विशारदाः'[३]।

(ङ) **कठोपनिषद् की दृष्टि**—कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता को योग का अर्थ समझाते हुए कहते हैं कि—'जब मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ सम्यक् रूप से स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती–उस स्थिति को 'परमा गति' कहते हैं। इन्द्रियों की उसी स्थिर धारणा को ही योग कहते हैं—

---

१. शारदातिलक। २. शारदातिलक (पटल २५)। ३. शारदातिलक (पटल २५।३)।

'यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्'।

उस समय साधक प्रमादरहित हो जाता है। योग उदय और अस्त होने वाला है—

'अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ'[१]॥

(च) **पातञ्जल योग की दृष्टि**—पातञ्जल योग में योग की दो दृष्टियों से व्याख्या की गई है—

(१) **निषेधपरक दृष्टि**—योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है—'योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः'[२]।

(२) **विधिपरक दृष्टि**—योग स्वरूपावस्थान है--'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'[३]।

प्रश्न उठता है कि क्या चित्तवृत्तियों के निरुद्ध न रहने की अवस्था में द्रष्टा का स्वरूप में अवस्थान न होता ? सूत्रकार कहते हैं कि इस अवस्था में द्रष्टा का अवस्थान तो रहता है किन्तु उसका वृत्तियों के साथ सारूप्य (वृत्तियों के सदृश स्वरूप वाला होना) रहता है अतः वह अवस्थित रहते हुए भी स्वस्वरूप में नहीं वृत्तिस्वरूप में रहता है—'वृत्तिसारूप्यमितरत्र' (१।४)।

भोजराज ने इसे इस रूप में समझाया है—जिस प्रकार जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जलतरङ्गों के चलने पर चलने लगता है और उनके स्थिर होने पर स्थिर हो जाता है अर्थात् जलतरङ्गों की दशाओं को ही लगातार ग्रहण करते रहने से तदाकाराकारित हो जाता है, उसी प्रकार द्रष्टा ऐन्द्रिय वृत्तियों के सम्पर्क में रहने पर उनके विषयों का आकार ग्रहण करता रहता है—अतः अपने स्वरूप में अवस्थित हो ही नहीं पाता—

(१) 'योगादन्यस्मिन् काले वृत्तयो या वक्ष्यमाणलक्षणास्ताभिः सारूप्यं तद्रूपत्वम्'।

(२) 'यादृश्यो वृत्तयो दुःखमोहसुखाद्यात्मिकाः प्रादुर्भवन्ति तादृग्रूप एव संवेद्यते व्यवहर्तृभिः पुरुषः'।

(३) 'यस्मिंश्चेन्द्रियवृत्तिद्वारेण विषयाकारेण परिणते पुरुषस्तद्रूपाकार एव परिभाव्यते, यथा जलतरङ्गेषु चलत्सु चन्द्रश्चलन्निव प्रतिभासते तच्चित्तम्'[४]।

---

१. कठोपनिषद्। २. योगसूत्र (१।२)। ३. योगसूत्र (१।२)। ४. भोजराज : राजमार्तण्ड (भोजवृत्ति)।

महर्षि पतञ्जलि की दृष्टि—महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त-वृत्तियों का निरोध ही योग है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'।

(छ) **भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि**—भगवान् श्रीकृष्ण ने योग शब्द को अनेक दृष्टियों से परिभाषित किया है; यथा—

(१) योग कर्म-कौशल है—'योग: कर्मसु कौशलम्'।
(२) समत्व ही योग है—'समत्वं योग उच्यते'।
(३) वियोग ही योग है—'वियोगं योगसंज्ञितम्'।

तान्त्रिक एवं वैष्णवी दृष्टि—तन्त्र-ग्रन्थों में तथा वैष्णव-परम्परा के ग्रन्थों में जीव और परमात्मा के मिलन को ही योग कहा गया है।

(ज) **भाष्यकार व्यास की दृष्टि**—योगभाष्यकार व्यास योगसूत्रों की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—योग ही समाधि है ('योग: समाधि:')। 'स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्म:'। अर्थात् योग समाधि है और यह चित्त की समस्त भूमियों में विद्यमान है।

(झ) **कुलार्णवतन्त्रोक्त दृष्टि**—कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है कि—आसिका-बन्धन, नासिका-बन्धन, यम, नियम, पद्मासन एवं नासाग्रावलोकन आदि में से कोई भी क्रिया योग नहीं हैं। जीवात्मा एवं शुद्ध परमात्मा का ऐक्य ही योग है—

'आसिकाबन्धनं नास्ति नासिकाबन्धनं न हि।
न यमो नियमो नास्ति स्वयमोमिति पश्यताम्॥
न पद्मासनतो योगो न नासाग्रनिरीक्षणम्।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदा:'॥

योग के अङ्ग (अष्टाङ्ग योग)

योग के आठ अङ्ग हैं—

'योगाङ्गैरिमान् जित्वा योगिनो योगमाप्नुयु:।
यमनियमावासनप्राणायामौ तत: परम्॥
प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्द्धं समाधिना।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनो योगसाधने'[१]॥

योगाङ्ग

यम | नियम | आसन | प्राणायाम | प्रत्याहार | धारणा | ध्यान | समाधि

प्राणायाम—(१) 'तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:'[२]॥

१. शारदातिलक (२५।५-६)। २. योगसूत्र २।४९।

(२) 'इडयाऽकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया।
धारयेत् पूरितं योगी चतु:षष्ट्या तु मात्रया॥
सुषुम्णामध्यगं सम्यक् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः॥
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेद्योगवित्तमः।
प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः'॥ (शारदातिलक २५।१६-१८)

प्रत्याहार—'इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम्।
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते'॥

धारणा—

'अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुसीवनीलिङ्गनाभिषु।
हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि॥
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि।
धारणां प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते'॥ (शारदातिलक)

'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'। (योगसूत्र ३।१)

ध्यान—'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'। (योगसूत्र)

'समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना।
आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते'॥ (शारदातिलक)

समाधि—महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

(१) 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः'॥ (३।३)

(२) 'समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः।
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम्'॥ (शारदातिलक २५।२७)

प्राणापानयोग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, हंसयोग, षट्चक्रभेदन, पञ्चधारणायोग आदि योगान्तर्गत साधनाएँ हैं।

योगी किसे कहते हैं? योगिराज गोरक्षनाथ कहते हैं—

'दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं, वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बनं, स एव योगी स गुरुः स सेव्यः'॥
(अमनस्क योग)

तान्त्रिक योग

तान्त्रिक योगी कहते हैं कि—

'नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे यो न जानाति स योगी नामधारकः'॥

भक्तों की दृष्टि में योग जीवात्मा-परमात्मा का ऐक्य है—

'न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः' ॥ (देवीभागवतपुराण)

अर्थात् 'योग' न तो आकाश में है और न तो भूमि या रसातल में प्रत्युत यह जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता में अवस्थित है।

मानव-पिण्ड में जो ६ चक्र स्थित हैं वे सभी सुषुम्णा नाड़ी के ६ स्थानों में स्थित हैं और उन्हें षट्शक्ति-समन्वित 'षट् पद्म' कहते हैं। इन ६ स्थानों में ६ शक्तियाँ हैं और उन्हीं शक्तिस्थानों में ६ पद्म स्थित हैं—

'इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत्खलु।
षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः' ॥

सुषुम्णा नाड़ी की ६ ग्रन्थियों में पद्माकार ६ चक्र ही षट्चक्र हैं। इन ६ ग्रन्थियों का भेदन करके जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग ही योग है—'ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः'।

(क) **चक्र**—

(१) गुह्यस्थान में	:	४ दलों वाला मूलाधार चक्र है।
(२) लिङ्गमूल में	:	६ दलों वाला स्वाधिष्ठान चक्र है।
(३) नाभिमण्डल में	:	१० दलों वाला मणिपूर चक्र है।
(४) हृदय में	:	१२ दलों वाला अनाहत चक्र है।
(५) कण्ठदेश में	:	१६ दलों वाला विशुद्ध चक्र है।
(६) भ्रूमध्य में	:	२ दलों वाला आज्ञा चक्र है।

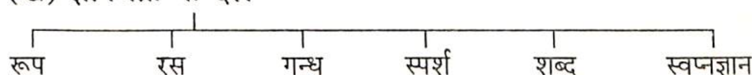
—ये ही ६ चक्र सुषुम्णा नाड़ी में ग्रन्थित हैं।

सहस्रार या सहस्रदलपद्म कपाल में सर्वोपरि चक्र है। यही विवरसहित सुषुम्णा नाड़ी का मूल है। इसी स्थान से सुषुम्णा अधोमुखी होकर अपनी अन्तिम सीमा मूलाधार चक्र के योनिमण्डल तक जाती है। भगवती बगला—'षट्चक्रभेदनिपुणाभमनलाभ-कान्तिं' भी हैं।

आज्ञाचक्र के ऊपर कपालदेश में ३ पीठस्थान हैं—१. बिन्दुपीठ, २. नादपीठ, ३. शक्तिपीठ।

शक्तिपीठ—ब्रह्मबीज ॐकार ही शक्तिपीठ है। ॐकार के नीचे निरालम्बपुरी तथा उसके नीचे षोडशदल युक्त 'सोमचक्र' है। उसके नीचे एक गुप्त षड्दलपद्म है जिसे ज्ञानचक्र कहते हैं।

(ख) **ज्ञानचक्र के दल**



ज्ञानचक्र एवं आज्ञाचक्र के मूल में नीचे एक गुप्त चक्र १२ दलों से युक्त रक्त-वर्णात्मक पद्म है। इस पद्म में—पञ्च सूक्ष्मभूतों के पञ्चीकरण द्वारा पञ्च स्थूलभूतों का निर्माण होता है। इस चक्र के नीचे विशुद्धचक्र का स्थान है।



चक्र-साधना तान्त्रिक योग की प्रधान साधना है। भगवती बगलामुखी की साधना में चक्र-साधना भी स्वीकृत है। योग के मुख्य चक्रों में—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा एवं सहस्रार आदि प्रधान चक्र हैं।



चक्र का बिन्दुस्थान ही सुधासिन्धु है—'बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः'। देवी सुधासिन्धु में निवास करती हैं। सहस्रार को देवी का वासस्थान अर्थात् सुधासिन्धु भी कहा गया है। सहस्रार शिव-शक्ति के सामरस्य का धाम है। यह १००० दलों का कमल है। इस सहस्रदलपद्म के समस्त दलों पर मातृकाएँ अङ्कित हैं। सारे स्वर एवं सारे व्यञ्जन यहाँ दलों पर अङ्कित हैं।



आज्ञाचक्र के ऊपर कपालदेश में ३ पीठस्थान हैं—(क) बिन्दुपीठ, (ख) नादपीठ, (ग) शक्तिपीठ। शक्तिपीठ का अर्थ है—ब्रह्मबीज (ॐकार)। ॐ के नीचे निरालम्बपुरी है। उसके नीचे १६ दलों वाला सोमचक्र है। उसके नीचे १६ दलों वाला ज्ञानचक्र है। उसके नीचे आज्ञाचक्र है। उसके नीचे १२ दलों वाला गुप्तचक्र है। उसके नीचे षोडशदलयुक्त विशुद्धचक्र है।



(अ) आज्ञाचक्र से ऊपर स्थित सोमचक्र षोडश दलों से युक्त है।



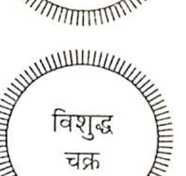
ज्ञानचक्र ६ दलों का कमल है। ज्ञानचक्र का सम्बन्ध ५ तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) एवं स्वप्नज्ञान से है। इसके दलों पर पञ्चतन्मात्राएँ एवं स्वप्नज्ञान स्थित हैं।

आज्ञाचक्र के ऊपर ३ पीठ स्थित हैं जो निम्न हैं—(क) बिन्दुपीठ, (ख) नाद- पीठ, (३) शक्तिपीठ।



आज्ञाचक्र का सम्बन्ध मनस्तत्त्व से है। यह द्विदलात्मक है।

(आ) आज्ञाचक्र के नीचे एक गुप्त चक्र है जो कि तालुमूल में स्थित है तथा जिसके रक्त वर्ण के १२ दल हैं। इसमें सूक्ष्म पञ्चभूतों के पञ्चीकरण द्वारा पञ्च स्थूलभूतों का प्रादुर्भाव होता है। यह १६ दलों का कमल है। इसका सम्बन्ध आकाश तत्त्व से है।



भगवती बगलामुखी की साधना में (सांख्यायनतन्त्र प्रभृति ग्रन्थों को देखने पर) आभिचारिक क्रियाओं में निष्णातता प्राप्त करने पर अधिक बल दिया गया है और भगवती बगला की आध्यात्मिक साधना तिरोहित-सी हो गई है। इतना होने पर भी महाविद्या बगला की साधना में—भक्ति, ज्ञान, योग एवं उपासना सभी तत्त्व अन्तर्भुक्त हैं।

तान्त्रिक योग में चक्र-साधना, षट्चक्रभेदन, अजपाजप, ग्रन्थि-भेदन आदि का जो भी विधान मिलता है वह भगवती बगला की भी साधना में न्यास आदि अङ्गों के माध्यम से स्वीकृत एवं अनुष्ठित है।

भगवती बगला को षट्चक्रभेदनकरी और षटचक्रस्थस्वरूपिणी भी कहा गया है—'षट्चक्रभेदनकरी षट्चक्रस्थस्वरूपिणी'[१]। योगशास्त्र ने 'तस्य वाचक: प्रणव:' (योगसूत्र १।२७) कहकर परमात्मा को प्रणवस्वरूप स्वीकार किया है। भगवती बगला को भी ॐकारपरमा कला, ॐकारवलयोपेता कहा गया है[२]। इतना ही नहीं उन्हें ओंकाराक्षरमण्डिता, ओंकारमध्यबीजा, ॐनमोरूपधारिणी, परब्रह्मस्वरूपा ॐकारा आदि भी कहा गया है। मन्त्रयोग का आधार मन्त्रतत्त्व है। भगवती बगलामुखी को मन्त्ररूपा, ह्लींकाररूपा, ह्लींकारी, वाग्बीजाक्षरभूषणा, हल्लेखा, ह्लींबीजा, क्लीं, क्लीं-क्लीं-क्लींरूपिका देवी, क्रीं-क्रीं-क्रींनामधारिणी, श्रीं, श्रींकारा, महाविद्या, ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं परा च क्लींकारी, ह्रीं-क्लीं-श्रींकारस्वरूपा आदि कहकर मन्त्रस्वरूपा सिद्ध किया गया है[३]।

तान्त्रिक योग में चक्रसाधना एक प्रधान साधना है। भगवती बगला को सर्वचक्रेश्वरी कहा गया है[४]। उन्हें षट्चक्राक्षररूपिणी भी कहा गया है[५]। वे षट्चक्राक्षरसारबीजरचिता हैं[६]। उन्हें आधारपद्मगता कुण्डलिनी भी कहा गया है—आधारपद्मगतकुण्डलिनीं वरेण्याम्[७]।

योगिनीहृदय नामक तन्त्रग्रन्थ को तीन भागों में विभाजित किया गया है—इन तीन पटलों के नाम हैं—(१) चक्रसङ्केत, (२) मन्त्रसङ्केत और (३) पूजासङ्केत। भगवती बगला की उपासना में ये तीनों सङ्केत गृहीत है। इनमें चक्रसङ्केत एवं मन्त्रसङ्केत तो योग के अभिन्न अङ्ग हैं। ईश्वरप्रणिधान भी योग का एक साधन है अत: पूजा भी अप्रत्यक्षत: योग का एक तत्त्व है।

मन्त्र और शक्तितत्त्व भी योग के पतिपाद्य विषय हैं—बगलोपासना के तो ये प्राणतत्त्व हैं।

योग—'अधुना सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनमुत्तमम्'[८]।

१-४. श्रीउत्कटशम्बरनागेन्द्रप्रयाणतन्त्र।

५-६. रुद्रयामल : क्रमबीजरत्नावली। ७. रहस्यस्तोत्र। ८. शिवसंहिता।

योग—मन्त्रतत्त्व—वाग्भवबीज, कामबीज, शक्तिबीज।

'मूलाधारेऽस्ति यत्पद्मं चतुर्दलसमन्वितम्।
तन्मध्ये वाग्भवं बीजं विस्फुरन्तं तडित्प्रभम्॥
हृदये कामबीजं तु बन्धूककुसुमप्रभम्'।
आज्ञारविन्दे शक्त्याख्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥
बीजत्रयमिदङ्गोप्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
एतन्मन्त्रत्रयं योगी साधयेत् सिद्धिसाधकः'॥

जप का विधान बगलोपासना में तो प्रमुख है ही किन्तु योग भी इसका विधान करता ही है—

(१) 'एवं मन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा न द्रुतं न विलम्बितम्।
अक्षराक्षरसन्धानं निःसन्दिग्धमना जपेत्'॥

(२) 'तद्गतश्चैकचित्तश्च शास्त्रोक्तविधिना सुधीः।
देव्यास्तु पुरतो लक्षं हुत्वा लक्षत्रयं जपेत्'[१]॥

हवन एवं हवन-सामग्री का विधान बगलोपासनाविधान के समान योग में भी है—

(क) 'करवीरप्रसूनैस्तु गुडक्षीराज्यसंयुतैः।
कुण्डे योन्यां तु तैर्धीमान् जपान्ते जुहुयात् सुधीः'[२]॥

(ख) 'देव्यास्तु पुरतो लक्षं हुत्वा लक्षत्रयं जपेत्'[३]।

बगलोपासना में शक्ति की पूजा का विधान है। योग भी शक्तिपूजा को स्वीकार करता है—

(क) 'अनुष्ठाने कृते धीमान् पूर्वसेवा कृता भवेत्।
ततो ददाति कामान् वै देवी त्रिपुरभैरवी'॥

(ख) 'देव्यास्तु पुरतो लक्षं हुत्वा लक्षत्रयं जपेत्'[४]॥

बगलोपासना में बगला देवी की उपासना शक्ति की उपासना है किन्तु योग में भी शक्ति की उपासना का कम महत्त्व नहीं है। जहाँ तक शक्तितत्त्व एवं योग-साधना की बात है तो तान्त्रिकयोग में शक्तितत्त्व का सर्वत्र प्राधान्य है। यथा—

माया की उत्पत्ति

शिव-शक्ति-समायोग से—

'बिन्दुः शिवो रजः शक्तिरुभयोर्मेलनात् स्वयम्।
स्वप्रभूतानि जायन्ते स्वशक्त्या जडरूपया'[५]॥

१-४. शिवसंहिता (पञ्चम पटल)। ५. शिवसंहिता (प्रथम पटल)।

मूलाधार चक्र में त्रिपुरभैरवी तो है ही अन्य शक्तियाँ भी हैं; यथा—कुण्डलिनी शक्ति—'तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता'। अन्य चक्रों में[1] षट् शक्तियाँ हैं—

'इडा-पिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत् खलु।
षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः'॥

शक्ति और चक्र

६ शक्तियाँ—डाकिनी, हाकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिणी और शाकिनी। अर्थात् शरीर में जितने चक्र हैं उन सबमें कोई-न-कोई अधिष्ठात्री शक्ति अवश्य है।

शैव-शाक्त दार्शनिक तो कहते हैं कि योग का अर्थ ही शिव-शक्ति का सामरस्य या संयोग है अतः योग का प्राणतत्त्व ही शक्तितत्त्व है।

चक्र	शक्ति	अन्य शक्तियाँ
१. मूलाधार चक्र	डाकिनी शक्ति	इच्छाशक्ति + ज्ञानशक्ति + क्रिया-शक्ति + कुण्डलिनी शक्ति = त्रिपुरभैरवी
२. स्वाधिष्ठान चक्र	राकिनी शक्ति	
३. मणिपूर चक्र	लाकिनी शक्ति	
४. अनाहत चक्र	काकिनी शक्ति	
५. विशुद्धाख्य चक्र	शाकिनी शक्ति	
६. आज्ञा चक्र	हाकिनी शक्ति	

मूलाधार की कर्णिका में शक्ति का कामाख्या पीठ है—'कर्णिकायां स्थिता योनिः कामाख्या'।

मूलाधार चक्र का त्रिकोण शक्तिपीठ कहा गया है—'त्रिकोणं तत् तु विज्ञेयं शक्तिपीठं मनोहरम्'।

मूलाधार के त्रिकोणस्थ कामबीज के ककार में त्रिपुरसुन्दरी देवी स्थित हैं—'कोणं तत् त्रैपुराख्यं' (ष.च.नि.)। 'तेषां मध्ये स्थिता देवी सुन्दरी परदेवता'।

चक्राधिष्ठात्री देवियाँ

'डाकिनी राकिनी चैव लाकिनी काकिनी तथा।
शाकिनी हाकिनी चैव क्रमात् षट्पङ्कजाधिताः'॥

सहस्रदलपद्म की कर्णिका के मध्य अवस्थित देववन्द्य एवं विद्युदाकार त्रिकोण के मध्य में आनन्दरूप तथा बिन्दुस्वरूप शून्य (परम बिन्दु) स्थित है। इसी सहस्रार में 'अमा' नाम वाली षोडशी कला स्थित है। अमा कला के भीतर निर्वाणकला स्थित है। निर्वाणकला के मध्य निर्वाणशक्ति स्थित है। निर्वाणशक्ति के मध्य में नित्यानन्द, शुद्धबोधस्वरूप, योगिगम्य, शाश्वत, सुखमय शिवपद (या ब्रह्म या विष्णु पद या हंसपद या मोक्षात्मक आत्मप्रबोध का स्थान) विद्यमान है।

१. 'मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मिके'। (गौतमीय तन्त्र)

इस प्रकार इम देखते हैं कि तान्त्रिक योग में मूलाधार चक्र से सहस्रदलपद्म (शिव-शक्ति के सामरस्य का स्थान) तक सर्वत्र शक्तियों की-सी प्रधानता एवं उपासना है।

तान्त्रिक योग का लक्ष्य ही है मूलाधारस्थ शक्ति को जगाकर सहस्रारावस्थित परमशिव के साथ सामरस्य स्थापित करना। ध्यानतत्त्व योग का प्रमुख अङ्ग है। भगवती बगला की साधना में भी इसका यथेष्ट महत्त्व है। इसीलिए वहाँ कहा गया है—

'आनयेत्तोयमध्ये तु ध्यानयोगेन बुद्धिमान्।
एवं ध्यात्वा तु देवेशीं प्रात:सन्ध्यां समाचरेत्'॥ (सां.)
'ध्यानेन मन्त्रसिद्धि: स्याद्ध्यानं सर्वार्थसाधनम्'। (सां.)
'ध्यानं विना भवेन्मूक: सिद्धमन्त्रोऽपि पुत्रक'॥ (सां.)
'एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं सुबुद्धिमान्'।
'ध्यानं यत्नात् प्रवक्ष्यामि ध्यानं सर्वार्थसिद्धिदम्'। (सां.)
'आदौ मध्ये तथा चान्ते ध्यानं कुर्यात्समाहित:।
एवं ध्यात्वा महादेवीं कुर्याज्जपमतन्द्रित:'॥ (सां.तन्त्र)

जीवन्मुक्ति की साधना तान्त्रिक योगियों को भी मान्य है और बगलोपासकों को भी—'जीवन्मुक्त: स एवात्र'। (सां.तन्त्र) षट्चक्रभेदन एवं स्वात्मैक्य का विधान बगलोपासना में अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है—

'षट्चक्रभेदनं कृत्वा स्वात्मैक्यं च विभाव्य च।
विद्यारूपो भवेत्पुत्र साम्राज्यपरिमिष्ठिता'॥ (सां.तं.)

ध्यान का यथार्थ स्वरूप

परमाद्वैत की भावना की अनुभूति—सभी में आत्मस्वरूप की भावना—सभी प्राणियों में समदृष्टि ही ध्यान है—

'अथ ध्यानमिति कश्चन परमाद्वैतस्य भाव:, स एवात्मेति यथा यद्यत्स्फुरति तत्तत्स्वरूपमेवेति भावयेत् सर्वभूतेषु समदृष्टिश्च इति ध्यानलक्षणम्'।

योगिराज गोरक्षनाथ—'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में गोरक्षनाथ कहते हैं कि निरञ्जन ही परम ध्यान है—'निरञ्जन उपरान्ति ध्यान नाहीं'। (सिष्टपुराण)

(क) **विज्ञानभैरवकार की दृष्टि**—विज्ञानभैरव में कहा गया है कि—शरीर, नेत्र, मुख, हाथ आदि की कल्पना ध्यान नही है। ध्यान का यथार्थ स्वरूप तो वह निश्चला बुद्धि है जो निश्चल के साथ निराकार एवं निराश्रित भी हो—

'ध्यानं हि निश्चला बुद्धिर्निराकारा निराश्रया।
न तु ध्यानं शरीराक्षिमुखहस्तादिकल्पना'॥

(ख) **जप का यथार्थ स्वरूप**—

'भूयो भूय: परे भावे भावना भाव्यते हि या।
जप: सोऽत्र स्वयं नादो, मन्त्रात्मा जप्य ईदृश:' ॥

बार-बार परभाव की भावना 'मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही शिव हूँ'—इस अनाहत नाद रूपी शब्द (सोऽहं/हंस:) की निरन्तर भावना ही जप है जो कि नादस्वरूप है। जप्य मन्त्र भी अपने अकृत्रिम अहमाकारस्वरूप का परामर्श करते रहने के कारण जप है।

(ग) **योगिनीहृदयदीपिकाकार की दृष्टि**—

'संयम्येन्द्रियसञ्चारं प्रोच्चरेन्नादमान्तरम्।
एष एव जप: प्रोक्तो न तु बाह्यजपो जप:' ॥

इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को रोककर आन्तर अनाहत नाद की भावना करना ही जप है, बाह्य जप 'जप' है ही नहीं।

(घ) **पूजा का यथार्थ स्वरूप**—

'पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्या मति: क्रियते दृढा।
निर्विकल्पे परे व्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लय:' ॥ (विज्ञानभैरव)
'योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्धते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम्' ॥
(सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्)

न्यास और योग

तान्त्रिक दर्शन के सिद्धान्त एवं साधना दोनों पक्षों पर योग का सर्वाङ्गीण पुष्कल प्रभाव है।

न्यास और योग—

योगिनी न्यास—इसमें चक्रों (पिण्डस्थ पद्मों) और उनकी अधिष्ठात्री शक्तियों का ध्यान किया जाता है और साथ ही भगवती पराम्बा के मन्त्राक्षरों एवं वर्णमाला के वर्णों का उच्चारण करते हुए वर्णों से अपनी रक्षा करने की प्रार्थना करके चक्राधिष्ठात्री एवं उनकी आवरण शक्तियों का क्रमश: कर्णिका एवं दलों में न्यास किया जाता है। यथा—

(१) **मूलाधार चक्र—ध्यान**—

'मूलाधारस्य पत्रे श्रुतिदललसिते पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां
धूम्राभामस्थिसंस्थां सृणिमपि कमलं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
बिभ्राणां बाहुदण्डै: सुललितवरदा पूर्वशक्त्यावृतां ताम्
मुद्गात्रासक्तचित्तां मधुमदमुदितां साकिनीं भावयाम:' ॥

'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं सां सीं स म ल व र यूं साकिन्यै नम:, ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं

वं शं षं सं मां रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मानं नमः इति पायूपस्थमध्यगतचतुर्दलमूलाधार-कमलकर्णिकायां साकिनीं न्यस्य तद्दलेषु पूर्ववदावृत्तिशक्तीर्न्यसेत्' ।

यथा—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं वं वरदायै नमः, शं श्रियै नमः, षं षण्डायै नमः, सं सरस्वत्यै नमः' ।

(२) **स्वाधिष्ठान चक्र—ध्यान—**

'स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे रसदललसिते वेदवक्त्रां त्रिनेत्रां
हस्ताब्जैर्धारयन्तीं त्रिशिखगुणकपालां कुशानात्तगर्वाम् ।
मेदोधातुप्रतिष्ठामलिमदमुदितां बन्धिनीं मुख्ययुक्ताम्
पीतां दध्योदनेष्टमभिमतफलदां काकिनीं भावयामः' ॥

इस प्रकार ध्यान करके फिर न्यास करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं ऐं कां कीं क म ल व र यूं काकिन्यै नमः । ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं बं भं मं यं रं लं मां रक्ष रक्ष भेद आत्मानं नमः । गुह्यस्थानगतषड्दल-स्वाधिष्ठानसरसिजकर्णिकायां काकिनीं न्यस्य तद्दलेषु तदावरणशक्तीः प्राग्वन्न्यसेत्' ।

(३) **मणिपूरक चक्र—ध्यान—**

'दिक्पत्रे नाभिपद्मे त्रिवदनलसितां दंष्ट्रिणीं रक्तवर्णा
शक्तिदम्भोलिदण्डावभयमपि भुजैर्धारयन्तीं महोग्राम् ।
डामर्याद्यैः परीता पशुजनभयदां मांसधात्वैकनिष्ठां
गौडान्नासक्तचित्तां सकलसुखकरीं लाकिनीं भावयामः' ॥

इस प्रकार ध्यान करके फिर इस तरह न्यास करना चाहिए—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं लां लीं ल म ल व र यूं लाकिन्यै नमः । ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं कं मां रक्ष रक्ष मांसात्मानं नमः । इति नाभिगतं दशमदलमणिपूरकसरोजकर्णिकायां लाकिनीं न्यस्य तद्दलेषु पूर्ववत्तत्परिवारशक्तीर्न्यसेत्' ॥ यथा—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं डं डामर्यै नमः, ढं ढंकारिण्यै नमः, णं णार्णायै नमः, लं तामस्यै नमः, थं स्थाण्व्यै नमः, दं दाक्षायण्यै नमः, धं धात्र्यै नमः, नं नार्यै नमः, पं पार्वत्यै नमः, फं फट्कारिण्यै नमः' ॥

(४) **अनाहत चक्र—ध्यान—**

'हृत्पद्मे भानुपत्रद्विवदनलसितां दंष्ट्रिणीं श्यामवर्णा
अक्षं शूलं, कपालं डमरुमपि भुजैर्धारयन्तीं त्रिनेत्राम् ।
रक्तस्थां कालरात्रिप्रभृतिपरिवृतां स्निग्धभक्तैकसक्तां
श्रीमद्वीरेन्द्रवन्द्यामभिमतफलदां राकिणीं भावयामः' ॥

इस प्रकार ध्यान करके फिर निम्न प्रकार से न्यास करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं रां रीं र म ल व र यूं राकिण्यै नमः । ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं मां रक्ष रक्ष असृगात्मानं नमः । इति हृदयस्थित-द्वादशदलानाहतनलिनकर्णिकायां राकिणीं न्यस्य तद्दलेषु प्राग्वत् तदावरणशक्तीर्न्यसेत्' ।

अर्थात् पद्मकर्णिका में राकिणी को एवं द्वादश कमलदलों में आवरण-देवताओं का न्यास करना चाहिए।

यथा—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं कं कालरात्र्यै नमः, खं खण्डितायै नमः, गं गायत्र्यै नमः, घं घण्टाकर्षिण्यै नमः, ङं ङार्णायै नमः'।

(५) **विशुद्धाख्य चक्र—ध्यान—**

'कण्ठस्थाने विशुद्धौ नृपदलकमले श्वेतवर्णां त्रिनेत्रां
हस्तैः खट्वाङ्गखड्गौ त्रिशिखमपि महाचर्मसन्धारयन्तीम् ।
वक्त्रेणैकेन युक्तां पशुजनभयदां पायसान्नैकसक्तां
शवस्थां वन्देऽमृताद्यैः परिवृतवपुषं डाकिनीं वीरवन्द्याम्' ॥

इस प्रकार भगवती डाकिनी का ध्यान करके साधक को इस मन्त्र से उन्हें अभिवादन करना चाहिए।

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं डां डीं ड म ल व र यूं डाकिन्यै नमः'। फिर निम्न मन्त्र पढ़कर साधक को वर्णों से अपनी रक्षा-हेतु निवेदन करते हुए कहना चाहिए—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः—मां रक्ष रक्ष त्वगात्मानं नमः'। फिर साधक को षोडशदल कमल विशुद्धिचक्र की कर्णिका में डाकिनी देवी एवं इस कमल के १६ दलों के पुरोभाग में प्रादक्षिण्य क्रम से आवरण-शक्तियों का न्यास करना चाहिए।

(६) **आज्ञाचक्र—ध्यान—**

'भ्रूमध्ये बिन्दुपद्मे दलयुगकलिते शुक्लवर्णां कराब्जै-
र्बिभ्राणां ज्ञानमुद्रां डमरुकममलामक्षमालां कपालम् ।
षड्वक्त्रां मज्जसंस्थां त्रिनयनलसितां हंसवत्यादियुक्तां
हारिद्रान्नैकसक्तां सकलसुखकरीं हाकिनीं भावयामः' ॥

इस प्रकार ध्यान करके साधक को चाहिए कि वह निम्न मन्त्र पढ़कर हाकिनी देवी का अभिवादन करे—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हां हीं ह म ल व ल यूं हाकिन्यै नमः'। फिर निम्न मन्त्र पढ़कर वर्णों से अपनी रक्षा हेतु निवेदन करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हं क्षं मां रक्ष रक्ष मज्जात्मानं नमः'। फिर भ्रूमध्यगत द्विदलात्मक आज्ञाचक्र की कमलकर्णिका में हाकिनी देवी एवं उसके अन्य दलों में आवरण शक्तियों का न्यास करना चाहिए। यथा—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हं हंसवत्यै नमः । क्षं क्षमावत्यै नमः' ।

(७) **सहस्रदल कमल—ध्यान—**

'मुण्डव्योमस्थपद्मे दशशतदलके कर्णिकाचन्द्रसंस्थां
रेतोनिष्ठां समस्तायुधकलितकरां सर्वतो वक्त्रपद्माम् ।
आदिक्षान्तार्णशक्तिप्रकरपरिवृतां सर्ववर्णां भवानीं
सर्वान्नासक्तचित्तां परशिवरसिकां याकिनीं भावयामः'[१] ॥

इस प्रकार ध्यान करके निम्न मन्त्र पढ़कर अधिष्ठात्री शक्ति याकिनी को नमस्कार करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं यां यीं य म ल व र यूं याकिन्यै नमः' । फिर निम्न मन्त्र पढ़कर वर्णों से अपनी रक्षा हेतु निवेदन करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः—कं खं गं घं ङं, चं छं जं झं ञं, टं ठं डं ढं णं, तं थं दं धं नं, पं फं बं भं मं, यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं—मां रक्ष रक्ष शुक्रात्मानं नमः' ।

फिर ब्रह्मरन्ध्रगत सहस्रदलकमल की कर्णिका में भगवती याकिनी देवी का एवं उसके दलों में प्रत्येक बीस दलों पर उनकी अमृता, क्षमावती आदि आवरण-शक्तियों का न्यास करना चाहिए[२] ।

इसी प्रकार मन्त्रन्यास, महाषोढान्यास, भुवनन्यास आदि न्यासों में भी चक्रों में उनकी अधिष्ठात्री देवता तथा आवरण-शक्तियों का न्यास किया जाता है । यथा—

महाषोढान्यास

(१) **मूलाधार चक्र में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः कं खं गं घं ङं अनन्तकोटिभूचरीकुलसहितायै आं क्षां मङ्गलाम्बादेव्यै आं क्षां ब्रह्माण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिभूचरादिकुलसहिताय अं क्षं मङ्गलनाथाय अं क्षं असिताङ्गभैरवनाथाय नमः' ।

(२) **स्वाधिष्ठान चक्र में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः चं छं जं झं ञं अनन्तकोटिखेचरीकुलसहितायै ईं लां चर्चिकाम्बादेव्यै ईं लां माहेश्वर्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिवेतालकुलसहिताय इं लं चर्चिकनाथाय इं लं भैरवनाथाय नमः' ।

(३) **मणिपूरक चक्र में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः टं ठं डं ढं णं अनन्तकोटिपातालचरीकुलसहितायै ॐ हां योगैश्वर्यम्बादेव्यै ॐ हां कौमार्याम्बादेव्यै अनन्तकोटिपिशाचकुलसहिताय उं हं योगेश्वरनाथाय उं हं चण्डभैरवनाथाय नमः' ।

(४) **अनाहत चक्र में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः तं थं दं धं नं अनन्त-

१. बगलामुखीरहस्यम् । २. बगलामुखीरहस्यम् (पृ. ३१) ।

कोटिदिक्चरीकुलसहितायै ऋं सां हरसिद्धाम्बादेव्यै ॠं सां वैष्णव्यम्बादेव्यै अनन्त-कोट्यपस्पारकुलसहिताय ऋं सं हरसिद्धनाथाय ऋं सं क्रोधभैरवनाथाय नमः'।

(५) **विशुद्धचक्र में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः पं फं बं भं मं अनन्त-कोटिसहचरीकुलसहितायै लृं षां भट्टिन्यम्बादेव्यै लृं षां वाराह्याम्बादेव्यै अनन्तकोटि-ब्रह्मराक्षसकुलसहिताय लृं षं भट्टिनाथाय लृं षं उन्मत्तभैरवनाथाय नमः'।

(६) **आज्ञाचक्र में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः यं रं लं वं अनन्तकोटि-गुरुचरीकुलसहितायै ऐं शां किलि किल्यम्बादेव्यै ऐं शां इन्द्राण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटि-चेटककुलसहिताय एं शं किलिकिलिनाथाय एं शं कपालिभैरवनाथाय नमः'।

(७) **आज्ञाचक्र (भाल) में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः शं षं सं हं अनन्तकोटिवनचरीकुलसहितायै औं वां कालरात्र्यम्बादेव्यै औं वां चामुण्डादेव्यै अनन्तकोटिप्रेतकुलसहिताय ओं वं कालरात्रिनाथाय ओं वं भीषणभैरवनाथाय नमः'।

(८) **ब्रह्मरन्ध्र में**—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ळं क्षं अनन्तकोटिजलचरी-कुलसहितायै अः लां भीषणाम्बादेव्यै अः लां महालक्ष्म्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिकूष्माण्ड-कुलसहिताय अं लं भीषणनाथाय अं लं संहारभैरवनाथाय नमः'।

(९) 'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः समस्तमातृका उच्चार्य समस्त-मातृकाभैरवाधिदेवतायै श्रीबगलाम्बादेव्यै नमः, स्हौः ह्सौः ऐं श्रीं क्लीं ह्लीं ॐ इति व्यापकं कुर्यात्'।

भुवनन्यास

भुवनन्यास में भी यौगिक दृष्टि का समावेश है। यथा—

(१) **मूलाधार चक्र में**—७ कं खं गं घं ङं, चं छं जं झं ञं पाताललोक-भूर्लोकनिलयशतकोटिरहस्यतरक्रिया (डाकिनी) योगिनी मूलदेवतायुता।

(२) **स्वाधिष्ठान चक्र में**—७ टं ठं डं ढं णं भुवर्लोकनिलयशतकोट्यतिरहस्य राकिनी योगिनी मूलदेवतायुता।

(३) **मणिकपूरकचक्र में**—७ तं थं दं धं नं स्वर्लोकनिलयशतकोटिपरमरहस्य लाकिनी योगिनी मूलदेवतायुता।

(४) **अनाहत चक्र में**—७ पं फं बं भं मं महर्लोकनिलयशतकोटिगुप्त काकिनी योगिनी मूलदेवतायुता।

(५) **विशुद्ध चक्र में**—७ यं रं लं वं जनःलोकनिलयशतकोटिगुप्ततर साकिनी योगिनी मूलदेवतायुता। आदि।

मन्त्रन्यास

(१) **मूलाधार चक्र में**—ॐ ह्लीं क्लीं ऐं ह्सौः स्हौः अं आं ईं एकलक्षकोटि-भेदप्रणवाद्येकाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

(२) **स्वाधिष्ठान चक्र में**—७ ईं उं ऊं द्विलक्षकोटिभेदहंसादिद्व्यक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्विकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

(३) **मणिपूरक चक्र में**—७ ऋं ॠं ऌं त्रिलक्षकोटिभेदवह्न्यादित्र्यक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै त्रिकूटेश्वर्याम्बादेव्यै नमः ।

इसी प्रकार अनाहतचक्र, विशुद्धचक्र एवं आज्ञाचक्र में भी न्यास का विधान है। इसके अतिरिक्त तान्त्रिक योग में वर्णित प्रणव के अङ्गभूत–बिन्दु, अर्धेन्दु, रोधिनी, नाद, नादान्त शक्ति, व्यापिका, समना एवं उन्मना में भी न्यास का विधान है। यथा—

(१) **रोधिनी में**—७ भं टं ठं नवलक्षकोटिभेदब्रह्मादिनवाक्षरात्मकाखिल…नवकूटेश्वर्यादेव्यै नमः ।

(२) **नादान्त में**—७ तं थं दं एकादशलक्षकोटिभेदरुद्राद्येकादशाक्षरात्मकाखिल…एकादशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

(३) **उन्मनी में**—७ लं वं शं पञ्चदशलक्षकोटिभेददुर्गादिपञ्चदशाक्षरात्मकाखिल…पञ्चदशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः । आदि ।

भगवती बगला की योगोक्तोपासना

भगवती बगला षट्चक्र तो हैं ही एवं उन चक्रों के अक्षर भी हैं—

'षट्चक्राक्षररूपिणीं भज सखे देवीं जगद्व्यापिनीं
षट्चक्राक्षरसारबीजरचितां षट्त्रिंशवर्णात्मिकाम् ।
ये जानन्ति यजन्ति सन्ततमपि ध्यायन्ति गायन्ति वा
ते विद्याविबुधैश्चरन्ति भुवने सिद्धार्चिताः श्रद्धया' ॥ (रुद्रयामल)

अर्थात् भगवती षट्चक्रों के सारस्वरूप बीजाक्षरों से रचित हैं और वे ३६ वर्णों वाली हैं। जो इन्हें इसी स्वरूप में जानते हैं, उनका इसी स्वरूप का ध्यान करके उनका यजन करते हैं एवं इसी स्वरूप का गुण-गान करते हैं वे संसार में सिद्धों के द्वारा भी पूजित होते हैं।

भगवती योग की कुण्डलिनी शक्ति भी हैं—

'आधारपद्मगतकुण्डलिनीं वरेण्याम्' ।

मन्त्रन्यास का स्वरूप

मन्त्रन्यास न्यास की वह प्रक्रिया या विधान है जिसमें शरीरान्तर्गत समस्त पिण्डगत चक्रों एवं विश्वाधिष्ठात्री महत्तर शक्तियों एवं प्रणव के बिन्दु, अर्धेन्दु, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना एवं उन्मना तथा ध्रुवमण्डल में मातृकाओं का न्यास किया जाता है तथा एककूटेश्वरी, द्विकूटेश्वरी, त्रिकूटेश्वरी से लेकर पञ्चदशकूटेश्वरी अम्बा देवी का अभिवादनपूर्वक पूजन किया जाता है।

इस न्यास में भी वर्णमाला के समस्त स्वरों एवं व्यञ्जनों को चक्रों एवं देवियों से अभिन्न मानकर उनका भावनात्मक न्यास किया जाता है।

मन्त्रन्यास में पिण्डस्थ चक्रों एवं प्रणव के अङ्गों में वर्णमालागत मातृकाओं को मन्त्र मानकर उनकी स्थापना (न्यास) की जाती है।

वीरतन्त्रोक्त कवच में योगोपासना के तत्त्व—

'बगला भैरवी पातु नित्यं क्लीङ्काररूपिणी'।

बगलामुखी कवच

१. स्वाधिष्ठानचक्र	:	'स्वाधिष्ठानं षड्दलं पातु में ब्रह्मरूपधृक्'।
२. मणिपूरकचक्र (अनाहतचक्र)	:	'मणिपूरे दशदले पातु केशवरूपिणी'।
३. हृदयपङ्कज (अनाहतचक्र)	:	'हृत्पङ्कजं शैवभक्तिविशुद्धं जीवरूपिणी'।
मूलाधारचक्र:	:	'गणेशरूपधृक् पातु ममाधारे चतुर्दले'।
आज्ञाचक्र	:	'आज्ञाचक्रे बिन्दुरूपा परब्रह्मकुटुम्बिनी'।
४. ब्रह्मरन्ध्र	:	'ब्रह्मरन्ध्रसहस्रारे पङ्कजे स्वच्छरूपिणी। पातु मां परमा
	:	शक्तिश्चमरी कुटिलात्मका॥ षट्त्रिंशदक्षरा विद्या पीता
	:	पीतवपुर्धरा। ब्रह्मरन्ध्रं तु परमा संसारार्णवतारिणी'॥
५. आज्ञाचक्र	:	'आज्ञाचक्रे गुरुरूपा महाभयविनाशिनी'।
६. विशुद्धचक्र	:	'विशुद्धे षोडशदले जीवेश्वरवपुर्धरा'।
७. हृत्पङ्कज	:	'हृत्पङ्कजे भवानी सा हृद्यरूपा परात्मिका'।
८. मणिपूरकचक्र	:	'मणिपूरे दशदले महाविष्णुस्वरूपिणी'।
९. महामाया	:	'दारयत्यखिलान् लोकान् महामाया परा तु सा'।
१०. स्वाधिष्ठानचक्र	:	'प्रजापतिस्वरूपेयं स्वाधिष्ठाने तु षड्दले'।

मन्त्रन्यास—

मूलाधार चक्र में—ॐ ह्रीं क्लीं ऐं ह्सौ: स्हौ: अं आं ईं एकलक्षकोटिभेद-प्रणवाद्येकाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एककूटेश्वर्यम्बादेव्यै नम:।

स्वाधिष्ठान चक्र में—७ ईं उं ऊं द्विलक्षकोटिभेदहंसादिद्व्यक्षरात्मकाखिल-मन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्विकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नम:।

मणिपूरक चक्र में—७ ऋं ॠं लृं त्रिलक्षकोटिभेदवह्न्यादित्र्यक्षरात्मकाखिल-मन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै त्रिकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नम:॥

अनाहत चक्र में—७ लॄं एं ऐं चतुर्लक्षकोटिभेदचन्द्रादिचतुरक्षरात्मकाखिलमन्त्रा-धिदेवतायै सकलफलप्रदायै चतुष्कूटेश्वर्यम्बादेव्यै नम:।

विशुद्ध चक्र में—७ ओं औं अं अ: पञ्चलक्षकोटिभेदसूर्यादिपञ्चाक्षरात्मिका-खिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै पञ्चकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नम:।

आज्ञा चक्र में—७ कं खं गं षड्लक्षकोटिभेदसूर्यादिपञ्चाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै षट्कूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

बिन्दु में—७ घं ङं चं सप्तलक्षकोटिभेदगणपत्यादिसप्ताक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै सप्तकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

अर्धेन्दु में—७ छं जं झं अष्टलक्षकोटिभेदबटुकाद्यष्टाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै अष्टकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

रोधिनी में—७ ञं टं ठं नवलक्षकोटिभेदब्रह्मादिनवाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै नवकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

नाद में—७ डं ढं णं दशलक्षकोटिभेदविष्णवादिदशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै दशकूटे-श्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

नादान्त में—७ तं थं दं एकादशलक्षकोटिभेदरुद्राद्येकादशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एकादशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

शक्ति में—७ घं नं पं द्वादशलक्षकोटिभेदवाण्यादिद्वादशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्वादशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

व्यापिका में—७ फं बं भं त्रयोदशलक्षकोटिभेदलक्ष्यादित्रयोदशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै त्रयोदशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

समना में—७ मं यं रं चतुर्दशलक्षकोटिभेदगौर्यादिचतुर्दशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै चतुर्दशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

उन्मनी में—७ लं वं शं पञ्चदशलक्षकोटिभेददुर्गादिपञ्चदशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै पञ्चदशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।।

ध्रुवमण्डल में—७ षं सं हं ळं क्षं षोडशलक्षकोटिभेदत्रिपुरादिषोडशाक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै षोडशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः ।

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः सकलमातृकामुच्चार्य सकलमन्त्राधिदेवतायै श्रीबगलाम्बादेव्यै नमः । स्हौः ह्सौः ऐं श्रीं क्लीं ह्लीं ॐ इति व्यापकं कुर्यात् ।

ध्यातव्य बिन्दु—बिन्दु, अर्द्धेन्दु, रोधिनी, नाद, नादान्त, कौण्डिली, व्यापिनी, शक्ति, समना एवं उन्मनी आदि तत्त्व ओंकार की द्वादश कलाएँ हैं। प्रणव इन १२ कलाओं के द्वारा पृथ्वी से शिव पर्यन्त समस्त तत्त्वों एवं भुवनों को आकलित करता है।

(क) **ॐकार का स्वरूप**—

१. 'ओम् इत्येतदक्षरमिदं सर्वम्' ।

२. 'प्रणवः प्राणिनां प्राणो जीवनं सम्प्रतिष्ठितम् ।
गृह्णाति प्रणवः सर्वं कलाभिः कलयेच्छिवम्' ।। (नेत्रतन्त्र, अधिकार १२)

प्रणव की द्वादश कलाएँ

'अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुरेव च।
अर्द्धचन्द्रो निरोधी च नादो नादान्त एव च॥
कौण्डिली व्यापिनी शक्तिः समनैकादशी स्मृता।
उन्मना च ततोऽतीता तदतीतं निरामयम्' ॥

(स्वच्छन्दतन्त्र ४ पटल)

योगिनी न्यास

योगिनी न्यास की विधि में प्रत्येक पिण्डस्थ चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा एवं सहस्रार) एवं उनकी अधिष्ठात्री योगिनी शक्तियों (यथा—डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी, हाकिनी एवं याकिनी) के स्वस्वरूप का ध्यान करते हुए उनका अभिवादन करके, तद्गत वर्णों से अपनी रक्षा की प्रार्थना करके, उन कमलों (चक्रों) की कर्णिका में सम्बद्ध योगिनी का न्यास करके उनकी आवरण-शक्तियों का उस कमल के दलों में न्यास करना चाहिए। यथा—

(क) **अनाहत चक्र एवं उसकी योगिनी राकिणी का ध्यान—**

'हृत्पद्मे भानुपत्रद्विवदनलसितां दंष्ट्रिणीं श्यामवर्णां
श्रीमद्वीरेन्द्रवन्द्यामभिमतफलदां राकिणीं भावयामः' ॥

(ख) कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं मां रक्ष रक्ष ।

(ग) कर्णिकायां राकिणीं न्यस्य।

(घ) तद्दलेषु प्राग्वत् तदावृतिशक्तीर्न्यसेत्।

(ङ) (उन सभी शक्तियों का नमन करना चाहिए)
खं खण्डितायै नमः। गं गायत्र्यै नमः आदि॥

(च) इन सभी न्यासों में 'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं' मन्त्र जोड़कर उन-उन कमलों की योगिनियों को मन्त्र सहित अभिवादन भी किया जाता है। यथा—

(१) **विशुद्ध चक्र में**—'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं डां डीं ड म ल व र यूं डाकिन्यै नमः'।

(२) **अनाहत चक्र में**—'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं रां रीं र म ल व र यूं राकिण्यै नमः'।

(३) **स्वाधिष्ठान चक्र में**—'ॐ ह्रीं क्लीं रीं ऐं कां कीं क म ल व र यूं काकिन्यै नमः'।

(४) **मूलाधार चक्र में**—'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं सां सीं स म ल व र यूं साकिन्यै नमः'। आदि।

विशुद्ध चक्र एवं उसकी योगिनी डाकिनी का ध्यान—

'कण्ठस्थाने विशुद्धौ नृपदलकमले श्वेतवर्णां त्रिनेत्रां
हस्तैः खट्वाङ्गखड्गौ त्रिशिखमपि महाचर्म सन्धारयन्तीम्।
वक्त्रेणैकेन युक्तां पशुजनभयदां पायसान्नैकसक्तां
शवस्थां वन्देऽमृताद्यैः परिवृतवपुषं डाकिनीं वीरवन्द्याम्' ॥

इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त फिर इस प्रकार पढ़ना चाहिए—

'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं डां डीं ड म ल व र यूं डाकिन्यै नमः। ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः मां रक्ष रक्ष त्वगात्मानं नमः'। इति मन्त्रेण कण्ठस्थषोडशदलविशुद्धिकमलःकर्णिकायां डाकिनीं न्यस्य तद्दलेषु पुरोभागादिप्रादक्षिण्येन तदावरणशक्तीः न्यसेत्। यथा—

'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अं अमृतायै नमः। आं आकर्षिण्यै नमः, इं इन्द्राण्यै नमः, ईं ईशान्यै नमः, उं उमायै नमः, ऊं ऊर्ध्वकेश्यै नमः, ऋं ऋद्धिदायै नमः, ॠं ॠंकारायै नमः, लृं लृंकारायै नमः, लॄं लॄंकारायै नमः, एं एकपदायै नमः, ऐं ऐश्वर्यात्मिकायै नमः, ओं ओंकारायै नमः, औं औषध्यै नमः, अं अम्बिकायै नमः, अः अक्षरायै नमः'।

अनाहतचक्र और तत्रस्था योगिनी राकिणी का ध्यान—

'हृत्पद्मे भानुपत्रद्विवदनलसितां दंष्ट्रिणीं श्यामवर्णाम्
अक्षं शूलं कपालं डमरुमपि भुजैर्धारयन्तीं त्रिनेत्राम्।
रक्तस्थां कालरात्रिप्रभृतिपरिवृतां स्निग्धभक्तैकसक्तां
श्रीमद्वीरेन्द्रवन्द्यामभिमतफलदां राकिणीं भावयामः' ॥

इस प्रकार राकिणी देवी का ध्यान करके उनका इस प्रकार अभिवादन करना चाहिए—

'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं रां रीं र म ल व र यूं राकिण्यै नमः'। इसके बाद मातृकाओं का नमन करके पद्मकर्णिका में राकिणी देवी एवं पद्मदलों में आवरण-शक्तियों का न्यास करना चाहिए—

'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं मां रक्ष रक्ष असृगात्मानं नमः'।

इति हृदयस्थितद्वादशदलानाहतनलिनकर्णिकायां राकिणीं न्यस्य तद्दलेषु प्राग्वत् तदावृतिशक्तीर्न्यसेत्। यथा—

'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं कं कालरात्र्यै नमः, खं खण्डितायै नमः, गं गायत्र्यै नमः; घं घण्टाकर्षिण्यै नमः, ङं ङार्णायै नमः, चं चण्डायै नमः, छं छायायै नमः, जं जयायै नमः, झं झंकारिण्यै नमः, ञं ज्ञानरूपायै नमः, टं टंकहस्तायै नमः, ठं ठंकारिण्यै नमः' इति।

मणिपूरचक्र और तन्निष्ठ शक्ति लाकिनी का ध्यान—

'दिक्पत्रे नाभिपद्मे त्रिवदनलसितां दंष्ट्रिणीं रक्तवर्णां
शक्तिं दम्भोलिदण्डावभयमपि भुजैर्धारयन्तीं महोग्राम्।
डामर्याद्यैः परीता पशुजनभयदां मांसधात्वैकनिष्ठां
गौडान्नासक्तचित्तां सकलसुखकरीं लाकिनीं भावयामः'॥

इस प्रकार लाकिनी देवी का ध्यान करके निम्न मन्त्र के साथ उनका नमन करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं लां लीं ल म ल व र यूं लाकिन्यै नमः'।

इसके अनन्तर—(१) 'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं कं मां रक्ष रक्ष'—कहकर आत्मरक्षा हेतु निवेदन करना चाहिए।

(२) फिर पद्मकर्णिका में लाकिनी देवी एवं पद्मदलों में आवरण-शक्तियों का न्यास करना चाहिए। यथा—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं एं डं डामर्यै नमः, ढं ढंकारिण्यै नमः, णं णार्णायै नमः, तं तामस्यै नमः, थं स्थाण्व्यै नमः, दं दाक्षायण्यै नमः, धं धात्र्यै नमः, नं नार्यै नमः, पं पार्वत्यै नमः, फं फट्कारिण्यै नमः'।

स्वाधिष्ठानचक्र और तन्निष्ठ शक्ति काकिनी का ध्यान—

'स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे रसदललसिते वेदवक्त्रां त्रिनेत्रां
हस्ताब्जैर्धारयन्तीं त्रिशिखगुणकपालां कुशानात्तगर्वाम्।
मेदोधातुप्रतिष्ठामलिमदमुदितां बन्धिनीं मुख्ययुक्तां
पीतां दध्योदनेष्टामभिमतफलदां काकिनीं भावयामः'॥

इस प्रकार भगवती काकिनी का ध्यान करके साधक को निम्न मन्त्र द्वारा काकिनी का अभिवादन करना चाहिए—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं कां कीं क म ल व र यूं काकिन्यै नमः'। फिर रक्षार्थ यह मन्त्र पढ़ना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं बं भं मं रं लं मां रक्ष रक्ष, मेद आत्मानं नमः इति'।

फिर—गुह्यस्थानगत षड्दलात्मक स्वाधिष्ठान कमल की कर्णिका में काकिनी देवी का न्यास करके इस कमल के विभिन्न दलों में आवरण-शक्तियों का न्यास करना चाहिए। यथा—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं बं बन्धिन्यै नमः, भं भद्रकाल्यै नमः, मं महामायायै नमः, यं यशस्विन्यै नमः, रं रक्तायै नमः, लं लम्बोष्ठ्यै नमः'।

मूलाधार चक्र और तन्निष्ठ शक्ति शाकिनी देवी का ध्यान—

मूलाधारस्य पत्रे श्रुतिदललसिते पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां

धूम्राभामस्थिसंस्थां सृणिमपि कमलं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
बिभ्राणां बाहुदण्डैः सुललितवरदा पूर्वशक्त्यावृतां ताम्
मुद्गान्नासक्तचित्तां मधुमदमुदितां शाकिनीं भावयामः' ॥

इस प्रकार शाकिनी देवी का ध्यान करके उनका निम्न मन्त्र पढ़कर नमन करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं ऐं सां सीं स म ल व र यूं शाकिन्यै नमः'।

इसके अनन्तर मन्त्र समन्वित वर्णों से आत्मरक्षार्थ निवेदन करते हुए यह कहना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं वं शं षं सं मां रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मानं नमः'।

फिर पायूपस्थ के मध्य में स्थित मूलाधार चक्र की कर्णिका में भगवती शाकिनी एवं पद्मदलों में आवरण-शक्तियों का न्यास करना चाहिए। यथा—

'ॐ ह्लीं श्रीं ऐं वं वरदायै नमः, शं श्रियै नमः, षं षण्डायै नमः, सं सरस्वत्यै नमः'।

आज्ञाचक्र और उसकी अधिष्ठात्री हाकिनी देवी का ध्यान—

'भ्रूमध्ये बिन्दुपद्मे दलयुगकलिते शुक्लवर्णां कराब्जै-
र्बिभ्राणां ज्ञानमुद्रां डमरुकममलामक्षमालां कपालम्।
षड्वक्त्रां मज्जसंस्थां त्रिनयनलसितां हंसवत्यादियुक्तां
हारिद्रान्नैकसक्तां सकलसुखकरीं हाकिनीं भावयामः'[१] ॥

आज्ञाचक्रस्था भगवती हाकिनी का ध्यान करके फिर उनका इस मन्त्र को पढ़कर नमन करना चाहिए—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हां हीं ह म ल व र यूं हाकिन्यै नमः'।

फिर आत्मरक्षार्थ वर्णों से निवेदन करना चाहिए—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हं खं मां रक्ष रक्ष मज्जात्मानं नमः'।

फिर भ्रूमध्य स्थित आज्ञाकमल की कर्णिका में भगवती हाकिनी का न्यास करके इस कमल के दलों में आवरण-शक्तियों का न्यास करना चाहिए। यथा—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हं हंसवत्यै नमः, क्षं क्षमावत्यै नमः'।

सहस्रदलपद्म एवं उसकी अधिष्ठात्री याकिनी देवी का ध्यान—

'मुण्डव्योमस्थपद्मे दशशतदलके कर्णिकाचन्द्रसंस्थां
रेतोनिष्ठां समस्तायुधकलितकरां सर्वतो वक्त्रपद्माम्।
आदिक्षान्तार्णशक्तिप्रकरपरिवृतां सर्ववर्णां भवानीं
सर्वान्नासक्तचित्ता परशिवरसिकां याकिनीं भावयामः' ॥

१. बगलामुखीरहस्यम्।

इस प्रकार भगवती याकिनी का ध्यान करके निम्न मन्त्र द्वारा उनका नमन करना चाहिए—

'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं यां यीं य म ल व र यूं याकिन्यै नम:'।

फिर कमलस्थ वर्णों से रक्षा हेतु निवेदन करते हुए कहना चाहिए—

'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अ:, कं खं गं घं ङं, चं छं जं झं ञं, टं ठं डं ढं णं, तं थं दं धं नं, पं फं बं भं मं; यं रं लं वं, शं षं सं हं ळं क्षं—मां रक्ष रक्ष शुक्रामानं नम:' इति।

फिर ब्रह्मरन्ध्रगत सहस्त्रदल कमल की कर्णिका में भगवती एवं इस कमल के दलों में तदावरण शक्तियों का (अमृता से लेकर क्षमावती पर्यन्त आवरणशक्तियों का) न्यास करना चाहिए[1]।

देवता-न्यास

दाहिने पैर में—'ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौ: स्हौ: अं आं सहस्त्रकोटिऋषिकुलसेवितायै निवृत्यम्बादेव्यै नम:'।

बायें पैर में—'७ इं ईं सहस्त्रकोटियोगिनीकुलसेवितायै प्रतिष्ठाम्बादेव्यै नम:'।

दाहिने गुल्फ में—'७ उं ऊं सहस्त्रकोटितपस्विकुलसेवितायै विद्याम्बादेव्यै नम:'।

बायें गुल्फ़ में—'७ ऋं ॠं सहस्त्रकोटिशान्तकुलसेवितायै शान्ताम्बादेव्यै नम:'।

दाहिनी जङ्घा में—'७ लृं ॡं सहस्त्रकोटिमुनिकुलसेवितायै शान्त्यतीताम्बादेव्यै नम:'॥

बायीं जङ्घा में—'७ एं ऐं सहस्त्रकोटिदैवतकुलसेवितायै हृल्लेखाम्बादेव्यै नम:'।

दाहिने घुटने में—'७ ओं औं सहस्त्रकोटिराक्षसकुलसेवितायै गगनाम्बादेव्यै नम:'।

बायें घुटने में—'७ अं अ: सहस्त्रकोटिविद्याधरकुलसेवितायै रक्ताम्बादेव्यै नम:'।

दाहिने उरु पर—'७ कं खं सहस्त्रकोटिसिद्धकुलसेवितायै महोच्छुष्माम्बादेव्यै नम:'।

बायें उरु पर—'७ गं घं सहस्त्रकोटिसाध्यकुलसेवितायै करालिकाम्बादेव्यै नम:'।

दाहिने उरु मूल पर—'७ ङ चं सहस्त्रकोट्यप्सर:कुलसेवितायै जयाम्बादेव्यै नम:'।

बायें उरु मूल पर—'७ छं जं सहस्त्रकोटिगन्धर्वकुलसेवितायै विजयाम्बादेव्यै नम:'।

दाहिने पार्श्व में—'७ झं ञं सहस्त्रकोटिगुह्यककुलसेवितायै अजिताम्बादेव्यै नम:'।

बायें पार्श्व में—'७ टं ठं सहस्त्रकोटियक्षकुलसेवितायै अपराजिताम्बादेव्यै नम:'।

दाहिने स्तन में—'७ डं ढं सहस्त्रकोटिकिन्नरकुलसेवितायै वामाम्बादेव्यै नम:'।

वाम स्तन में—'७ णं तं सहस्त्रकोटिपन्नगकुलसेवितायै ज्येष्ठाम्बादेव्यै नम:'।

दाहिने दोर्मूल में—'७ थं दं सहस्त्रकोटिपितृकुलसेवितायै रौद्राम्बादेव्यै नम:'।

---

१. बगलामुखीरहस्यम्।

बायें दोर्मूल में—'७ धं नं सहस्त्रकोटिगणेश्वरकुलसेवितायै छायाम्बादेव्यै नमः'।

दाहिनी भुजा में—'७ पं फं सहस्त्रकोटिभैरवकुलसेवितायै कुण्डलिन्यम्बादेव्यै नमः'।

बायीं भुजा में—'७ बं भं सहस्त्रकोटिबटुककुलसेवितायै काल्यम्बादेव्यै नमः'।

दक्षांस में—'७ मं यं सहस्त्रकोटिक्षेत्रेशकुलसेवितायै कालरात्र्यम्बादेव्यै नमः'।

वामांस में—'७ रं लं सहस्त्रकोटिप्रथमकुलसेवितायै भगवत्यम्बादेव्यै नमः'।

दाहिने कान में—'७ वं शं सहस्त्रकोटिब्रह्मकुलसेवितायै सर्वैश्वर्यम्बादेव्यै नमः'।

बायें कान में—'७ षं सं सहस्त्रकोटिविष्णुकुलसेवितायै सर्वज्ञात्र्यम्बा देव्यै नमः'।

मस्तक पर—'७ हं सहस्त्रकोटिरुद्रकुलसेवितायै सर्वकर्त्र्यम्बादेव्यै नमः'।

ब्रह्मरन्ध्र में—'७ क्षं सहस्त्रकोटिचराचरकुलसेवितायै कुलशक्त्यम्बादेव्यै नमः'।

इस न्यास-क्रिया के बाद—'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः सकलमातृकामुच्चार्य समस्तदेवताधिपायै श्रीबगलाम्बादेव्यै नमः स्हौः ह्सौः ऐं श्रीं क्लीं ह्लीं ॐ'—इस प्रकार व्यापक करना चाहिए।

गणेशन्यास

गणेश देवों के अग्रणी हैं। यज्ञों में उनकी पूजा सर्वप्रथम की जाती है। विवाहादिक शुभ कार्यों में भी उनकी पूजा सर्वप्रथम की जाती है। इसीलिए न्यास-विधान में भी प्रथम न्यास उन्हीं के नाम से प्रख्यात गणेशन्यास से प्रारम्भ होता है।

लघुषोढान्यास और गणेशन्यास

लघुषोढान्यास में प्रथम न्यास गणेशन्यास के नाम से किया जाता है और उसका स्वरूप इस प्रकार है—

'ॐ अस्य श्रीलघुषोढान्यासस्य दक्षिणामूर्तये ऋषये नमः शिरसि, गायत्र्यै छन्दसे नमः मुखे, गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिपीठरूपिण्यै श्रीब्रह्मास्त्रविद्याबगलामुखीदेवतायै नमः हृदये, श्रीबगलाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय नमः करसम्पुटे'।

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं कं खं गं घं ङं आं ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः'।

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं इं चं छं जं झं ञं ईं क्लीं तर्जनीभ्यां नमः'।

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं उं टं ठं डं ढं णं ॐ सौः मध्यमाभ्यां नमः'।

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं एं तं थं दं धं नं ऐं ऐं अनामिकाभ्यां नमः'।

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ओं पं फं बं भं मं औं क्लीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः'।

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः'।

इसी प्रकार हृदयादि न्यास भी करना चाहिए।

गणेशन्यास एवं लघुषोढ़ान्यास—

'गणेशैः प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः । नक्षत्रैस्तु तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः ॥
राशिभिः पञ्चमो ज्ञेयः षष्ठः पीठैर्निगद्यते । षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वत्रैवापराजितः' ॥

गणेश का ध्यान—

'विघ्नेशो विघ्नराजश्च विनायकशिवोत्तमौ ।
विघ्नकृत् विघ्नहर्ता च विघ्नराड् गणनायकः ॥
एकदन्तो द्विदन्तश्च गजवक्त्रो निरञ्जनः ।
कपर्दभृद्दीर्घमुखः शङ्कुकर्णो वृषध्वजः ॥
गणनाथो गजेन्द्रश्च शूर्पकर्णस्त्रिलोचनः ।
लम्बोदरो महानादश्चतुर्मूर्तिः सदाशिवः ॥
आमोदो दुर्मदश्चैव सुमुखश्च प्रमोदनः ।
एकपादो द्विजिह्वश्च शूरो वीरश्च षण्मुखः ॥
वरदो वामदेवश्च वक्रतुण्डो द्वितुण्डकः ।
सेनानीर्ग्रामणीर्मत्तो मत्तवाहनः ॥
जटी मुण्डी तथा खड्गी वरेण्यो वृषकेतनः ।
भक्ष्यप्रियो गणेशश्च मेघनादो गणेश्वरः' ॥

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अं श्रींयुक्ताय विघ्नेशाय नमः शिरसि ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं आं ह्रींयुक्ताय विघ्नराजाय नमः मुखवृत्ते ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं इं तुष्टियुक्ताय विनायकाय नमः दक्षनेत्रे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ईं शान्तियुक्ताय शिवोत्तमाय नमः वामनेत्रे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं उं पुष्टियुक्ताय विघ्नहृते नमः दक्षकर्णे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऊं सरस्वतीयुक्ताय विघ्नकर्त्रे नमः वामकर्णे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऋं रतियुक्ताय विघ्नराजे नमः दक्षनासापुटे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ॠं मेधायुक्ताय गणनायकाय नमः वामनासापुटे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं लृं कामिनीयुक्ताय एकदन्ताय नमः दक्षगण्डे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं लॄं कामिनीयुक्ताय द्विदन्ताय नमः वामगण्डे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं एं मोहिनीयुक्ताय गजवक्त्राय नमः ऊर्ध्वोष्ठे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऐं जटायुक्ताय निरञ्जनाय नमः अधरोष्ठे ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ओं तीव्रायुक्ताय कपर्दभृते नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं औं ज्वालिनीयुक्ताय दीर्घमुखाय नमः अधोदन्तपंक्तौ ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अं नन्दायुक्ताय शङ्कुकर्णाय नमः जिह्वाग्रे ।

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अः सुरसायुक्ताय वृषध्वजाय नमः कण्ठे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं कं कामरूपिणीयुक्ताय गणनाथाय नमः दक्षबाहुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं खं सुभ्रूयुक्ताय गजेन्द्राय नमः दक्षकूर्परे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं गं जयिनीयुक्ताय शूर्पकर्णाय नमः दक्षिणमणिबन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं घं सत्यायुक्ताय त्रिलोचनाय नमः दक्षकराङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ङं विघ्नेशयुक्ताय लम्बोदराय नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं चं सुरूपायुक्ताय महानादाय नमः वामबाहुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं छं कामदायुक्ताय चतुर्मूर्तये नमः वामकूर्परे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं जं मदविह्वलायुक्ताय सदाशिवाय नमः वाममणिबन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं झं विकटायुक्ताय आमोदाय नमः वामकराङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ञं पूर्णायुक्ताय दुर्मुखाय नमः वामकराङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं टं भूतिदायुक्ताय सुमुखाय नमः दक्षोरुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ठं भूमियुक्ताय प्रमोदाय नमः दक्षजानुनि।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं डं शक्तियुक्ताय एकपदाय नमः दक्षगुल्फे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ढं रमायुक्ताय द्विजिह्वाय नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं णं मानुषीयुक्ताय शूराय नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं तं मकरध्वजायुक्ताय वीराय नमः वामोरुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं थं वीरिणीयुक्ताय षण्मुखाय नमः वामजानुनि।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं दं भ्रुकुटीयुक्ताय वरदाय नमः वामगुल्फे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं धं लज्जायुक्ताय वामदेवाय नमः वामपादाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं नं दीर्घघोणायुक्ताय वक्रतुण्डाय नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं पं धनुर्धरायुक्ताय द्वितुण्डाय नमः दक्षपार्श्वे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं फं यामिनीयुक्ताय सेनान्ये नमः वामपार्श्वे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं बं रात्रियुक्ताय ग्रामण्ये नमः पृष्ठे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं भं चन्द्रिकायुक्ताय मत्ताय नमः नाभौ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं मं शशिप्रभायुक्ताय विमत्ताय नमः जठरे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं यं लोलायुक्ताय मत्तवाहनाय नमः हृदये।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं रं चपलायुक्ताय जटिने नमः दक्षस्कन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं लं ऋद्धियुक्ताय मुण्डिने नमः गलपृष्ठे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं वं दुर्भगायुक्ताय खड्गिने नमः वामस्कन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं शं सुभगायुक्ताय वरेण्याय नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्।

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं षं शिवायुक्ताय वृषकेतनाय नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं सं दुर्गायुक्ताय भयप्रियाय नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हं कालीयुक्ताय गणेशाय नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ळं कालकुञ्जिकायुक्ताय मेघनादाय नमः हृदयादिगुह्यान्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं क्षं विघ्नहारिणीयुक्ताय गणेश्वराय नमः हृदयादिमूर्धान्तम्।

भुवनन्यास और 'यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे'

भगवती बगलामुखी के मन्त्र को केन्द्र में रखकर अतल, वितल, सुतल, महातल, तलातल, रसातल, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्य-लोक आदि लोकों को अपने शरीराङ्गों में स्थित स्वीकार करके उनमें तथा मूलाधार आदि चक्रों में करोड़ों योगिनिओं (रहस्यज्ञानयोगिनी, अतिरहस्ययोगिनी, परमरहस्य लाकिनी योगिनी, गुप्त काकिनी योगिनी, गुप्ततर साकिनी योगिनी, अतिगुप्त हाकिनी योगिनी, महागुप्त याकिनी योगिनी, गुह्यतरान्त योगिनी, अतिगुह्याचिन्त्य योगिनी एवं महागुह्येच्छा योगिनी) आदि की स्थिति मानकर इन लोकों, चक्रों एवं शरीराङ्गों में वर्णमाला की विभिन्न मातृकाओं का न्यास करना ही भुवनन्यास है।

'यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे' का योग-सिद्धान्त बगलोपासना की साधना-प्रक्रिया में भी स्वीकृत है। योगशास्त्र में पिण्डब्रह्माण्डैक्य के सिद्धान्त को 'शिवसंहिता' (योगशास्त्र का एक ग्रन्थ) में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः॥
सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
तमो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते'॥

शरीर ब्रह्माण्ड है—

'ब्रह्माण्डसंज्ञिते देहे यथा देशे व्यवस्थितः'[१]॥

'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। यथा—

(१) 'पिण्डमध्ये चराचरं यो जानाति स योगी पिण्डसंवित्तिर्भवति'। (२) 'कूर्मपादतले वसति, पातालं पादाङ्गुष्ठे तलातलमङ्गुष्ठाग्रे महातलं पादपृष्ठे रसातलं गुल्फे'[२] आदि।

---

१. शिवसंहिता (पटल २)। २. गोरक्षनाथ।

पदद्वय में न्यास—'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः अं आं इं अतललोकनिलयशतकोटिगुह्याद्ययोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः'।

गुल्फद्वय में न्यास—७ ईं उं ऊं वितललोकनिलयशतकोटिगुह्यतरानन्तयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

जघनद्वय में न्यास—७ ऋं ॠं लृं सुतललोकनिलयशतकोट्यतिगुह्याचिन्त्ययोगिनीमूलदेवतायुता।

जानुद्वय में न्यास—७ ॡ एं ऐं महातललोकनिलयशतकोटिमहागुह्येच्छायोगिनीमूलदेवतायुता।

जर्व—७ ओं औं तलातललोकनिलयशतकोटिपरमगुह्येच्छायोगिनीमूलदेवतायुता।

स्फिक्—७ अं अः रसातललोकनिलयशतकोटिरहस्यज्ञानयोगिनीमूलदेवतायुता।

मूलाधार चक्र में न्यास—७ कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं पाताललोकभूर्लोकनिलयशतकोटिरहस्यतरक्रिया (डाकिनी) योगिनीमूलदेवतायुता।

स्वाधिष्ठान चक्र में न्यास—७ टं ठं डं ढं णं भुवर्लोकनिलयशतकोट्यतिरहस्यराकिनीयोगिनीमूलदेवतायुता।

मणिपूरक चक्र में न्यास—७ तं थं दं धं नं स्वर्लोकनिलयशतकोटिपरमरहस्यलाकिनीमूलदेवतायुता।

अनाहत चक्र में न्यास—७ पं फं बं भं मं महर्लोकनिलयशतकोटिगुप्तकाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुता।

विशुद्ध चक्र में न्यास—७ यं रं लं वं जनःलोकनिलयशतकोटिगुप्ततरसाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुता।

आज्ञाचक्र में न्यास—७ शं षं सं हं तपोलोकनिलयशतकोटिअतिगुप्तहाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुता।

ब्रह्मरन्ध्र में न्यास—७ ळं क्षं सत्यलोकनिलयशतकोटिमहागुप्तयाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

इस प्रकार उक्त न्यास सम्पन्न करके एवं समस्त मातृकाओं का उच्चारण करके ७ सकलभुवनाधिपायै श्रीबगलाम्बादेव्यै नमः। कहना चाहिए।

'स्हौः ह्सौः ऐं श्रीं क्लीं ह्रीं ओं'—इस प्रकार व्यापक करना चाहिए।

पीठन्यास

(लघुषोढान्यास)

पीठन्यास अपने सम्पूर्ण स्वरूप में—(१) मातृकाओं के साथ पीठों का एकत्व, (२) मातृकाओं एवं मन्त्र के साथ पीठों का एकत्व तथा (३) मन्त्र, मातृका, पीठ एवं शरीराङ्ग के साथ एकत्व स्थापित करने की मान्त्रिक प्रक्रिया है।

चूँकि नाम एवं नामी अभिन्न हैं अतः इस दृष्टि से अप्रत्यक्ष रूप में देवता (नामी) के साथ भी सभी का एकत्व स्थापित हो जाता है।

मातृकापीठ-सामरस्य—पीठन्यास मुख्यतः मातृकापीठसामरस्यस्थापन की प्रक्रिया है।

पीठन्यास में वर्णों (मातृका) में पीठों की स्थापना की जाती है अर्थात् पीठों की मातृकाओं के साथ एकता स्थापित की जाती है। उदाहरणार्थ कामरूपपीठ को 'अं', वाराणसी को 'आं', नेपालपीठ को 'इं', कैलासपीठ को 'ओं' मातृका से एकीभूत स्वीकार किया जाता है। अनेक पीठ हैं। भगवती के ५१ पीठ हैं। मातृकास्थानों में पीठों का न्यास करना चाहिए—

'पीठांस्तु विन्यसेद्देवि ! मातृकास्थानके प्रिये।
सितासितारुणश्यामहरित्पीतान्यनुक्रमात् ॥
पुनः क्रमेण देवेशि ! पञ्चाशत् पीठसञ्चयः' ॥

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अं कामरूपाय नमः शिरसि।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं आं वाराणस्यै नमः मुखवृत्ते।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं इं नेपालाय नमः दक्षनेत्रे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ईं पौण्ड्रवर्धनाय नमः वामनेत्रे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं उं पुरस्थितकाश्मीराय नमः दक्षकर्णे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऊं कान्यकुब्जाय नमः वामकर्णे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऋं पूर्णशैत्याय नमः दक्षनासापुटे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ॠं अर्बुदाचलाय नमः वामनासापुटे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऌं आम्रातकेश्वराय नमः दक्षगण्डे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ॡं एकाम्राय नमः वामगण्डे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं एं त्रिस्स्रोतसे नमः ऊर्ध्वोष्ठे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऐं कामकोटये नमः अधरोष्ठे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ओं कैलासाय नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं औं भृगुनगराय नमः अधोदन्तपंक्तौ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अं केदाराय नमः जिह्वाग्रे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं अः चन्द्रपुष्करिण्यै नमः कण्ठे।

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं कं श्रीपुराय नमः दक्षबाहुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं खं ओंकाराय नमः दक्षकूर्परे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं गं जालन्धराय नमः दक्षिणबन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं घं मालवाय नमः दक्षकराङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ङं कुलान्तकाय नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं चं देवीकोटाय नमः वामबाहुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं छं गोकर्णाय नमः वामकूर्परे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं जं मारुतेश्वराय नमः वाममणिबन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं झं अट्टहासाय नमः वामकराङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ञं वैराजायै नमः वामकराङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं टं राजगेहाय नमः दक्षोरुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ठं महापथाय नमः दक्षजानुनि।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं डं कोलापुराय नमः दक्षगुल्फे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ढं एलापुराय नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं णं कालेश्वराय नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं तं जयन्तिकायै नमः वामोरुमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं थं उज्जयिन्यै नमः वामजानुनि।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं दं चित्रायै नमः वामगुल्फे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं नं क्षीरिकायै नमः वामपादाङ्गुलिमूले।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं पं हस्तिनापुराय नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं फं उड्डीशाय नमः दक्षपार्श्वे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं बं प्रयागाय नमः वामपार्श्वे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं भं षष्ठीशाय नमः पृष्ठे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं मं जलेशाय नमः जठरे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं यं मलयाय नमः हृदये।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं रं श्रीशैलाय नमः दक्षस्कन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं लं मेरवे नमः गलपृष्ठे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं वं गिरिवराय नमः वामस्कन्धे।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं शं महेन्द्राय नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं षं वामनाय नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं सं हिरण्यपुराय नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं हं महीलक्ष्मीपुराय नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ळं ओड्पाणाय नमः हृदयादिगुह्यान्तम्।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं क्षं छायाच्छत्राय नमः हृदयादिमूर्धान्तम्।

शरीराङ्ग	पीठ	मन्त्र
।धार चक्र	कामरूप पीठ	ॐ ह्लीं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूपपीठाय नमः इति मूलाधारे ।
हृदयस्थान	जालन्धर पीठ	ॐ ह्लीं आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः जालन्धर-पीठाय नमो हृदि ।
ललाट	पूर्णगिरि पीठ	ॐ ह्लीं कं खं गं घं ङं पूर्णगिरिपीठाय नमो ललाटे ।
शिर	उड्डीयान पीठ	ॐ ह्लीं चं छं जं झं ञं उड्डीयानपीठाय नमः शिरसि ।
भ्रूमध्य	वाराणसी पीठ	ॐ ह्लीं टं ठं डं ढं णं वाराणसीपीठाय नमः भ्रूमध्ये ।
मुखवृत्त	अवन्ती पीठ	ॐ ह्लीं तं थं दं धं नं अवन्तीपीठाय नमः मुखवृत्ते ।
ललाट	द्वारवती पीठ	ॐ ह्लीं पं फं बं भं मं द्वारवतीपीठाय नमो ललाटे ।
कण्ठ का मध्यभाग	मधुपुरी पीठ	ॐ ह्लीं यं रं लं वं मधुपुरीपीठाय नमः कण्ठमध्ये ।
नाभिमण्डल	अयोध्यापीठ	ॐ ह्लीं शं षं सं हं अयोध्यापीठाय नमो नाभिमण्डले ।
कटिभाग	काञ्चीपुर पीठ	ॐ ह्लीं ळं क्षं काञ्चीपुरपीठाय नमः कट्याम् ।

राशिन्यास

'रक्तश्वेतहरित्पाण्डुचित्रकृष्णापिशङ्गकान् ।
कपिशबभ्रुकिर्मीरकृष्णधूम्रान् क्रमात्स्मरेत्' ॥

इस प्रकार ध्यान करने के अनन्तर फिर शरीराङ्गों में राशियों का न्यास करना चाहिए । यथा—

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं मेषाय नमः दक्षिणपादे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं उं ऊं वृषाय नमः लिङ्गदक्षभागे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ऋं ॠं लृं लॄं मिथुनाय नमः दक्षकुक्षौ ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं एं ऐं कर्काय नमः हृदयदक्षभागे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ओं औं सिंहाय नमः दक्षबाहुमूले ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं अः शं षं सं हं ळं कन्यायै नमः दक्षशिरोभागे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं कं खं गं घं ङं तुलायै नमः वामशिरोभागे ।

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं चं छं जं झं ञं वृश्चिकाय नमः वामबाहुमूलभागे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं टं ठं डं ढं णं धनुषे नमः हृदयवामभागे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं तं थं दं धं नं मकराय नमः वामकुक्षौ ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं पं फं बं भं मं कुम्भाय नमः लिङ्गवामभागे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं यं रं लं वं क्षं मीनाय नमः वामपादे ।

ग्रहन्यास

'रक्तं श्वेतं तथा रक्तं श्यामं पीतश्च पाण्डुरम् ।
कृष्णं धूम्रं धूम्रधूम्रं भावयेद्रविपूर्वकान् ॥
कामरूपधरान्देवान् दिव्याभरणभूषितान् ।
वामोरुन्यस्तहस्तांश्च दक्षहस्तवरप्रदान् ॥
शक्तयोऽपि तथा ध्येया वराभयकराम्बुजाः ।
स्वस्वप्रियाकं निलयाः सर्वाभरणभूषिताः' ॥

इस प्रकार ध्यान करके फिर मन्त्र एवं वर्ण पढ़कर ग्रहों को शरीराङ्ग में न्यस्त करके उनको इस प्रकार नमस्कार करना चाहिए—

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः— रेणुकायुक्ताय सूर्याय नमः हृदयाधः हृज्जठरसङ्घौ ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं यं रं लं वं अमृतायुक्ताय चन्द्राय नमः भ्रूमध्ये ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं कं खं गं घं ङं धर्मायुक्ताय भौमाय नमः नेत्रयोः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं चं छं जं झं ञं यशस्विनीयुक्ताय बुधाय नमः श्रोत्रकूपाधः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं टं ठं डं ढं णं शाङ्करीयुक्ताय बृहस्पतये नमः कण्ठे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं तं थं दं धं नं ज्ञानरूपायुक्ताय शुक्राय नमः हृदि ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं पं फं बं भं मं शक्तियुक्ताय शनैश्चराय नमः नाभौ ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं शं षं सं हं कृष्णायुक्ताय राहवे नमः मुखे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ळं क्षं धूम्रायुक्ताय केतवे नमः गुदे ।

नक्षत्रन्यास

'ज्वलत्कालानलप्रख्या वरदाभयपाणयः ।
नतिपाण्योऽश्विनीपूर्वाः सर्वाभरणभूषिताः' ॥

इस प्रकार ध्यान करके साधक को चाहिए कि वह मन्त्र एवं वर्णमाला के विशिष्ट वर्ण पढ़कर नक्षत्रों का नाम लेकर उन्हें अपने विशिष्ट शरीराङ्ग में न्यस्त करते हुए उन्हें नमस्कार करे । यथा—

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं अं आं अश्विन्यै नमः ललाटे ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं इं भरण्यै नमः दक्षनेत्रे ।

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ईं उं ऊं कृत्तिकायै नमः वामनेत्रे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऋं ॠं ऌं ॡं रोहिण्यै नमः दक्षकर्णे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं एं मृगशिरसे नमः वामकर्णे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ऐं आर्द्रायै नमः दक्षनासापुटे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ओं औं पुनर्वसवे नमः वामनासापुटे।
ॐ ह्री क्लीं श्रीं ऐं कं पुष्याय नमः कण्ठे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं खं गं आश्लेषायै नमः दक्षस्कन्धे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं घं ङं मघायै नमः वामस्कन्धे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं चं पूर्वफाल्गुन्यै नमः पृष्ठे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं छं जं उत्तरफाल्गुन्यै नमः दक्षकूर्परे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं झं ञं हस्तायै नमः वामकूर्परे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं टं ठं चित्रायै नमः दक्षमणिबन्धे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं डं स्वात्यै नमः वाममणिबन्धे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ढं णं विशाखायै नमः दक्षहस्ते।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं तं थं दं अनुराधायै नमः वामहस्ते।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं धं ज्येष्ठायै नमः नाभौ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं नं पं फं मूलाय नमः कटिबन्धे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं बं पूर्वाषाढायै नमः दक्षोरौ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं भं उत्तराषाढायै नमः वामोरौ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं मं श्रवणाय नमः दक्षजानुनि।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं लं शततारकायै नमः दक्षजङ्घायाम्।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं वं शं पूर्वभाद्रपदायै नमः वामजङ्घायाम्।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं षं सं हं उत्तरभाद्रपदायै नमः दक्षपादे।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ळं क्षं अं अः रेवत्यै नमः वामपादे।

प्रपञ्चन्यास

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः अं प्रपञ्चरूपायै श्रियै नमः।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः आं द्वीपरूपायै मायायै नमः।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः इं जलधिरूपायै कमलायै नमः।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ईं गिरिरूपायै विष्णुवल्लभायै नमः।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः उं पत्तनरूपायै पद्मधारिण्यै नमः।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ऊं पीठरूपायै समुद्रतनयायै नमः।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ऋं क्षेत्ररूपायै लोकमात्रे नमः।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ॠं वनरूपायै कमलवासिन्यै नमः।

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ॡं आश्मरूपायै इन्दिरायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ॡं गुहारूपायै मायायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः एं नदीरूपायै रमायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ऐं चत्वाररूपायै पद्मायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ओं उद्भिज्जरूपायै नारायणप्रियायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः औं स्वदेशरूपायै सिद्धलक्ष्म्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः अं अण्डजरूपायै राजलक्ष्म्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः अः जरायुजरूपायै महालक्ष्म्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः कं रूपलावण्यै आर्यायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः खं त्रुटिरूपायै उमायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः गं कलारूपायै चण्डिकायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः घं काष्ठारूपायै दुर्गायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ङं निमेषरूपायै शिवायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः चं श्वासरूपायै अपर्णायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः छं घटिकारूपायै अम्बिकायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः जं मुहूर्तरूपायै सत्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः झं प्रहररूपायै ईश्वर्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ञं दिवसरूपायै शाम्भव्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः टं सन्ध्यारूपायै ईशान्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ठं रात्रिरूपायै पार्वत्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः डं तिथिरूपायै सर्वमङ्गलायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ढं वाररूपायै दाक्षायण्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः णं नक्षत्ररूपायै हैमवत्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः तं योगरूपायै महामायायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः थं करणरूपायै महेश्वर्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः दं पक्षरूपायै मृडान्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः धं मासरूपायै इन्द्राण्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः नं शशिरूपायै सर्वाण्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः पं ऋतुरूपायै परमेश्वर्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः फं अयनरूपायै काल्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः बं वत्सररूपायै कात्यायन्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः भं युगरूपायै गौर्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः मं प्रलयरूपायै भवान्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः यं पञ्चभूतरूपायै ब्राह्मयै नमः ।

ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः रं पञ्चतन्मात्ररूपायै वागीश्वर्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः लं पञ्चकर्मेन्द्रियरूपायै वाण्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः वं पञ्चज्ञानेन्द्रियरूपायै सावित्र्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः शं पञ्चप्राणरूपायै सरस्वत्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः षं गुणत्रयरूपायै गायत्र्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः सं अन्तःकरणचतुष्टयरूपायै वाक्प्रदायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः हं अवस्थाचतुष्टयरूपायै शारदायै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः ळं सर्वधातुरूपायै भारत्यै नमः ।
ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः क्षं दोषत्रयरूपायै विद्यात्मिकायै नमः ।

इस प्रकार ५१ शक्तियों को मातृकास्थानों में विन्यस्त करके फिर इस मन्त्र से सर्वाङ्ग में व्यापक करना चाहिए—

'ॐ ह्लीं क्लीं श्रीं ऐं ह्सौः स्हौः अकारादिक्षकारान्तां मातृकामुच्चार्य सकल-प्रपञ्चाधिदेवतायै श्रीबगलाम्बादेव्यै नमः—स्हौः ह्सौः ऐं श्रीं क्लीं ह्लीं ॐ' ।



नवम अध्याय

मन्त्र-साधना और ब्रह्मास्त्रविद्या

मन्त्र और उसका स्वरूप

'नास्ति नादात्परो मन्त्रो, न देव: स्वात्मन: पर: ।
नानुसन्धे: परापूजा न हि तृप्ते: परं सुखम्' ॥ (योग. ३०)

नेत्रतन्त्र में प्रश्न किया गया है—

'मन्त्रा: किमात्मका देव ! किंस्वरूपाश्च कीदृशा: ।
किंप्रभावा: कथं शक्ता: केन वा सम्प्रचोदिता:' ॥

आचार्य क्षेमराज ने 'शिवसूत्रविमर्शिनी' में मन्त्र के प्रधान लक्षणों में दो को रेखाङ्कित किया है और वे दोनों निम्नाङ्कित हैं—

१. 'परस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता' ।
२. 'भेदमयसंसारप्रशमनात्मकत्राणधर्मता' ।

चूँकि चित्त परमेश्वर का अभेदात्मक परामर्शन करता है—'पूर्णस्फुरत्ता सतत्त्वप्रासादप्रणवादिविमर्शरूप संवेदन' करता है और अत: चित्त ही मन्त्र है—'चित्तं मन्त्र:' । (शिवसूत्र) 'चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तम्, अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्र:'[१] ।

चूँकि मन्त्रतत्त्व की सहायता से मन्त्र के देवता का विमर्शन होता है और विमर्शन से देवता के साथ सामरस्य प्राप्त होता है, अत: आराधक का चित्त ही मन्त्र है—

'मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्ततत्सामरस्यम् आराधकचित्तमेव मन्त्र: न तु विचित्र-वर्णसङ्घट्टनामात्रकम्'[२] ।

शक्ति क्या है ? आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि यह मन्त्र के सामर्थ्य का स्फार (प्रकाशन) है—'शक्ति: मन्त्रवीर्यस्फाररूपा' । (शिवसूत्रविमर्शिनी) यह शक्ति ही मन्त्रों का प्राण है—

'मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया ।
तया हीना वरारोहे निष्फला: शरदभ्रवत्'[३] ॥

मनन त्राण का विधायक है और मन्त्र का प्रधान धर्म मनन है, अत: जो मनन

---

१. शिवसूत्रविमर्शिनी ।

२. शिवसूत्रविमर्शिनी ।

३. तन्त्रसद्भाव ।

क्रिया द्वारा मननकर्ता का त्राण करे वही मन्त्र है—'मननात् त्रायत इति मन्त्र आत्मास्वरूपं यस्या:'[१]।

मन्त्र का यथार्थ स्वरूप

'पूर्णहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मत:।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते'॥

सारे आगमों का मुख्य भाग मन्त्रात्मक है।

मन्त्र है क्या ?—१. 'मन्त्राश्चिन्मरीचय:'।

२. 'मकारं मानसं प्रोक्तं त्रकारं बुद्धिलक्षणम्।
बुद्धिमानससंयोगे मन्त्र इत्यभिधीयते'॥

'मकार' का अर्थ है मनन करना। 'त्रकार' का अर्थ है बुद्धि। अत: बुद्धिपूर्वक मानसिक व्यापार ही मन्त्र है। 'मकार' जीव एवं 'त्रकार' आत्मा का ऐक्य-निष्पादन ही मन्त्र है। इन दोनों का ऐक्य-निष्पादन या इनकी एकता का अनुसन्धान ही अध्यात्म-शास्त्र का चरम लक्ष्य है। 'मननात् त्रायते इति मन्त्र:' कहकर शास्त्रकारों ने मन्त्र की दैहिक, दैविक एवं भौतिक समस्त आघातों से रक्षा करने की उसकी अद्भुत क्षमता की ओर संकेत किया है—'मन्त्र परम लघु जासु वश विधि हरि हर सुरसर्व'। यह भी ध्यातव्य है कि मन्त्र एवं विद्या में भेद है।

भैरव, गणेश, शिव आदि पुरुषाकार देवों को मन्त्र किन्तु शक्ति के मन्त्रों को विद्या कहते हैं।

मन्त्र के सप्ताङ्ग—प्रत्येक मन्त्र के सात अङ्ग होते हैं; यथा—

'ऋषिश्छन्दश्च बीजं च कीलकं शक्तिरेव च।
अङ्गन्यासस्तथा ध्यानं मन्त्राङ्गानां च सप्तकम्'॥

ऋषि—'ऋ' का अर्थ है सृष्टि, 'षि' का अर्थ है स्थिति। ऋषि ही स्रष्टा एवं पालक (अधिष्ठाता) हैं।

छन्द—छन्द देवों के आच्छादक हैं। मन्त्रों का वर्ण-मात्रा आदि से नियन्त्रित या नियमित रूप ही छन्द है। इसका न्यास मुख में इसलिए किया जाता है क्योंकि इसकी अभिव्यक्ति मुख द्वारा ही होती है। 'छकार' का अर्थ है पद, 'दकार' का अर्थ है अभिलाषा। अभिलषित पद की प्राप्ति ही छन्द का प्रतीकार्थ है।

बीज—यह जगन्निर्माण की शक्ति है। इसको अत्यन्त गुप्त रखना चाहिए, शायद इसीलिए इसका न्यास गुह्यस्थान पर किया जाता है।

---

१. भास्करराय : सौभाग्यभास्कर।

शक्ति—मन्त्र का सम्पूर्ण सामर्थ्य, ओज, तेज एवं वर्चस्व ही शक्ति है। साधना निरन्तर चलती रहे—आगे बढ़ती रहे शायद इसीलिए चरणों (गति के साधन चरणों) में शक्ति का न्यास किया जाता है। धुरी पर ही पूरा चक्र घूमता है अतः कील (धुरी) का न्यास सर्वाङ्गात्मक सम्पूर्ण शरीर है। अशुद्ध शरीर भगवान् की पूजा के योग्य है ही नहीं अतः न्यास का विधान है—'ध्यानं विना भवेन्मूकः सिद्धमन्त्रोऽपि साधकः'।

मन्त्रतत्त्व और बगलामुखी मन्त्र

भगवती बगलामुखी के मन्त्र का बाह्य वर्णात्मक स्वरूप चाहे कितना ही स्थूल क्यों न हो किन्तु मन्त्र अपने सूक्ष्म स्तर एवं सूक्ष्म स्वरूप में अत्यन्त रहस्यात्मक है। मन्त्र सुनिश्चित वर्णों की समष्टि मात्र नहीं है, यह वर्णमाला के वर्णों की एक स्थूल रचना नहीं है प्रत्युत यह चित्तत्त्व का उल्लास है। क्योंकि—'मन्त्राश्चिन्मरीचयः' अर्थात् मन्त्र चैतन्य तत्त्व की रश्मियाँ हैं।

(क) **शिवसूत्रकार की दृष्टि**—शिवसूत्रकार ने तो 'चित्तं मन्त्रः' (२१) कहकर चित्त को ही मन्त्र का पर्याय बना दिया।

(ख) आचार्य **क्षेमराज** कहते हैं कि विचित्रवर्णसङ्घट्टनामात्र मन्त्र नहीं है क्योंकि—

'उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्राश्चापि तान्विदुः ॥
मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः' ॥

(श्रीमत्सर्वज्ञानोत्तर)

(ग) **तन्त्रसद्भाव** में भी कहा गया है कि मन्त्र का प्राणतत्त्व तो शक्ति है। शक्ति-शून्य मन्त्र शरदभ्रवत् निष्फल हैं—

'मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फलाः शरदभ्रवत्' ॥

(घ) आचार्य **क्षेमराज** की दृष्टि यह है कि—'मन्त्र के द्वारा मन्त्रदेवता का विमर्शन हो तो रहने के कारण जो सामरस्य प्राप्त होता है उसके कारण (चित्त एवं देवता में सामरस्य के कारण) चित्त ही मन्त्र है—'मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्ततत्सामरस्यम् आराधकचित्तमेव मन्त्रः न तु विचित्रवर्णसङ्घट्टनामात्रम्'। (शिवसूत्रविमर्शिनी)

'पूर्णाहन्तानुसन्ध्यात्मा स्फूर्जन्मननधर्मतः।
संसारक्षयकृत्त्राणधर्मतो मन्त्र उच्यते'[१] ॥

यही मन्त्र का यथार्थ स्वरूप है, क्योंकि मन्त्र पूर्णाहन्तानुसन्धानात्मक है। जब तक मन्त्र एवं आराधक का चित्त अभिन्न नहीं हो जाता तब तक मन्त्र शिवधर्मी नहीं हो सकते। स्पन्दकारिका की यही दृष्टि है—'सहाराधकचित्तेन तनैते शिवधर्मिणः'। (स्पन्दकारिका)

---

१. भास्करराय : 'सौभाग्यभास्कर' में उद्धृत।

(ङ) **श्रीकण्ठीसंहिता की दृष्टि**—इस संहिता में कहा गया है कि मन्त्र को मन्त्री से एवं मन्त्री को मन्त्र से पृथक् समझना भ्रम है, क्योंकि जब तक दोनों में ऐकात्म्य स्थापित न हो जाय तब तक मन्त्र-साधना सफल ही नहीं हो सकती—

'पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा नैव सिद्ध्यति'॥

भगवती तो स्वयं मन्त्र हैं—(१) 'मन्त्रयितुमन्त्रदेवतातादात्म्यप्रदः'।

(शिवसूत्रविमर्शिनी)

(२) 'मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा'[१]।

(च) **आचार्य क्षेमराज की दृष्टि**—आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि शक्ति मन्त्रवीर्यस्फाररूपा है—'तत्र शक्तिः मन्त्रवीर्यस्फाररूपा'।

मन्त्र क्या है ? 'चित्तं मन्त्रः'—चित्त ही मन्त्र है।

यह कौन-सा चित्त है जो मन्त्रस्वरूप है ? आचार्य क्षेमराज कहते हैं—'चेत्यते विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तम्'। जिसके द्वारा परमतत्त्व का विमर्शन होता है उसे चित्त कहते हैं। इस विमर्शन का स्वरूप क्या है ? क्षेमराज कहते हैं—'पूर्णस्फुरत्ता सतत्त्वप्रसादप्रणवादिविमर्शरूपं संवेदनम्' यह पूर्णस्फुरत्तात्मक संवेदन है। इसी पूर्ण स्फुरणात्मक संवेदन का जिसके द्वारा गुप्त रूप से परामर्श होता हो और जिसके द्वारा परमेश्वर के साथ अभेद विमर्शन होता हो वही मन्त्र है—'तदेव (पूर्णस्फुरत्ता·····विमर्शरूपं संवेदनम्) मन्त्र्यते गुप्तम्, अन्तर् अभेदेन विमृश्यते परमेश्वरूपम् अनेन इति कृत्वा मन्त्रः'[२]।

मन्त्र के अङ्गरूप तत्त्व

'पुरस्फुरत्तात्मकमननधर्मात्मता'। 'भेदमयसंसारप्रशमनात्मकत्राणधर्मता'[३]।

भगवती बगलामुखी के मन्त्र का उद्धार

किसी भी मन्त्र की उपासना बिना मन्त्रोद्धार के सफलीभूत नहीं होती। इसी दृष्टि से प्रत्येक मन्त्र के उद्धार की अपनी पृथक्-पृथक् पद्धतियाँ हैं।

भगवती बगलामुखी के मन्त्र के उद्धार की निम्न पद्धति है—

(१) प्रणव (ओंकार), (२) 'स्थिरमाया' ('ह्लीं'), (३) फिर—'बगलामुखि' पद, फिर (४) 'सर्वदुष्टानां' पद, फिर (५) 'वाचं मुखं पदं', फिर (६) 'स्तम्भय', फिर (७) 'जिह्वां कीलय' पद को जोड़कर, फिर (८) 'कीलय', फिर (९) 'बुद्धिं नाशय' पद

१. ललितासहस्रनाम। २. शिवसूत्रविमर्शिनी।
३. शिवसूत्रविमर्शिनी (२।१) (आचार्य क्षेमराज)।

जोड़कर और इन दो पदों के अन्त में 'ह्लीं ॐ' और सबके अन्त में 'स्वाहा' जोड़कर ३६ अक्षरों के बगलामन्त्र के स्वरूप को अनावृत करना चाहिए—

'प्रणवं स्थिरमायां च ततश्च बगलामुखि।
तदन्ते सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्॥
स्तम्भयेति ततो जिह्वां कीलयेति पदद्वयम्।
बुद्धिं नाशय पश्चात् स्थिरमायां समालिखेत्॥
लिखेच्च पुनरोङ्कारं स्वाहेति पदमन्ततः।
षट्त्रिंशदक्षरी विद्या सर्वसम्पत्करी मता'॥

'ॐ ह्लीं बगलामुखि! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय, बुद्धिं नाशय, ह्लीं ॐ स्वाहा'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमन्त्रस्य नारद ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, ह्लीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, प्रणवः कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः'।

ऋष्यादिन्यास—शिर में नारद ऋषि, मुख में त्रिष्टुप् छन्द, हृदय में श्रीबगलामुखी, गुह्य में ह्लीं बीज, पैरों में स्वाहा और सर्वाङ्ग में प्रणव; कीलक का न्यास करणीय है।

करन्यास—अङ्गुष्ठों में 'ॐ ह्लीं', तर्जनियों में 'बगलामुखि', मध्यमाओं में 'सर्वदुष्टानां', अनामिकाओं में 'वाचं मुखं पदं स्तम्भय', कनिष्ठिका में 'जिह्वां कीलय', करतलकरपृष्ठों में—'बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' का न्यास करना चाहिए।

भगवती बगलामुखी के मन्त्रोद्धार-सम्बन्धी दृष्टि-भेद

(१) **सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि**—इस तन्त्र के पञ्चम पटल में मन्त्रोद्धार इस प्रकार बताया गया है—

'सोऽन्तरान्तसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम्।
रेफाक्रान्तं बिन्दुयुक्तं ब्रह्मास्त्रैकाक्षरी मनुः'॥

'सोन्त' अर्थात् 'ह'। 'रान्त' अर्थात् 'ल'। 'समायुक्त' = से युक्त। 'चतुर्थस्वर' = अर्थात् 'ई' से। 'संयुत' (युक्त)। रेफान्तान्त (या रेफाक्रान्त) = 'र'। 'बिन्दुयुक्तं' = चन्द्रबिन्दु से युक्त। यही है 'ब्रह्मास्त्रैकाक्षरी मनुः'। अर्थात् यही है एकाक्षर, बगलामुखी, बीजमन्त्र।

सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि—'ह्लीं'।

(२) अन्य तन्त्रग्रन्थों में कहा गया है—'वह्निहीनेन्दुयुग्माया स्थिरमाया प्रकीर्तिता'। वह्निहीन अर्थात् वह्निरहित अर्थात् 'ह्लीं'।

बीजमन्त्र (भेद-दृष्टि)

सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि 'ह्लृीं'

अन्य तन्त्रों की दृष्टि 'ह्लीं' 'ह्लृं' या 'ह्लीं'

बीजकोश की भी यही दृष्टि है।

मन्त्रद्वय में श्रेष्ठतर कौन ?

'ह्लीं' (मन्त्र)
(यह मन्त्र कीलित है। कीलित मन्त्र उपासित होने पर फल नहीं देता और न तो कभी सिद्ध होता है।)

'ह्लृं' (ह्लृं)
(मूल मन्त्र 'ह्लीं' में 'र' जोड़ देने पर इसका स्वस्वरूप बन जाता है 'ह्लृं'। यह शापमुक्त है। शापमुक्त्यर्थ ही मूल मन्त्र रकार का योग किया गया है।)

'ह्ल्रीं' मन्त्र ही उत्कृष्टतर है क्योंकि यह शापमुक्त है। 'रेफहीनां जपन् विद्यां कोटिजापान्न सिदध्यति'। (सां.तं.)

सांख्यायनतन्त्र की दृष्टि

ऋषि सांख्यायन कहते हैं—

'स्थिरबीजं समुद्धृत्य, रतिबिन्दुविभूषितम्।
स्थिरमाया त्वियं पुत्र! बिन्द्वर्धचन्द्रभूषिता॥
इयं शप्ता महाविद्या, कीलिता स्तम्भिता सुत।
रेफयोगान्महाशैवा निःशप्ता फलदायिनी॥
रेफयुक्तां जपेद् विद्यां, फलसिद्धिर्न संशयः।
रेफहीनां जपन् विद्यां कोटिजापान्न सिद्ध्यति'॥

(सांख्यायनतन्त्र ३२वाँ पटल)

अर्थात् स्थिरमाया बीज 'ह्लीं' रेफशून्य है और अभिशप्त है, अतः इसका जप करना व्यर्थ है। कोटि जप करने पर भी यह फलीभूत नहीं होगा अतः स्थिरमाया विद्या (ह्लीं) में रेफ लगाकर (ह्लृीं बनाकर) जपना चाहिए।

मन्त्रोत्कीलन

कलियुग के आदि में भगवान् शिव ने मन्त्रों को फलीभूत होने से अवरुद्ध करने के लिए मन्त्रों को कीलित कर दिया है जिससे कि सामान्यतया अपात्र एवं कुपात्र इसके प्रयोग के द्वारा सामाजिक अनिष्ट न कर सकें तथा अपने क्षुद्र लाभ के लिए किसी की अपूरणीय हानि न कर सकें।

सत्पात्रों एवं अधिकारियों को मन्त्र की सिद्धि भी हो जिससे कि वे मन्त्रसिद्धि होने

पर अपना एवं समाज का कल्याण कर सकें—इसी उद्देश्य से भगवान् शिव ने मन्त्रों को उत्कीलित करने का विधान भी प्रस्तुत किया। यही मन्त्रोत्कीलन-विधान मन्त्रोपासना के अङ्ग के रूप में उत्कीलक कहलाते हैं—

(कवचादिक पाठ के पूर्व शापोद्धार करना चाहिए।) उत्कीलन में दो क्रियाएँ हैं—

(१) शापोद्धार एवं (२) उत्कीलन।

उदाहरण—(दुर्गासप्तशती के प्रसङ्ग में)

मत-वैभिन्न्य—

कात्यायनीतन्त्र के अनुसार—

'अन्त्याद्यर्कद्विरुद्रत्रिदिगब्ध्यंकेष्विभर्तवः'।

(क) 'अश्वोऽश्व इति सर्गाणां शापोद्धारे मनोः क्रमः'।

(ख) 'उत्कीलने चरित्राणां मध्याद्यन्तमिति क्रमः'।

सप्तशती के अध्यायों में १, १२-२, ११-३, १०-४, ९-५ एवं ८-६ के क्रम से पाठ करके अन्त में सातवें अध्याय का दो बार पाठ करना चाहिए। यह शापोद्धार है तथा प्रथमतः 'मध्यम चरित्र' फिर 'प्रथम चरित्र' एवं बाद में 'उत्तर चरित्र' का पाठ करना 'उत्कीलन' है।

(ग) **शापोद्धार-उत्कीलन**—'ददाति प्रतिगृह्णाति' के नियम से कृष्णपक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी तिथि को देवी को सर्वस्व समर्पित करके उन्हीं का होकर उनके प्रसाद रूप से प्रत्येक वस्तु को उपयोग में लाना ही 'शापोद्धार' एवं 'उत्कीलन' दोनों हैं।

(घ) ६ अंगों सहित पाठ करना ही शापोद्धार है। अङ्गों का त्याग ही शाप है।

(ङ) 'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिकादेव्यै शापनाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्र का आदि एवं अन्त में ७ बार जप करने से शापोद्धार (शापनाश) हो जाता है।

बगलामन्त्रोत्कीलन-मन्त्र

'ॐ अस्य श्रीबगलामुखी उत्कीलनमन्त्रस्य सदाशिव ऋषिः तस्मै नमः शिरसि, जगत्सृष्टिसाधनीभूतबृहद्गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीब्रह्मास्त्रोत्कीलनायै क्लीं ब्लूं ग्लौं ह्लीं ब्लौं ब्लूं क्लीं सं सं सं सूच्यग्रेणोत्कीलनसूचीमुख्यै देवतायै नमो हृदये, ॐ ऐं क्लीं ह्लीं ह्लीं ऐं अं बीजाय नमो गुह्ये, ॐ ह्लीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं अं अः त्रीन् मूलमुच्चार्य ॐ ऐं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ऐं ओं ब्लीं सं सं सं रुद्रसूच्यग्रेण ब्रह्मग्रन्थीनुत्कीलय 'ॐ' अं 'ह्लीं' आं इं 'ब' ईं 'ग' उं 'ला' ऊं 'मु' ऋं 'खि' ॠं 'स' ऌं 'र्व' ॡं 'दु' ए 'ष्टा' ऐं 'नां' ओं 'वा' औं 'चं' अं 'मु' अः 'खं' अः 'प' अं 'दं' औं 'स्त' ओं 'म्भ' ऐं 'य' एं 'जि' ॡं 'ह्वां' ऌं 'की' ॠं 'ल' ऋं 'य' ऊं 'बु' उं 'द्धिं' ईं 'वि' इं 'ना' आं 'श' अं 'य' ह्लीं ॐ क्षं ॐ स्वाहा।

'ॐ ऐं क्लीं क्लीं ह्लीं क्लीं ऐं ओं ब्लीं सं सं सं रुद्रसूच्यग्रेण ब्रह्मग्रन्थिम् उत्कीलय उत्कीलय, ॐ ब्लूं ह्लौं ह्लं ह्लीं ह्लां ॐ इति कीलकाय नमो, नाभौ हस्तं दत्वा उच्चरेत्। ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रसौं ॐ बगलामुखीमहामन्त्रे उत्कीलनार्थे जपे विनियोगाय नमः, इति सर्वाङ्गे व्यापकं कृत्वा शिरसि प्रणमेत्'।

अथ करादिन्यासः—ॐ इं लं हंसः ह्लां सोऽहं लं ईं ॐ उत्कीलिन्यै नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इं लं हंसः ह्लीं सोऽहं लं ईं ॐ महोत्कीलिन्यै नमः तर्जनीभ्यां नमः, ॐ इं लं हंसः ह्लं सोऽहं लं ईं ॐ उत्कीलिन्यै नमः मध्यमाभ्यां नमः, ॐ इं लं हंसः ह्लैं सोऽहं लं ईं ॐ ब्रह्मग्रन्थिउत्कीलिन्यै नमः अनामिकाभ्यां नमः, ॐ इं लं हंसः ह्लौं सोऽहं लं ईं ॐ योगिन्यै उत्कीलिन्यै नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ इं लं हंसः सोऽहं लं ईं ॐ सर्वोत्कीलिन्यै नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः।

ध्यान—

'रुद्रसूचीमुखीं ध्याये सर्वाभरणभूषिताम्।
वरदाऽभयसूच्यग्रनखदंष्ट्राभयानकाम् ॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां वरदाऽभयकुण्डिकाम्।
शूलाग्रान् खरतीक्ष्णाग्रान् कुर्वतीं ग्रथिताक्षरान्॥
वर्णमालाविभूषाङ्गीं सर्ववर्णात्मिकां शिवाम्।
प्रोद्यश्वतां मनून् सर्वान् नानावर्णविजृम्भितान्॥
विविच्य वरदे मन्त्रान् मालायां कुसुमानिव।
प्रवेशय मनुं देहि प्रकटीकुरु सर्वदा॥
अभयं टङ्कवरदं पाशं पुस्तकमङ्कुशम्।
शूलं सूच्यग्रमादाय देहि मे, प्रणमामि त्वाम्॥
इति ध्यात्वा जगद्धात्रीं जगदानन्दरूपिणीम्।
ग्रन्थित्रय[१]विशेषज्ञं शिवं ध्यात्वा जपेन्मनुम्'॥

श्रीबगलाकीलक-स्तोत्र

ह्लीं ह्लीं ह्लींकार-बाणे! रिपुदल-दलने घोरगम्भीरनादे
ह्रीं ह्रीं ह्रींकाररूपे! मुनिगणनमिते सिद्धिदे शुभ्रदेहे।
भ्रों भ्रों भ्रोंकारनादे! निखिलरिपुघटात्रोटने लग्नचित्ते
मातर्मातर्नमस्ते सकलभयहरे! नौमि पीताम्बरे! त्वाम्॥१॥

१. ग्रन्थित्रय—(क) ब्रह्मग्रन्थि, (ख) विष्णुग्रन्थि एवं (ग) रुद्रग्रन्थि क्या हैं? इनका स्वरूप-विश्लेषण अन्त में किया जायेगा।

क्रौं क्रौं क्रौमीशरूपे ! अरिकुलहनने देहकीले कपाले !
हस्रौं हस्रौंस्वरूपे समरसनिरते दिव्यरूपे स्वरूपे !
ज्रौं ज्रौं ज्रौं जातरूपे जहि जहि दुरितं जम्भरूपे प्रभावे !
कालि कङ्कालरूपे अरिजनदलने देहि सिद्धिं परां मे ।।२।।

हस्रां हस्रीं च हस्रैं त्रिभुवनविदिते चण्ड-मार्तण्ड-चण्डे !
ऐं क्लीं सौं कौलविधे सततशमपरे नौमि पीतास्वरूपे !
द्रौं द्रौं द्रौं दुष्टचित्ताऽऽलनपरिणते बाहुयुग्मत्वदीये !
ब्रह्मास्त्रे ब्रह्मरूपे रिपुदलहनने ख्यातदिव्यप्रभावे ! ।।३।।

ठं ठं ठङ्कारवेशे ज्वलनप्रतिकृति ज्वालमालास्वरूपे !
धां धां धां धारयन्तीं रिपुकुलरसनां मुद्गरं वज्रपाशम् ।
डां डां डां डाकिन्याद्यैर्डिमकडिमडिमं डमरुं वादयन्तीम्
मातर्मातर्नमस्ते प्रबलखलजनं पीडयन्तीं भजामि ।।४।।

वाणीसिद्धिकरे सभा-विशदमध्ये वेदशास्त्रार्थदे !
मातः श्रीबगले परात्परतरे ! वादे-विवादे जयम् ।
देहि त्वं शरणागतोऽस्मि विमले देवि प्रचण्डोद्धृते !
माङ्गल्यं वसुधासु देहि सततं सर्वस्वरूपे शिवे ! ।।५।।

निखिलमुनिनिषेव्यं स्तम्भनं सर्वशत्रोः
शमपरमिह नित्यं ज्ञानिनां हार्दरूपम् ।
अहरहर्निशायां यः पठेद् देवि ! कीलं
स भवति परमेशि ! वादिनामग्रगण्यः ।।६।।

प्रयोजन-भेद से मन्त्र-फल में परिवर्तन

एक ही मन्त्र मान्त्रिक को कामना, इष्ट-भेद, अभीष्ट-वैभिन्न्य के कारण अपना पृथक् फल देने लगता है। भगवती बगलामुखी के मन्त्र को लें—

मन्त्र का स्वरूप—

बगला-गायत्री—'ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे स्तम्भनबाणाय धीमहि, तन्नो बगला प्रचोदयात्' ।

(बीजाक्षर के परिवर्तन से फलों में भी परिवर्तन हो जाता है।)

मन्त्र के आदि में 'ॐ' (बीजाक्षर लगाकर जप) → (लगाने से) मोक्ष-प्राप्ति की दिशा में सफलता प्राप्त होती है।

मन्त्र के आदि में 'ऐं' (बीजाक्षर लगाकर जप) → (लगाने से) शान्ति प्राप्त होती है। अभीष्ट विद्या की प्राप्ति होती है।

मन्त्र के आदि में 'क्लीं' → (लगाने से) सम्मोहन-क्रिया में साफल्य प्राप्त होता है।
(बीजाक्षर लगाकर जप)

मन्त्र के आदि में 'लं' → (लगाने से) भूमि की प्राप्ति होती है।
(बीजाक्षर लगाकर जप)

मन्त्र के आदि में 'श्रीं' → (लगाने से) लक्ष्मी प्राप्त होती है। विशेष धन मिलता
(बीजाक्षर लगाकर जप) है, भूत-प्रेत भी भाग जाते हैं।

मन्त्र के आदि में 'ॐ ह्रौं'→ (लगाने से) महाज्वर शान्त हो जाता है।
(बीजाक्षर लगाकर जप)

मन्त्र के आदि में 'रं' → (लगाने से) शत्रु का उच्चाटन होता है।
(बीजाक्षर लगाकर जप)

ह्रीं : एकाक्षर बीजमन्त्र

'वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्'॥

'वियत्' = आकाश = 'ह'। 'ईकार' = 'ई'। 'वीतिहोत्र' = अग्नि = 'र'। 'अर्धचन्द्र' = ँ। ह + ई + र + अर्धचन्द्र = 'ह्रीं'। 'ह्रीं' सर्वार्थसाधक मन्त्र है।

(श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्)

देवीप्रणव 'ह्रीं' का स्वरूप—

योगिनीहृदय में कहा गया है कि 'ह्रीं' नामक बीजाक्षर में (१) हकार और ईकार के मध्य 'र', (२) मायाक्षर (ई) और अर्धचन्द्र के मध्य 'बिन्दु', (३) अर्धचन्द्र एवं नाद के मध्य 'रोधिनी', (४) नाद और शक्ति के मध्य 'नादान्त', (५) शक्ति और समना के मध्य 'व्यापिका' और (६) समना के ऊपर उन्मनी क़ी शून्य रूप में कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार 'ह्रीं' बीजाक्षर में ६ शून्यों की भावना करनी चाहिए।

मन्त्रतत्त्व

मन् धातु से ड-प्रत्ययान्त त्रैधातु से 'मन्त्र' शब्द निष्पन्न होता है।

बगलामुखी मन्त्र का बीजाक्षर तो 'ह्लीं' या 'ह्ल्रीं' है किन्तु मन्त्र का आद्यक्षर है— 'ॐ'। यह ॐ क्या है ?

(क) **बगलामुखी मन्त्र का व्याहृति तत्त्व : ॐ**—'मननात् त्रायते यस्मात् तस्मात् मन्त्र उदाहृत:' = जिसके मनन के द्वारा (चिन्तन या ध्यान द्वारा) साधक संसार-सागर से उत्तीर्ण होकर, सुख-दु:ख से मुक्त होकर परमानन्द की प्राप्ति करता है उसी का नाम मन्त्र है।

(ख) **प्रत्येक मन्त्र में निहित तत्त्वत्रय—**

प्रणव या व्याहृति	बीज	देवता
(परम तत्त्व के निकट जाना) 'ॐ'	(परम तत्त्व की उपलब्धि या उसका साक्षात्कार)	(लौटते समय समस्त तत्त्वों को तद्भाव से परिभावित करना)

ये मन्त्र के तीनों अङ्ग एकाक्षर मन्त्र में भी पाये जाते हैं।

(ग) **प्रणव या व्याहृति**—प्रत्येक मन्त्र के आदि में ॐ लगा रहता है। यह ॐ ही मन्त्र का अङ्ग होने पर व्याहृति कहलाता है। यही शब्दब्रह्म है—परावाक् है—परमात्मा का शब्दस्वरूप सगुण रूप है। यह सूक्ष्मरूप में अर्धमात्रात्मक है—'अर्द्धेन एकांशेन मीयन्ते परिच्छिद्यन्ते अनया इति अर्द्धमात्रा'। जिसके अर्द्ध में (एकांश में) समस्त जीव-जगत् एवं जड़-चेतनात्मक समस्त विश्व अन्तर्निगूढ़ है वही अर्द्धमात्रा है। यह अर्धमात्रा 'शान्तं शिवं अद्वैतम्' है। प्रणव के 'अकार', 'उकार' एवं 'मकार' द्वारा हम स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तत्त्व का भेदन करके गुणातीत, अखण्ड एवं अद्वय तत्पदार्थ के निकट पहुँचते हैं।

(घ) अर्द्धचन्द्र की अनेक कलाएँ हैं—

ॐकार के अङ्गभूत अर्धचन्द्र की कलाएँ

ज्योत्स्ना	ज्योत्स्नावती	सुप्रभा	विमला	शिवा

'अर्द्धमात्रात्मको नादः श्रूयते लिङ्गमूर्द्धनि'। (वायवीयसंहिता)

(ङ) प्रणव या ॐकार प्राणियों का प्राण एवं जीवन है—

नेत्रतन्त्र की दृष्टि—

'प्रणवः प्राणिनां प्राणो जीवनं सम्प्रतिष्ठितम्।
गृह्णाति प्रणवः सर्वं कलाभिः कलयेच्छिवम्'॥ (नेत्रतन्त्र-अधि. १२)

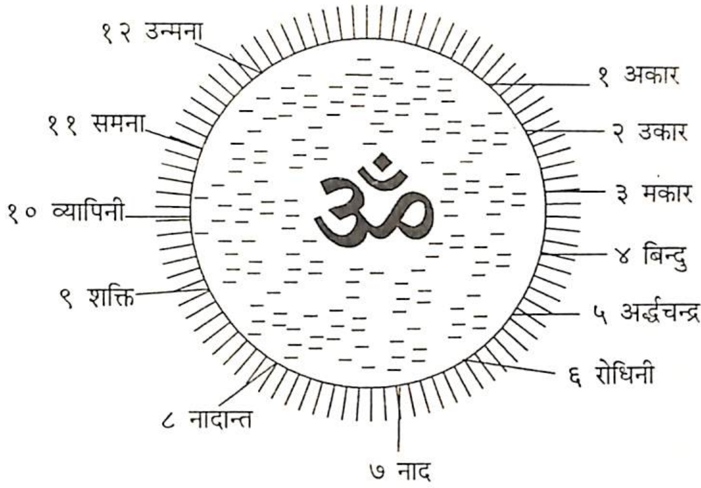
स्वच्छन्दतन्त्र की दृष्टि—ॐकार के १२ अङ्ग हैं—

ॐकार ही यह समस्त विश्व है, वह सब कुछ है—'ओम् इत्येतदक्षरमिदं सर्वम्'।

'अर्द्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः'। (दुर्गा.स.)

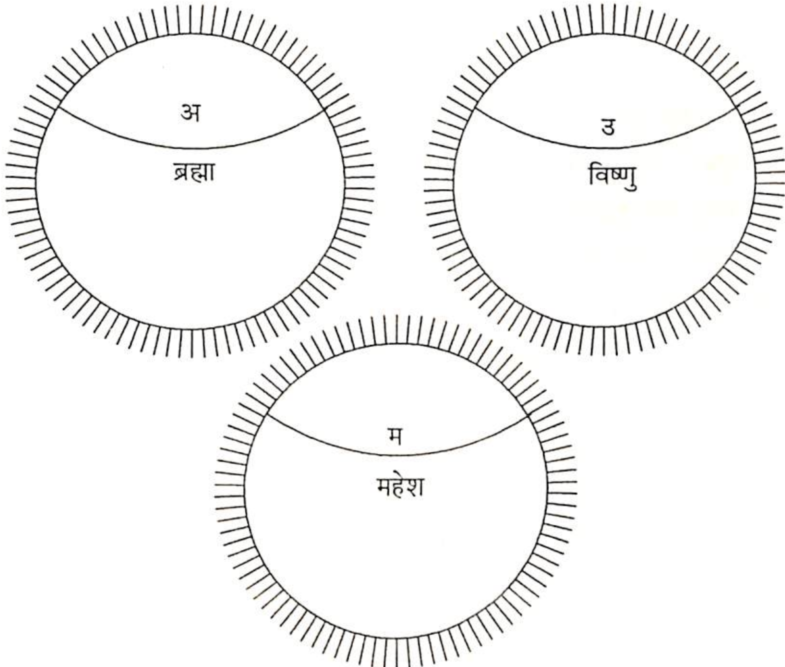
'अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुरेव च।
अर्द्धचन्द्रो निरोधी च नादो नादान्त एव च॥
कौण्डली व्यापिनी शक्तिः समनैकादशी स्मृता। उन्मना च.....'।

(स्वच्छन्दतन्त्र)



ॐकार के अकार-उकार-मकार तत्त्व

ॐ व्याहृति = उद्‌गीथ, प्रणव

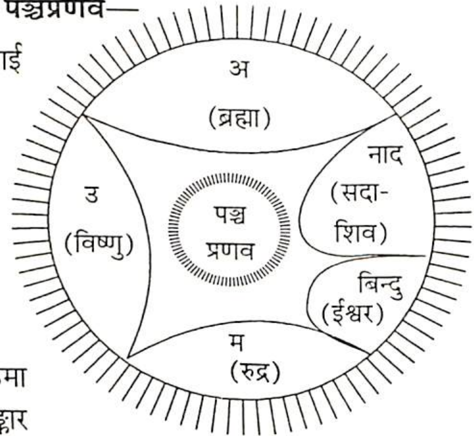


'अकारश्च उकारश्च मकारश्च तृतीयकः ।
वर्णत्रयमिदं प्रोक्तं ब्रह्माद्याः देवतास्त्रयः' ॥ (स्वच्छन्दतन्त्र, पटल ६)

(१) **स्वच्छन्दतन्त्र की दृष्टि**—स्वच्छन्दतन्त्र में १. अकार, २. उकार, ३. मकार, ४. बिन्दु और ५. नाद—इन ५ कलाओं को 'पञ्चप्रणव' कहा गया है और इनके देवता क्रमशः—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव कहे गये हैं। इन कलाओं को ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म भी कहा गया है।

(२) **स्वच्छन्दतन्त्र की दृष्टि और पञ्चप्रणव**—

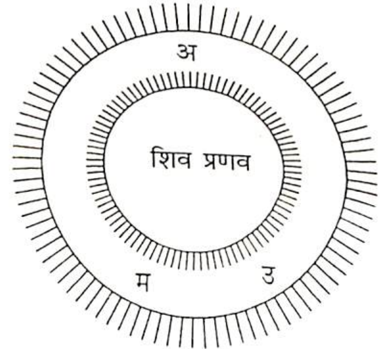
पञ्चकलाएँ ही पञ्च प्रणव कही गई हैं—



१. ब्रह्मा = ह्रस्व।
२. विष्णु = दीर्घ।
३. रुद्र = प्लुत।
४. ईश्वर = सूक्ष्म।
५. सदाशिव = अतिसूक्ष्म।

(३) **लिङ्गपुराण की दृष्टि**—उमा स्वयमेव ॐ हैं। भगवती उमा और ओङ्कार तत्त्व अभिन्न हैं।

(४) **देशिकेन्द्र दुर्वासा की दृष्टि**—

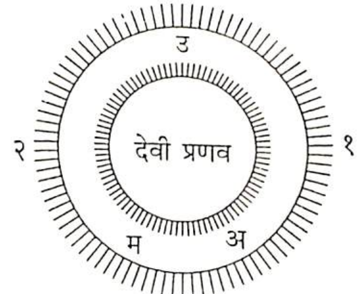


(५) **शक्तिस्तोत्र की टीका**—

'उमेति परमा शक्तिः पूर्वभावमुपेयुषी। १
अध्युष्टवलयाकारा प्रणवत्वमपागता।
अकाररूपिण्यजरा शिवानन्ता मदद्रवा'॥

पञ्च प्रणव—

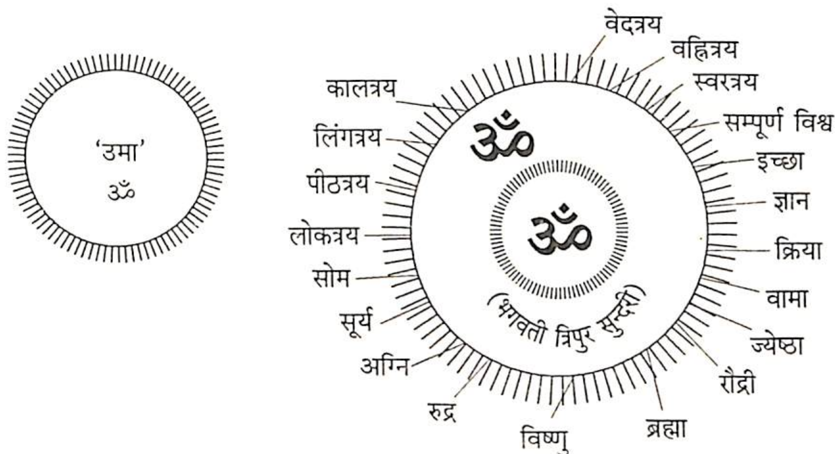
'अकारश्च उकारश्च मकारश्च तृतीयकः।
वर्णत्रयमिदं प्रोक्तं ब्रह्माद्याः देवतास्त्रयः॥
बिन्दुनादसमायोगादीश्वरश्च सदाशिवः।
एते वै प्रणवाः पञ्च हंसः प्राणयुतः सदा॥
ह्रस्वं दीर्घं प्लुतं सूक्ष्ममतिसूक्ष्मं परं शिवम्।
प्रणवं पञ्चधा ज्ञात्वा भित्वा मोक्षो न संशयः'॥
(स्वच्छन्दतन्त्र, पटल ६)



(६) **पुष्पदन्ताचार्य की दृष्टि**—

'त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः ।

तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभि:
समस्तं व्यस्तं त्वं शरणद गृणात्योमिति पदम्' ॥
(शिवमहिम्नस्तोत्र)



(७) **दुर्वासा की दृष्टि**—'आद्यैरग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैरम्बत्रिलिङ्गकात्मभि:' । आदि । (शक्तिमहिम्नस्तोत्र)

जिस समय साधक ॐ का उच्चारण करता है उस समय उससे जो अणुतर ध्वनियाँ विनिर्गत होती हैं उन्हीं की संज्ञा है—बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी आदि है।

(८) **आचार्य भास्करराय की दृष्टि**—अर्द्धचन्द्रादिक नादनवक ९ कलाएँ हैं और ये सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम कालावयवों से उच्चारित होती हैं। पाणिनीय शिक्षा, योगिनीहृदय, वरिवस्यारहस्यम्, सौभाग्यभास्कर आदि में इन्हें भी वर्ण एवं अक्षर स्वीकार किया गया है। बिन्दु से रहित ८ कलाएँ नाद हैं—'बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते'।

बिन्दु की मात्रा १/२ है। आगे लगातार काल की मात्रा कम होती जाती है। यद्यपि ॐ सारे शरीर में व्याप्त है तथापि वह हृदयदेश में विशेष रूप से ध्वनित होता है—

'ओमिति स्फुरदुरस्यनाहतं गर्भगुम्फितसमस्तवाङ्मयम्।
दन्ध्वनीति हृदि यत्परं पदं तत्सदक्षरमुपास्महे मह:'[१] ॥

उन्मनी का स्वरूप—

अन्तिम नाद है 'उन्मना'। उन्मना क्या है ?

१. शिवोपाध्याय : विज्ञानभैरवविवृति।

परविमर्शमयी, अहन्तात्मिका, अहन्तैकरस पारमेश्वरी स्वातन्त्र्य शक्ति ही 'उन्मना' है और यही 'समना' के रूप में स्फुरित होती है—

'वस्तुतो ह्युन्मनाख्यैव परविमर्शमयी पारमेश्वरी स्वातन्त्र्यशक्तिरहन्तैकरसा स्वरूपगोपनक्रीडा सदाशिवानाश्रितपदात्मकसर्वभावाभाससूत्रणभित्तिकल्पसमनारूपतया स्फुरति'[१]।

'उन्मनी' शिवरूपिणी है और परमा सूक्ष्मा शक्ति है—

नेत्रतन्त्र की दृष्टि—

'सा शक्तिः परमा सूक्ष्मा उन्मना शिवरूपिणी।
अस्तित्वमात्रमात्मानं क्षोभ्यं क्षोभयते यदा॥
समनासौ विनिर्दिष्टा शक्तिः सर्वाध्ववर्तिनी।
क्रोडीकरोति या विश्वं संहृत्य सृजते पुनः॥
कुण्डलाख्या महाशक्तिस्तृतीयाप्युपचर्यते।
ध्वनिरूपां यदा स्फोटस्त्वदृष्टाच्छिवविग्रहात्॥
प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिनाऽपूरयज्जगत्।
स नादो देवदेवेशः प्रोक्तश्चैव सदाशिवः'॥

(नेत्रतन्त्र, अधिकार २१)

'उन्मना' स्वरूपगोपनार्थ, व्योमरूप एवं मननमन्तव्यमात्रात्मक रूप में 'समना' बन जाती है। समना से शून्य व्यापिनी शक्ति का एवं व्यापिनी से प्रसुप्त भुजगाकारा कुण्डलों वाली महाशक्ति का जन्म होता है। फिर परनादात्मा, प्रकाशानन्द शिव से स्फोटात्मा 'शब्दब्रह्म' अनुरणन के द्वारा समस्त जगत् को भरता हुआ अत्यन्त वेग से फैलता है। इसी नाद को देवदेवेश 'सदाशिव' कहा जाता है। परनादात्मक शिव परमेश्वरी परावाक् रूप उन्मना से अभिन्न हैं। इसमें घण्टा के समान होने वाला अनुरणन ही नादान्त है। नादान्त के बाद 'निरोधिनी' है जहाँ अनाहतनादस्वरूप नादात्मा सदाशिव विश्राम ग्रहण करते हैं। इसके नीचे अर्द्धचन्द्र है और अर्द्धचन्द्र के नीचे (पूर्णचन्द्राकार) ज्ञानशक्तिप्रधान, क्रियाशक्त्यात्मा, ईश्वरस्वरूप 'बिन्दु' स्थित है। इसका प्रकाश करोड़ों सूर्यों के समान है। यही स्रष्टा एवं संहारक है। इसके बाद आता है 'मकार' (पञ्चकञ्चुक एवं बिन्दु-वर्णों का विश्रामस्थल) है आदि।

देवी का बीजाक्षार 'ह्लीं' 'ह्रूं' एवं 'ह्रीं'

श्रीदेव्यथर्वशीर्ष के अनुसार 'ह्रीं' का स्वरूप—'ह्रीं' शाक्तों का प्रणव (देवी-

१. स्वच्छन्दोद्योत : (पटल ११) क्षेमराज।

प्रणव) है। इसके चार अङ्ग हैं—(१) 'ह' (आकाशतत्त्व), (२) 'र' (अग्नितत्त्व), (३) 'ई', (४) अर्धचन्द्र (ँ)। कहा गया है—

आकाशतत्त्व ('ह') तथा 'ई' से युक्त, वीतिहोत्र (अग्नि अर्थात् 'र') के सहित अर्धचन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवी का बीज है वह समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला है।

इस प्रकार इस एकाक्षर ब्रह्म (ह्रीं) का ऐसे यति ध्यान करते हैं जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्दपूर्ण और ज्ञान के सागर हैं।

यह मन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। ॐकार के समान ही यह प्रणव भी व्यापक अर्थों से परिपूर्ण है। इसका अर्थ है—इच्छा, ज्ञान, क्रिया का आधार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द, समरसीभूत शिव-शक्तिस्फुरण। शास्त्र में इसका स्वरूप निम्न शब्दों में व्याख्यात है—

'वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः'॥

(श्रीदेव्यथर्वशीर्ष)

नवार्ण-मन्त्र के स्वरूप विवेचन में श्रीदेव्यथर्वशीर्ष में ही 'ह्रीं' को माया कहा गया है—'वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्'।

भगवती का मन्त्र देवी से अभिन्न है, क्योंकि देवी प्रत्येक मन्त्र में मूलाक्षर रूप से—मातृका के रूप में अनुस्यूत हैं—'मन्त्राणां मातृका देवी'।

प्रत्येक मन्त्र के दो पक्ष हैं—(१) शब्द, (२) अर्थ (ज्ञान)। भगवती वर्ण (मातृका) तो हैं ही साथ ही वे प्रत्येक वर्ण में अनुस्यूत ज्ञान (अर्थ) भी है—'शब्दानां ज्ञानरूपिणी'। वे ज्ञानों में 'चिन्मयातीता' या (पाठभेदानुसार) 'चिन्मयानन्दा' भी हैं—'ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी'। (श्रीदेव्यथर्वशीर्ष)

मन्त्र, नाद और लय—

१. इन्द्रियों का स्वामी 'मन' है।
२. मनस्तत्त्व का स्वामी 'मारुत' है।
३. मारुत का स्वामी 'लय' है।
४. लय का स्वामी 'नाद' है।

'इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः स लयो नादमाश्रितः'॥

(हठयोगप्रदीपिका)

लय का यथार्थ स्वरूप

लय का स्वरूप क्या है ?

१. 'प्रनष्टश्वासनि:श्वास:'	=	श्वास-प्रश्वास का राहित्य ।
२. 'प्रध्वस्तविषयग्रह:'	=	विषयों को ग्रहण न करना ।
३. 'निश्चेष्टो निर्विकारश्च लयो जयति योगिनाम्'	=	समस्त चेष्टाओं से राहित्य । सारे विकारों से राहित्य और
४. 'उच्छिन्नसर्वसङ्कल्पो'	=	समस्त सङ्कल्पों का उन्मूलन ।
५. 'नि:शेषाशेषचेष्टित:'	=	समस्त चेष्टाओं का त्याग ।
६. 'स्वावगम्यो लय: कोऽपि	=	स्वावगम्य ।
७. कोऽपि जायते वागगोचर:' ।	=	विलक्षण

'उच्छिन्नसर्वसङ्कल्पो नि:शेषाशेषचेष्टित: ।
स्वावगम्यो लय: कोऽपि जायते वागगोचर:' ॥

८. 'अपुनर्वासनोत्थानाल्लयो'	=	वासना का पुन: न उठना ।
९. 'विषयविस्मृति:'	=	विषयों का विस्मरण ।

'लयो लय इति प्राहु: कीदृशं लयलक्षणम् ।
अपुनर्वासनोत्थानाल्लयो विषयविस्मृति:' ॥

१०. 'यत्र दृष्टिर्लयस्तत्र'	=	जहाँ भी दृष्टि होती है वहीं लय भी होता है ।

११. 'भूतेन्द्रियसनातनी । सा शक्तिर्जीवभूतानां द्वे अलक्ष्ये लयं गते' । अर्थात् पञ्चभूत, ११ इन्द्रियाँ एवं जीवों की शक्ति (विद्या) अलक्ष्य ब्रह्म में लयीभूत हो जाते हैं ।

१२. 'मन: प्राणलये कश्चिदानन्द: सम्प्रवर्तते' = मन एवं प्राण के लय से विलक्षण आनन्द की प्राप्ति होती है ।

१३. 'मनो यत्र विलीयेत पवनस्तत्र लीयते' = जहाँ मन का लय होता है वहीं वायु का भी लय हो जाता है ।

१४. 'पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते' = जहाँ पवन का लय होता है वहीं मन का भी लय हो जाता है ।

१५. 'तत्रैकनाशादपरस्य नाश:, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्ति: ।
अध्वस्तयोश्चेन्द्रियवर्गवृत्ति:, प्रध्वस्तयोर्मोक्षपदस्य सिद्धि:' ॥
अर्थात् एक के नाश से दूसरे का नाश एवं एक की प्रवृत्ति से दूसरे की प्रवृत्ति हुआ करती है । दोनों के नाश से मोक्ष सिद्ध होता है ।

१६. 'दुग्धाम्बुवत्सम्मिलितावुभौ तौ, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि।
यतो मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिर्यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः' ॥
= मन एवं वायु दोनों दुग्धाम्बुवत् परस्पर मिश्रित है। जहाँ वायु कार्यरत है वहाँ मन तथा जहाँ मन कार्यरत है वहाँ वायु कार्यरत है।

१७. 'भवेच्चित्तलयानन्दः शून्ये चित्सुखरूपिणी'।
= चिदानन्दस्वरूप आत्मा में चित्त के लय का आनन्द प्राप्त होता है।

१८. 'भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते' = भ्रूद्वय के शिवस्थान में मन का लय हो जाता है। यही तुर्यपद है और यह कालातीत है।

१९. 'नादे प्रवर्तितं चित्तं नादेन सह लीयते' =
नाद-प्रवर्तित चित्त नाद में ही लयीभूत हो जाता है।

२०. 'मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्' =
मन का लयस्थान विष्णु का परमपद है।

२१. 'सदा नादानुसन्धानात् क्षीयन्ते पापञ्चयाः' =
सतत नाद के अनुसन्धान से पाप का नाश होता है।

२२. 'निरञ्जने विलीयेते निश्चितं चित्तमारुतौ' =
मन-प्राण दोनों निरञ्जन में विलीन हो जाते हैं।

मन्त्रविज्ञान और बगलामुखी मन्त्र

नादनवक

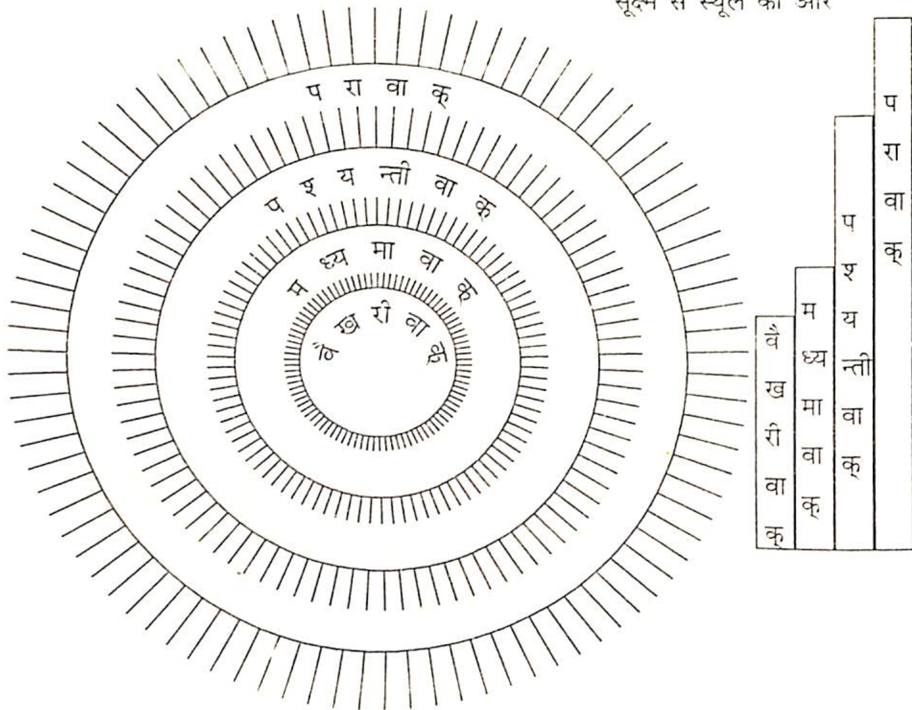
चिणि	चिणिचिणी	घण्टा-नाद	शङ्ख-नाद	तन्त्री-नाद	ताल-नाद	वेणु-नाद	भेरी नाद	मृदङ्ग-नाद

ये नाद सामान्य कानों से ग्राह्य नहीं हैं। इन्हें केवल योगी ही सुन सकते हैं।

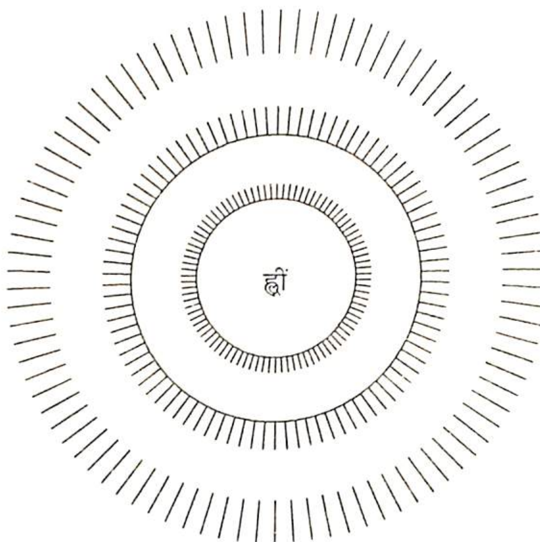
स्वच्छन्दतन्त्र में नादों को इस प्रकार उल्लिखित किया गया है—

१. घोष—दीप्त वह्निजन्य शब्द-ध्वनि के समान शब्दा।
२. राव—कांसे के टूटने के सदृश ध्वनि।
३. स्वन—बाँस की ध्वनि के समान।
४. शब्द—आकाश में भ्रमरीरव के सदृश ध्वनि।
५. स्फोट—वाक्य को स्फुट रूप से अवगत कराने वाला और वर्णभेद का अवभासक नाद।
६. ध्वनि—सुखद एवं अतितानधर्मी नाद।
७. झङ्कार—वीणा के सम्पूर्ण तारों के आहत होने पर उत्पन्न मृदु निनाद।

८. ध्वंकृति—घण्टानाद का अनुकरण करने वाला या मेघों की ध्वनि के समान ध्वनि।



बगलामन्त्र और उसका स्वरूप—'ह्लीं' या 'ह्रीं' बगलामुखी मन्त्र का बीजाक्षर है।



'प्रणवो गगनपृथिवीशान्तिबिन्दुर्युतं बगला' । (मन्त्रमहोदधि) ह = आकाशतत्त्व ।

'ल' = पृथिवी ।

'ई' = शान्ति ।

'बिन्दु' = अनुस्वार ।

'र' = अग्नितत्त्व ।

मन्त्र वर्णसमष्टि नहीं है। मन्त्र अपने मूल स्वरूप में शक्ति है। क्योंक मन्त्र नादात्मा है और नाद शक्ति है—

'यत्किञ्चिन्नादरूपेण श्रूयते शक्तिरेव सा' । (हठ. ४/१०३)

('नादरूपेणानाहतध्वनिरूपेण यत्किश्चित् श्रूयते आकर्ण्यते सा शक्तिरेव')

भगवती बगलामुखी के स्वरूप का रहस्यार्थ

'ह्लीं' बीज मुख्यत: रक्षाकारक है—

'हकारेकारपृथिवीनादबिन्दुसमन्वितम् ।
बीजं रक्षामयं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः' ॥

१. हकार, २. इकार, ३. पृथिवी = लकार, ४. नाद और ५. बिन्दु—इन पाँच तत्त्वों से सुनिर्मित 'ह्लीं' बीज को ब्रह्मवादी मुनियों ने रक्षाकारक कहा है।

भगवती बगलामुखी के स्वरूप का प्रतीकार्थ 'ह्लीं'—

(१) 'ह' = आकाशतत्त्व (सर्वव्यापकत्व)—सर्वानुस्यूतत्व, अनन्तत्व, निराकारत्व, निर्मलत्व, अलिप्तत्व, शब्दाश्रयत्व। १. सूक्ष्मतमत्व, २. 'परमेव्योमन्' एवं 'चिदाकाश' का प्रतिनिधि। ३. सृष्टि का प्रथम तत्त्व। ४. समस्त तत्त्वों को जन्म देने वाला। ५. सर्वतत्त्वानुस्यूतत्व। ६. पञ्चाकाशस्वरूप। ७. शब्दोत्पादक। ८. सृष्टि के समस्त तत्त्वों, पदार्थों, विचारों, तरङ्गों, रश्मियों, कम्पनों, आकारों एवं वर्णों के सूक्ष्म स्वरूप को धारण करने वाला। ९. शून्यत्व, रिक्तत्व। १०. सर्वाधिक सूक्ष्म। ११. अपनी विराटता एवं व्यापकता में अनन्तत्व का बोधक है। १२. 'खं ब्रह्म' कहकर वेदों में आकाश को ब्रह्म कहा गया है, अत: 'ह' (आकाशतत्त्व) भगवती के ब्रह्मत्व का बोधक है। १३. आकाशचक्र (सहस्रार में रहने वाली 'ह') ('ल' = पृथ्वी तत्त्व के मूलाधार में भी रहने वाली) ('र' = अग्नितत्त्व के मणिपूरक चक्र में भी रहने वाली)।

(२) 'ल' = पृथ्वीतत्त्व—स्थिरता, निश्चलता, सर्वाश्रयत्व, सर्वाधारत्व, स्थूलत्व। पृथ्वीतत्त्व के रङ्ग पीत वर्ण का प्रतिनिधि (भगवती स्वयं पीतवर्णा हैं) हरिद्रा स्वयं पीली होती है और उसी की माला से उनका जप होता है। पीला पुष्प, पीला आसन, पीला रङ्ग, पीला द्रव्य, पीला नैवेद्य, पीला आभूषण—सभी पीली वस्तुएँ भगवती को प्रिय हैं। पीला रङ्ग पवित्रता का सूचक एवं शुभत्व का प्रतीक है। पृथ्वी सर्वाधिक स्थूल है,

इसीलिए बगला देवी के बीज को स्थिरमाया, स्तब्धमाया आदि कहा जाता है, क्योंकि पृथ्वी सर्वाधिक स्थिर एवं निश्चल है। स्वयं भगवती ही स्तम्भनशक्ति का चरमस्वरूप है। आकाश के सारे पिण्डों (सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, शनि, मंगल, तारे, मन्दाकिनियाँ आदि सभी) को अपनी धूरी पर स्तब्ध रखने वाली एवं उन्हें गिरने से रोकने का कार्य अपनी स्तम्भन शक्ति से करने वाली और गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रतीक भी देवी हैं।

(३) 'ई'।

(४) 'र' = अग्नितत्त्व। अग्नि समस्त देवताओं का मुख है, समस्त हवन-सामग्री को देवों तक पहुँचाने वाला है। ज्वलन शक्ति का चरम रूप है। समस्त मनोविकारों के कूड़ा जलाने का प्रतीक है।

(५) भगवती स्वयं जल से उत्पन्न होने के कारण जलतत्त्वस्वरूपा है। स्वरूपत: जल की भाँति शीतल या दयार्द्र रसरूप है।

(६) भगवती वायु का स्तम्भन करने के लिए ही तो अवतरित हुईं अत: वायुतत्त्व को भी स्तम्भित करने की शक्ति के रूप में परम स्तम्भन शक्ति स्वरूप है। विघ्नों की विनाशिका, शरीर के १० वायु, ५१ वायु-प्रकार एवं विश्व के वायुतत्त्व सभी पर अधिकार का सूचक।

(७) नाद = शिव एवं शक्ति के सम्बन्ध का सूचक है। यही मन्त्रों का प्राण है। नाद मूलत: शब्दब्रह्म है अत: भगवती शब्दब्रह्मरूपा हैं।

(८) बिन्दु शिव का सूचक है। महाबिन्दु शिव-शक्ति के सामरस्य का सूचक है। बिन्दु आकारों एवं विश्व का मूल है।

(९) विष्णु के तप से उत्पन्न होने के कारण वैष्णव तेज का स्वरूप है।

(१०) स्वर्णकुण्डल भोग एवं मोक्ष का परिचायक है।

(११) रत्नगुम्फित माला ऐश्वर्यों का सूचक है।

(१२) मुकुट परम पद का सूचक है।

(१३) चन्द्रमा १६ कलाओं का द्योतक है।

(१४) नेत्रत्रय चन्द्र, सूर्य, अग्नि/जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति के द्योतक हैं।

(१५) पाश = ८ पाश–घृणा, लज्जा, भय आदि मनोविकारों पर विजय। बन्धन पर विजय।

(१६) पीतवस्त्र = छन्द भी आच्छादक है और वस्त्र भी अत: पीत वस्त्र छन्द है।

(१७) जिह्वाग्रहण = वाक्संयम। जिह्वा की लोलुपता पर संयम।

(१८) गदा = 'गद व्यक्तायां वाचि' वचन, बोलना। परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी वाक् को धारण करने वाली। ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं ज्ञान का मूर्तिमान् स्वरूप।

(१९) दण्ड = अपराधों के लिए दण्ड।

(२०) वज्र = सर्वोच्च विनाशक शक्ति की धारिका।

(२१) चम्पापुष्प की माला (कण्ठ में स्थित) माधुर्य, सुगन्ध, ब्रह्मचर्य से उत्पन्न शरीर की तीव्र सुगन्ध।

(२२) हस्तचतुष्टय = पुरुषार्थचतुष्टय, वेदचतुष्टय की प्रदायिका। वाक्चतुष्टय।

भगवती बगला प्राण एवं वायु तत्त्व की शासिका हैं—'यं' वायु-बीज है। अनाहत चक्र में वायु तत्त्व स्थित है। वायुतत्त्व ही वर्णों का रूप धारण करता है। वायुतत्त्व ही सुषुम्णा में पहुँचकर सारे चक्रों का वेधन कराता है। वायुतत्त्व ही सुषुम्णा में पहुँचकर मन्त्र के वर्णों को मन्त्रत्व = चैतन्य प्रदान करता है। वायुतत्त्व ही मध्यम पथ में प्रवेश करके नादोत्थान कराता है। यही शून्यपथ (सुषुम्णा) में प्रवेश करके कुण्डलिनी को जाग्रत् करता है। यही सुषुम्णा में प्रवेश करके अनादि काल से सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति एवं जीव को जाग्रत् करता है और अनादिकाल से वियुक्त एवं विरहाकुल आत्मशक्ति (कुण्डलिनी शक्ति) को पाताल से उठाकर आकाश (शून्यचक्र) में अवस्थित परमशिव से मिलाकर पूर्णत्व, पूर्णाहन्ता, जीवन्मुक्ति, सामरस्य एवं परमपद की प्राप्ति कराता है।

वायुतत्त्व के विकृत होने पर प्राणी रोगी, मरणासन्न एवं मृत्यु का ग्रास भी बनता है। उपनिषदों की कथा के अनुसार श्रेष्ठत्व के निर्णय हेतु होने वाले विवाद में सारी इन्द्रियों, सारे तत्त्वों द्वारा शरीर छोड़ दिये जाने पर भी वायु जीवित रहा किन्तु उसके द्वारा शरीर छोड़ देने पर (सारे तत्त्वों एवं सारी इन्द्रियों के शरीर में रहने पर भी) प्राणी मरा ही रह गया। अत: वायु विश्व का प्राणतत्त्व है।

रैक्व का सिद्धान्त

वायु जीवों का जीवन है। अत: वायु सर्वोच्च तत्त्व है—'जब आग बुझ जाती है तो वायु में ही विलीन हो जाती है। जब सूर्य अस्त हो जाता है तो वह वायु में ही विलीन हो जाता है। जब चन्द्रमा अस्त हो जाता है तो वह भी वायु में विलीन हो जाता है। जब जल सूख जाता है तो वह भी वायु में विलीन हो जाता है। इस प्रकार वायु में ही सम्पूर्ण पदार्थों का विलय हो जाता है'। (छान्दोग्य. vi. ३।१-२)

ऋषि रैक्व कहते हैं कि—'वायु ही समस्त पदार्थों का चरमाश्रय है'।

यूनानी दार्शनिक अनैक्ज़ीमैण्डर (Anascimander) भी यही मानता था कि वायु सम्पूर्ण वस्तुओं का आदि और अन्त है।

भगवती बगलामुखी इस वायुतत्त्व की भी शासिका हैं। वे उसे भी अनुशासन में रखती हैं—उसकी समस्त उद्दाम क्रियाओं एवं उत्पात के भीषण ताण्डव को भी शमित करने वाली पराशक्ति हैं। वे जगदम्बिका भवानी हैं।

छान्दोग्योपनिषद् की दृष्टि एवं अग्नितत्त्व

भगवती अग्नितत्त्व की भी शासिका हैं। भगवती के बीजमन्त्र ह्ल्रीं मे 'र' अग्नि

का बीज है—'रकारो अग्निबीज: स्यात्' । भगवती अग्निस्वरूपा एवं अग्नि से अतीत दोनों हैं।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है—आदिपुरुष से प्रथमत: अग्नि का उद्भव हुआ। अग्नि से जल एवं जल से पृथ्वी का उद्भव हुआ (छान्दोग्योपनिषद् ८।४)।

यूनानी दार्शनिक हैराक्लाइटस (Heracleitus) कहता है कि अग्नि सम्पूर्ण वस्तुओं में परिणत हो जाती है और सम्पूर्ण वस्तुओं की परिणति अग्नि में हो जाती है। सम्पूर्ण पदार्थों का मूल अग्नितत्त्व है। छान्दोग्योपनिषद् की दृष्टि में 'आदिपुरुष से उत्पन्न प्रथम तत्त्व अग्नि है'।

भगवती के मन्त्र का एक अंश अग्नि भी है अत: भगवती अग्नितत्त्व होकर भी अग्नि से अतीत हैं।

प्रवाहण जैवालि की दृष्टि

छान्दोग्योपनिषद् में प्रवाहण जैवालि का मत यह है कि पदार्थों की चरम गति आकाश है। समस्त पदार्थों की उत्पत्ति आकाश से ही होती है। सारे पदार्थ एवं समस्त पदार्थमय विश्व अन्तत: आकाश में ही लीन हो जाता है। आकाश अग्नि से भी महत्तर है। आकाश को ही चरम सत्य मानकर उसी का चिन्तन करना चाहिए।

यूनानी दार्शनिकों में थेलीज़ (Thales), अनैक्ज़ीमैण्डर (Anascimander), हैराक्लाइटस (Heracleitus) तथा एम्पीडोक्लीज़ (Empedocles) ने जल, वायु, पृथ्वी एवं अग्नि को मूल तत्त्व एवं पृथक्-पृथक् तत्त्व माना।

'आकाश ही चरम तत्त्व है'—यह दृष्टि यूनानी दार्शनिक फिलालौज़ (Philolos) की है।

आकाश भगवती का सम्पूर्ण स्वरूप नहीं प्रत्युत उनके स्वरूप का एकांश है। वे आकाशस्वरूपा होकर भी आकाशातीता हैं। वे क्षित्याकारा होकर भी क्षित्यतीता हैं। वे जलस्वरूपा होकर भी जलातीता हैं। वे अग्निस्वरूपा होकर भी अग्न्यतीता हैं। वे वायुतत्त्व की भी शासिका हैं।

सनत्कुमार की दृष्टि

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि प्राण (श्वास) ने जीवन तत्त्व का स्वरूप ग्रहण किया। सनत्कुमार नारद से कहते हैं—'जिस प्रकार चक्र की समस्त तीलिकाएँ नाभि-केन्द्र में केन्द्रित हैं उसी प्रकार समस्त पदार्थ व समस्त सत्ता प्राण में केन्द्रित है'।

ऋषि कौषीतकी की दृष्टि

ऋषिप्रवर कौषीतकी कहते हैं कि 'प्राण चरम सत्य है, मन उसका दूत है, नेत्र

उसके रक्षक हैं, कर्ण उसके सूचक हैं और वाणी उसकी परिचारिका है। इस चरम सत्य को समस्त पदार्थ आहुति प्रदान करते हैं; यद्यपि प्राण कभी उनकी याचना नहीं करता'।

भगवती बगलामुखी 'प्राणस्य प्राण:' हैं। वे वायु की शासिका होने के कारण (श्वास एवं प्राण के वायु का ही रूपान्तर होने के कारण) श्वास एवं प्राण की भी शासिका हैं और उसकी उद्दण्डता को शमित करने के लिए ही अवतार ग्रहण किया है।

'ह्लीं'

ज्ञानार्णव का मत—

१. हकार = 'हकार: शिव उच्यते'।

२. लकार = 'लकार: पृथिवीबीजं तेजो भूबिम्बमुच्यते'।

३. रकार = 'दशकोणकरं तस्मात् प्रकारो ज्योतिराख्य:'।

४. अर्धमात्रा '˘' = 'अर्धमात्रा गुणान् सूते नादरूपा यत: स्मृता। त्रिकोणरूपा योनिस्तु'॥

५. अर्धमात्रा '॰' = 'बिन्दुना बैन्दवं भवेत्'।

६. ईकार = 'इकारस्तु सदा माया भुवनानि चतुर्दश।
पालयन्ती परात्साक्षाच्छक्रकोणं भवेत् प्रिये'॥

१. 'ह' = गगन एवं शिव = सहस्रार = परमशिव का स्थान।

२. 'ल' = पृथ्वी = त्रिकोण = मूलाधार = सर्वजन्मदात्री पृथ्वी।

३. 'र' = अग्नि (= अग्नि की १० जिह्वाएँ) = अन्तर्दशार। मणिपूरक चक्र।

४. 'ई' = वैष्णवी माया = बहिर्दशार = अनाहत चक्र।

५. 'अर्धचन्द्र' = अष्टदल पद्म।

६. बैन्दव स्थान = चतुष्कोण भूपुर, सहस्रार।

बिन्दु नाद की प्रथमावस्था है। 'अर्धचन्द्र' बिन्दु का प्रथम प्रसार अर्थात् कामकला है। 'ह्लीं' बीज के सारे वर्ण रहस्यात्मक हैं[1]। भगवती मणिपूरचक्र में विद्युत् (अग्नि) की रेखा के मध्य स्फुरित होती हैं। भगवती चतुर्भुज रूप में उदित होती हैं—

---

१. 'ह्रीं' इति शक्तिबीजम्। 'क्लीं' इति मन्मथबीजम्। 'लं' इति उर्वीबीजम्। 'ह्रीं' इति मायाबीजम्। 'क्लीं' इति अनङ्गबीजम्। 'हं' इति धूर्जटिबीजम्। 'हंस' इति शिव-शक्तिबीजे। 'सोऽहं' इति चन्द्रसूर्यबीजे।
देवतातत्त्व—'कामेश्वरी सदानन्दघनापूर्णा स्वात्मैक्यरूपा देवता'। (बह्वृचोपनिषद्)

बह्वृचोपनिषद् की दृष्टि—शक्ति ही परमात्मा है—'ॐ देवी ह्येकाग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते। तस्या एवं ब्रह्माऽजीजनत्। विष्णुरजीजनत्। रुद्रोऽजीजनत्। सर्वे मरुद्गणा अजीजनत्। गन्धर्वाप्सरस:किन्नरा वादित्रवादिन: समन्तादजीजनत्। भोग्यमजीजनत्। सर्वमजीजनत्। सर्वं शाक्तमजीजनत्।

'तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती
चतुर्धैक्यं तेषां भवति च चतुर्बाहुरुदिता' ॥
(सुभगोदयस्तुति : गौडपादाचार्य)

अर्धमात्रा और बिन्दु

बगलाबीज 'ह्लीं' या 'ह्ल्रीं' में जो अर्धमात्रा एवं बिन्दु है उसका तान्त्रिक दृष्टि से क्या अर्थ है ? आचार्य भास्कर कहते हैं कि—मूलाधार चक्र से उठने वाला 'नाद' वर्णों के मध्य से होता हुआ सूत्र की भाँति प्रतीत होता है और 'बिन्दु' भाल के मध्य वृत्ताकार रूप में दीपक की भाँति देदीप्यमान रहता है—उसके ऊपर 'अर्धचन्द्र' दीप्ति एवं आकृति में अन्वर्थक (आकृति एवं कान्ति में अर्धचन्द्रवत्) है।

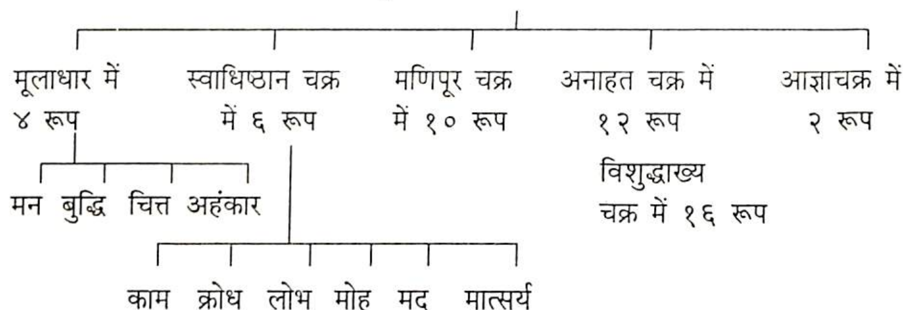
'आधारोत्थितनादो गुण इव परिभाति वर्णमध्यगत: ।
मध्येफलं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकार: ।
तदुपरि गतोऽर्धचन्द्रोऽन्वर्थ: कान्त्या तथाऽऽकृत्या' ॥
(वरिवस्यारहस्यम्)

वर्णों में नाद उसी प्रकार स्थित रहता है यथा माला की गुरियों में धागा—'वर्णेषु नादोऽनुस्यूत:' । (प्रकाश)

नाद ही प्रत्येक मन्त्र की मन्त्रत्व-शक्ति है। नाद ९ हैं—'नादनवकं मूलाधारादिषट्के नादे नादान्ते ब्रह्मरन्ध्रे च स्थितम्' । (प्रकाश : भास्करराय)

एक ही महाबिन्दु १० भागों में विभाजित हो जाता है—'दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मक:' ।

महाबिन्दु का दशधा विभाजन



सहस्रार ही बिन्दु है—'सहस्रारं बिन्दुर्भवति' ।

अण्डजं स्वेदजमुद्भिज्जं जरायुजं यत् किं चैतत् प्राणिस्थावरजङ्गमं मनुष्यमजीजनत् । सैषा पराशक्ति: । सैषा शाम्भवी विद्या कादिविद्येति वा हादिविद्येति वा रहस्यमामों वाचि प्रतिष्ठा । महात्रिपुरसुन्दरी वै प्रत्यक् चिति:' ।

शक्ति त्रिविधाकारा है—'सा देवी त्रिविधा भवति शक्त्यात्मना इच्छाशक्तिः, क्रियाशक्तिः, साक्षाच्छक्तिरिति'। (सीतोपनिषद्)

'ह्रीं' का ईकार मायातत्त्व है।

'विष्णुः प्रपञ्चबीजं च माया ईकार उच्यते'। (सीतोपनिषत्)

'ईकाररूपिणी अव्यक्तस्वरूपा भवतीति सीता'। (सीतो.)

बिन्दु ज्योतिस्वरूप है। यह प्रपञ्च में स्थित वाच्यार्थों की महासमष्टि में एकीभूत होकर प्रकाशित है। भ्रूमध्य के थोड़ा ऊपर बिन्दु का दर्शन होता है। इस बिन्दु-ज्योति में समग्र विश्व अभिन्नतया भासमान होता है। बिन्दु की प्राप्ति होने पर त्रिकाल का साक्षात्कार, जगत् के यावत् अर्थों का साक्षात्कार आमलकवत् है; क्योंकि योगी की इच्छाशक्ति के प्रभाव से ज्योति में अतीत, अनागत, वर्तमान, दूरस्थ, निकटस्थ, स्थूल एवं सूक्ष्म सभी पदार्थ प्रकट हो जाते हैं।

वाचकों की महासमष्टि से एकीभूत दशा की आख्या है—नाद। जिस प्रकार बिन्दु की ज्योति के दर्पण में यथाभिलषित पदार्थों का साक्षात्कार होता है (क्योंकि उसी में अर्थ-समष्टि निहित है) तद्वत् नाद में निःशेष जगत् अनन्त वाचक एवं अनन्त मन्त्र सभी साक्षात्कृत हो उठते हैं।

कोई भी मन्त्र चैतन्य प्राप्त करने पर (चैतन्यारूढ़ होने पर) नाद की ही स्थिति में अवस्थित होता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि बिन्दु एवं नाद विश्व के अनन्त वाच्यों-वाचकों की एकीभूत समष्टि के द्योतक हैं। बिन्दु का अनुभव भ्रूमध्य के ऊर्ध्व में होता है किन्तु नाद का अनुभव ब्रह्मरन्ध्र की अन्तिम सीमा तक होता है। इसलिए नाद का सूत्र पकड़कर नाद के अन्त तक पहुँचना चाहिए। नाद का अवसान (अन्त) हुए बिना देहात्मबोध का अन्त नहीं होता।

साधक चाहे किसी भी साधन-पद्धति को क्यों न ग्रहण करे किन्तु तुरीयावस्था में नाद का अवलम्बन ग्रहण करना ही पड़ेगा। नादशक्ति का अवलम्बन ग्रहण कर लेने पर नादशक्ति ही साधक के मन, वाक् एवं बिन्दु को अग्रपद होने में सहायक होती है। नाद-साधना ही ॐकार की साधना है। विशुद्ध की प्रबुद्धावस्था नादरूप में ही प्रकाशित होती है।

अन्त में नाद, शून्य एवं मन इन तीनों का अतिक्रमण हो जाता है। बिन्दु में जो लहर उठती है वही नाद एवं ज्योति है।

तान्त्रिक योग में बिन्दु से समना पर्यन्त अर्धमात्रा का ही साम्राज्य है। बिन्दु ही यथार्थतः अर्धमात्रा है। तथापि बिन्दु के अनन्तर परवर्ती सभी अवयवों में पूर्ववर्ती मात्रा का अर्धांश होता है। बिन्दु में एक मात्रा का अर्धांश है तो अर्धचन्द्र में बिन्दु का अर्धांश है। निरोधिका में अर्धचन्द्र का अर्धांश है। ये सारे अंश या मात्राएँ 'मन' की हैं। समना

तक ये अंश या मात्राएँ हैं किन्तु उन्मना में अंश नहीं है वह अमात्र है। योगी का लक्ष्य है—स्थूल मात्रा से सूक्ष्म मात्रा एवं सूक्ष्म मात्रा से अमात्रक में स्थिति। मन की मात्राओं का त्याग ही साधना का लक्ष्य है। मात्रा का सूक्ष्मतम भाग है—एक मात्रा का २५६वाँ भाग। किसी के मत में यह एक मात्रा का ५१वाँ भाग है। 'उन्मना' में न मन है, न मात्रा है, न काल है, न देश है, न देवता है और न जगत् का कोई भी अंश है। यह शुद्ध चिदानन्द भूमि है। ॐकार में मात्राएँ हैं। ॐ ही शब्दब्रह्म है।

प्रणव में विद्यमान अंश (मात्राएँ)

अकार उकार मकार बिन्दु अर्धचन्द्र निरोधिका नाद नादान्त शक्ति व्यापिनी समना

उन्मना

शब्दब्रह्म, परावाक् एवं ॐकार तीनों अभिन्न हैं।

मन्त्रों की परमा प्रकृति ॐकार ही है जो सभी मन्त्रों के आदि में लगाया जाता है। नाद की परिणति वाक् में एवं ज्योति की परिणति अर्थ में होती है। बिन्दु की परिणति नाद एवं ज्योति है।

ब्रह्मास्त्रविद्यास्वरूपा बगलामहाविद्या
(भगवती बगलामुखी के विभिन्न मन्त्र)

भगवती बगलामुखी की उपासना से सम्बन्धित अनेक मन्त्र हैं। यथा—

गायत्रीमन्त्र, बगलागायत्रीमन्त्र—'ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे स्तम्भनबाणाय धीमहि। तन्नो बगला प्रचोदयात्' ॥ (२७ अक्षरों का मन्त्र)

अष्टाक्षर गायत्री—'ॐ ह्रीं हं सः सोऽहं स्वाहा। हंसहंसाय विद्महे सोऽहं हंसाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्'।

अष्टाक्षर मन्त्र—'ॐ आं ह्लीं क्रों हुं फट् स्वाहा'।

त्र्यक्षर मन्त्र—'ॐ ह्लीं ॐ'।

नवाक्षर मन्त्र—'ॐ ह्लीं क्लीं ह्रीं बगलामुखि ठः'।

एकादशाक्षर मन्त्र—'ॐ ह्लीं क्लीं ह्रीं बगलामहि स्वाहा'।

'ॐ ह्ल्रीं हूं ह्लूं बगलामुखि ह्लां ह्लीं ह्लूं सर्वदुष्टानां ह्लैं ह्लौं ह्लः वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ह्लः ह्लौं ह्लैं जिह्वां कीलय ह्लूं ह्लीं ह्लां बुद्धिं विनाशय ह्लूं हूं ह्लीं ॐ हूं फट्'। (५५)

'ॐ ह्ल्रीं ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' ॥

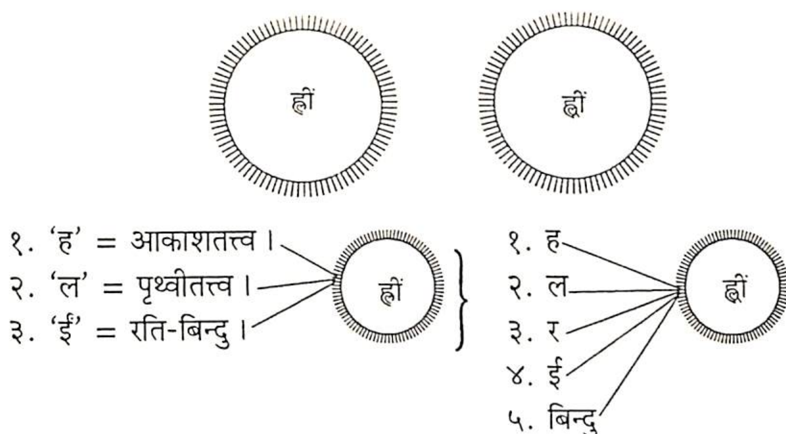
स्वप्नविद्या—'ॐ हैं हूं वाग्वादिनि सत्यं सत्यं ब्रूहि वद वद बगलामुखि हैं हूं नमः स्वाहा'।

वश्य मन्त्र—'ॐ बगलामुखि ! सर्वं स्त्रीहृदयं मम वश्यं कुरु ऐं ह्लीं स्वाहा'।

चतुरक्षर मन्त्र—'ॐ आं ह्लीं क्रौं'।

भगवती बगला का एकाक्षर मूलमन्त्र (बीजमन्त्र)

भगवती बगलामुखी के एकाक्षर बीजमन्त्र के रूप में 'ह्लीं' एवं 'ह्ल्रीं' दोनों रूप स्वीकृत हैं, किन्तु ऐसी मान्यता है कि 'ह्लीं' (बीजमन्त्र) अभिशप्त है अतः इसके शाप को दूर करने हेतु 'रकार' (रेफ) भी जोड़ दिया जाता है। 'र' जोड़ देने से इस मन्त्र की उग्रता और अधिक बढ़ जाती है। 'ह्लीं' एवं 'ह्ल्रीं' दोनों रूप प्रचलित हैं। परम्परानुरूप इसके स्वरूप को ग्रहण करना चाहिए[1]।



भगवती बगला के पञ्चरत्न मन्त्र

'ह्लीं'	'ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय, जिह्वां कीलय, बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।	'ह्लीं बगलायै स्वाहा'।	'ह्लीं क्लीं ऐं बगलामुख्यै गदाधारिण्यै स्वाहा'।	'ॐ श्रीं ह्लीं ऐं भगवति बगले मे श्रियं देहि देहि स्वाहा'। (बगलादशक)

ब्रह्मास्त्रमहाविद्या : एकाक्षरी मन्त्र

भगवान् शिव कहते हैं कि—एकाक्षरी मन्त्र मन्त्रों का जीवन है और यह समस्त अभीष्टों को सिद्ध करने वाला है—

'यत्तदेकाक्षरी मन्त्रं तत्तन्मन्त्रेषु जीवनम्।
उत्तमं बीजसंयुक्तं मन्त्रं सर्वार्थसाधनम्'॥

---

१. साधक-समाज की मान्यता है कि रकार जोड़कर 'ह्ल्रीं' मन्त्र बनाते हुए जप करने से साधना में शीघ्र सफलता मिलती है।

सभी मन्त्रों में बीजात्मक आद्य मन्त्र सर्वसिद्धिकारक होता है। जो मन्त्र निर्बीज होते हैं वे निर्वीर्य होते हैं अत: शक्तिहीन होते हैं[१]। अत: मन्त्रसाधना की प्रक्रिया में बीजोद्धार परमावश्यक होता है। मन्त्रों में बगलामहाविद्या का एकाक्षरी महामन्त्र सुसिद्ध है—

'एकाक्षरीमहामन्त्रं बगलाया: सुसिद्धिदम्'।

(क) **बीजोद्धार**—इस एकाक्षरी मन्त्र में 'ह', 'ई', 'र' एवं 'बिन्दु' स्थित हैं—

'सोऽन्तरान्तसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम्।
रेफाक्रान्तं बिन्दुयुक्तं ब्रह्मास्त्रैकाक्षरी मनु:'॥

इसके ऋषि ब्रह्मा हैं। इसका छन्द गायत्री है। इस मन्त्र का देवता चिन्मयी शक्ति बगला है। इसका बीज 'लं' है। इसकी शक्ति 'हूं' है तथा कीलक 'ई' है।

(ख) **न्यासविद्या**—मन्त्र को सिद्ध करने की दृष्टि से न्यास करना भी आवश्यक है—

'न्यासविद्यां प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धिकरीं नृणाम्'।

(ग) **भूतशुद्धि**—इसी साधना के अन्तराल में यदि भूतशुद्धि भी कर ली जाय तो मणिकाञ्चन योग हो जायेगा—

'भूतशुद्धिं भूतशुद्धिं मातृकाद्वितयं न्यसेत्'।

(घ) **मातृकान्यास**—मन्त्राक्षरों द्वारा न्यास करने की भी पद्धति है अत: 'मातृकाद्वितयं न्यसेत्' 'मन्त्राक्षरेण विन्यस्य' कहकर मातृकान्यास का विधान किया गया है।

अपनी अंगुलियों के द्वारा छहों अंगों में मातृका-विन्यास करना चाहिए।

(ङ) **पञ्जरन्यास**—पञ्जरन्यास समस्त सिद्धियाँ प्रदान करने वाला न्यास है।

पञ्जरन्यास

'विन्यसेदङ्गुलीभिश्च षडङ्गेषु तथैव च।
वक्ष्येऽहं पञ्जरं न्यासं मन्त्रसिद्धिकरं नृणाम्॥
बगला पूर्वतो रक्षेदाग्नेय्यां च गदाधरी।
पीताम्बरा दक्षिणे च स्तम्भिनी चैव नैर्ऋते॥
जिह्वां कीलिन्यतो रक्षेत्पश्चिमे सर्वदा मम।
वायव्ये च मदोन्मत्ता कौबेर्यां च त्रिशूलिनी॥
ब्रह्मास्त्रदेवता पातु ऐशान्यां सततं मम।
संरक्षेन्मां तु सततं पाताले स्तब्धमातृका॥
ऊर्ध्वं रक्षेन्महादेवी जिह्वास्तम्भनकारिणी।
एवं दश दिशो रक्षेद्बगला सर्वसिद्धिदा।

१. 'निर्बीजमेव निर्वीर्यं शिवस्य वचनं यथा'।

एवं न्यासविधिं कृत्वा यत् किञ्चिज्जपमारभेत्।
तस्याः स्मरणमात्रेण शत्रूणां स्तम्भनं भवेत्' ॥

यह न्यास निष्पादित करके बगलामातृका न्यास करना चाहिए।

मातृकान्यास-विधि—इस सम्बन्ध में यह विधान है—

'तारं च मातृकार्णं च बगलाबीजमेव च।
नमोऽन्तेन च विन्यस्य मातृकास्थानतोऽनघ' ॥

ध्यान—भगवती बगलामुखी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—

'वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये बगलामुखि ! प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः' ॥

मन्त्र का जप—भगवती का पूर्वोक्त ध्यान के अनुसार ध्यान पूरा करके साधक को भगवती के मन्त्र का जप करना चाहिए--'एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं सुबुद्धिमान्'। भगवती के मन्त्र का ५ लाख जप करना चाहिए।

सन्तर्पण—इसके अनन्तर साधक को गुड़मिश्रित जल से तर्पण करना चाहिए। तर्पण के दशांश से त्रिकोणात्मक कुण्ड में हवन करना चाहिए। हवन की सामग्री में घृतसंयुत रक्तहयारि पुष्प को हव्यद्रव्य के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए—

ब्राह्मण-भोजन—हवनोपरान्त यथासंख्य सुपात्र ब्राह्मणों को आमन्त्रित करके ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए। इससे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जायेगा।

वाममार्ग क्रम से साधना—

'वाममार्गक्रमेणैव वामामभ्यर्च्य पुष्पिणीम्।
मन्त्रसिद्धिकरं चैव सर्वदा रिपुनाशनम्' ॥

यदि किसी ने किसी पर मान्त्रिक प्रयोग कर दिया हो तो इस बगला महाविद्या की उपासना से उस विद्या का भी स्तम्भन हो जायेगा—

'परमन्त्रप्रयोगेषु नानाचेटककृत्रिमैः।
सद्यःस्तम्भनविद्या च बगला नात्र संशयः'[१] ॥

एकाक्षरी महामन्त्र का प्रयोग

(१) **होमकुण्ड का निर्माण**—होमकुण्ड एवं स्थण्डिल दोनों आवश्यक हैं, क्योंकि स्थण्डिल के बिना होम निष्फल हो जाता है—

---

१. सांख्यायनतन्त्र (पञ्चम पटल)।

'स्थण्डिलेन विना होमं निष्फलं भवति ध्रुवम्' ।

आकार—कुण्ड का आकार षट्कोणात्मक, अष्टकोणात्मक एवं चतु:कोणात्मक होना चाहिए—'त्रिविधं स्थण्डिलं चैव वक्ष्येऽहं कर्म ह्यादरात्' ।

(**स्थण्डिल** = यज्ञ के लिए चौरस की हुई चौकोर भूमि । चत्वर । यज्ञार्थ परिष्कृत भूमि । चबूतरा । 'स्थण्डिलसितक' = अग्निवेदी ।)

(क) **त्रिकोणाकार कुण्ड में हवन**—(१) वशीकरण, (२) सम्मोहन, (३) व्यापारसंवर्धन, (४) द्रव्यसंग्रह, (५) कीर्तिप्राप्ति, (६) स्तम्भन और (७) इन्द्रियों के वशीकरण के लिए त्रिकोणाकार कुण्ड में दिव्य गन्धों से हवन करना चाहिए—

'वशीकरणसम्मोहे वाणिज्ये द्रव्यसंग्रहे ।
कीर्तिकामस्तु जुहुयात् त्रिकोणाकारकुण्डके ।।
वश्येन्द्रियस्तम्भने च दिव्यगन्धैस्तथैव च ।
त्रिकोणकुण्डे जुहुयाद् गुरुमार्गेण बुद्धिमान्' ।

(ख) **वर्तुल कुण्ड में हवन**—एक ही आकार के कुण्ड में सर्वाभीष्टों की सिद्धि नहीं होती । विद्वेषण नामक आभिचारिक कर्म की सिद्धि के लिए वर्तुल कुण्ड के मध्य में हवन करना चाहिए ।

'विद्वेषणे तु जुहुयाद्वर्तुले कुण्डमध्यमे' ।

(ग) **षट्कोणात्मक कुण्ड में हवन**—यदि साधक को उच्चाटन नामक आभिचारिक कृत्य निष्पादित करना हो तो उसे षट्कोणात्मक कुण्ड में हवन करना चाहिए ।

'उच्चाटने तु जुहुयात् षट्कोणाख्ये च कुण्डके' ।

(घ) **अष्टकोणात्मक कुण्ड में हवन**—मारण नामक आभिचारिक कृत्या-प्रयोग हेतु (यदि प्रयोक्ता को मारण-प्रयोग करना हो तो उसे) अष्टकोणात्मक कुण्ड में हवन करना चाहिए ।

'मारणे चाष्टकुण्डे च तत्तत्कर्मानुसारत:' ।

प्रत्येक आभिचारिक कर्म के निष्पादनार्थ तत्तत्कर्मानुसार कुण्ड का एवं हव्य द्रव्य का रूप भी बदल जाता है—'.....तत्तत्कर्मानुसारत: । तत्तद्द्रव्येन जुहुयात्' ।

प्रयोजन—

(१) रक्षा—'रक्षार्थं स्थण्डिले होम: षट्कर्मसु कुमारक' ।

(२) शान्ति—'जुहुयाच्छान्तिवश्ये च स्थण्डिले चतुरस्त्रके' ।

(३) विद्वेषण—
स्तम्भन— } 'विद्वेषणे स्तम्भने च जुहुयादष्टकोणके' ।

(४) उच्चाटन—'उच्चाटने च वै पुत्र षट्कोणेषु विधीयते'।

षट्कर्म और उनके अर्थ

षट्कर्म—

'शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने तथा।
मारणानि प्रशंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिण:'॥

१. शान्ति—'नानारोगै: कृत्रिमैश्च नानाचेष्टाक्रमेण च।
विषभूतप्रयोगेषु निरास: शान्तिरीरिता'॥
२. वश्य—'वश्यं जनानां सर्वेषां वात्सल्यं हृद्गतं स्मृतम्'।
३. स्तम्भन—'स्तम्भनं रोधनं पुत्र सर्वकर्मसु निश्चितम्'।
४. विद्वेषण—'मित्रस्य कलहोत्पत्तिर्विद्वेषणमुदाहृतम्'।
५. उच्चाटन—'बलं बुद्धिभ्रमेणोक्तमुच्चाटनमिदं भुवि'॥
६. मारण—'प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम्॥
प्रत्येकमेनं वक्ष्यामि होमयागं सुनिश्चितम्'॥

होमयाग और उसके विविध विधान—

(१) **शान्तिकर्म**—मधुत्रय से आसिक्त दूर्वा का तीन अयुत हवन करने पर रोग, कृत्या-प्रयोग तथा ग्रहकष्ट के प्रभाव निवृत्त हो जाते हैं—

'दूर्वाहोमं त्रिमध्वक्तं जुहुयादयुतत्रयम्।
रोगकृत्याग्रहादिभ्य: सद्य: शान्तिकरं भवेत्'॥

(२) **वशीकरण और सम्मोहन**—रात्रि के समय श्यमन्त के पुष्प को घृत से आसिक्त करके बाणायुत संख्या में हवन करने से वशीकरण एवं सम्मोहन कर्मों में सिद्धि प्राप्त होती है—

'श्यमन्तकुसुमैराज्ययुक्तं बाणायुतं तथा।
जुहुयान्निशीथकाले च वश्यं सम्मोहनं भवेत्'॥

(३) **स्तम्भन कर्म**—स्तम्भन नामक आभिचारिक प्रयोग करने हेतु बिभीतक (बहेड़ा) की समिधा या करञ्ज के बीज का दो अयुत (नेत्रायुत) संख्या में हवन करना चाहिए—

'बिभीतकसमिद्भिर्वा करञ्जैर्बीजमेव च।
नेत्रायुतं हुनेत्पुत्र स्तम्भनं परमं मतम्'॥

(अयुत = दस हजार)

(४) **विद्वेषण कर्म**—विद्वेषण का प्रयोग करने हेतु नीम एवं अर्क (मदार,

अकौआ) के पत्ते को नीम के तेल से आर्द्र करके नेत्रायुत संख्या (बीस हजार) में अग्नि में हवन करना चाहिए।

(५) **उच्चाटन कर्म**—उच्चाटनात्मक आभिचारिक कृत्य को निष्पादित करने के लिए उल्लू एवं कौए के पंखों को संगृहीत करके उनका रात्रि के समय नग्न होकर एवं ध्यानमग्न होकर बाणायुत संख्या में हवन करना चाहिए।

(६) **मारण-कर्म**—यदि किसी भी शत्रु का मारण करना हो तो प्रयोक्ता को चाहिए कि वह रात्रि के समय नग्न होकर प्रेतोन्मुखी होकर, प्रेतकाष्ठ की प्रेताग्नि में और प्रेत के मुख (प्रेतिकानन) में शाल्मली (सेमर) के फूल को तिल के तेल से आसिक्त करके उसका हवन करे[१]।

(७) **लक्ष्मी, शान्ति, पुष्टि, विघ्ननिवारण** को केन्द्र में रखकर किये गये प्रयोग के लिए यह विधान है—

'लक्ष्मीः शान्तिस्तथा पुष्टिर्विद्या विघ्ननिवारिणी।
चतस्रेण हुनेत् कुण्डे तत्र तत्प्रतिपादिते'[२]॥

कुण्ड के स्वरूप का निर्धारण—

'प्रादेशं शतहोमं च अरत्निं च सहस्रके।
हस्तं चायुतहोमे च द्विहस्तं लक्षमोहके'॥

महाविद्या भगवती बगलामुखी का मन्त्र

भगवती बगला के मन्त्र का प्रथमाक्षर : प्रणव (ॐ)—

१. वेद का आद्य वर्ण।
२. भगवती बगला का बीज।
३. विश्व का मूल तुरीय तत्त्व।

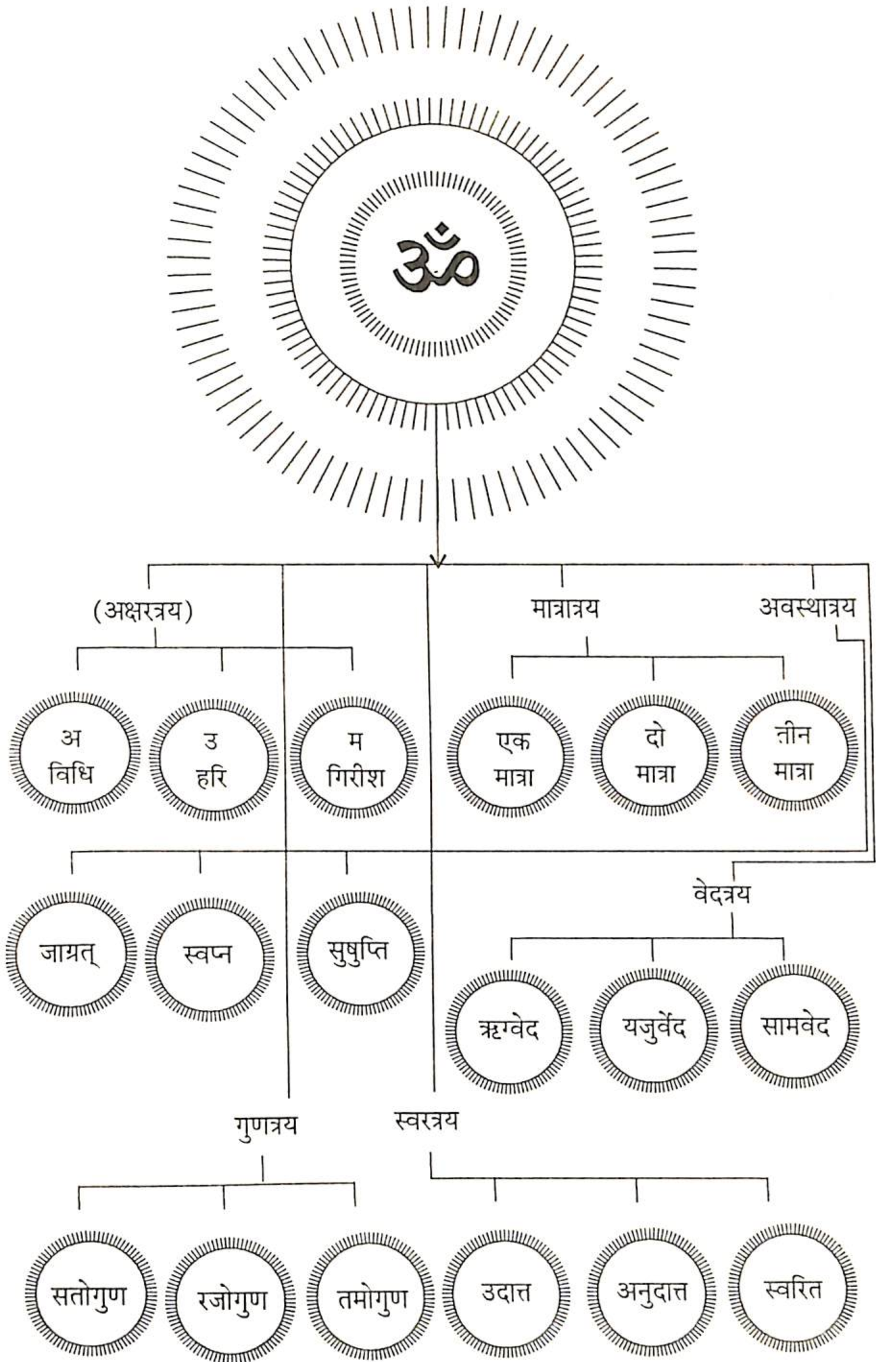


१. 'बीजमों त्वां प्रधानम्'।
२. 'मूलं विश्वस्य तुर्यम्'।
३. 'वेदाद्यत्यर्णमेकम्। (बगलाशतक)

'आद्यैस्त्रिधाऽक्षरैर्यद्विधिहरिगिरीशंस्त्रीन् सुरान् वा गुणांश्च,
मात्रास्तिस्रोऽव्यवस्थाः सततमभिदधत् त्रीन् स्वरान् त्रींश्च लोकान्।
वेदाद्यन्त्यर्णमेकं विकृतिविरहितं, बीजमों त्वां प्रधानम्
मूलं विश्वस्य तुर्य्यं ध्वनिभिरविरतं, व्यक्ति तन्मे श्रियो स्यात्'[३]॥

---

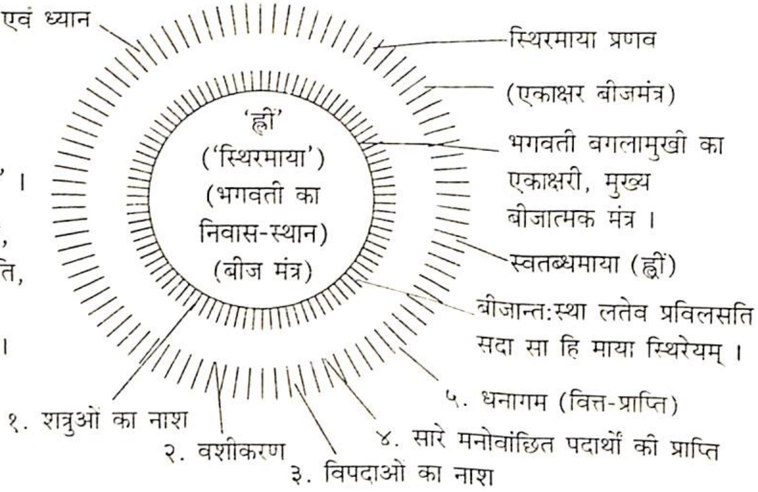
१. सांख्यायनतन्त्र (पटल ६)। २. सांख्यायनतन्त्र (६/५)। ३. बगलादशक।


ॐ
(अक्षरत्रय)
मात्रात्रय
अवस्थात्रय
अ विधि
उ हरि
म गिरीश
एक मात्रा
दो मात्रा
तीन मात्रा
जाग्रत्
स्वप्न
सुषुप्ति
वेदत्रय
ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
गुणत्रय
स्वरत्रय
सतोगुण
रजोगुण
तमोगुण
उदात्त
अनुदात्त
स्वरित

भगवती का मूल मन्त्र और उसके जप तथा ध्यान का फल

(इस मंत्र के जप एवं ध्यान का प्रभाव)
↓
'जप्ता ध्याताऽपि भक्तैरहनि निशि हरिद्राक्तवस्त्रावृतेन' ।

१. शत्रू स्तभ्नाति,
२. कान्तां वशयति,
३. विपदो हन्ति,
४. वित्तं ददाति ॥





५. ध्यायेत् त्वां पीतवर्णां पटुयुवतियुतो हीप्सितं किं न विन्देत् ?
(समस्त मनोवाञ्छित पदार्थों की प्राप्ति)

'सान्ते रान्तेन वामाक्षणि विधुकलया राजिते त्वं महेशि !
बीजान्त:स्था लतेव प्रविलसति सदा सा हि माया स्थिरेयम् ।
जप्ता ध्याताऽपि भक्तैरहनि निशि हरिद्राक्तवस्त्रावृतेन
शत्रून् स्तभ्नाति कान्तां वशयति विपदो हन्ति वित्तं ददाति'[1] ॥

(१) 'सान्ते' अर्थात् जहाँ 'स' का अन्त होता है उसके अगले वर्ण में अर्थात् 'ह' में । (वर्णमाला में 'स' के बाद ही 'ह' वर्ण आता है, अत: 'सान्ते' का अर्थ है 'ह' में ।)

(२) 'रान्तेन'—जहाँ 'र' का अन्त होता है उसके अगले वर्ण में अर्थात् 'ल' में । (क्योंकि वर्णमाला में 'र' के बाद 'ल' आता है ।)

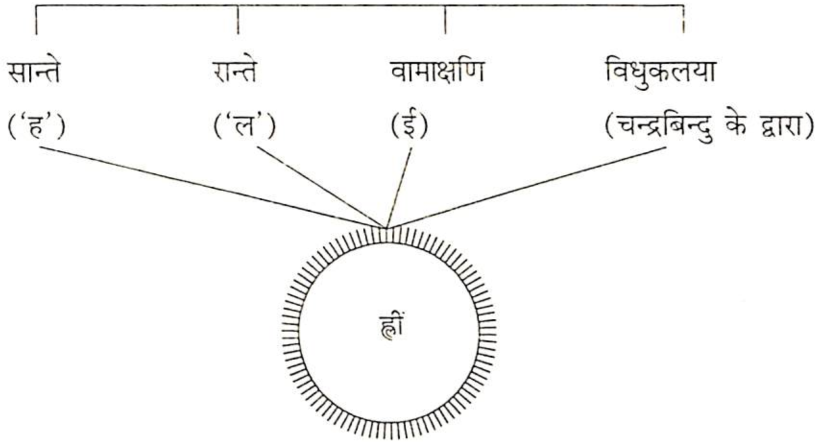
(३) 'वामाक्षणि'—वाम नेत्र में । भगवती के वाम नेत्र को 'ई' कहा गया है ।

(४) 'विधुकलया' = चन्द्रकला के द्वारा । चन्द्रकला = अर्धचन्द्र = चद्रबिन्दु ।

(५) 'राजिते' = (बिन्दु से) सुशोभित ।

---

१. बगलादशक तथा बगलाशतक (क्र. ३) ।



विनियोग—ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमहामन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, लं बीजं, ह्लीं शक्तिः, ईं कीलकं, श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रीतये जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास—श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, श्री-बगलामुखीदेवतायै नमः हृदि, लं बीजाय नमः गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, ईं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रीतये जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ ।

करन्यास—ॐ ह्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्लूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लैं अनामिकाभ्यां हुँ, ॐ ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

अङ्गन्यास—ॐ ह्लां हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लूं शिखायै वषट्, ॐ ह्लैं कवचाय हुं, ॐ ह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लः अस्त्राय फट् ।

ध्यान—'वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शान्तति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति ।
गर्वी खर्वति, सर्वविच्च जडति, त्वद्यन्त्रणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये बगलामुखि ! प्रतिदिनं कल्याणि ! तुभ्यं नमः' ॥

बगलागायत्री

मन्त्रोद्धार—

'ब्रह्मास्त्राय पदं चोक्त्वा विद्महेति पदं तथा ।
स्तम्भनेति पदं चोक्त्वा बाणाय तदनन्तरम् ॥
धीमहीति पदं चोक्त्वा तन्नः शब्दं ततो वदेत् ।
बगलापदमुच्चार्यमुद्धरेच्च प्रचोदयात्' ॥

'गायत्रीबगला नाम्नी सर्वसिद्धिप्रदा भुवि'।

बगलागायत्री का परिचय—

(१) ऋषि = ब्रह्मा। (२) छन्द = गायत्री। (३) देवता = बगला। (४) बीज = ॐ। (५) बीज = ह्रीं। (६) कीलक = विद्महे।

पुरश्चर्या = ४ लाख। तर्पण = ४ लाख का दशांश। हवन = तर्पण का दशांश। ब्राह्मणभोजन = हवन का दशांश।

हवन का द्रव्य—घृत।

इसके अतिरिक्त न्यास एवं ध्यानादिक करणीय हैं—

'न्यासध्यानादिकं सर्वं कुर्यात्तन्मन्त्रराजवत्'।

बगलागायत्री का प्रयोग—

ध्यान—कौलागमैकसंवेद्यां सदा कौलावताम्बिकाम्।
भजेऽहं सर्वसिद्ध्यर्थं बगलां चिन्मयीं हृदि'॥

प्रयोग—

१. मोक्षार्थी के लिए—'तारादि प्रजपेन्मन्त्रं मोक्षार्थी च कुमारक'।
२. कामार्थी के लिए—'कामार्थी प्रजपेत्पुत्र तारावाराहपूर्वकाम्'।
३. उच्चाटनार्थी के लिए—'उच्चाटनार्थी प्रजपेत्तारवाराहपूर्वकम्'।
४. सम्मोहनार्थी के लिए—'सम्मोहनार्थं प्रजपेत्कामराजपुरस्सरम्'।
५. स्तम्भनार्थी के लिए—'स्तम्भनार्थी जपेत् पुत्र बगलाबीजपूर्वकम्'।
६. विद्वेषणार्थी के लिए—'विद्वेषणादौ प्रजपेद्धूङ्कारद्वयपूर्वकम्'।
७. उच्चाटनार्थी के लिए—'उच्चाटनार्थं प्रजपेच्छक्तिवाराहपूर्वकम्'।
८. मारणार्थी के लिए—'वाराहशक्तिवाराहं तच्च मायापुरस्सरम्।
प्रजपेन्मन्त्रमेतद्धि मारणं भवति ध्रुवम्'॥

(क) **विद्याप्राप्त्यर्थ प्रयोग**—जप के आदि में 'वाग्भव' का योग करके (उसे योजित करके) गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए।

(ख) **कन्याप्राप्त्यर्थ प्रयोग**—कन्या-प्राप्ति के प्रयोजनार्थ मन्त्र के आदि में 'बाला' को योजित करना चाहिए।

(ग) **भू-सम्पत्तिप्राप्त्यर्थ प्रयोग**—यदि भू-सम्पत्ति प्राप्त करने की आकांक्षा हो तो प्रयोक्ता को चाहिए कि वह 'बगलागायत्री' मन्त्र के मध्य में 'वाराही बीज' योजित करे और साथ ही १ लाख बगलागायत्री का जप करे।

(घ) **राजलक्ष्मी अर्थात् श्रीप्राप्त्यर्थ प्रयोग**—यदि कुबेर की भाँति लक्ष्मीवान् बनना हो तो प्रयोक्ता बगलागायत्री के आदि में श्रीबीज योजित करे।

(ङ) **रोगादिनिवृत्त्यर्थ प्रयोग**—यदि प्रयोक्ता को रोगादि की निवृत्ति इष्ट हो तो वह ध्यानयोग के साथ (एकाग्र एवं एकनिष्ठ होकर तन्मयता के साथ) बगलागायत्री मन्त्र में 'ताक्ष्र्यबीज' को प्रारम्भ में योजित करके उसका जप करे।

(च) **भूत-प्रेत-पिशाचादि निवृत्त्यर्थ प्रयोग**—यदि भूत-प्रेत-पिशाचादि की यन्त्रणाओं या भय से निवृत्ति पाना हो तो बगलागायत्री के साथ 'भैरवबीज' योजित करके उसका जप करना चाहिए।

(छ) **तापज्वर एवं महाताप के निवृत्त्यर्थ प्रयोग**—यदि प्रयोक्ता का प्रयोजन तापज्वर या महाताप हटाना हो तो बगलागायत्री के आदि में 'अमृतबीज' योजित करके उसका जप करना चाहिए।

(ज) **उच्चाटन-सिद्ध्यर्थ प्रयोग**—यदि प्रयोक्ता का प्रयोजन उच्चाटन-प्रयोग हो तो उसे बगलागायत्री के आदि में 'वायुबीज' योजित करके उसका जप करना चाहिए।

(झ) (१) **मारणसिद्ध्यर्थ प्रयोग**—यदि शत्रु-मारण का प्रयोजन सिद्ध करना हो तो प्रयोक्ता को बगलागायत्री के आदि में 'अग्निबीज' योजित करके उसका जप करना चाहिए।

(२) इसके अतिरिक्त—**मारणार्थ प्रयोग** हेतु बगलागायत्री के आदि में 'मायाबीज' योजित करके उसका जप करना चाहिए।

(३) **अभीष्टसिद्ध्यर्थ प्रयोग**—यदि बगलागायत्री के आदि में महामाया योजित कर दिया जाय तो प्रयोक्ता को उसके अभीष्ट की प्राप्ति होगी।

बगलागायत्रीमन्त्र की महत्ता—बगलागायत्री मन्त्र अपनी महत्ता में अप्रतिम है। कलियुग में (बगला) गायत्री मन्त्र के बिना मन्त्र कभी सिद्ध ही नहीं हो सकते—

'गायत्रीं च विना मन्त्रो न सिद्ध्यति कलौ युगे'।

पुरश्चरण के समय तो इसका जप अनिवार्य है—

'पुरश्चरणकाले तु गायत्रीं प्रजपेन्नरः।
मूलविद्यादशांशं च मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्॥
त्यक्त्वा तां मन्त्रगायत्रीं यो जपेन्मन्त्रमादरात्।
कोटिकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते'॥

करोड़ों मन्त्रों का जप क्यों न कर लिया जाय किन्तु गायत्री मन्त्र का जप किये बिना कोई भी मन्त्र कभी सिद्ध नहीं होता।

ध्यातव्य बिन्दु—

१. जहाँ भी मन्त्र-जप की संख्या का उल्लेख न किया गया हो वहाँ उसे १ लाख की संख्या माननी चाहिए।

२. जहाँ भी दिन की संख्या का उल्लेख न किया गया हो वहाँ १५ दिन मानना चाहिए—

'जपसंख्या यत्र नोक्ता लक्ष्मेकं कुमारक।
दिनसंख्या यत्र नोक्ता पक्षमेकं न संशय:'॥

बगलागायत्री और बगलामहामन्त्र—बगलागायत्री बगलामहामन्त्र का जीवन है अत: मन्त्र के आदि एवं अन्त में इसका ध्यान के साथ जप करना आवश्यक है—

'गायत्री बगला नाम्नी बगलायाश्च जीवनम्।
मन्त्रादौ चाथ मन्त्रान्ते जपेद्ध्यानपुरस्सरम्'॥

बगलामन्त्रराज के प्रयोग का विधान

क्रौञ्चभेदन ने भगवान् शिव से निवेदन किया—

'बगलामन्त्रराजस्य प्रयोगं वद शङ्कर'।

इसी के उत्तर स्वरूप भगवान् शंकर ने इस दिशा में प्रकाश डाला।

(१) **सभी रोगों के उन्मूलनार्थ एवं भूतों के निकृन्तनार्थ प्रयोग**—इस प्रयोग से सारे रोग, भूत आदि नष्ट हो जाते हैं—

'नानारोगहरं चैव नानाभूतनिकृन्तनम्।
नानाकृत्रिमनाशं च भवेत्सत्यं न संशय:'॥

विधान—राजीलवण लेकर, मूल मन्त्र के द्वारा ग्रस्त करके, साध्य (अभीष्ट) का नाम लेकर अयुत हवन करना चाहिए।

(२) **वशीकरण एवं सम्मोहनार्थ प्रयोग**—हल्दी के टुकड़े लेकर उनका १० हजार हवन करने से वशीकरण एवं सम्मोहन—ये दोनों प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

(३) **स्तम्भन कार्यार्थ प्रयोग**—स्तम्भन-सिद्धि हेतु प्रयोगाकांक्षी को चाहिए कि वह रात्रि के समय तालक से २० हजार (मनोयोगपूर्वक) हवन करे।

(४) **द्वेषोत्पादनार्थ प्रयोग**—द्वेष कराने हेतु प्रयोगाकांक्षी को चाहिए कि वह गधे का रक्त लेकर नीम के पत्ते पर विरोधियों का नाम लिखें और नग्न होकर तथा प्रेतोन्मुख होकर प्रेतकाष्ठ से, प्रेताग्नि में, प्रेतवन में हवन करे।

(५) **मारण कर्म के प्रयोगार्थ**—प्रयोगाकांक्षी रात्रि के समय किसी चिता के पास जाकर शत्रु की प्रकृति लिखे, हृदय पर नाम, ललाट पर 'मारय', बाहुओं पर 'दह दह' एवं जाँघों पर 'भस्मीकुरु भस्मीकुरु' लिखे। इस प्रकार प्रयोगार्थी आदर के साथ अपने शत्रु के वर्ण लिखे।

यह भी ध्यातव्य है कि क्षुद्र प्रयोजनों के लिए ये प्रयोग नहीं किये जाने चाहिए, अन्यथा प्रयोक्ता देवता द्वारा शापित भी हुआ करता है—

'क्षुद्रप्रयोजनैः पुत्र न कर्तव्यं कदाचन।
अज्ञानात्कुरुते यस्तु देवताशापमाप्नुयात्' ॥

अपने शत्रु के वर्ण को लिखकर उसे गदा से ताड़ित करे एवं १०८ बार जप करे। उसके भस्म का संग्रह करके उसे गुप्त रखे। मंगल की रात्रि में नगर से बाहर जाकर मूल मन्त्र पढ़कर उससे उसको अभिमन्त्रित करे। १८ हजार मन्त्रों से उसे अभिमन्त्रित करके फिर उस भस्म को शत्रु की मूर्द्धा पर डाल दे। ऐसा करने पर वह शत्रु सात रातों के भीतर निश्चय ही मर जायेगा।

उच्चाटनार्थ प्रयोग—मन्त्रवित् को चाहिए कि वह उच्चाटनार्थ शत्रु को ऊँट के ऊपर बैठा हुआ कल्पित करे और उसे ग्रस्त करके उस पर प्रयोग करे—

'ऊष्ट्रारूढं रिपुं ध्यात्वा ग्रस्तं कृत्वा तु मन्त्रवित्।
निक्षिपेत् सप्तरात्रं तु सप्तधा मन्त्रितं त्रिधा।
उच्चाटनं भवेच्छीघ्रं शिवस्य वचनं यथा'। (संख्यायनतन्त्र ८:१३)

स्तम्भनार्थ प्रयोग—प्रयोगार्थी रविवार को प्रेतवस्त्र (कफ़न) लाए। मंगलवार की रात्रि में नग्न होकर बगलामन्त्र का एक हजार जप करे। उस प्रेतवस्त्र को प्रेतभूमि (श्मशान) में भस्म करके उसकी राख को शत्रु-समूह के खान-पान में डाल दे। इससे शत्रु के पैर, पायु, श्रोत्र, नेत्र, बुद्धि आदि का स्तम्भन हो जायेगा।

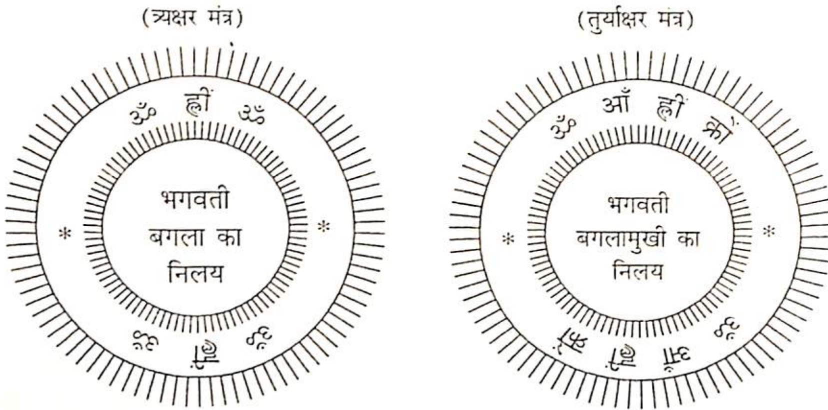
मन्दबुद्धित्व एवं दरिद्रता लाने के लिए प्रयोग—ताल के पत्ते पर शत्रु का नाम लिखकर उसे ग्रस्त करके रात्रि में रविवार के दिन दीपक आग से जला दे। ऐसा करने पर मासभर के भीतर व्यक्ति मन्दबुद्धि एवं निर्धन हो जायेगा।

मन्दबुद्धित्व, मन्दाग्नि एवं रोगापत्ति हेतु प्रयोग—रविवार के दिन श्मशान से शव-वस्त्र, चिता के अङ्गारे एवं चिता की लकड़ी लेकर उसी लकड़ी से लेखनी बनानी चाहिए। रविवार की रात्रि में ही शत्रु का नाम उसी लेखनी से लिखकर उसे बगला-बीज से आवेष्टित कर देना चाहिए और उसके अनन्तर उसे मूलमन्त्र से वेष्टित कर देना चाहिए। फिर जीवनी-मन्त्र को वह्निबीज से आवेष्टित कर देना चाहिए। फिर उसको वस्त्र में रखकर उसकी गोटी (गुटिका) बना लेना चाहिए। उस गुटिका को मृत व्यक्ति को लपेटने वाली रस्सी (प्रेतरज्जु) से आवेष्टित कर देना चाहिए। फिर उसे मंगल की रात्रि के समय कपाल पर स्थापित करना चाहिए। फिर रविवार की रात्रि में हाथ भर का प्रादेश गर्त खोदकर और उसमें गुटिका रखकर उस गर्त को आदरपूर्वक भस्म से भरकर मूलविद्या का नग्न होकर १० हजार जप करना चाहिए। इससे वह शत्रु प्रभावित हो उठेगा और उसे मन्दाग्नि, नेत्र एवं कान में मन्दता, हाथ-पैर में मन्दता, निर्बीजता तथा रोगाक्रान्तता से आपन्न हो उठेगा। इस प्रकार शत्रु का नाश हो जायेगा।

सावधानी—किसी मुमुक्षु को ये कार्य नहीं करने चाहिए—उसे किसी को भी पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए। यदि उसके प्राण ही सङ्कट में पड़ गये हों तो वह उसे कर सकता है किन्तु उसे इसके लिए अपना संस्कार भी करना चाहिए—

'मुमुक्षुभिर्न कर्तव्या परपीडा कदाचन।
प्राणैः कण्ठगतैः कुर्यात् पश्यात् संस्कारमाचरेत्' ॥

भगवती बगलामुखी का त्र्यक्षर एवं तुर्याक्षर मन्त्र



ध्यान—

'कुटिलालकसंयुक्तां मदाघूर्णितलोचनाम्।
मदिरामोदवदनां प्रवालसदृशाधराम्॥
सुवर्णशैलसुप्रख्यकठिनस्तनमण्डलाम्।
दक्षिणावर्तसन्नाभिसूक्ष्ममध्यमसंयुताम्' ॥

विनियोग—ॐ अस्य श्रीबगलाचतुरक्षरीमन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, ह्लीं बीजं, आं शक्तिः, क्रों कीलकं, श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

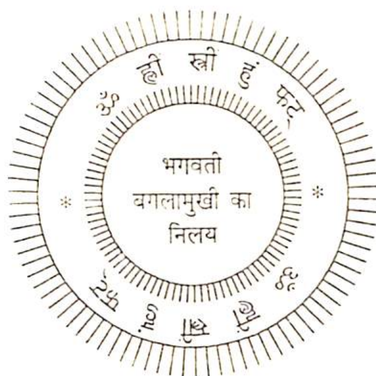
ऋष्यादि न्यास—श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, श्रीबगलामुखीदेवतायै नमः हृदये, ह्लीं बीजाय नमः गुह्ये, आं शक्तये नमः पादयोः, क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

भगवती बगला का पञ्चाक्षर मन्त्र—

ध्यान—

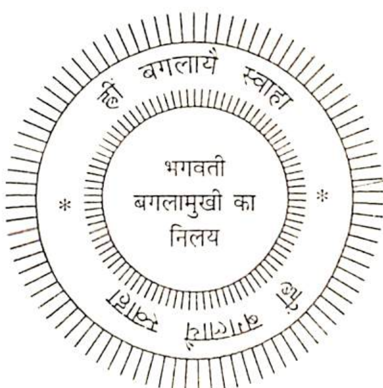
'प्रत्यालीढपरां घोरां मुण्डमालविभूषिताम्।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां पीताम्बरपरिच्छदाम्॥
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्॥
खड्गकर्त्रीसमायुक्तां सव्येतरभुजद्वयाम्।
कपोलोत्पलसंयुक्तां सव्यपाणियुगान्विताम्॥

पिङ्गोग्रैकसुखासीनां मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ।
प्रज्वलत् पितृ-भू-मध्यगतां द्रंष्ट्राकरालिनीम् ॥
तां खेचरां स्मेरवदनां भस्मालङ्कारभूषिताम् ।
विश्वव्यापकतोयान्ते पीतपद्मोपरिस्थिताम्' ॥



विनियोग—ॐ अस्य श्रीबगलामुखीपञ्चाक्षरमन्त्रस्य श्री अक्षोभ्य ऋषिः, बृहती छन्दः, श्रीबगलामुखीचिन्मयीदेवी देवता, हूँ बीजं, फट् शक्तिः, ह्लीं स्त्रीं कीलकं, श्री-बगलामुखीचिन्मयीदेवीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास—श्रीअक्षोभ्यऋषये नमः शिरसि, बृहतीछन्दसे नमः मुखे, श्री-बगलामुखीचिन्मयीदेवीदेवतायै नमः हृदि, ह्लीं बीजाय नमः गुह्ये, फट् शक्तये नमः पादयोः, ह्लीं स्त्रीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीबगलामुखीचिन्मयीदेवीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ ।



मंत्र जप : जापक को देखने मात्र से मन, प्राण, बुद्धि एवं इन्द्रियों के साथ उस व्यक्ति का (द्रष्ट व्यक्ति का) सम्पूर्ण वशीकरण।[1]

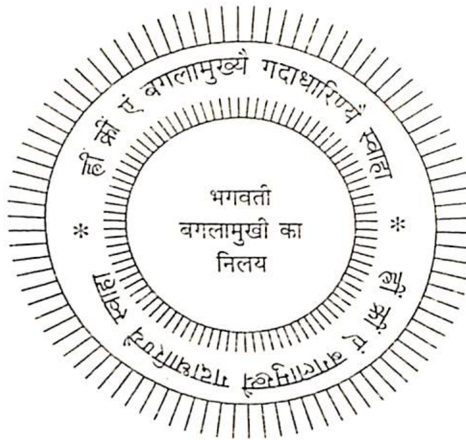
---

१. 'मायाद्या च द्विठान्ता भगवति बगलाख्या चतुर्थी निरूढा
विद्यैवास्ते य एनां जपति विधियुतस्तत्त्वशोधं निशीथे ।
दाराढ्यः पञ्चमैस्त्वां जयति स हि दृशा यं यमीक्षेत तं तं
स्वायत्त-प्राण-बुद्धीन्द्रियमयपतितं पादयोः पश्यति द्राक्' ॥ (बगलादशक)

करन्यास—ह्रां बगलायै नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं बगलायै नमः तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रूं बगलायै नमः मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रैं बगलायै नमः अनामिकाभ्यां हुं । ह्रौं बगलायै नमः कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ह्रः बगलायै नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

अङ्गन्यास—ह्रां बगलायै नमः हृदयाय नमः । ह्रीं बगलायै नमः शिरसे स्वाहा । ह्रूं बगलायै नमः शिखायै वषट् । ह्रैं बगलायै नमः कवचाय हुं । ह्रौं बगलायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रः बगलायै नमः अस्त्राय फट् ।

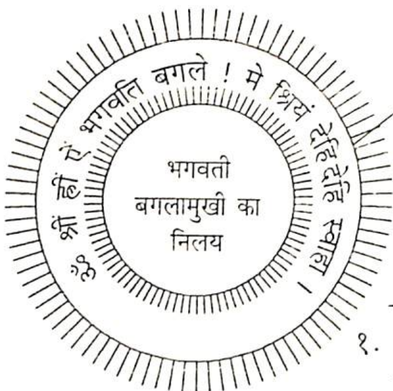
बगलापञ्चदशी मन्त्ररत्न



'माया-प्रद्युम्नयोनिव्यनुगतबगलाऽग्रे च मुख्यै गदाधारिण्यै
स्वाहेति तत्त्वेन्द्रियनिचयमयो मन्त्रराजश्चतुर्थः ।
पीताचारो य एनं जपति कुलदिशा शक्तियुक्तो निशायां
स प्राज्ञोऽभीप्सितार्थाननुभवति सुखं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः' ॥

(बगलादशक)

भक्तमन्दार मन्त्र

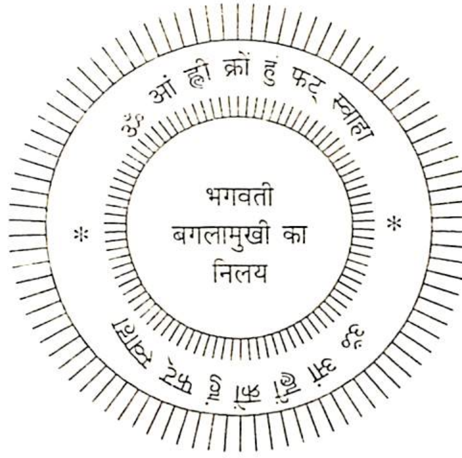


इस मन्त्र के जप का फल—'स श्रीसमालिङ्गितः स्यात्'[१] । अर्थात् समस्त ऐश्वर्यों एवं सम्पत्तियों की प्राप्ति ।

---

१. 'श्री-माया-योनिपूर्वा भगवति बगले ! मे श्रियं देहि देहि स्वाहेत्थं पञ्चमोऽयं प्रणवसहकृतो भक्तमन्दारमन्त्रः ।

भगवती बगला का अष्टाक्षर मन्त्र

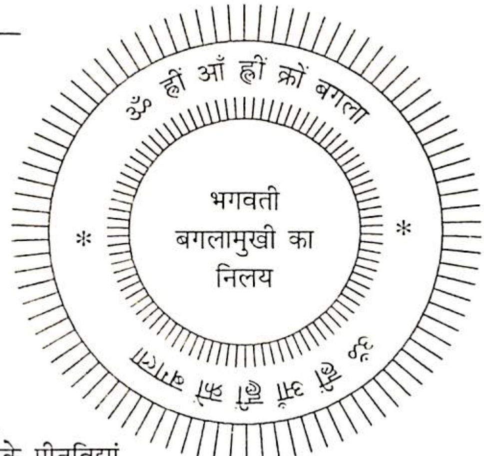


ध्यान— 'युवतीं च मदोन्मत्तां पीताम्बरधरां शिवाम्।
पीतभूषणभूषाङ्गीं समपीनपयोधराम्॥
मदिरामोदवदनां प्रवालसदृशाधराम्।
पानं पात्रं च शुद्धिं च बिभ्रतीं बगलां स्मरेत्'॥

विनियोग—ॐ अस्य श्रीबगलाऽष्टाक्षरात्मकमन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, ॐ बीजं, ह्लीं शक्तिः, क्रों कीलकं, श्रीबगलाम्बाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—श्री ब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, ॐ बीजाय नमः गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीबगलाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

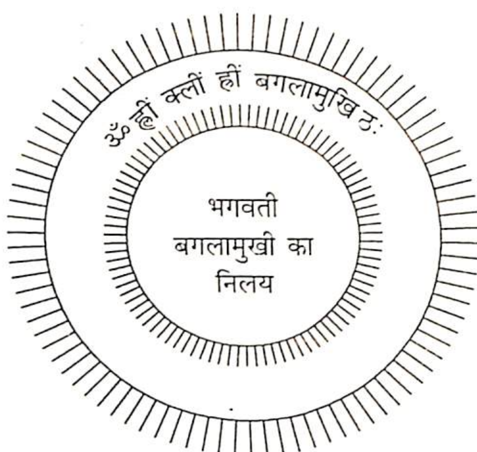
अष्टाक्षर मन्त्र का अन्य स्वरूप—



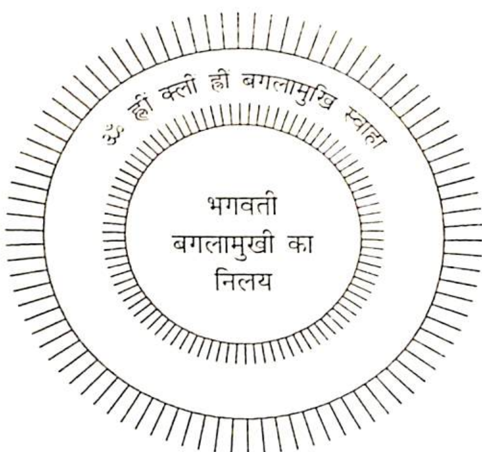
सौवर्ण्या मालयाऽमुं कनकविरचिते यन्त्रके पीतविद्यां
ध्यायन् पीताम्बरे ! त्वां जपति य इह स श्रीसमालिङ्गितः स्यात्'। (बगलादशक)

भगवती बगलामुखी का नवाक्षर एवं एकादशाक्षर मन्त्र

नवाक्षर मंत्र



एकादशाक्षर मंत्र



कहा गया है कि अन्य प्रयोगात्मक योगों की साधना में भले ही सिद्धि न प्राप्त हो किन्तु इस उक्त योग की साधना में सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

पञ्चास्त्रों की महिमा अकथ्य है। अघोरास्त्र, पाशुपतास्त्र, संहारास्त्र एवं मोहनास्त्र आदि ३६ अस्त्रों का भी स्तम्भन पञ्चास्त्रों द्वारा हो जाता है। पञ्चास्त्रशस्त्रविज्ञानी महासिद्ध होता है।

(क) रणादि में स्तम्भनार्थ 'वडवाबाण' का जप करना चाहिए।

(ख) त्रैलोक्यस्तम्भनार्थ 'उल्कामुखी' नाम के द्वितीयास्त्र का जप करना चाहिए।

(ग) ऋषि एवं देवताओं के स्तम्भन के लिए 'ज्वालामुखी' नामक तृतीयास्त्र का जप करना चाहिए।

(घ) ब्रह्मा-विष्णु से रक्षित रहने के लिए 'जातवेदमुखीबाण' का पाठ करना चाहिए।

(ङ) समस्त कर्मों की सिद्धि के लिए 'बृहद्भानुमुखीबाण' का जप करना चाहिए।

पञ्चास्त्र

वड़वाबाण	उल्कामुखी	ज्वालामुखी	जातवेदमुखी	बृहद्भानुमुखी-
(प्रथम बाण)	(द्वितीय बाण)	(तृतीय बाण)	(चतुर्थ बाण)	बाण (पञ्चम बाण)

बृहद्भानुमुखीबाण की महिमा—

(क) सवा करोड़ त्रिपुरा-समुदाय, (ख) ५० करोड़ भैरव, (ग) नारसिंह, (घ)

राक्षस, (ङ) करोड़ों पूतनाएँ आदि सभी का इस पञ्चम बाण (बृहद्भानुमुखीबाण) से स्तम्भन हो जाता है।

हाथों में पञ्चास्त्रों का सन्धान हो तथा मुख में ग्रसनास्त्र का स्मरण किया जाता रहे, त्रैलोक्यविजयास्त्र का भी स्मरण किया जाता रहे और फिर वेदिका के ऊपर बने कुण्ड में हवन किया जाय।

हवन-स्थान के सम्बन्ध में इस प्रकार विधान है—

'यथोक्तकुण्डे हुनेद्वेदिकायां विशेषतः।
चुल्ल्यां शकट्यां प्रेताग्नौ पञ्चस्थाने हुनेदपि'॥

हवन-स्थान

कुण्ड वेदिका चुल्ह शकट प्रेताग्नि

सर्वकार्यसिद्ध्यर्थ 'चत्वर' (चबूतरा, चौराहा, यज्ञार्थ समतल भूमि) में हवन किया जा सकता है—

'चत्वरे सर्वकार्यार्थः होमयेदुक्तमार्गतः'।

होम करने के पूर्व निम्नांकित वस्तुओं का भी प्रबन्ध करना आवश्यक है—

'शमितकुशानस्त्रुक्स्त्रुवौ चात्वालं व्रीहि च क्रमाद्।
प्रणिता प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली च षण्मुख॥
कलशं पूर्णपात्रं च ब्रह्माचार्यौ तु यागकः।
क्रमात् सर्वं तु सम्पाद्य होमं कुर्यात् प्रयोगवित्'॥

उद्देश्य—हवन का उद्देश्य एवं हवन—

(क) क्रूरकर्म के विनाशार्थ (द्रव्य—तालक)।

'क्रूरकर्मविनाशे तु तालकेन हुनेत्सुत'॥

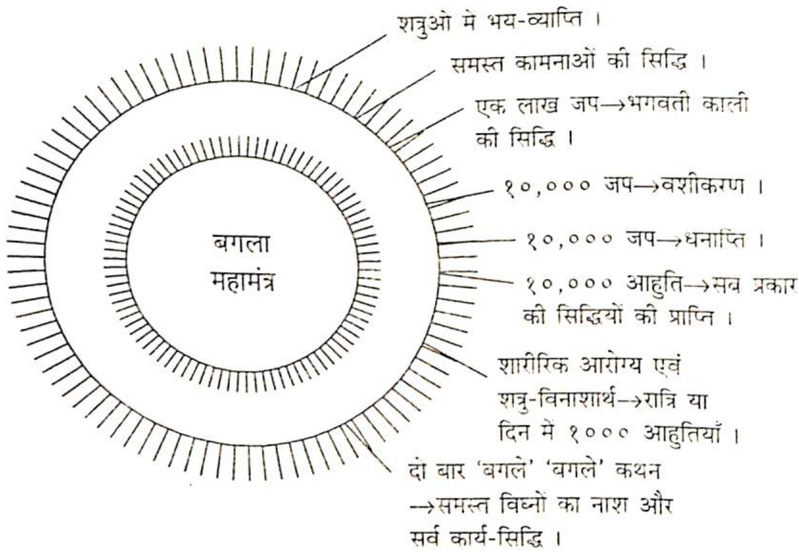
(ख) कूटकृत्रिम-नाशार्थ—

'पीतपुष्पैश्च जुहुयात् कूटकृत्रिमनाशने'।

क्रूर कर्मों में प्रयोग-सिद्धि हेतु देवता को अपने प्रेम, निष्ठा, नियमपालन एवं उचित द्रव्यों के प्रयोग से सन्तुष्ट भी करना चाहिए—'क्रूरे सन्तर्पयेद्देवं क्रूरविग्रह-वारणम्'।

बगला-महामन्त्र का माहात्म्य

मन्त्र-जप का फल (वह्निपुराण की दृष्टि)—



वह्निपुराण की दृष्टि—

'बगलेति महामन्त्रं सर्वेषां सर्वकामदम् ।
केवलेन जपेनैव लक्षेन काली सिद्ध्यति ॥
वशीकरणकर्मादि दशसाहस्रतो भवेत्' ।

× × × × × ×

'बगलेति मनोसंख्यापुरश्चरणकर्मणि ।
लक्षेन मन्त्रसिद्धिः स्यात् नास्त्यत्र युगसंख्यकम् ॥
ततो वश्यादि कर्तव्यं दशसाहस्रसंख्यया ।
शरीराऽरोग्यतो वाऽपि धनेच्छुश्चायुतं जपेत्' ॥

× × × × × ×

'सहस्रमात्रहोमेन सर्वसिद्धिर्न चान्यथा ।
नास्त्यपेक्षा ऋष्यादेः स्तुतिपाठादिकस्य वा ।
स्तुतिर्वा कवचं वाऽपि ऋष्यादिन्यास एव च ॥
बगलेति स्वयं सर्वसिद्धविद्या इति प्रिये ।
शरीराऽऽरोग्यतो देवि ! वैरिनिग्रहतोऽपि वा ।
दिवानक्तं च कर्तव्याः सहस्रमानतो हुतीः ॥
केवलाहुतिमात्रेण रात्रावारोग्यतां लभेत् ।
बगले ! इति यो द्विश्चात्युक्त्वोच्चैर्यत्र वा वदेत् ॥
पथिस्था विघ्नदाः सर्वे पलायन्ते तमोक्षिताः ।

भवेद्धि सफलं कर्म बगलेति स्मरन् जनः ।
बगलाजापिनं दृष्ट्वा सर्वे भीतिमवाप्नुयुः' ॥

(वह्निपुराण)

बगलामहामन्त्र की विशेषताएँ

१०,००० मन्त्र से पुरश्चरण	१ या २ लाख मन्त्र-जप से मन्त्रसिद्धि	मन्त्र के प्रयोग में ऋष्यादिन्यास, स्तुति, पाठ, ऋषि, कवच एवं न्यास की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह स्वयमेव सिद्धविद्या है ।	'बगले' 'बगले' २ बार कह देने मात्र से सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं	बगलामन्त्र का जप करने वाले से सभी भयभीत हो जाते हैं । (वह्निपुराण-पाशुपतदानाध्याय)

मेरुतन्त्रोक्त ३६ वर्णों का बगला-महामन्त्र

'ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' ।

'मातर्भञ्जय मद्‌विपक्षवदनं जिह्वाञ्चलां कीलय
ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रयाशु धिषणामंघ्र्योर्गतिं स्तम्भय ।
शत्रूंश्चूर्णय चूर्णयाशु गदया गौराङ्गि पीताम्बरे
विघ्नौघं बगले ! हर प्रतिदिनं कल्याणि ! तुभ्यं नमः' ॥

श्रीबगलाशाबर मन्त्र (८९ अक्षर का मन्त्र)

'ॐ मलयाचल बगला भगवती महाक्रूरी महाकराली राजमुखबन्धनं ग्राममुख-बन्धनं ग्रामपुरुषबन्धनं कालमुखबन्धनं चौरमुखबन्धनं व्याघ्रमुखबन्धनं सर्वदुष्टग्रहबन्धनं सर्वजनबन्धनं वशीकुरु हुं फट् स्वाहा' ।

श्रीबगलामाला-मन्त्र (५१४ अक्षर का मन्त्र)—

'ॐ नमो भगवति ! ॐ नमो वीर प्रताप विजय भगवति बगलामुखि ! मम सर्व-निन्दकानां सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रय, बुद्धिं विनाशय विनाशय अपरबुद्धिं कुरु कुर्वात्मविरोधिनां शत्रूणां शिरोललाटमुखनेत्रकर्णनासिकोरु-पदाणुरेणुदन्तोष्ठजिह्वातालुगुह्यगुदकटिजानुसर्वाङ्गेषु केशादिपादपर्यन्तं पादादि- केशपर्यन्तं स्तम्भय स्तम्भय, खें खीं मारय मारय परमन्त्र-परयन्त्र-परतन्त्राणि छेदय छेदयात्ममन्त्र-यन्त्र-तन्त्राणि रक्ष रक्ष, ग्रहं निवारय निवारय, व्याधिं विनाशय विनाशय, दुःखं हर हर, दारिद्र्यं निवारय निवारय, सर्वमन्त्रस्वरूपिणि ! सर्वतन्त्रस्वरूपिणि ! सर्वशिल्पप्रयोग-स्वरूपिणि ! सर्वतत्त्वस्वरूपिणि ! दुष्टग्रहभूतग्रहाकाशग्रहपाषाणग्रहसर्वचाण्डालग्रहयक्ष-किन्नरकिम्पुरुषग्रहभूतप्रेतपिशाचानां शाकिनीडाकिनीग्रहानां पूर्वदिशां बन्धय बन्धय,

वार्तालि ! मां रक्ष रक्ष, दक्षिणदिशां बन्धय बन्धय, किरात-वार्तालि ! मां रक्ष रक्ष, पश्चिमदिशां बन्धय बन्धय, स्वप्न-वार्तालि ! मां रक्ष रक्षोत्तरदिशां बन्धय बन्धय, कालि ! मां रक्ष रक्षोर्ध्वदिशं बन्धय बन्धयोग्रकालि ! मां रक्ष रक्ष, पातालदिशं बन्धय बन्धय, बगलापरमेश्वरि ! मां रक्ष रक्ष, सकलरोगान् विनाशय विनाशय, सर्वशत्रु- पलायनाय पञ्चयोजनमध्ये राजजनस्त्रीवशतां कुरु कुरु, शत्रून् दह दह, पच पच, स्तम्भय स्तम्भय, मोहय मोहयाकर्षयाकर्षय, मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय, हुं फट् स्वाहा'।

ब्रह्मास्त्रमालामन्त्र (७७७ अक्षरों का मन्त्र)

'ॐ नमो भगवति चामुण्डे ! नरकङ्कगृध्रोलूकपरिवारसहिते श्मशानप्रिये ! नररुधिर-मांस-चरु-भोजनप्रिये ! सिद्ध-विद्याधरवृन्द-वन्दितचरण ! ब्रह्मेश-विष्णु-वरुण-कुबेर-भैरवी-भैरवप्रिये ! इन्द्र-क्रोध-विनिर्गतशरीरे ! द्वादशादित्यचण्डप्रभेऽस्थि-मुण्डकपालमालाभरणे ! शीघ्रं दक्षिणदिश्यागच्छागच्छ, मानय मानय, नुद नुद, मम शत्रून् मारय मारय, चूर्णय चूर्णयावेशयावेशय, त्रुट त्रुट, त्रोटय त्रोटय, महाभूतान् जृम्भय जृम्भय, ब्रह्मराक्षसानुच्चाटयोच्चाटय, भूतप्रेतपिशाचान् मूर्च्छय मूर्च्छय, मम शत्रूनुच्चाट-योच्चाटय, शत्रून् चूर्णय चूर्णय, सत्यं कथय कथय, वृक्षेभ्यः सन्नाशय सन्नाशयार्कं स्तम्भय स्तम्भय, गरुडपक्षपातेन विषं निर्विषं कुरु कुरु । लीलाङ्गालयवृक्षेभ्यः परिपातय परिपातय, शैल-कानन-महीं मर्दय मर्दय, मुखमुत्पाटयोत्पाटय, पात्रं पूरय पूरय, भूतभविष्यं यत् सर्वं कथय कथय, कृन्त कृन्त, दह दह, पच पच, मथ मथ, प्रमथ प्रमथ, घर्घर घर्घर, ग्रासय ग्रासय, विद्रावय विद्रावय, विद्रावयोच्चाटयोच्चाटय, विष्णुचक्रेण वरुणपाशेनेन्द्रवज्रेण ज्वरं नाशय नाशय, प्रविदं स्फोटय स्फोटय, सर्वशत्रून् मम वशं कुरु कुरु, पातालं प्रत्यन्तरिक्षमाकाशग्रहमानयानय, करालि ! विकरालि ! महाकालि ! रुद्रशक्ते ! पूर्वदिशं निरोधय निरोधय, पश्चिमदिशं स्तम्भय स्तम्भय, दक्षिणदिशं निधय निधयोत्तरदिशं बन्धय बन्धय, ह्रां ह्रीं ॐ बन्धय बन्धय, ज्वालामालिनि ! स्तम्भिनि ! मोहिनि ! मुकुटविचित्रकुण्डलनागादिवासुकीकृतहारभूषणे ! मेखलाचन्द्रार्कहासप्रभञ्जने ! विद्युत्स्फुरितसकाशसाट्टहासे ! निलय निलय, हुं फट्, विजृम्भितशरीरे ! सप्तद्वीपकृते, ब्रह्माण्ड-विस्तारित-स्तनयुगलेऽसि-मुसल-परशु-तोमर-क्षुरि-पाश-हलेषु वीरान् शमय शमय, सहस्रबाहुपरापरादिशक्तिविष्णुशरीरे ! शङ्कर-हृदयेश्वरि ! बगलामुखि ! सर्वदुष्टान् विनाशय विनाशय हुं फट् स्वाहा'।

'ॐ ह्लीं बगलामुखि ! ये केचनापकारिणः सन्ति तेषां वाचं मुखं स्तम्भय स्तम्भय, जिह्वां कीलय कीलय, बुद्धिं विनाशय विनाशय, ह्लीं ॐ स्वाहा'।

'ॐ ह्लीं ह्लीं हिलि हिलि, शत्रूणां वाचं मुखं पदं स्तम्भय, शत्रुजिह्वां कीलय, शत्रूणां दृष्टिमुष्टिगति-मति-दन्त-तालुजिह्वां बन्धय बन्धय, मारय मारय, शोषय शोषय, हुं फट् स्वाहा'।

श्रीबगलोपसंहारविद्या (५८ अक्षरों का मन्त्र)

'ग्लौं हुं ऐं क्रीं श्रीं कालि, कालि, महाकालि ! एहि एहि कालरात्रि ! आवेशय आवेशय महामोहे ! महामोहे ! स्फुर स्फुर, प्रस्फुर प्रस्फुर, स्तम्भनास्त्रशमनि ! हुं फट् स्वाहा' ।

तार्क्ष्यमाला मन्त्र (२८ अक्षरों का मन्त्र)

'ॐ क्षीं नमो भगवते ! क्षीं पक्षिराजाय सर्वाभिचारध्वंसकाय क्षीं ॐ फट् स्वाहा' ।

बगला-शापोत्कीलन मन्त्र (३५ अक्षरों का मन्त्र)

'ॐ हूं हूं क्लीं क्लीं ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं बगलाशापमुत्कीलयोत्कीलय स्वाहा' ।

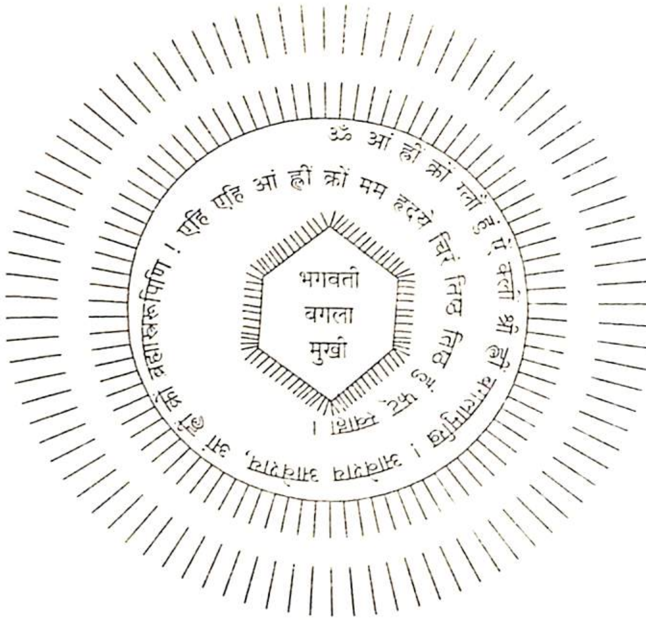
अन्योपयोगी मन्त्र

मुखशोधनमन्त्र 'ऐं ह्रीं ऐं'	मन्त्रचैतन्य (१०८ बार हृदय में जप) 'ईं मूलं ईं'	दीपनी (हृदय में ७बार जप) 'ॐ मूलं ॐ'	प्राणयोजक मन्त्र (७ बार जप्य) 'ह्रीं मूलं ह्रीं'
कुल्लुका-मन्त्र (शिर पर जाप्य) 'ॐ हूं क्षौं'	सेतुमन्त्र (हृदय में जप्य) १. ब्राह्मण-क्षत्रिय हेतु–'ॐ' २. वैश्यों के लिए 'फट्' ३. शूद्रों के लिए 'ह्रीं'	महासेतुमन्त्र (विशुद्ध चक्र/कण्ठ में जप्य) 'स्त्रीं'	निर्वाण-मन्त्र (मणि-पूरक चक्र/नाभि में जप्य) 'ॐ अं क्षं मूलं ऐं अं क्षं ॐ'

बगलाहृदय मन्त्र

यदि श्रीबगलाहृदय मन्त्र को लें तो सांख्यायनतन्त्र में इसके अस्सी वर्ण हैं किन्तु मन्त्रोद्धार की दिशा में उसका आरम्भ पाशबीज 'आं' से माना गया है और उसमें प्रणव (ओंकार) का उल्लेख ही नहीं है किन्तु 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' द्वारा प्रकाशित सांख्यायनतन्त्र में निहित यह मन्त्र सप्रणव है। उसके पीछे तर्क यह दिया गया है कि 'ॐ' वर्ण संयोजित किये बिना ८० की संख्या पूर्ण ही नहीं होती। यह समस्या 'ममैव' के स्थान में 'मम' मात्र ग्रहण करने के कारण हुई है। इसीलिए 'ॐ' अक्षर शब्दपूर्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है।

सांख्यायनतन्त्र में जो 'हृदयमन्त्र' का उद्धार प्रस्तुत किया गया है वह 'बगामुखीरहस्य' के स्वरूप से भिन्न है। इसके अनुसार मन्त्र-स्वरूप ५३ वर्णों का है—



सांख्यायनतन्त्र का मत—

'अशीतिवर्णसंयुक्तो बगलाहृदयं मनुः ।
वन्ध्यामुन्मार्जयेदङ्गं बगलाहृदयेन च ॥
वन्ध्या पुत्रवती चैव षण्मासादि भवति ध्रुवम् ।
बगलाहृदयेनैव त्रिसप्तमभिमन्त्रितम्' ॥

(सांख्यायनतन्त्र)

सांख्यायनतन्त्र में 'अशीतिवर्णसंयुक्तौ' कहा गया है।

बगलाहृदय मन्त्र का वैलक्षण्य एवं उसकी अनुपमेयता—

'न ध्यानं न च होमं च न जपं न च तर्पणम् ।
सकृदुच्चारणात् मन्त्राच्चिन्तितं भवति ध्रुवम् ॥
न चाभिषेकं न च मन्त्रदीक्षा, न चात्र दिक्कालऋतुश्च देवता ।
न चापि पञ्चेन्द्रियनिग्रहं च, सकृत् स्मरन् वै बगलाख्यहृन्मनुम् ॥
बगलाहृदयं मन्त्रं ब्रह्मादीनां च दुर्लभम् ।
सकृत्स्मरणमात्रेण, वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥
दरिद्रोऽपि भवेच्छ्रीमान् स्तब्धीभवति पण्डितः ।
चतुरो मुखरश्चैव कीर्तिमान् निन्दको भवेत् ॥
कवीश्वरोऽपि चोन्मादी भोगासक्तोऽपि रोगवान् ।

सत्यवाक् क्षयरोगी च कुलजो निन्दितो भवेत् ।
मानी लज्जाविहीनश्च नैष्ठिको भ्रष्टतां व्रजेत्' ॥

(सांख्यायनतन्त्र, पटल २८)

बगलामुखीरहस्य में हृदय के अनेक प्रयोग एवं इसकी अप्रतिम महत्ता के विषय में सांख्यायनोक्त तथ्यों का उल्लेख भी नहीं किया गया है।

यदि दीक्षा-विधानपूर्वक पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण किया जाय तो बगलामहाविद्या के मन्त्र सिद्ध हो सकते हैं। यदि एकाक्षर मन्त्र से प्रारम्भ करके क्रमशः मन्त्रक्रमानुसार साधना करते-करते फिर षट्त्रिंशदक्षर मन्त्र का जप किया जाय तो साफल्य सुकर होगा। सीधे ३६,१२०,१६०,५१४,७७७ आदि वर्णों के मन्त्रों का अक्रमिक जप करना प्रशस्त नहीं है।

'बगलामहाविद्या' भारत की अत्यन्त रहस्यमयी तान्त्रिकी विद्या है। महाभारत-काल में इसका ज्ञान भगवान् श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि को था। यह अमोघ अस्त्र है। यह अप्रत्युत्तरित एवं अनिरुध्य है। यह सर्वोच्च दिव्यास्त्र है। आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि दिव्यास्त्रों में 'ब्रह्मास्त्र' अनुपमेय है।

अशीत्यक्षरात्मक बगलामन्त्र (८० अक्षरों का मन्त्र)

'आं ह्लीं क्रों ग्लौं हुं ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं बगलामुखि ! आवेशय आवेशय, आं ह्लीं क्रों ब्रह्मास्त्ररूपिणि ! एहि एहि आं ह्लीं क्रों मम हृदये आवाहय आवाहय, सान्निध्यं कुरु कुरु आं ह्लीं क्रों ममैव हृदये चिरं तिष्ठ तिष्ठ, आं ह्लीं क्रों हुं फट् स्वाहा'।

शताक्षरी मन्त्र (१०० अक्षरों का मन्त्र)—'ह्लीं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ग्लौं ह्लीं बगलामुखि ! स्फुर स्फुर सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय, प्रस्फुर प्रस्फुर, विकटाङ्गि ! घोररूपि ! जिह्वां कीलय, महाभ्रमकरि ! बुद्धिं नाशय, विराण्मयि ! सर्वप्रज्ञामयि ! प्रज्ञां नाशय, उन्मादं कुरु कुरु, मनोपहारिणि ! ह्लीं ग्लौं श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं ह्लीं स्वाहा'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीबगलामुखीशताक्षरीमहामन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, जगत्स्तम्भनकारिणी श्रीबगलामुखी देवता, ह्लीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, ऐं कीलकं, जगत्स्तम्भनकारिणीश्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः'।

ऋष्यादिन्यास—'श्रीब्रह्माऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, जगत्-स्तम्भनकारिणीश्रीबगलामुखीदेवतायै नमः हृदि, ह्लीं बीजाय नमः लिङ्गे, ह्रीं शक्तये नमः पादयोः, ऐं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, जगत्स्तम्भनकारिणीश्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ'।

करन्यास—'ॐ ह्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्लूं

मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ ह्लैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ ह्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्'।

अङ्गन्यास—'ॐ ह्लां हृदयाय नमः। ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्लूं शिखायै वषट्। ॐ ह्लैं कवचाय हुं। ॐ ह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ह्लः अस्त्राय फट्'।

ध्यान—

'पीताम्बरधरां सौम्यां पीतभूषणभूषिताम्।
स्वर्णसिंहासनस्थां च मूले कल्पतरोरधः॥
वैरिजिह्वाभेदनार्थं, छुरिकां बिभ्रतीं शिवाम्।
पानपात्रं गदां पाशं धारयन्तीं भजाम्यहम्'॥

सप्तविंशोत्तरशताक्षर मन्त्र (१२७ अक्षरों का मन्त्र)

परविद्याभेदन मन्त्र—'ॐ ह्लीं श्रीं ह्लीं ग्लौं ऐं क्लीं हं क्षीं बगलामुखि ! परप्रयोगं ग्रस ग्रस, ॐ ८ ब्रह्मास्त्ररूपिणि परविद्याग्रसिनि ! भक्षय भक्षय, ॐ ८ परप्रज्ञाहारिणि ! प्रज्ञां भ्रंशय भ्रंशय, ॐ ८ स्तम्भनास्त्ररूपिणि ! बुद्धिं नाशय नाशय, पञ्चेन्द्रियज्ञानं भक्ष भक्ष, ॐ ८ बगलामुखि ! हुं फट् स्वाहा'॥

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीपरविद्याभेदिनीबगलामुखीमन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्द, परविद्याभक्षिणीश्रीबगलामुखी देवता, आं बीजं, ह्लीं शक्तिः, क्रों कीलकं, देवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः'।

ऋष्यादिन्यास—'श्रीसविताऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, श्री-बृहद्मुखीदेवतायै नमः हृदि, ह्लीं बीजाय नमः गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, ॐ कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीबृहद्भानुमुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ'।

षडङ्गन्यास, करन्यास एवं अङ्गन्यास प्रथमास्त्रवत् करणीय हैं।

ध्यान—

'कालानलनिभां देवीं ज्वलत्पुञ्जशिरोरुहाम्।
कोटिबाहुसमायुक्तां वैरिजिह्वासमन्विताम्॥
स्तम्भनास्त्रमयीं देवीं दृढपीनपयोधराम्।
मदिरामदसंयुक्तां बृहद्भानुमुखीं भजे'॥

एकाक्षरी मन्त्र : 'ह्लीं'/'ह्रीं'

'यत्तदेकाक्षरीमन्त्रं तत्तन्मन्त्रेषु जीवनम्।
उत्तमं बीजसंयुक्तं मन्त्रं सर्वार्थसाधनम्॥
नानामन्त्रेषु मन्त्रे वा बीजाद्यं सर्वसिद्धिदम्।
निर्बीजमेव निर्वीर्यं शिवस्य वचनं यथा॥

तद्बीजोद्धारमनघं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
एकाक्षरीमहामन्त्रं बगलाया: सुसिद्धिदम् ।।
× × × × × × ×
पूजनञ्च प्रयोगञ्च वक्ष्येऽहं तव पुत्रक ।
सोऽन्तरान्तसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम् ।।
रेफाक्रान्तं बिन्दुयुक्तं ब्रह्मास्त्रैकाक्षरी मनु: ।
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोऽयं गायत्री समुदाहृतम् ।।
देवता बगला नाम्नी शक्तिश्चिन्मयरूपिणी ।
लं बीजं हूं च शक्तिश्च ईं कीलकमुदाहृतम् ।।
भूतशुद्धिं भूतशुद्धिं मातृकाद्वितयं न्यसेत् ।
मन्त्राक्षरेण विन्यस्य तद्विधिं शृणु पुत्रक ।।
नेत्रबाणचतु:पञ्च नवपञ्च दशाक्षरम् ।।
सर्वं न्यासविधिं कृत्वा बगलामातृकां न्यसेत् ।
तन्मातृकाविधिं वक्ष्ये सारात्सारतरं परम् ।।
ध्यानेन मन्त्रसिद्धि: स्याद्ध्यानं सर्वार्थसाधनम् ।
ध्यानं विना भवेन्मूक: सिद्धमन्त्रोऽपि पुत्रक ।।
वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानर: शीतति ।
क्रोधी शाम्यति दुर्जन: सुजनति क्षिप्रानुग: खञ्जति ।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रित:
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नम:' ।।

(सांख्यायनतन्त्र, पञ्चम पटल)

महाविद्या बगलामुखी के दो औपनिषदिक मन्त्र





"हे स्थिरामुखि ! सभी दुष्टों के वचन, मुख, पद का स्तम्भन करो। वैशारदी जिह्वा का कीलन करो। बुद्धि का विनाश करो'।

भगवती बगलामुखी के पञ्चास्त्र मन्त्र

प्रथमास्त्र : वडवामुखी

(५५ अक्षरों का मन्त्र)

'ॐ ह्लीं हूँ ग्लौं बगलामुखि ! ह्लां ह्लीं ह्लूं सर्वदुष्टानां, ह्लैं ह्लौं ह्लः वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय, ह्लः ह्लौं ह्लैं जिह्वां कीलय, ह्लूं ह्लीं ह्लां बुद्धिं विनाशय, ग्लौं हूँ ह्लीं ॐ हुं फट्'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीवडवामुखी-अस्त्रमन्त्रस्य वशिष्ठ ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, रणस्तम्भनकारिणी श्रीबगलामुखी देवता, लं बीजं, हं शक्तिः, ईं कीलकं, श्रीबगलामुखी-देवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः'।

ऋष्यादि न्यास—'श्रीवशिष्ठऋषये नमः शिरसि, पंक्तिछन्दसे नमः मुखे, रणस्तम्भनकारिणीश्रीबगलामुखीदेवतायै नमः हृदि, लं बीजाय नमः गुह्ये, हं शक्तये नमः पादयोः, ईं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ'।

करन्यास—'ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्लीं सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लीं बुद्धिं विनाशय ॐ ह्लीं स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्'।

अङ्गन्यास—'ॐ ह्लीं हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं बगलामुखि शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लीं सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं, ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लीं बुद्धिं विनाशय ॐ ह्लीं स्वाहा अस्त्राय फट्'।

ध्यान-स्वरूप—

'पीताम्बरधरां देवीं द्विसहस्रभुजान्विताम्।
सान्द्रजिह्वां गदां चास्त्रं धारयन्तीं शिवां भजे'॥

द्वितीयास्त्र : उल्कामुखी

(५८ अक्षरों का मन्त्र)

'ॐ ह्लीं ग्लौं बगलामुखि ! ॐ ह्लीं ग्लौं सर्वदुष्टानां ॐ ह्लीं ग्लौं वाचं मुखं पदं ॐ ह्लीं ग्लौं स्तम्भय स्तम्भय, ॐ ह्लीं ग्लौं जिह्वां कीलय, ॐ ह्लीं ग्लौं बुद्धिं विनाशय ॐ ह्लीं ग्लौं ह्लीं ॐ स्वाहा'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीउल्कामुखीअस्त्रमन्त्रस्य श्रीअग्निवराह ऋषिः, ककुप्

छन्दः, जगत्स्तम्भनकारिणी श्रीउल्कामुखी देवता, ह्लीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, ग्लौं कीलकं, श्रीउल्कामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—'श्रीअग्निवराहऋषये नमः शिरसि, ककुप्छन्दसे नमः मुखे, जगत्स्तम्भनकारिणीश्रीउल्कामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ'।

षडङ्गन्यास एवं अङ्गन्यास प्रथमास्त्रवत्।

ध्यान—

'विलयानलसङ्काशां वीरां वेदसमन्विताम्।
विराण्मयीं महादेवीं स्तम्भनार्थे भजाम्यहम्'॥

विनियोग—श्रीबगलादेवी-प्रसाद-सिद्धिद्वारा परविद्याभेदनार्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि न्यास—'श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, परविद्या-भक्षिणीश्रीबगलामुखीदेवतायै नमः हृदि, आं बीजाय नमः गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः पादयोः, क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीबगलादेवीप्रसादसिद्धिद्वारा परविद्याभेदनार्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

करन्यास—'आं ह्रीं क्रों अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, वद वद तर्जनीभ्यां स्वाहा, वाग्वादिनि मध्यमाभ्यां वषट्, स्वाहा अनामिकाभ्यां हुं, ऐं क्लीं सौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ह्लीं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्'।

अङ्गन्यास—आं ह्रीं क्रों हृदयाय नमः, वद वद शिरसे स्वाहा, वाग्वादिनि शिखायै वषट्, स्वाहा कवचाय हुं, ऐं क्लीं सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्लीं अस्त्राय फट्।

ध्यान—

'सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वाकर्षणकारिणीम्।
सर्वविद्याभक्षिणीं च भजेऽहं विधिपूर्वकम्'॥

श्रीबगलागायत्री

(२७ अक्षर का मन्त्र)

मन्त्र—'ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे स्तम्भनबाणाय धीमहि। तन्नो बगला प्रचोदयात्'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीबगलागायत्रीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, ब्रह्मास्त्रबगला देवता, ॐ बीजं, ह्लीं शक्तिः, विद्महे कीलकं, श्रीब्रह्मास्त्रबगलाम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः'।

ऋष्यादिन्यास—'श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, श्रीब्रह्मास्त्र-बगलादेवतायै नमः हृदि, ॐ बीजाय नमः गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, विद्महे कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीब्रह्मास्त्रबगलाम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ'।

करन्यास—'ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, स्तम्भनबाणाय धीमहि तर्जनीभ्यां स्वाहा, तन्नो बगला प्रचोदयात् मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे अनामिकाभ्यां हुं, स्तम्भनबाणाय धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, तन्नो बगला प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्'।

अङ्गन्यास—'ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे हृदयाय नमः, स्तम्भनबाणाय धीमहि शिरसे स्वाहा, तन्नो बगला प्रचोदयात् शिखायै वषट्, ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे कवचाय हुं, स्तम्भन-बाणाय धीमहि नेत्रत्रयाय वौषट्, तन्नो बगला प्रचोदयात् अस्त्राय फट्'।

ध्यान—प्रातःकाल—

'गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्॥
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च बिभ्रतीम्।
पीताम्बरधरां सौम्यां दृढपीनपयोधराम्॥
हेमकुण्डलभूषाङ्गीं पीतचन्द्रार्द्धशेखराम्।
पीतभूषणभूषाङ्गीं स्वर्णसिंहासने स्थिताम्'॥

मध्याह्नकाल—

'दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं
भूभृत्स्तम्भनकारणं मृगदृशां चेतःसमाकर्षणम्।
सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशोः कारुण्यपूर्णेक्षणं
विघ्नौघं बगले ! हर प्रतिदिनं कल्याणि ! तुभ्यं नमः'॥

तृतीयास्त्र : जातवेदमुखी

(६१ अक्षरों का मन्त्र)

मन्त्र—'ॐ ह्लीं हसौं ह्लीं ॐ बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां ॐ ह्लीं हसौं ह्लीं ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय, ॐ ह्लीं हसौं ह्लीं ॐ जिह्वां कीलय, ॐ ह्लीं हसौं ह्लीं ॐ बुद्धिं नाशय नाशय ॐ ह्लीं हसौं ॐ स्वाहा'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीजातवेदमुखीअस्त्रमन्त्रस्य श्रीकालाग्निरुद्र ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, श्रीजातवेदमुखी देवता, ॐ बीजं, ह्लीं शक्तिः, हं कीलकं, श्रीजातवेदमुखी-देवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः'।

ऋष्यादि न्यास—श्रीकालाग्निरुद्रऋषये नमः शिरसि, पंक्तिछन्दसे नमः मुखे, श्री-जातवेदमुखीदेवतायै नमः हृदि, ॐ बीजाय नमः गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, हं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीजातवेदमुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ'।

षडङ्गन्यास, करन्यास एवं अङ्गन्यास प्रथमास्त्रवत्।

ध्यानस्वरूप—'जातवेदमुखीं देवीं देवतां प्राणरूपिणीम्।
भजेऽहं स्तम्भनार्थं च चिन्मयीं विश्वरूपिणीम्'॥

चतुर्थास्त्र : ज्वालामुखी

(१२० अक्षरों का मन्त्र)

मन्त्र—'ॐ ह्लीं रां रीं रूं रैं रौं प्रस्फुर प्रस्फुर बगलामुखि ! ॐ-१२ सर्वदुष्टानां ॐ-१२ वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय, ॐ-१२ जिह्वां कीलय कीलय, ॐ-१२ बुद्धिं विनाशय विनाशय ॐ-१२ स्वाहा'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीज्वालामुखीअस्त्रमन्त्रस्य श्री अत्रि ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीज्वालामुखी देवता, ॐ बीजं, ह्रीं शक्तिः, हं कीलकं, श्रीज्वालामुखीदेवताम्बा-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः'।

ऋष्यादि न्यास—'श्रीअत्रिऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, श्री-ज्वालामुखीदेवतायै नमः हृदि, ॐ बीजाय नमः गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः पादयोः, हं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे, श्रीज्वालामुखीदेवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ'।

प्रथमास्त्र मन्त्र के समान ही षडङ्गन्यास, करन्यास एवं अङ्गन्यास करणीय हैं।

ध्यान—

'ज्वलत्पद्मासनयुक्तां कालानलसमप्रभाम्।
चिन्मयीं स्तम्भिनीं देवीं भजेऽहं विधिपूर्वकम्'॥

पञ्चमास्त्र : बृहद्भानुमुखी

(१६० अक्षरों का मन्त्र)

मन्त्र—'ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ बगलामुखि ! ॐ-१२ ॐ सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ॐ-१२, ॐ जिह्वां कीलय ॐ-१२-ॐ बुद्धिं नाशय ॐ-१२, ॐ ह्लीं ॐ स्वाहा'।

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीबृहद्भानुमुखीअस्त्रमन्त्रस्य श्रीसविता ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीबृहद्भानुमुखी देवता, ह्लीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, ॐ कीलकं, श्रीबृहद्भानुमुखी-देवताम्बाप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः'।

भगवती बगलामुखी का अष्टाक्षर मन्त्र

मन्त्रोद्धार एवं मन्त्र का परिचय—

'वेदादिशक्तिमादौ च पाशबीजमनन्तरम्।
स्तब्धमायां समुच्चार्य अङ्कुशं बीजमेव च॥
बगला च समायुक्तं मन्त्रमष्टाक्षरं भवेत्।

ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोऽथ गायत्री समुदाहृतम् ।
ओं बीजं ह्रीं शक्तिश्च क्रौं कीलकमुदाहृतम् ।।
न्यासविद्या च बगलामन्त्रराजवदाचरेत्' ।।
(सांख्यायनतन्त्र, ३०।३-५)

ध्यान—'युवतीं च मदोन्मत्तां पीताम्बरधरां शिवाम् ।
पीतभूषणभूषाङ्गीं समपीनपयोधराम् ।।
मदिरामोदवदनां प्रवालसदृशाधराम् ।
पानपात्रं च शुद्धिं च दधतीं बगलां भजे' ।।

इस प्रकार ध्यान करके साधक को चाहिए कि वह बगलाष्टाक्षरी विद्या (मन्त्र) का जप करे।

ध्यान की प्रक्रिया—

(१) ध्यान के साथ ही जपारम्भ किया जाय।

(२) आदि और अन्त दोनों में भगवती का ध्यान किया जाय।

'ध्यानेनैव जपं कुर्याद्ध्यायेदाद्यन्तयोः परम्' ।

१. अशोक वृक्ष की जड में आसनस्थ होकर हल्दी की माला से वर्णलक्षक मन्त्र-जप किया जाय।

२. जपोपरान्त अस्सी हजार तर्पण किया जाय।

३. फिर उसका दशांश घृत एवं मधु से हवन किया जाय।

४. इसके बाद 'कौलागम क्रम' से योगिनी की पूजा की जाय।

५. तदुपरान्त १०० या १०८ ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय।

प्रयोग और उसके फल—

(१) बिल्वमूल में १०,००० ध्यानपूर्वक जप करने पर जापक लक्ष्मीवान् हो जाता है।

(२) पीपल के वृक्ष के मूल में १,००० ध्यानपूर्वक जप करने पर व्यक्ति अज्ञात शास्त्रों का भी ज्ञाता हो जाता है।

(३) शमीवृक्ष के मूल में १०,००० जप करने पर (किन्तु विजितेन्द्रिय रहकर) राज्य से च्युत हो जायेगा।

(४) बेर के वृक्ष के मूल में १०,००० मनोयोगपूर्वक जप करने पर जापक को वशीकरण एवं सम्मोहन की सिद्धि होगी।

(५) औदुम्बर के वृक्ष के मूल में १०,००० निष्ठापूर्वक जप करने पर जापक कुबेर के समान श्रीमान् हो जायेगा।

(६) कदली के मूल में १०,००० एकाग्रतापूर्वक जप करने पर जापक को पूर्ववत् फलों की प्राप्ति होगी।

बगलाष्टाक्षरी मन्त्र के प्रयोगों का यही विधान है।

षट्त्रिंशदक्षरी विद्या

मन्त्रोद्धार—

'तारं च बगलाबीजं बगलापदमुद्धरेत्।
मुखीति पदमुच्चार्य सर्वशब्दं ततोच्चरेत्॥
दुष्टानां पदमुच्चार्य वाचं मुखं पदं वदेत्।
स्तम्भयेति पदं चोक्त्वा जिह्वां कीलयमुच्चरेत्॥
बुद्धिं शब्दं ततोच्चार्य विनाशयेति पदं वदेत्।
स्तब्धमायां ततोच्चार्य प्रणवं च ततो वदेत्।
वह्निजायां ततोच्चार्य एवं मन्त्रं समुद्धरेत्।
षट्त्रिंशदक्षरं मन्त्रं मन्त्रराजमिदं भुवि'॥

अर्थात् षट्त्रिंशदक्षरी महाविद्या का स्वरूप निम्नाङ्कित होगा—

'ॐ ह्लीं बगलामुखि! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।

देवी का ध्यान—

'पीताम्बरधरां सान्द्रां पूर्णचन्द्रनिभाननाम्।
वामे जिह्वां गदामन्ये धारयन्तीं भजाम्यहम्'॥

इसके अनन्तर न्यासविद्या का क्रम है। न्यासतत्त्व सद्यः सिद्धिप्रद है—'न्यासविद्यां प्रवक्ष्यामि सद्यः सिद्धिकरीं पराम्' आदि में बगलामातृका, फिर कामतार्तीय वाग्भव, फिर मायामातृका और फिर बगलापञ्जर का न्यास अनुष्ठेय है। लघुषोढा न्यास भी करणीय है।

ध्यान-विधान—मन्त्र-साधना में ध्यान का विशेष महत्त्व है—

ध्यान आदि, मध्य एवं अन्त तीनों कालों में करणीय है, क्योंकि वह सर्वार्थसाधक है—

'ध्यानं यत्नात्प्रवक्ष्यामि ध्यानं सर्वार्थसिद्धिदम्।
आदौ मध्ये तु चान्ते च ध्यानं कुर्यात्समाहितः'॥

ध्यान का स्वरूप—ध्यान का स्वरूप निम्नांकित है—

'चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्॥

बिम्बोष्ठां कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम् ।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्यायेद्ब्रह्मास्त्रदेवताम्' ॥

ऋषि—नारद। छन्द—अनुष्टुप्। देवता—बगला। चिन्मयी एवं स्तम्भनास्त्र बगला देवी। बीज—लं। शक्ति—ह्रीं। कीलक—रं।

विनियोग—'शत्रूणां स्तम्भनार्थं च जपेऽहं विधिपूर्वकम्'। शत्रु-स्तम्भन।

मन्त्राराधना-विधान—मान्त्रिक को चाहिए वह कौलाचारक्रम का अनुसरण करते हुए सङ्कल्पपूर्वक न्यास एवं ध्यान के साथ इस मन्त्र का पृथ्वीलक्ष अर्थात् एक लाख जप करे।

इस जप के बाद जपसंख्या के दशांश से तर्पण करे, तर्पण के दशांश से बिल्वकुसुम से हवन करे, हवन की संख्या की दशांश संख्या में ब्राह्मणों को बुलाकर घृतप्लुत भोजन कराये।

'तर्पणं तर्पयामि स्वाहा' मन्त्र से होम करना चाहिए। यही पुरश्चरण-विधान है।

'पुरश्चरण' किसे कहते हैं ?

'पूजा त्रैकालिकी नित्यं जप-तर्पणमेव च ।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते' ॥

पुरश्चर्या का महत्त्व—पुरश्चरण के बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता—'पुरश्चर्यां विना मन्त्रो न प्रसिद्ध्यति भूतले'।

आभिचारिक षट्कर्मों का साधन-क्रम एवं विधान

उपर्युक्त पुरश्चरण, जपादि कर लेने के बाद मान्त्रिक-साधित मन्त्र से षट्कर्मों का प्रयोग कर सकता है।

'एवं साधितमन्त्रेण षट्प्रयोगान् समाचरेत्'।

(१) **शान्तिकर्म-हेतु**—शान्तिकर्म के लिए शालि-सक्तु एवं घृत को मिलाकर तथा उसको आँवले के आकार का बनाकर हवन करना चाहिए। इसका हवन गुणायुत होना चाहिए। तीस सहस्र जप से कम जप नहीं होना चाहिए।

(२) **वशीकरण-हेतु**—वशीकरण-कार्य के लिए मान्त्रिक को चाहिए कि वह घृतार्द्र बेलपत्रों से कुण्ड में कम-से-कम ३० हजार हवन करे।

(३) **स्तम्भन-कार्य हेतु**—मान्त्रिक को चाहिए कि यदि वह स्तम्भन-कार्य सिद्ध करना चाहता है तो वह श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक घृतप्लुत तालक (हरताल) से बेर के फल के बराबर हवनाहुति बनाकर गुणायुत हवन करे।

प्रत्येक हवन क्रिया में दो बात सर्वत्र अनुसरणीय है और वह है—(१) आदर एवं निष्ठा तथा (२) अनन्य ध्यान।

(क) 'गुणायुतं हुनेद्धीमान् कुण्डे पूर्वोक्तमादरात्' । (आदर)

(ख) 'गुणायुतमनन्यधी:' । (एकाग्रता एवं एकनिष्ठता)

(४) **मारण-कार्य हेतु**—साधक को चाहिए कि वह मारणकार्य-निष्पादनार्थ तैलमिश्रित तिल से माष (उड़द) के आकार की आहुतियाँ बनाकर प्रेतकानन में, प्रेताग्नि एवं प्रेतकाष्ठ में (प्रेतोन्मुख तथा नग्न होकर) हवन करे।

षट्त्रिंशदक्षर मन्त्र

(भगवती बगलामुखी का ३६ अक्षरों वाला मन्त्र)



अष्टसिद्धियों की प्राप्ति

अणिमा ईशित्व वशित्व

विनियोग—'ॐ अस्य श्रीबगलामुखीषट्त्रिंशदक्षरीविद्यामहामन्त्रस्य श्रीनारद ऋषि:, बृहती छन्द:, श्रीबगलामुखी देवता, लं बीजं, हं शक्ति:, ईं कीलकं, श्री-बगलामुखीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोग:'।

ऋष्यादिन्यास—'श्रीनारदऋषये नम: शिरसि, बृहतीछन्दसे नम: मुखे, श्रीबगलामुखीदेवतायै नम: हृदये, लँ बीजाय नम: गुह्ये, हँ शक्तये नम: पादयो:, ईं कीलकाय नम: सर्वाङ्गे, श्रीबगलामुखीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगाय नम: अञ्जलौ'।

करन्यास—'ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। ॐ ह्लीं बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्लीं सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्लीं कीलय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लीं बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्'।

अङ्गन्यास—'ॐ ह्लीं हृदयाय नम:, ॐ ह्लीं बगलामुखि शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लीं

सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं, ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लीं बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्'।

ध्यान—

'चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्॥
बिम्बोष्ठीं कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम्।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्याये ब्रह्मास्त्रदेवताम्'॥

षट्त्रिंशदक्षरी विद्या की महिमा—

'षट्त्रिंशत् वर्णमूर्तिः प्रणवमुखहराङ्घ्रिद्वयस्तावकीन-
श्चम्पापुष्पप्रियाया मनुरभिमतदः कल्पवृक्षोपमोऽयम्।
ब्रह्मास्त्रं चानिवार्यं भुजगवरगदावैरिजिह्वाग्रहस्ते
यस्ते काले प्रशस्ते जपति स कुरुतेऽप्यष्टसिद्धीः स्वहस्ते'॥

ध्यान—

'चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्॥
बिम्बोष्ठीं कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम्।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्याये ब्रह्मास्त्रदेवताम्'॥

षट्त्रिंशदक्षरी विद्या—

'ॐ ह्लीं बगलामुखि! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्ल्रीं ॐ स्वाहा'॥

यहाँ ध्यान का स्वरूप इस प्रकार है—

'चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्॥
बिम्बोष्ठां कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम्।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्यायेद्ब्रह्मास्त्रदेवताम्'॥

ऋषि–नारद। छन्द–अनुष्टुप्। देवता–बगलामुखी। बीज–लं। शक्ति–ह्रीं। कीलक = रं।

जपसंख्या : पृथ्वीलक्ष—

'पृथ्वीलक्षं जपेन्मन्त्रं न्यासध्यानसमन्वितम्'।

तर्पण–दशांश (जप का दशांश)।

हवन–तर्पण का दशांश। सामग्री–बिल्वपत्र।

ब्राह्मणभोजन–हवन का दशांश। घृतयुक्त सामग्री।

पुरश्चरण–'पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपतर्पणमेव च ।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥
पुरश्चर्या विना मन्त्रो न प्रसिद्ध्यति भूतले ।
एवं साधितमन्त्रेण षट्प्रयोगान् समाचरेत्' ॥

शान्तिकर्म में—'शान्तौ च जुहुयाच्छालिसक्तुमाज्यसमन्वितम्' । (शालि + सक्तु + घृत-आमलक ।)

वशीकरण में—'वशीकरणकार्येषु बिल्वपत्रघृतप्लुतम्' ।

स्तम्भन कार्य में—'स्तम्भनेषु हुनेद्धीमान् तालकं घृतसंयुतम् ।
बदरीफलमात्रं तु गुणायुतमनन्यधीः' ॥

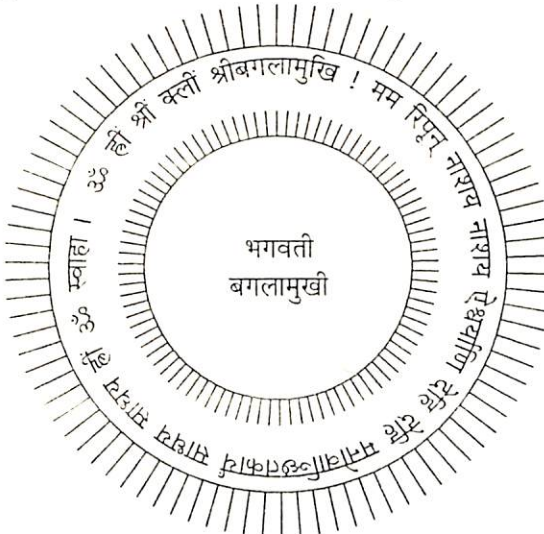
विद्वेषण कार्य में—'विद्वेषणे च जुहुयात् पत्रैर्निम्बार्कसम्भवैः ।
रात्रौ वेदायुतं धीमान् सद्यो विद्वेषणं भवेत्' ॥

उच्चाटन कार्य में—'राजीलवणसंयुक्तं बाणायुतमनन्यधीः ।
सद्य उच्चाटनं शीघ्रं ध्रुवकूर्मादयोरपि' ॥

मारण कार्य—

तिल-तैलेन सम्मिश्रं माषहोमं गुणायुतम् ।
प्रेताग्नौ प्रेतकाष्ठे च जुहुयात्प्रेतकानने ॥
प्रेतोन्मुखेऽथ जुहुयात् नग्नः सन्निशिमण्डले ।
सद्यो मारणमाप्नोति मृकण्डुसदृशोऽपि वा' ॥

मन्त्र का स्वरूप—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रीबगलामुखि ! मम् रिपून् नाशय नाशय ऐश्वर्याणि देहि देहि मनोवाञ्छितं कार्यं साधय साधय ह्रीं ॐ स्वाहा' ।



षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र को ही स्वीकार करना हो तो मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा—

* ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं बगलामुखि ! रिपून् नाशय नाशय ऐश्वर्यं देहि देहि अभीष्टं साधय साधय ह्रीं ॐ स्वाहा

भगवती
बगलामुखी

इस मन्त्र के जप से त्रैलोक्य का स्तम्भन होता है।

विनियोग—

मन्त्र के	छन्द	देवता	अपरा	वाणी	विनियोग
ऋषि	विराट्	बगला-	शक्ति	कीलक	१. अभीष्ट-सिद्धि
श्रीभैरव		मुखी			२. शक्ति-प्राप्ति
					३. रोग-शान्ति

अङ्गन्यास—रुद्र-महिला के षड्दीर्घ बीजों (ह्रां ह्रीं आदि) से अङ्गन्यास किया जाता है।

ध्यान—इस मन्त्र के देवता का ध्यान इस प्रकार करणीय है (ऊर्ध्वाम्नायात्मिक बगलामुखी का ध्यान)—

'सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां स्रक्चम्पकस्रग्युताम्।
हस्तैर्मुद्गरपाशवज्ररसनां सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत्' ॥

षट्त्रिंशदक्षरी मन्त्र का विनियोग—

'कंसारेस्तनयं च बीजमपरा शक्तिश्च वाणी तथा
कीलं श्रीयुतभैरवर्षिसहितं छन्दो विराट्संयुतम्।

स्वेष्टाहास्य परस्य वेति नितरां कार्यस्य सम्प्राप्तये
नानाऽसाध्यमहागदस्य नाशाय स्वाभीष्टवीर्याप्तये ॥
ध्यात्वा श्रीबगलाननां मनुवरं जप्त्वा सहस्रारकं
दीर्घैः षट्कयुतैश्च रुद्रमहिलाबीजैर्विन्यस्याङ्गके'।

रुद्र-महिला के षड्दीर्घ बीजों (ह्रां ह्रीं आदि) से अङ्गन्यास किया जाता है।

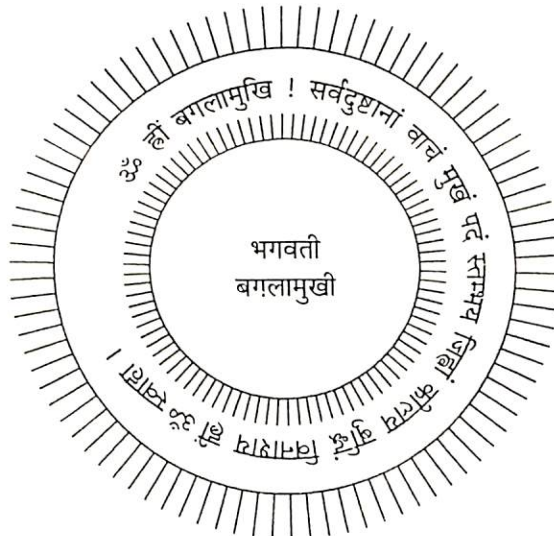
उक्तोपासना दक्षिणाम्नाय से की जाय या ऊर्ध्वाम्नाय से ? इस सन्दर्भ में निर्णायक तत्त्व है—अपनी परम्परा एवं अपना अधिकार। उक्त ध्यान-श्लोक ('सौवर्णा····चिन्तयेत्') में ध्यान चतुर्भुजा बगला का है और मन्त्र में 'स्थिरा माया' स्थित है।

मेरुतन्त्र के अनुसार भगवती बगलामुखी के मन्त्र एवं ध्यान का स्वरूप इत्याकारक है—

'अतः सम्प्रवक्ष्यामि स्तम्भिनीं बगलामुखीम्।
तारं मायां समुच्चार्य वदेच्च बगलामुखि।
तदग्रे सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम् ॥
स्तम्भयेति पदं जिह्वां कीलयेति ततः परम्।
बुद्धिं विनाशय ह्लीं ओं स्वाहा षट्त्रिंशदर्णकः'॥

यही है स्तम्भिनी बगलामुखी का मन्त्र।

षट्त्रिंशदक्षर मन्त्र



(विशिष्टता—इस मन्त्र में 'ह्लीं' के स्थान पर 'ह्रीं' दिया गया है।)

ऋषि	छन्द	बीज	शक्ति	विनियोग
(नारायण)	(त्रिष्टुप्)	(हल्लेखा ह्लीं)	(स्वाहा)	(पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि)

षडङ्गन्यास—

'ह्लीं हृदयं, बगलामुखि शिरः, सर्वदुष्टानां—शिखा, वाचं मुखं पदं स्तम्भय—वर्म (कवच), जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय, बुद्धिं विनाशय—अस्त्र।

षट्त्रिंशदक्षर मन्त्र की देवी का ध्यान (मेरुतन्त्र)—

'गम्भीरां च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्चनसन्निभाम्।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम्॥
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम्।
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम्॥
हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम्।
पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासनस्थिताम्'॥

भगवती बगला की साधना (मन्त्रमहोदधि के अनुसार)

मन्त्रमहोदधि नामक ग्रन्थ में भगवती बगलामुखी की साधना-विधि इस प्रकार प्रस्तुत की कई है—

मन्त्र (मन्त्र का स्वरूप)—

'अथ प्रवक्ष्ये शत्रूणां स्तम्भिनी बगलामुखी।
प्रणवो गगनं पृथ्वीं शान्तिबिन्दुयुतैर्वग॥
लामुखी क्षोगदी सर्वदुष्टानां वह्लींदुयुक्।
मुखं पदं स्तम्भयान्ते जिह्वां कीलय वर्णकाः॥
बुद्धिं विनाशयान्ते तु बीजं तारोऽग्नि सुन्दरी।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रो नारदो मुनिरस्य तु॥
छन्दोऽपि बृहती ज्ञेयं देवता बगलामुखी।
नेत्राक्षसायकनवपञ्चकाष्ठाभिरङ्गकम्' ॥

मन्त्रोद्धार—'ॐ ह्लीं बगलामुखि! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'। (३६ अक्षरों का मन्त्र)

१. विनियोग।
२. ध्यान।
३. यन्त्र-निर्माण।
४. यन्त्र-पूजन।
५. जप।

आभिचारिक प्रयोग

(विस्तार-भय से अधिक विस्तारपूर्वक प्रस्तुत नहीं किया गया है।)

विनियोग—'ह्लीं ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमन्त्रस्य नारद ऋषिः, बृहती छन्दः, बगलामुखीदेवताअभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः'।

अङ्गन्यास—'ॐ ह्लीं हृदयाय नमः। ॐ बगलामुखी शिरसे स्वाहा। ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्। ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम्। ॐ जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्। बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्'।

करन्यास—'ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ बगलामुखी तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां नमः। ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः'।

ध्यान—

'सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां स्रक्चम्पकस्रग्युताम्।
हस्तैर्मुद्गरपाशबद्धरसनां सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तभिनीं चिन्तये'॥

जप—इस प्रकार ध्यान करके एक लक्ष मन्त्रजप करना चाहिए।

आहुति—इसके उपरान्त चम्पा के पुष्प से दस हजार आहुति देनी चाहिए।

मूर्ति-पूजन—पीठ पर पूर्वोक्त विधान से पीताम्बरा मूर्ति का पूजन करना चाहिए।

यन्त्र-लेखन—चन्दन, अगर, कपूर एवं केशर घिसकर अनार की लकड़ी की कलम बनाकर उससे यन्त्र का निर्माण करना चाहिए।

यन्त्र का प्रकार—प्रथमतः त्रिकोण बनाये, फिर उसके ऊपर एवं बाहर षट्कोण का निर्माण करे और फिर अष्टदल का निर्माण करे और उसके बाद बाहर षोडश दल बनाकर उसके बाहर भूपुर का निर्माण करे।

पूजन का प्रकार—त्रिकोण के मध्य में 'ह्लीं' या पूर्ण मन्त्र लिखना चाहिए और भगवती बगला की पूजा करनी चाहिए (या प्रतिमा स्थापित करके पूजा करनी चाहिए)।

यन्त्रपूजन-विधान—

१. त्रिकोण का पूजन—त्रिकोण में 'सत्त्वाय नमः। रजसे नमः। तमसे नमः'।

२. षट्कोण में अङ्गपूजन-विधान—'हृदयाय नमः। शिरसे नमः। शिखायै नमः। कवचाय नमः। नेत्रत्रयाय नमः। अस्त्राय नमः'।

३. अष्टदल में भैरव-पूजन—'मातृसहितअसिताङ्गभैरवसहितायै ब्राह्म्यै नमः। रुरुभैरवसहितायै माहेश्वर्यै नमः। चण्डभैरवसहितायै कामार्यै नमः। क्रोधभैरवसहितायै वैष्णव्यै नमः। उन्मत्तभैरवसहितायै वाराह्यै नमः। कपालभैरवसहितायै इन्द्राण्यै नमः। भीषणभैरवसहितायै चामुण्डायै नमः। संहारभैरवसहितायै महालक्ष्म्यै नमः'।

षोडशदल का पूजन—(अष्टदल पद्म में समातृक भैरव का पूजन करने के अनन्तर) पूर्व से दक्षिणवर्ती क्रम में—

(१) 'ॐ मङ्गलायै नमः। (२) ॐ स्तम्भिन्यै नमः। (३) ॐ जृम्भिण्यै नमः। (४) ॐ मोहिन्यै नमः। (५) ॐ वश्यायै नमः। (६) ॐ चलायै नमः। (७) ॐ बलाकायै नमः। (८) ॐ भूधरायै नमः। (९) ॐ कल्मषायै नमः। (१०) ॐ धात्र्यै नमः। (११) ॐ कलनायै नमः। (१२) ॐ कालकर्षिण्यै नमः। (१३) ॐ भ्रामिकायै नमः। (१४) ॐ मन्दगमनायै नमः। (१५) ॐ भोगस्थायै नमः। (१६) ॐ भाविकायै नमः'।

भूपुर-पूजन—अन्त में यन्त्र के भूपुर का पूजन करना चाहिए। (पूर्वादि क्रम से अनुष्ठित पूजन)—'ॐ गणेशाय नमः (पूर्वे)। ॐ बटुकाय नमः (दक्षिणे)। ॐ योगिन्यै नमः (पश्चिमे)। ॐ क्षेत्रपालाय नमः (उत्तरे)। तद्बाह्ये सायुधाय इन्द्रादि-दशदिक्पालान्पूजयेत्—(पूर्वे) ॐ इन्द्राय नमः। ॐ वज्राय नमः। (आग्नेय्याम्) ॐ अग्नये नमः। ॐ शक्तये नमः। (दक्षिणे) ॐ यमाय नमः। ॐ दण्डाय नमः। (नैर्ऋत्ये) ॐ निर्ऋतये नमः। ॐ खड्गाय नमः। (पश्चिमे) ॐ वरुणाय नमः। ॐ पाशाय नमः। (वायव्ये) ॐ वायवे नमः। ॐ अङ्कुशाय नमः। (उत्तरे) ॐ कुबेराय नमः। ॐ गदायै नमः। (ऐशान्याम्) ॐ इं नमः। ॐ त्रिशूलाय नमः। (पूर्वेशानयोर्मध्ये) ॐ अनन्ताय नमः। ॐ चक्राय नमः। (नैर्ऋत्यवरुणमध्ये) ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ पद्माय नमः।

'एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतञ्चम्पकोद्भवैः।
कुसुमैर्जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम्॥
चन्दनागुरुचन्द्राद्यैः पूजार्थं यन्त्रमालिखेत्।
त्रिकोणषड्दलाष्टास्त्रषोडशारधरापुराम्॥
मध्ये सम्पूजयेद्देवीं कोणे सत्त्वादिकान् गुणान्।
षट्कोणेषु षडङ्गानि मातर्भैरवसंयुताः'॥

उक्त मन्त्र की सिद्धि का फल—उपर्युक्त विधि-विधान के साथ भगवती के पूजन के बाद यदि उक्त मन्त्र सिद्ध हो जाय तो उसका फल इस प्रकार होगा—देवता, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, वैताल, डाकिनी, शाकिनी, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, जङ्गम, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज आदि सभी प्राणियों का स्तम्भन हो जाता है।

पूजन के नियम—साधक को चाहिए कि वह पीत वस्त्र धारण करके, पीतासन पर बैठकर एवं पीत माला तथा पीत चन्दन शरीर पर धारण करके भगवती की पूजा पीले पुष्प से करे। माला पीली हल्दी की ग्रन्थियों से निर्मित हो। पूजन के समय भगवती का पीताम्बरा एवं पीतवर्ण के रूप में ध्यान करे। एक लक्ष का पुरश्चरण करके प्रयोगार्थ दस हजार जप भी करना आवश्यक है।

(१) **वशीकरण-सिद्धि**—यदि शर्करा-घृत-त्रिमधु का होम करें तो राजा वशीभूत हो जायेगा।

(२) **आकर्षण-सिद्धि**—शर्करा, घृत एवं त्रिमधु से युक्त लवण का होम करने पर सभी आकर्षित हो जायेंगें।

(३) **विद्वेषण-सिद्धि**—तैलासिक्त नीम की पत्ती का हवन करने पर विद्वेषण सिद्ध हो जाता है।

(४) **स्तम्भन-सिद्धि**—यदि हरताल, नमक एवं हल्दी से हवन करें तो शत्रु-स्तम्भन-सिद्धि प्राप्त होती है।

(५) **शत्रुओं से मुक्ति**—यदि शत्रुओं का विनाश करने हेतु अङ्गार का धूम्र, राई, माहिष गुग्गुल, भैंस का घृत लेकर रात्रि के समय श्मशान की अग्नि में हवन किया जाय तो शत्रुओं से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

(६) **उच्चाटन-सिद्धि**—यदि गिद्ध एवं कौवे का पंख, कडुआ तेल, भिलावा, घर का धूम चिताग्नि में डालें तो उच्चाटन की सिद्धि होती है।

(७) **रोगों का शमन**—यदि दूब, गुरुच, धान का लावा, मधुत्रय (शहद, घृत, शर्करा) की आहुति दें तो सिद्ध व्यक्ति द्वारा रोग को देख लेने मात्र से रोग दूर हो जाता है।

(८) **सर्वसिद्धि-प्राप्ति**—पार्वत शिखर पर, घने जङ्गल में, नदी के सङ्गम में या शिव-मन्दिर में ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों के पालनपूर्वक एक लाख जप किया जाय तो सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

(९) **शत्रु द्वारा किये गये विषप्रयोग का निवारण**—एक रंग की गाय का दूध, मधु, एवं शक्कर सामने रखकर उसका स्पर्श करते हुए ३०० जप किया जाय तथा उस दूध, मधु एवं शक्कर का सेवन कर लिया जाय या करा दिया जाय तो विष-प्रभाव नष्ट हो जाता है।

(१०) **असामान्य गति-सिद्धि**—यदि श्वेत पलाश की लकड़ी का पादुका बनवाकर और उसे आलक्तक से रंग कर तथा उसे एक लाख मन्त्र से अभिमन्त्रित करके पहन लिया जाय तो मन्त्रसिद्ध प्रयोक्ता एक क्षण में सौ योजन तक जा सकता है।

(११) **अदृश्यीकरण की सिद्धि**—यदि पारा, शिलाजीत, हरिताल एवं मधु मिलाकर एक लाख मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करके उस द्रव्य का अपने सम्पूर्ण शरीराङ्ग में लेपन कर लिया जाय तो वह व्यक्ति अदृश्य हो जायेगा।

(१२) **शत्रु की गति, वाणी एवं कार्यशैली का स्तम्भन**—षट्कोण यन्त्र बनाकर उसके मध्य में शत्रु का नाम लिखा जाय। उसके चतुर्दिक् बीजमन्त्र लिखा जाय। लिखने की स्याही धतूर का रस, हल्दी एवं हरिताल पीसकर बनायी जाय। यन्त्र को मन्त्र से वेष्टित करके उसकी प्राणप्रतिष्ठा करके उसे पीले सूत से लपेटा जाय। चाक की मिट्टी लेकर उससे सुन्दर बैल बनाकर उस यन्त्र को उस बैल के हृदय में रख दिया जाय और हरिताल से बैल को चारों ओर से रंग दिया जाय तथा उस बैल का प्रतिदिन यथोपचार पूजन किया जाय तो शत्रुओं की गति, वाणी एवं कार्यशैली आदि सभी का स्तम्भन हो जाता है।

स्तम्भन-सिद्धि के अन्य प्रयोग एवं प्रकार—

(क) **शत्रु का गत्यवरोध**—बायें हाथ से श्मशान में पड़े फूटे घड़े लाकर उस खप्पर में चिता के ही स्थान में अङ्गारे से यन्त्र का निर्माण करें। यन्त्र को मन्त्र से संस्कार करके उसे भूमि में गाड़ दें। इससे शत्रुओं की गति स्तम्भित हो जायेगी। प्रेतवस्त्र (कफ़न) लेकर उसमें कोयले से यन्त्र निर्मित करने पर भी स्तम्भन-क्रिया सिद्ध होती है।

(ख) **शत्रु की वाणी का स्तम्भन**—यदि मेढक के मुख में यन्त्र रखकर उसे पीतवस्त्र से वेष्टित करके पीले पुष्प एवं पीतोपहार से पूजन किया जाय तो तब भी शत्रु-वाणी स्तम्भित हो जाती है।

(ग) **दिव्य स्तम्भन**—उस दिव्य यन्त्र को भूमि पर रखकर उसका अड़ूसा (वृषापत्र) से मार्जन करने स दिव्य स्तम्भन होता है।

(घ) इन्द्रवारुणिका के मूल को ७ बार अभिमन्त्रित करके अञ्जलि में ग्रहण करने से जल-स्तम्भन हाता है। इस मन्त्र का जप एवं यन्त्र-पूजन करने से शत्रु की गति, बुद्धि आदि सभी का स्तम्भन हो जाता है—

(१) 'क्षिप्तं जले दिव्यकृतां जलस्तम्भनकारकम्'।
(२) 'शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तम्भनं नाम संशयः'[१] ॥

एकत्रिंशद्वर्णविद्या और उसके प्रयोग

परिचय (एकत्रिंशद्वर्णविद्या का परिचय)—

'शृणु वत्स महाभाग! गुह्याद्गुह्यतरं महत्।
एकत्रिंशद्वर्णविद्या बगलायास्तु पावनम्॥

१. मन्त्रमहोदधि (दशम तरङ्ग)।

स्तम्भनं देवदेवानां प्राणीनां च हितावहम्।
शत्रूणां स्तम्भनार्थं च वृषभं देवनिर्मितम्॥
एकत्रिंशद्वर्णविद्या महास्तम्भनकारिणी।
ऋष्यादिन्यासविद्यां च मन्त्रराजवदाचरेत्॥
एतच्छ्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
न ध्यानं न च होमं च न जपं न च तर्पणम्॥
सकृत्स्मरणमात्रेण महास्तम्भकरं भवेत्'।

सारांश यह कि 'एकत्रिंशद्वर्णविद्या' (३१ वर्णों से निर्मित बगलामहाविद्या या मन्त्र) देवताओं को भी स्तम्भित करने वाला है। इसके श्रवण मात्र से प्राणी समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है। इस मन्त्र की उपासना में ध्यान, हवन, जप एवं तर्पण आदि कुछ भी आवश्यक नहीं है।

मन्त्रोद्धार—इस मन्त्र का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

'प्रणवं स्थिरमायां च आधानं बगलामुखि।
अमुकस्य गतिं चोक्त्वा स्तम्भयेति पदं ततः॥
बुद्धिं स्तम्भय वाक्यानि स्तम्भयेति पुनर्वदेत्।
आधानं स्तब्धमायां च प्रणवान्तो महामनुः'॥

प्रयोगविधि—

'एकत्रिंशद्वर्णविद्या महास्तम्भनकारिणी'।

इस स्तम्भन-विधान में छागजिह्वा लेकर उसके आदि, मध्य एवं अन्त में मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके अङ्गुल भर के कीलों को रोपित करते हुए यन्त्र को रजनी, हरताल एवं उन्मत्तरस से बनाकर सोमवार को उसके षट्कोणों के प्रत्येक कोण में 'स्तब्धमाया' एवं मध्य में नामाक्षर लिखना चाहिए। उसे गायत्री एवं स्तब्ध बीज से वेष्टित करना चाहिए। षट्कोण के ऊर्ध्व भाग में वलय निर्मित करना चाहिए। इस प्रकार यन्त्र की रचना करके उसकी प्राणस्थापना करनी चाहिए।

इसके बाद एक वृषभ लाना चाहिए। उस वृषभ का अस्त्रमन्त्र से प्रोक्षण करके उस जिह्वा को उसके उदर पर क्षेपित करके उसे पीले सूत्र से आवेष्टित करना चाहिए। फिर पीतोपचारों से उसकी पूजा करके १०८ मन्त्र का जप करना चाहिए। हाथ मात्र माप की भूमि खोदकर उसमें वृषभ को पूरित करना चाहिए और वहीं आसन पर स्थित होकर मन्त्र का १००० बार जप करना चाहिए।

प्रयोग का प्रभाव—इस प्रयोग का प्रभाव यह है कि—समस्त देवता, ऋषि, दानव, राक्षस, पशु, पर्वत, मानव, चौपाये, नाग, पक्षी, स्थावर आदि सभी स्तम्भित हो जायेंगे।

प्रयोग की उपयोगी ऋतुएँ एवं समय—

१. वसन्त ऋतु में प्रातः काल।
२. ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न काल।
३. वर्षा ऋतु में अपराह्न काल।
४. हेमन्त ऋतु में सायं काल।
५. शरद् ऋतु में मध्य रात्रिकाल।
६. शिशिर ऋतु में सन्ध्या काल।

यही है वृषभ-प्रयोग की संक्षिप्त विधि। (सां.तं., पञ्चत्रिंश पटल)

प्रयोग-महायोग

'प्रयोगमहायोग' के नाम से भी एक आभिचारिक प्रयोग मिलता है। दुष्ट अमात्यों, दुरात्माओं, दूषकों, दुष्टग्रहों, शत्रु की सेनाओं एवं क्रूर ग्रहों के दुष्प्रभावों को निष्फल करके अपनी रक्षा करने, समस्त प्रकार से शान्ति प्राप्त करने, पराभिचारकृत्यों को निष्फल करने, अपमृत्यु का विनाश करने एवं रोगशान्ति, परसेना के विनाश, अपनी सेना की रक्षा हेतु, आत्मार्थ-परार्थ-विजयार्थ, वेतालादि के नाशार्थ, भैरवादि के प्रशान्त्यर्थ, समस्त विषों के नाशार्थ, मुष्टि-कुक्षि से रक्षा हेतु, शस्त्रार्थ शर-सन्धान में साफल्य पाने, शत्रु के संहारादि क्रिया से रक्षित रहने एवं शस्त्रास्त्र को स्तम्भित करने हेतु, स्तब्धीकरणनाशार्थ, मृतकोत्थापनार्थ, देशोपद्रव्यनाशार्थ, राष्ट्रभङ्ग से रक्षा हेतु, कोटि कृत्याविनाशार्थ, स्वरक्षार्थ, घटकृत्यनाशार्थ, कृत्या (जलकृत्या-स्थलकृत्या-वातकृत्या-गन्धकृत्या) विनाशार्थ महेन्द्रपद के नाशार्थ, विरुण्डा-मेरुण्डा के विनाशार्थ, अमोघमृत्यु के नाशार्थ, पर्वतों को भी स्तम्भित करने एवं महाविष का नाश करने के लिए 'प्रयोगमहायोग' का तान्त्रिक विधान है। यह 'सर्वकर्मविनाशार्थं विषनाशार्थमद्भुतम्' प्रयोग है। प्रयोक्ता को चाहिए कि वह—'पीताशीः पीतवस्त्राद्याः पीतयज्ञोपवीतवान्। पीताशनी पीतभक्षी पीतशय्यापरायणः' के नियमों का पालन करते हुए हरिद्रा, रोचना-घृत से आसिक्त बिल्वपत्र एवं बिल्वपुष्प से हवन करे। इससे समस्त रोगों का निवारण हो जायेगा। प्रयोक्ता चाहे तो इसके स्थान में वह हरिद्रा-मधु से योजित पीत पुष्पों से हवन कर सकता है। इससे समस्त दरिद्रता का नाश हो जायेगा। इस द्रव्ययोगात्मक हवन से सारी आपदाओं एवं सारे उत्पातों का विनाश हो जायेगा। किन्तु इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए १०८, ३००, १०००, ३००० या ५००० मन्त्रों का हवन भी करना चाहिए। इसके अलावा इसके लिए २५ हजार, ५० हजार एवं एक लाख तक हवन करने का भी विधान है।

सुन्दरी, कालिका एवं वैदिक विधानों में १ कोटि तक हवन करने का विधान है। हवन के दशांश से तर्पण, तर्पण के दशांश से मार्जन करना चाहिए। इस कार्य की सिद्धि

के लिए सुरा से तर्पण और उसी से मार्जन भी करना होता है—'सुरया तर्पणं पुत्र ! तेन मार्जनमाचरेत्' । इस विधान में अभिषेक एवं ब्राह्मणभोजन भी आवश्यक माना गया है। भोजनान्त में दक्षिणा देकर ब्राह्मण को सन्तुष्ट भी करना चाहिए।

हवन करने का स्थान—उक्त अनुष्ठान में जो हवन करने का विधान है वह इस प्रकार वर्णित है—

'कुण्डे वा स्थण्डिले वेद्यां चत्वरे पितृकानने।
चुल्ल्यां शकट्यां वा पुत्र होतव्यं सर्वकर्मणि' ॥

एतदर्थ शुभ नक्षत्र का चयन करना चाहिए। आदि में स्वस्तिवाचन अवश्य करना चाहिए और द्विजों का वरण करना चाहिए।

इस विधान में 'दीपनास्त्र' मध्यभाग में होना चाहिए। हाथ में कठोर बन्धन हो। रक्षणांश में पञ्चास्त्र, होमकर्म में मूलास्त्र एवं ऐन्द्रत्रैलोक्यविजयास्त्र का स्मरण करना चाहिए।

अनुष्ठानारम्भ में गणपति का पूजन एवं द्वारपूजा की जानी चाहिए। फिर विप्रों का वरण करके बगलादीप को मण्डल के भीतर स्थापित करना चाहिए और मूलदीप को कवच में। सारे द्रव्य, वस्त्र, आसन, जपमाला, भोगादिक पीत वर्ण के होने चाहिए।

मेरुतन्त्रोक्त बगलामुखी की उपासना-विधि

मन्त्र का स्वरूप—

मेरुतन्त्र में सर्वप्रथम ३६ अक्षरों वाले बगला-मन्त्र पर प्रकाश डाला गया है जो निम्नांकित है—

'ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय, जिह्वां कीलय, बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।

बगला-मन्त्र का परिचय—ऋषि—नारायण ऋषि हैं। छन्द—त्रिष्टुप् छन्द है। बीज—हल्लेखादेवी बीज है। शक्ति—स्वाहा शक्ति है। विनियोग—धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष = पुरुषार्थचतुष्टय के लिए ही इस बगलामन्त्र का विनियोग किया जाना चाहिए—

'नारायणो मुनिस्त्रिष्टुप् छन्दश्च बगलामुखी।
देवी बीजं तु हल्लेखा स्वाहा शक्तिः समीरिता॥
विनियोगोऽस्य विख्यातः पुरुषार्थचतुष्टये' ॥

न्यास—

हृदय—हल्लेखा है। शिर—बगलामुखी हैं।
शिखा—'शिखा तु सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्'।

वर्म—'स्तम्भयेति च वर्मोक्तम्' ।

कीलक—'जिह्वां कीलय नेत्रकम्' ।

स्पष्टीकरण : हृदयादि षडङ्गन्यास—

(१) 'ॐ ह्लीं हृदयाय नमः । (२) ॐ बगलामुखि ! शिरसे स्वाहा । (३) ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट् । (४) ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम् । (५) ॐ जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट् । (६) ॐ बुद्धिं विनाशय अस्त्राय फट्' ।

इस प्रकार मन्त्र के प्रत्येक पद से क्रमशः मस्तक, भाल, भ्रुवद्वय, नेत्रद्वय, कान, नासिका, कपोलद्वय एवं ओष्ठद्वय, मुख, दाढ़ी, कण्ठ, दाहिनी कोहनी, कलाई, अँगुलियाँ, उनके मूल भाग, हस्ताग्रभाग, वामभुजा, घुटना, चरण की अँगुलियों के अग्रभाग का न्यास करना चाहिए ।

भगवती बगला का ध्यान—

उक्त न्यास के उपरान्त भगवती बगला का ध्यान करना चाहिए । जिनका स्वरूप इस प्रकार है—

'गम्भीरां च मदोन्मत्तां तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ।।
मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च वज्रकम् ।
पीताम्बरधरां सान्द्रवृत्तपीनपयोधराम् ।।
हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम् ।
पीतभूषणभूषां च स्वर्णसिंहासनस्थिताम् ।।
सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां स्रक्चम्पकस्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्गरपाशबद्धरसनां सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तये ।।
एवं ध्यात्वा च देवेशी शत्रुस्तम्भनकारिणीम्' ।

मण्डल-निर्माण—ध्यानोपरान्त साधक को पुष्प-गन्ध-सुवासित एवं सुरम्य स्थान को गोमय से लीपकर उसमें मण्डल का निर्माण करना चाहिए ।

आसन-स्थापन—इसी सुनिर्मित मण्डल के भीतर भगवती बगला देवी के आसन की स्थापना की जानी चाहिए—

'भूप्रदेशे मनोरम्ये पुष्पामोदसुधूपिते ।
गोमयेनाथ संलिप्ते मण्डले त्वासनं चरेत्' ।।

यन्त्र-निर्माण—साधक को चाहिए कि वह स्वर्ण, रजत, पैत्तल (पीतल) या

भूर्जपत्र पर कर्पूर, अगरु, कस्तूरी, श्रीखण्ड (चन्दन) या कुंकुम से अनार की लेखनी के द्वारा सावधानीपूर्वक यन्त्र में सर्वप्रथम 'ह्लीं' (बीजमन्त्र) का लेखन करे और मध्य स्थान में त्रिकोण की रचना करे; फिर उसके बाहर षड्दल पद्म की रचना करके उसके भी अग्रभाग में अष्टदल पद्म तथा उसके आगे षोडशदल पद्म की रचना करके तीन चतुरस्त्र एवं उसके आगे चार द्वारों का निर्माण करे।

जिस स्थल पर देवता का पीठ एवं उन पीठों की शक्तियों का वर्णन नहीं किया गया है उस स्थान पर मायापीठ और माया-शक्तियों का निर्माण किया जाय—'तत्र मायोदितं पीठं ज्ञेयास्ता एवं शक्तय:' ॥

देवी का आवाहन—बीज या अणुमाया से उस पीठ की अर्चा निष्पादित करते हुए साधक को पीतपूजनोपचार से देवी का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिए।

देव-देवियों का पूजन—भगवती का पूजन-अर्चन करके साधक को चाहिए कि वह षट्कोण में अङ्गों का पूजन करके चारों दिशाओं के द्वार पर क्रमानुसार गणेश, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्रपाल की पूजा करे। ईशान से निर्ऋतिपर्यन्त गुरुपंक्ति का भी पूजन करना चाहिए।

इसके अनन्तर षोडशदल कमल के १६ पत्तों में क्रमश:—बगला, स्तम्भिनी, जृम्भिणी, मोहिनी, प्रगल्भा, अचला, जया, दुर्धर्षा, कल्मषा, धीरा, कल्याणी, आकाल-कर्षिणी, भ्रामिका, मन्दगमना, भोग्या एवं योगिका की स्थापना करके साधक को चाहिए कि वह इन सभी शक्तियों का गन्ध, अक्षत एवं पुष्पादिक उपचारों से पूजन करे।

साधक को चाहिए कि वह अपनी साम्प्रदायिक एवं कुलाचार पद्धति के अनुसार इन १६ पद्मदलों में १६ स्वरों का भी सन्निवेश करे। उसे चाहिए कि वह उसके मध्य में अष्टदल कमल में वाहन एवं आयुध से युक्त पूर्वदिशा में से लेकर ब्राह्मी आदि शक्तियों एवं उसके आगे अष्टदलकमल में अस्त्रयुक्त अष्टलोकपालों का पूजन करे। इसके बाद त्रिकोण के मध्य परांम्बा भगवती बगला देवी का तीन अञ्जलि पुष्प से पूजन करना चाहिए (धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, ताम्बूल एवं नीराजना (आरती) आदि षोडशोपचार द्वारा विधिवत् पूजन निष्पादित करना चाहिए—

'योनिमध्ये मूलदेवीं त्रिरञ्जलिभिरर्चयेत्।
धूपदीपसुनैवेद्यैर्गन्धताम्बूलदीपकै: ।
नीराज्यं विधिवत् पश्चाद्यथासंख्यं निवेदयेत्' ॥

इसके अतिरिक्त रेशम के सूत्र की पवित्रा समर्पित करके साधक को प्रतिदिन श्वेत अन्न (चावल, पायस आदि) से देवी को पाँच बलि प्रदान की जानी चाहिए।

जप—साधक को चाहिए कि वह पीत वस्त्र धारण करके, पीत आसन पर आसीन होकर, हल्दी की पीली गाँठों की माला बनाकर, पीतवर्णा भगवती बगलामुखी का ध्यान करके १० हजार बगला-मन्त्र का जप करे।

हवन—साधक को चाहिए जप के पूर्ण हो जाने पर वह १० हजार मन्त्रों के दशांश (एक हजार) का हवन करे। इसके अनन्तर—

मार्जन—हवन (१ हजार) के दशमांश अर्थात् (१०० की संख्या) से पीले द्रव्यों द्वारा देवी का मार्जन किया जाना चाहिए।

तर्पण—मार्जन के बाद भगवती का तर्पण किया जाना चाहिए। पूजन-सामग्री में यथासाध्य समस्त सामग्री पीली ही होनी चाहिए। पीतोपचार से पूजन, हवन, मार्जन एवं तर्पण से साधक को अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है—

'सर्वपीतोपचारेण मन्त्रः सिद्ध्यति मन्त्रिणः' ॥

अभिचार-सिद्धि : स्तम्भन-क्रिया—जपे जाते हुए मन्त्रभाग में शत्रु का नाम उच्चारण करके 'स्तम्भय स्तम्भय' पद जोड़ने से शत्रु एवं उसकी गति का अवश्यमेव स्तम्भन होता है।

इस मन्त्र के द्वारा बुद्धि, मेधा, शास्त्र, देव, दानव, सर्प आदि सभी का स्तम्भन हो जाता है—

(१) 'गतिस्तम्भकरी विद्या अरिस्तम्भनकारिणी'।

(२) 'मेधां प्रज्ञां च शास्त्रादीन् देवदानवपन्नगान्।
स्तम्भयेच्च महाविद्या सत्यं सत्यं न संशयः' ॥

साधना-स्थान का चयन (शास्त्रीय विधान)—किसी भी साधना के साफल्य के लिए दो बातें उपयोगी हैं—

(१) विरोधी (प्रतिकूल) वातावरण का त्याग तथा (२) अनुकूल वातावरण की व्यवस्था (ग्रहण)। इसी दृष्टि से कहा गया है कि—

'एकान्ते परमे रम्ये शुचौ देशेऽथ वा गृहे'।

हवन-कुण्ड का निर्माण—साधक को चाहिए कि वह तीन मेखलाओं (सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण) से युक्त सुन्दर कुण्ड का निर्माण करके बीत्ते भर के योनियुक्त कुण्ड की रचना (निर्माण) करे।

हवन-कार्य—हवन-कुण्ड की रचना हो जाने पर यदि साधक कुश-कुण्डिका आदि के द्वारा शास्त्रोक्त विधान के अनुसार मधु, घृत एवं शक्कर सहित नमक से हवन करे तो निश्चय ही आकर्षण-अभिचार की सिद्धि होती है और तदनुसार अभीष्ट व्यक्ति संसार के किसी भी कोने में क्यों न हो किन्तु वह प्रयोक्ता साधक के प्रति आकृष्ट (आकर्षणपाश-बद्ध) हो जाता है। यही है—आकर्षण-सिद्धि।

विद्वेषण—तेलमिश्रित नीम की पत्ती से हवन करने पर विद्वेषण होता है—

(क) 'तथाऽऽकर्षणकामस्तु लोणं त्रिमधुरान्वितम्'।

(ख) 'निम्बपत्रं तैलयुक्तं विद्वेषणकरं परम्' ।

बुद्धि और गति का स्तम्भन—यदि प्रयोक्ता साधक हरताल, हरिद्रा एवं नमक को परस्पर मिलाकर हवन करे तो शत्रु की बुद्धि एवं गति दोनों का स्तम्भन होता है—

'हरितालं हरिद्रां च लवणेन च संयुताम् ।
स्तम्भने होमयेद् देवीं प्रज्ञायाश्च गतेर्मतेः' ॥

मारण-सिद्धि—यदि साधक रात्रि के समय चिता की अग्नि में सरसों का तेल एवं भैंस के रुधिर द्वारा हवन करे तो शत्रु का मारण होता है—

'आसुर्याश्चापि तैलेन महिषीरुधिरेण च ।
रिपूणां मारणार्थं तु श्मशानाऽग्नौ हुनेन्निशि' ॥

उच्चाटन-सिद्धि—यदि साधक शत्रु का उच्चाटन करना चाहे तो उसे चाहिए कि वह गृध्र एवं कौए के पंखों से हवन करे—

'गृध्राणामपि काकानां गृहधूमयुतेन वै ।
पक्षेण जुहुयाद् देवि ! शत्रोरुच्चाटनाय वै' ॥

सर्वरोग-निवारण सिद्धि—यदि कोई व्यक्ति समस्त रोगों से मुक्त होने की कामना करता हो तो उसे चाहिए कि वह इसके लिए कुम्हार के चाक की मृत्तिका, चार-चार अङ्गुल रेंड़ की लकड़ी एवं मधुरत्रय—मधु, घृत, शर्करा—तथा लाजा (धान का लावा) से हवन करे—

'पूर्वा कुलालमृत्तावत्येरण्डश्चतुरङ्गुलः ।
लाजास्त्रिमधुयुक्ताश्च सर्वरोगोपशान्तये' ॥

जप-स्थान एवं जप-संख्या—जप का स्थान पर्वत की चोटी, निविड़ अरण्य, सिद्धस्थान, शिवमन्दिर, गृह, महावादियों का संगम आदि में से कोई भी हो—ये सभी उत्तम स्थान हैं—

'पर्वताग्रे महारण्ये सिद्धे शैवालये गृहे ।
सङ्गमे च महानद्योर्निशायामपि साधयेत्' ॥

आश्चर्यकारिणी त्वरित गति की सिद्धि—उक्त साधनाएँ ब्रह्मचर्यपूर्वक एवं रात्रि में १ लाख जप पूर्ण हो जाने पर (मन्त्र सिद्ध हो जाने पर) की जानी चाहिए—'लक्षमेकं जपेद् देवि ! ब्रह्मचारी दृढव्रत ।

असामान्य त्वरित गति की प्राप्ति—यदि साधक ब्रह्मतरु (मदार या पलाश) के मूल से पादुका निर्माण करके उसे आलता एवं हल्दी के रंग से रंगकर (रात्रि के समय बगलामुखी के मन्त्र का महानदियों के सङ्गम में एक लाख जप निष्पन्न करने के बाद) पादुका को धारण करे तो वह १०० योजन की दूरी अत्यन्त स्वल्प काल में अनायास पार कर लेगा ।

'श्वेतब्रह्मतरोर्मूले पादुकाश्चैव कारयेत् ।
अलक्तस्य च रागेण रञ्जितां च हरिद्रया ॥
अनया विधया चापि लक्षैकेन च मन्त्रिताम् ।
शतयोजनमात्रं तु स गच्छेच्चिन्तिते पथि '॥

अदृश्यीकरण—धतूर का रस, मैनसिल और ताड़पत्र में शहद मिलाकर और उसे पीसकर शरीर के सारे अङ्गों में लगा कर १ लाख मन्त्र-जप करने से वह जापक साधक अदृश्य हो जाता है—

'रसं मनःशिलां तालं माक्षिकेण समन्वितम् ।
पिष्ट्वाऽभिमन्त्र्य लक्षैकं सर्वाङ्गे लेपने कृते ।
अदृश्यकारकं तत् स्याल्लोके च महदद्भुतम्' ॥

विष-नाश एवं दारिद्र्य-नाश की सिद्धि—साधक एक वर्ण वाली गाय का धारोष्ण दूध (शर्करा एवं मधु मिलाकर) विष वाले मनुष्य को पिलाकर बगलामुखी मन्त्र के ३०० जप कर डाले तो चराचर प्राणियों का विष शीघ्र नष्ट हो जाता है और एक लाख जप एवं शाकल से दशांश हवन करने पर दरिद्रता नष्ट हो जाती है—

'सुरभेरेकवर्णाया धारोत्थं क्षीरमाहरेत् ।
शर्करा मधुसंयुक्तं त्रिशतैर्मन्त्रितं प्रिये ।
पाययित्वा तु हरते विषं स्थावरजङ्गमम् ॥
× × × × × × ×
दारिद्र्यमोचनं चैव लक्षमेकं जपेत्ततः ।
दशांशेन कृते होमे एभिर्द्रव्यैः पृथक्-पृथक्' ॥

(मेरुतन्त्र)

कुल्लुका और बगलामुखी

'ॐ स्त्रीं'

रुद्रयामल में कहा गया है कि कुल्लुका को जाने बिना जो महामन्त्र का जप करता है उसकी आयु, विद्या, यश और धन (या बल) सभी नष्ट हो जाते हैं—

'अज्ञात्वा कुल्लुकां देवि ! महामन्त्रं जपेत्तु यः ।
तस्य नश्यन्ति चत्वारि आयुर्विद्या यशो बलम् (धनम्)' ॥३५॥

इतना ही नहीं, उसकी मृत्यु भी हो सकती है, वह पागल भी हो सकता है । उसके सिद्धि की हानि एवं मृत्यु दोनों हो सकती है—

'ॐ स्त्रीं'—

'कुल्लुकां च न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः ।

पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत् ।।३६।।
अज्ञात्वा कुल्लुकामेतां जपते योऽधमः प्रिये ।
पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिश्च जायते' ।।३७।।

इसके अतिरिक्त यह भी कि बिना कुल्लुका के प्रयोग के समस्त जप आदि कार्य निष्फल हो जाते हैं—

'तथा जपादिकं सर्वं निष्फलं नात्र संशयः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रजपेन्मूर्ध्नि कुल्लुकाम्' ।।

अतः वाराहीतन्त्र में कहा गया है कि मान्त्रिक को मन्त्रजपारम्भ के पूर्व कुल्लुका का न्यास करना चाहिए—

'जपं समारभेन्मन्त्री कुल्लुकाद्यं यथाविधि ।
पूजां जपं समाप्यैव स्तुत्वा च कवचं पठेत्' ।।

मन्त्रों की कुल्लुका (सरस्वतीतन्त्र)

क्र.सं.	देवता का नाम	कुल्लुका-प्रयोग	कुल्लुका-मन्त्र
१.	तारामन्त्र की कुल्लुका	जिस	ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं ।
२.	कालीमन्त्र की कुल्लुका	भी मन्त्र का	ॐ क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट् ।
३.	छिन्नमस्तामन्त्र की कुल्लुका	जप करना हो	ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।
४.	वज्रवैरोचनीमन्त्र की कुल्लुका	उसकी कुल्लुका	ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रीं स्वाहा हूँ ।
५.	भैरवीमन्त्र की कुल्लुका	शिर पर स्थापित	ॐ ह स रैं ।
६.	त्रिपुरसुन्दरीमन्त्र की कुल्लुका	कर लेनी चाहिए	ॐ ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवती स्वाहा या क्लीं
७.	मञ्जुघोषामन्त्र की कुल्लुका	अर्थात् उसका	ॐ अ र व च ल धीं ।
८.	भुवनेश्वरीमन्त्र की कुल्लुका	मूर्द्धा में	ॐ ह्रीं
९.	विष्णुमन्त्र की कुल्लुका	न्यास करना चाहिए ।	ॐ नमो नारायणाय ।
१०.	मातङ्गीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ ॐ
११.	धूमावतीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ ह्रीं
१२.	षोडशीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ स्त्रीं
१३.	लक्ष्मीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ श्रीं

क्र.सं.	देवता का नाम	कुल्लुका-प्रयोग	कुल्लुका-मन्त्र
१४.	सरस्वतीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ ऐं।
१५.	अन्नपूर्णामन्त्र की कुल्लुका		ॐ क्लीं।
१६.	शिवमन्त्र की कुल्लुका		ॐ हौं।
१७.	बगलामुखीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ स्त्रीं।
१८.	श्रीराममन्त्र की कुल्लुका		ॐ क्लीं ॐ रां ॐ क्लीं।
१९.	सुन्दरीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ ऐं क्लीं सौं।
२०.	भैरवीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ क ल रीं।
२१.	तारामन्त्र की कुल्लुका		ॐ ह्रीं ॐ ॐ ह्रीं।
२२.	कालीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ क्लीं हूँ स्त्रीं ह्रीं फट्।
२३.	भुवनेशीमन्त्र की कुल्लुका		ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी के अनुसार—

(अधिकांशत:) अन्य देवताओं के अपने-अपने मन्त्र ही कुल्लुका हैं—

'अपरेषां च देवानां स्वमन्त्र: परिकीर्तित:।
अन्यासां तु परा बीजं कुल्लुका परमेश्वरि'॥[१]

(आद्यन्ते ॐ ह्रीं स्वाहा। ॐ इति मन्त्रस्याद्यन्तयो: हूँ इति बीजं कृत्वा। तेन 'हूँ ॐ ह्रीं स्वाहा ॐ हूँ' इति।)

प्रश्न यह है कि भगवती का नाम तो सर्वोपरि है और नाम तो किसी भी प्रकार लिया जाय लाभ-ही-लाभ होता है, फिर मन्त्रचैतन्य, विमलीकरण, प्राणयोग, सिद्धादिशोधन, कुलाकुलचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, अकडमचक्र, अकथहचक्र, ऋणिधनिचक्र, मन्त्रार्थ, मन्त्रसेतु, महासेतु, निर्वाण, मुखशोधन, दीपनी, भ्रामण, रोधन, वश्य, पीडन, पोषण, शोषण, दाहन एवं कुल्लुका आदि की क्या आवश्यकता है? समाधान यह है कि दशमहाविद्या आदि सिद्ध मन्त्रों को छोड़कर शेष जितने भी मन्त्र हैं वे सुषुप्त हैं—पशुभाव में अवस्थित हैं, अत: वे मन्त्र के स्वस्वरूप (चैतन्यभाव का उन्मेष) से शून्य होने के कारण पशुसाधक (पशुभावस्थ उपासक) की भाँति स्वयं भी पश्वावस्था में स्थित रहते हैं और मन्त्र नहीं मात्र वर्ण रहते हैं किन्तु कुल्लुका आदि विधानों से वे शक्तिसम्पन्न हो जाते हैं—

१. शाक्तानन्दतरङ्गिणी।

'पशुभावे स्थिता मन्त्राः केवला वर्णरूपिणः ।
एवं कृते महेशानि प्रभुत्वं प्राप्नुवन्ति ते ।
अन्यथा पशुवद् देवि ! न जपेत्तु कदाचन'[१] ॥

मुखशोधन और बगलामुखी

मुखशोधन—तान्त्रिक मर्यादा यह है कि किसी भी देवता का मन्त्र-जप करने के पूर्व मुख-शोधन अवश्य कर लेना चाहिए । अपवित्र मुख एवं अपवित्र जीभ से पवित्रतम (Holiest) की पूजा एक औद्धत्य है—मर्यादा-हीनता है ।

मुखशोधन और बगलामुखी—अशुद्ध जिह्वा से किया हुआ जप सिद्धि के स्थान पर हानिप्रद होता है । जिह्वा की अशुद्धि के अनेक कारण हैं । इन्हें मल कहते हैं । ये अनेक प्रकार के हैं; यथा—भोजन का मल, कलह करने का मल या मिथ्या बोलने आदि का मल । जिह्वा का शोधन किये बिना जिह्वा मन्त्रोच्चारण की अधिकारिणी नहीं बन पाती । अतः नियम यह है कि जिस भी देवता का जप करना हो उसके विधानानुसार उस देवता विषयक मन्त्र का दस बार जप करके ही मन्त्र का जप प्रारम्भ करना चाहिए । यही है मुखशोधन क्रिया ।

क्र.सं.	देवता का नाम	मुखशोधन का मन्त्र
१.	भगवती त्रिपुरसुन्दरी	श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ
२.	भगवती श्यामा	क्रीं क्रीं क्रीं ॐ ॐ ॐ क्रीं क्रीं क्रीं
३.	भगवती तारा	ह्रीं हूँ ह्रीं
४.	भगवती बगलामुखी	ऐं ह्रीं ऐं
५.	भगवती मातङ्गी	ॐ ऐं ॐ
६.	भगवती लक्ष्मी	श्रीं
७.	भगवती धूमावती	ॐ
८.	भगवती धनदा	ॐ धूं ॐ
९.	भगवान् गणेश	ॐ गं
१०.	भगवान् विष्णु	ॐ हं

ब्रह्मास्त्रविद्या के कतिपय प्रयोग

(क) **देवता का स्तम्भन एवं वशीकरण**—साधक को चाहिए कि वे भगवती का ध्यान करके उनके मन्त्र का एक लक्ष जप करें । फिर वे चम्पापुष्प से हवन करें । फिर भगवती की सिंहासन पर पूजा करें ।

फल—ऐसा करने से मन्त्रसिद्ध हो जाने की स्थिति में साधक सभी देवताओं को अपने वश में कर लेता है ।

---

१. शाक्तानन्दतरङ्गिणी ।

(ख) **मानव-स्तम्भन एवं उसका वशीकरण**—साधक स्वयमेव पीत वस्त्र धारण करके, पीली माला एवं केसरिया पीला चन्दन लगाकर, हल्दी की पीली माला लेकर षट्त्रिंशदक्षरी ब्रह्मास्त्रविद्या (३६ वर्णों वाले बगलामुखी मन्त्र) का एक लाख जप करे।

मन्त्र—'ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।

जपोपरान्त पीत पुष्प (चम्पा/कनेर) से भगवती का ध्यानगर्भित पूजन करे।

पूजा-विधान—

'पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाभिमुखं स्थितः।
लक्षमेकं जपेन् मन्त्री हरिद्राग्रन्थिमालया॥
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं प्रयतो ध्यानतत्परः।
प्रियङ्ग्वाश्च रसेनाऽपि पीतपुष्पैश्च होमयेत्।
जपमन्त्रप्रयोगेण मन्त्रं चाप्ययुतं जपेत्'॥

× × × × × × × ×

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चम्पकोद्भवैः।
कुसुमैर्जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम्॥
इत्थं सिद्धमनुमन्त्री स्तम्भयेद् देवतादिकान्।
पीतवस्त्रास्तदासीनः पीतमाल्यानुलेपनः॥
पीतपुष्पैर्यजेद् देवीं हरिद्रोत्थस्रजा जपन्।
पीतां ध्यायन् भगवतीं प्रयोगेष्वयुतं जपेत्'[१]॥

(ग) **प्राणिमात्र का आकर्षण**—यदि साधक मधु, घृत, शक्कर सहित हवन करे तो प्राणिमात्र का आकर्षण हो जाता है।

(घ) **परस्पर कलहोत्पत्ति कराने की पद्धति**—यदि तेल में मिली नीम की पत्ती से हवन किया जाय तो परस्पर कलह उत्पन्न किया जा सकता है।

(ङ) **शत्रु-स्तम्भन**—ताड़पत्र एवं नमक युक्त हल्दी की गाँठ से हवन करने पर शत्रु स्तम्भित होता है।

(च) **शत्रु-विनाश**—यदि राई, भैंस का घृत एवं गुग्गुल से रात्रि में हवन किया जाय तो शत्रुओं का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

(छ) **उच्चाटन**—यदि गृध्र एवं कौवे के पंखों को सरसों के तेल में मिलाकर चिता पर हवन किया जाय तो शत्रुओं का उच्चाटन होता है।

(ज) **रोग-निवारण**—यदि मधु, शहद, चीनी से मिश्रित दूर्वा, गुरुच एवं धान

१. मन्त्रमहार्णव : बगलामुखीमन्त्र-प्रयोग।

के लावा के द्वारा हवन किया जाय तो यह हवन समस्त रोगों को शान्त कर देता है। उस हवन के दर्शन मात्र से रोगी के सारे रोग स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

(झ) **समस्त कार्यों की सिद्धि**—यदि साधक पर्वत के शिखर, घनघोर अरण्य, नदीतट पर, शिवमन्दिर में ब्रह्मचर्यपूर्वक बगला देवी के मन्त्र का एक लाख जप करे तो समस्त कार्यों की सिद्धि हो जाती है—

'पर्वताग्रे महारण्ये नदीसङ्गे शिवालये।
ब्रह्मचर्यरतो लक्षं जपेदखिलसिद्धये'॥

(ञ) **शत्रु की शक्तियों का नाश**—यदि साधक चीनी एवं मधु से युक्त (एक वर्णवाली) गौ के दूध से बगलामुखीमन्त्र को ३०० बार अभिमन्त्रित करके उस दूध का पान करे तो शत्रुओं का पूर्ण पराभव होता है।

(ट) **साधक में विलक्षण गति का आविर्भाव**—साधक यदि श्वेत पलाश की लकड़ी का सुन्दर खड़ाऊँ बनवाकर और उसे लाल रंग से रंगकर १४ लाख मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करके धारण करे तो एक क्षण में १०० कोस जा सकता है।

(ठ) **अदृश्यकरण**—साधक यदि पारा, शिलाजीत तथा ताड़पत्र के चूर्ण को मधु के साथ अपने शरीर के सभी अङ्गों में लगा ले और १४ लाख (बगला) मन्त्र का जप पूरा कर ले तो अदृश्य हो जाता है।

(ड) **शत्रु की वाणी, गति एवं उसके समस्त कार्यों का स्तम्भन**—

(१) यदि साधक धतूरे के रस एवं निशाचूर्ण से हरिताल को घोंटकर षट्कोण यन्त्र में बीजमन्त्र तथा अपने शत्रु के नाम के समस्त अक्षर लिखकर उस यन्त्र को पीले डोरे से लपेटकर अपने घर में रख दे।

(२) घूमते हुए चाक (कुम्हार की चाक) की मिट्टी लेकर, उस मिट्टी से बैल की एक सुन्दर मूर्ति बनाकर उस मूर्ति के मध्य उस यन्त्र को रख दे और १४ दिनों तक उसमें हरताल का लेपन करके उस बैल का १४ दिनों तक पूजन करे तो शत्रु की वाणी, गति एवं उसके सारे कार्य रुक जाते हैं।

(ढ) **शत्रुवाक्-स्तम्भन**—यदि मृतक के कफ़न पर चिता के अङ्गार से यन्त्र निर्माण करके उसे मेढ़क के मुख में रखकर मेढ़क सहित उस यन्त्र को पीले वस्त्र से लपेटकर पीत पुष्प से पूजन किया जाय तो शत्रु की वाणी स्तम्भित हो जाती है।

(ण) **अतिवृष्टिस्तम्भन**—यदि साधक घनघोर वृष्टि के स्थान पर षट्कोण यन्त्र निर्मित करके यन्त्र को वृषापत्र द्वारा मार्जन करे तो अतिवृष्टि रुक जाती है।

(त) **जलप्रवाह-स्तम्भन**—यदि सात या १४ बार इन्द्र एवं वरुण मन्त्र से अभिमन्त्रित बगलामुखी यन्त्र को बाढ़ से प्रवाहित जल में फेंक दिया जाय तो तत्क्षण बाढ़

रुक जायेगी। इन प्रयोगों से शत्रु की गति, बुद्धि आदि का स्तम्भन होता है—'शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तम्भनो नाऽत्र संशयः'[१]।

किसी भी देवता को प्रसन्न करने हेतु उस देवी या देवता के गायत्रीमन्त्र का प्रयोग आवश्यक होता है।

भगवती बगलामुखी का भी अपना गायत्रीमन्त्र है जो कि निम्नांकित है—'ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे स्तम्भनबाणाय धीमहि। तन्नो बगला प्रचोदयात्'।

इस मन्त्र का न्यास आदि 'श्रीबगलामुखी-अनुष्ठानरहस्यम्' में विस्तारपूर्वक वर्णित है।

कतिपय प्रयोग—

उद्देश्य एवं प्रयोग-विधि—

(१) **मोक्षेच्छा**—एतदर्थ भगवती बगलामुखी के गायत्रीमन्त्र के आदि में 'ॐ' लगाकर इस मन्त्र का जप करना चाहिए।

(२) **शान्ति-प्राप्ति**—इस प्रयोजन की सिद्धि हेतु साधक को भगवती के उक्त मन्त्र के आदि में 'ऐं' बीज लगाकर जप करना चाहिए।

(३) **सम्मोहन-क्रिया**—इस प्रयोजन की सिद्धि हेतु साधक को इस मन्त्र के आदि में 'क्लीं' बीज लगाकर जप करना चाहिए।

(४) **अभीष्ट विद्या की प्राप्ति**—इस प्रयोजन की सिद्धि हेतु उक्त मन्त्र के आदि में 'ऐं' बीज लगाकर मन्त्र-जप करना चाहिए।

(५) **भूमि-प्राप्त्यर्थ**—इस प्रयोजन की सिद्धि हेतु उक्त मन्त्र के आदि में एवं अन्त में 'लं' बीज लगाकर उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए।

(६) **लक्ष्मी-प्राप्ति**—इस प्रयोजन की सिद्धि हेतु इस गायत्री मन्त्र के आदि में 'श्रीं' बीज लगाकर उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए।

(भूत-प्रेतादि की बाधा भी इस मन्त्र के प्रयोग से दूर हो जाती है।)

(७) **महाज्वर की निवृत्ति**—यदि किसी को महाज्वर का रोग कष्ट पहुँचा रहा हो तो उससे मुक्ति-प्राप्त्यर्थ उक्त मन्त्र के आदि में 'ॐ ह्रौं' लगाकर जप करने से उक्त व्याधि शमित हो जाती है।

(८) **शत्रु-उच्चाटन**—यदि किसी को कोई शत्रु अधिक कष्ट पहुँचा रहा हो तो 'रं' बीज का सम्पुट लगाकर जप करने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। बगलामुखी का यह ३६ अक्षरों वाला बगलागायत्री परमाश्चर्यजनक मन्त्र है।

---

१. मन्त्रमहार्णव : बगलामुखीमन्त्र-प्रयोग।

शाक्तोपासना या भगवती बगला की आराधना से फलाप्ति

शाक्तोपासना मुख्यत: अद्वैतपरक है अत: उससे तत्त्वज्ञान तो प्राप्त होता ही है साथ ही पुरुषार्थचतुष्टय की भी प्राप्ति होती है। शाक्तोपासना का मुख्य लक्ष्य मोक्ष है, क्योंकि इस उपासना के मूल में ही शक्ति के साथ सामरस्य की अनुभूति करना है और यह अनुभूति प्राप्त करना है कि—'अहं देवी न चान्योऽस्मि'।

भगवती बगलामुखी की उपासना मोक्ष तो प्रदान करती है, साथ ही यह ऐहिक सुख भी प्रदान करती है।

ऐहिक सुख

शान्तिक	पौष्टिक	आभिचारिक
↓	↓	↓
देवीप्रकोप से उत्पन्न आधि-व्याधियों का शमन शान्तिकर्मों से होता है।	धन, जन आदि लौकिक उपयोगी वस्तुओं की वृद्धि के लिए पौष्टिक कर्मों का अनुष्ठान किया जाता है एवं दरिद्रता से कष्टापन्न लोगों को पौष्टिक कर्मों के द्वारा (धन-जन वृद्धि हेतु) स्तम्भनशक्ति का उपयोग किया जाता है।	शत्रुओं के निग्रहार्थ आभिचारिक कर्मों का विधान है। उक्त तीनों कर्मों का निष्पादन और तज्जन्य फलों की प्राप्ति स्तम्भनमहाशक्ति (भगवती बगला की शक्ति) से होता है। तन्त्र के षट्कर्मों मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण स्तम्भन, द्वेषण आदि तो स्तम्भनशक्ति के विशेष कार्य हैं ही।

विशेष—उपासकों का अनुभव है कि उन्हें बगलाविद्या के 'मन्दार मन्त्र' से स्वानुभूत अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं अत: उसका उल्लेख पुन: किया जा रहा है।

मन्त्रोत्तम मन्दार-मन्त्र

'श्रीमाया योनिपूर्वा भगवति बगले ! मे श्रियं देहि देहि
स्वाहेत्थं पञ्चमोऽयं प्रणवसहकृतो भक्तमन्दारमन्त्र:।
सौवर्ण्या मालयाऽमुं कनकविरचिते यन्त्रके पीतविद्यां
ध्यायन् पीताम्बरे ! त्वां जपति य इह स श्रीसमालिङ्गित: स्यात्'॥

इसका तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति अनन्त विभूतियों से श्रीसम्पन्न हो जाता है। जो—

'सुवर्णाभरणां देवि ! पीतमाल्याम्बरावृताम्।
ब्रह्मास्त्रविद्यां बगलां वैरिणां स्तम्भिनीं भजे'॥

का ध्यान एवं स्तवन करता हुआ—'ॐ श्रीं ह्रीं ऐं भगवति बगले ! में श्रियं देहि देहि स्वाहा' (१. प्रणव, २. श्रीबीज, ३. मायाबीज 'ह्रीं' एवं ४. योनि—ऐंबीज समन्वित) मन्त्र का जप करता है वह सर्ववैभव सम्पन्न हो जाता है।

साधना एवं साधना-पद्धति

(१) **आचरण सम्बन्धी विधान**—प्रयोक्ता को चाहिए कि वह पीताम्बर धारण करे, दो पीत वस्त्र लिये रहे, पीताभूषण धारण करे, पीत यज्ञोपवीत धारण करे, पीली वस्तुओं का ही भोजन करे और सारे जप केवल हल्दी की गाँठों से निर्मित माला द्वारा ही करें।

(२) **जप-विधान**—

(क) उक्त साधक को सर्वप्रथम 'वडवानल बाण' का १०० बार जप करना चाहिए।

(ख) फिर 'उल्कामुख बाण' का २०० बार जप करना चाहिए।

(ग) फिर 'ज्वालामुख बाण' का ३०० बार जप करना चाहिए।

(घ) फिर 'जातवेदमुखी बाण' का स्मरण करना चाहिए।

(ङ) फिर 'बृहद्भानुमुखी बाण' का ५०० जप करना चाहिए।

इसके उपरान्त—

(अ) **क्रूर कर्मों के ध्वंस हेतु**—कुल्लुकादिसमन्वित 'एकाक्षरी महाविद्या' का नेत्रलक्ष (दो लक्ष) जप करना चाहिए। फिर हरिद्राखण्ड का १००, ३००, १००० या ३००० (यथाकाम्य गौरव के अनुसार) हवन करना चाहिए—'हरिद्राहोममात्रेण क्रूर-कर्मविनाशनम्'। फिर तालनीर से तर्पण एवं मार्जन करना चाहिए।

(आ) **कृत्याविषस्तम्भन योग**—इसका विधान इस प्रकार है—

(१) सौभाग्यार्चाक्रम से ब्राह्मीमुद्रावधारण द्वारा, (२) दीपकास्त्र—योजन द्वारा, (३) त्रैलोक्यविजय नामक कवच के पाठ द्वारा एवं (४) पञ्चास्त्र के मूल पाठ के द्वारा—गरुडोपम पुत्र की प्राप्ति होती है। सिद्धिप्राप्ति के लिए पञ्चक्रम आवश्यक है जो निम्नांकित हैं—(१) पीताशी, (२) पीतपानी, (३) पीतशय्यासमन्वित, (४) पीताम्बरादिसंयुक्त तथा (५) पीतपूजापरायण।

'पञ्चक्रमसमासक्तः सिद्धिभागी नरः सुत' ॥

फल—'ग्रसनी सर्वविद्यानां रक्षणी सकलापदाम्।
मथिनी सर्वशत्रूणां नाशिनी सर्वरक्षणान्' ॥

न्यासतत्त्व और भगवती की उपासना

'नि' उपसर्गपूर्वक 'असु क्षेपणे' धातु से न्यास शब्द निष्पन्न होता है। 'अस्' का

अर्थ है स्थापित करना। पूर्णतया ('नि') स्थापित करना ('अस्') ही न्यास है। जिसका जो स्थान नहीं है यदि वह वहाँ बलपूर्वक बैठ जाय तो उसको उस स्थान से हटाकर वहाँ उसके स्वामी को बैठाना ही न्यास है। स्वर्ग तो इन्द्र का स्थान (राज्य) है किन्तु महिषासुर इन्द्र को इन्द्रलोक (स्वर्ग) से हटाकर स्वयं उसका स्वामी बन बैठा—'स्वर्गात् निराकृता देवा इन्द्रोऽभूत् महिषासुरः'।

देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन आदि में से कोई भी अपना आत्मीय तत्त्व नहीं है, उनमें से किसी पर भी अपना अधिकार नहीं है। ये सभी भगवान् के हैं अतः उनके स्वामी हम नहीं भगवान् हैं। इन सभी स्थानों में अपनी क्षुद्र अस्मिता ('मैं' का भाव) रखना ही स्वामी को हटाकर दास को सिंहासनारूढ़ करना है। इनके स्थान में इनके स्वाभाविक मूल स्वामी को सिंहासनारूढ़ करना—'ये मेरे नहीं भगवान् के हैं' का भाव रखना—न्यास है।

मन्त्रवर्णन्यास

मन्त्र—

'ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय नाशय ह्लीं ॐ'[१]।

"ॐ नमः शिरसि, 'ह्लीं' नमो ललाटे, 'बं' नमो भ्रूमध्ये, 'गं' नमो दक्षिणनेत्रे; 'लां' नमो वामनेत्रे, 'मुं' नमो दक्षिणकर्णे, 'खिं' नमो वामकर्णे, 'सं' नमो दक्षिणनासापुटे, 'वं' नमो वामे, 'दुं' नमो दक्षिणगण्डे, 'ष्टां' नमो वामे, 'नां' नमः ऊर्ध्वोष्ठे, 'वां' नमः अधरोष्ठे, 'चं' नमो मुखे, 'मुं' नमो चिबुके, 'खं' नमो गले, पं' नमो दक्षबाहुमूले, 'दं' नमः कूर्परे, 'स्तं' नमो मणिबन्धे, 'भं' नमः अङ्गुलिमूले, 'यं' नमः अङ्गुल्यग्रे, 'जिं' नमो वामदोर्मूले, 'ह्वां' नमः कूर्परे, 'कीं' नमः मणिबन्धे, 'लं' नमः अङ्गुलिमूले, 'यं' नमः अङ्गुल्यग्रे, 'वुं' नमो दक्षोरुमूले, 'द्धिं' नमो जानुनि, 'विं' नमो गुल्फे, 'नां' नमः अङ्गुलिमूले, 'शं' नमः अङ्गुल्यग्रे, 'यं' नमो वामोरौ, 'ह्लीं' नमो वामजानुनि, 'ॐ' नमो गुल्फे, 'स्वां' नमः अङ्गुलिमूले, 'हां' नमो वामदक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे"।

मन्त्राक्षर-न्यास का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—

'मध्ये सुधाऽब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराऽऽभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं, देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्॥

---

१. 'ॐ ह्लीं ह्लीं बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'॥ (सांख्यायनतन्त्र)
(ॐ 'ह्लीं' का हृदय में, 'बगलामुखि' का शिर में, 'सर्वदुष्टानां' का शिखा में, 'वाचं मुखं पदं स्तम्भय' का कवच में, 'जिह्वां कीलय' का नेत्रत्रय में, 'बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा' का अस्त्र में न्यास करना चाहिए।)

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं, वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाऽभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि' ॥

पूजा-विधान

साधक को भगवती बगला का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—

(१) अमृतसागर में मणिनिर्मित मण्डप स्थित है।

(२) मणिमण्डप के मध्य में रत्ननिर्मित चौकोर वेदिका है।

(३) चौकोर वेदिका पर स्वर्ण-सिंहासन स्थित है।

(४) स्वर्ण-सिंहासन के मध्यभाग में पीतवर्ण के वस्त्राभूषण और पुष्पों से सज्जित भगवती बगलामुखी समासीन हैं। (उनके वस्त्र भी पीत वर्ण के हैं, आभूषण भी पीतवर्ण के हैं, उनकी पुष्पमाला भी पीतवर्णों की है। उनकी सारी वस्तुएँ पीत वर्ण की हैं।)

(५) वे वाम हस्त से शत्रु की जिह्वा बाहर खींचकर और दक्षिण हस्त पर उसे रखकर मुद्गर से पीट रही हैं।

(६) ऐसी पीताम्बरा, महाविद्या, ब्रह्मास्त्रविद्या भगवती बगलामुखी को मैं नमस्कार कर रहा हूँ।

मानसोपचार-पूजन—भगवती का ध्यान करने के उपरान्त उनका मानसोपचारों से पूजन किया जाता है।

मन्त्र-जप—भगवती का पूजन करने के उपरान्त साधक को चाहिए कि वह भगवती के मन्त्र का जप करें।

मन्त्र-जप के लिए प्रशस्त माला—भगवती बगलामुखी के जपार्थ हरिद्रा-माला (हरिद्राग्रन्थिमाला) ही सर्वाधिक प्रशस्त है।

हवन-द्रव्य—भगवती बगलामुखी के हवन के लिए पीत पुष्पों का प्रयोग किया जाना चाहिए। चम्पा एवं पीले कनेर पुष्प अधिक प्रशस्त हैं।

पूजन के समय धार्य वस्त्र का रंग—भगवती की पूजा करने के समय साधक को पीले वस्त्र को ही धारण करना चाहिए।

साधक की (पूजा के समय) ग्राह्य दिशा—भगवती की पूजा के समय साधक को पूर्वाभिमुखी होकर ही बैठना चाहिए।

जप-संख्या—भगवती बगलामुखी की पूजा करते समय पीत वस्त्र पहनकर, पूर्वाभिमुखी बैठकर, हरिद्राग्रन्थि की माला लेकर (ब्रह्मचर्य-पालन के साथ), ध्यानमग्न होकर (भगवती का ध्यान करते हुए—'तज्जपस्तदर्थभावनम्' के अनुसार ध्यान करते हुए) पुरश्चरणार्थ भगवती के मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए।

हवन-सामग्री—भगवती के प्रीत्यर्थ प्रियङ्गुपुष्प, चम्पा, पीले कनेर आदि पीतवर्ण के पुष्पों का प्रयोग करना चाहिए। हवन की सामग्री के रूप में यही सामग्री प्रशस्त है।

यन्त्र और उसकी अर्चना

यन्त्र-निर्माण और यन्त्र-पूजन—साधक को चाहिए कि यन्त्र के निर्माणार्थ आटा या रेत से ऊँचे समतल भाग का निर्माण करके उस पर यन्त्र का हल्दी के चूर्ण से निर्माण करे। यन्त्र में स्थित विशिष्ट स्थानों पर जप करके उनकी पूजा की जानी चाहिए। 'ललितासहस्रनाम' में पूर्वापर क्रम इस प्रकार दिया गया है—

(क) 'चक्रराजार्चनं देव्या जपो नाम्नां च कीर्तनम्'।
अर्थात् 'चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्' ॥

(ख) 'जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नाम सहस्रकम्'।
'जपपूजाद्यशक्तेश्च पठेन्नाम सहस्रकम्' ॥

(ग) 'श्रीचक्रे मां समभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्।
पश्चान्नामसहस्रं मे कीर्तयेन्मम तुष्टये' ॥
'कीर्तयेन्नामसाहस्रमिदं मत्प्रीतये सदा' ॥

(घ) 'प्रातः स्नात्वा विधानेन सन्ध्याकर्म समाप्य च।
पूजागृहं ततो गत्वा चक्रराजं समर्चयेत् ॥
विद्यां जपेत् सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव वा।
रहस्यनामसाहस्रमिदं पश्चात् पठेन्नरः' ॥

अर्चा-विधान के सोपान (ललितासहस्रनाम)



५. सहस्रनाम का पाठ
४. मन्त्र-जप
३. चक्र का पूजन
२. सन्ध्याधिक
१. पूजनादिक नित्य कर्म

'ललितासहस्रनाम' के अनुसार संक्षिप्ततम पूजा के भी स्वरूप में मुख्यतः तीन सोपान हैं। उनमें भी प्रथम सोपान 'चक्रपूजा' है और उसके बाद (पञ्चदशाक्षरी) मन्त्र का जप और फिर सहस्रनाम का पाठ है।

भगवती बगलामुखी का यन्त्र

प्रत्येक देवता का अपना पृथक्-पृथक् यन्त्र होता है। यन्त्र उस देवता का आसन

होता है जिस पर वह देवता आसन ग्रहण करता है। यन्त्र को देवता का स्थूल शरीर भी कहा गया है। इन्हीं अनेक कारणों से मात्र यन्त्र-दर्शन से अनन्त पुण्यों की प्राप्ति की बात कही गई है।

देवता की पूजा तो तब की जाती है जब देवता सामने उपस्थित हो। देवता को सामने उपस्थित करने हेतु उसे आसन दिया जाता है। फिर उस आसन की पूजा की जाती है और उसके बाद ही देवता की पूजा की जाती है।

भगवती बगलामुखी के यन्त्र के स्वरूप विषय में कहा गया है कि—पहले योनि अर्थात् शक्तित्रिकोण (अधोमुखी त्रिकोण) का चित्रांकन करे, फिर उसके बाह्य प्रदेश में षट्कोण का निर्माण करे, फिर उसके बाह्य देश में अष्टदल और उसके बाह्य प्रदेश में षोडशदल का निर्माण करे। तदनन्तर चर्तुद्वारों से युक्त चतुरस्र भूपुर का निर्माण करे। यही बगलामुखी का अपना यन्त्र है।

इस यन्त्र-निर्माण की पद्धति के अनुसार—

(१) इसमें षट्कोण के बाहर एक वृत्त देकर अष्टदल निर्मित किया जाता है।

(२) इसके उपरान्त अष्टदलानन्तर एक वृत्त निर्मित किया जाता है।

(३) तद्नन्तर षोडश दल निर्मित किया जाता है।

(४) उसके बाह्यप्रदेश में एक वृत्त निर्मित करके फिर भूपुर का निर्माण किया जाता है—

'मध्ये योनिं समालिख्य तद् बाह्ये तु षडस्त्रकम्।
तद्बाह्येऽष्टदलं पद्मं तद्बाह्ये षोडशच्छदम्॥
चतुरस्त्रत्रयं बाह्ये चतुर्द्वारोपशोभितम्'॥

शाक्तप्रमोद की दृष्टि और यन्त्र-निर्माण

'शाक्तप्रमोद' में यन्त्र-निर्माण की पद्धति इस प्रकार बतलाई गई है—'त्र्यस्त्रं षडस्त्रं वृत्तमष्टदलपद्मं भूपुरान्वितम्' अर्थात् त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल, कमल एवं भूपुर बनाकर जो यन्त्र तैयार किया जाता है वही बगलामुखी का यन्त्र है।

शाक्तप्रमोदोक्त उक्त पद्धति का आधार क्या है ? यह किस ग्रन्थ में प्रतिपादित है ? यह शाक्तप्रमोद में बताया नहीं गया है।

कामेश्वर शिव एवं कामेशी देवी ललिता के सन्नद्ध बिन्दु को लेकर ही श्रीचक्र निर्मित हुआ है। चक्र पराशक्ति एवं परशिव का आत्मविस्तार है। श्रीचक्र को ही लें। इसमें ४ शिवचक्र एवं ५ शक्तिचक्र का समन्वय है अत: श्रीचक्र शिव-शक्ति का शरीर है—

'चतुर्भि: शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभि:।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपु:'॥

(१) त्रिकोण, (२) अष्टकोण, (३) दशकोणद्वय, (४) चतुर्दशार अर्थात् ५ शक्तिचक्र एवं बिन्दु, अष्टदलपद्म, षोडशदलपद्म, चतुरस्र तथा ४ शिवचक्र के ही श्रीचक्र बनता है। (ब्रह्माण्डपुराण)

सर्वयन्त्रात्मिका देवी की व्याख्या करते हुए आचार्य भास्करराय सौभाग्यभास्कर में कहते हैं—

'सर्वेषां घण्टार्गलादीनां यन्त्राणामात्मस्वरूपमेवात्मिका'।

चक्र (या यन्त्र) के दर्शन का महत्त्व

भगवती की उपासना की दृष्टि से चक्रोपासना (या यन्त्रोपासना) का अत्यधिक महत्त्व है।

साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करने से जो फल मिलता है वही फल श्रीचक्र के दर्शन मात्र से प्राप्त हो जाता है। १०० यज्ञों को करने एवं महाषोडश दान करने से जो फल प्राप्त होता है वह मात्र श्रीचक्र के दर्शन मात्र से मिल जाता है—

'सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत् फलं समवाप्नुयात्।
तत् फलं लभते भक्त्या कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्॥
महाषोडशदानानि कृत्वा यल्लभते फलम्।
तत् फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्॥
सार्द्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नात्वा यत् फलमश्नुते।
तत् फलं लभते मनसा कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्'[1]॥

चक्र अहन्ता एवं इदन्ता की भिन्नता से रहित एवं उसका बीजरूप, रसात्मक, विश्वाकार एवं शिवशक्तिमय दिव्य रचना है—

'अहन्तेन्दयोर्बीजमविभागरसात्मकम्।
शिवशक्तिमयं चक्रं विश्वाकारं भजाम्यहम्'[2]॥

चक्र का त्रिकोण ही शक्ति है और उसमें स्थित बिन्दु ही शिव है। इन दोनों का अविनाभाव सम्बन्ध ही चक्र है और इस रहस्य का ज्ञाता ही चक्रवित् है—

'शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित्॥
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपः परः शिवः।
अविनाभावसम्बन्धस्तस्माद् बिन्दुत्रिकोणयोः'॥

श्रीचक्र तो शिव और शक्ति का शरीर है—'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'[3]।

---

१. यामल। २. सुभगोदयवासना। ३. श्रीचक्र की ही भाँति भगवती बगला के यन्त्र या चक्र का भी महत्त्व है।

मन्त्रमहार्णवोक्त पूजन-विधान और तज्जन्य फल एवं सिद्धियाँ

मन्त्रमहार्णव के अनुसार भगवती का पूजन-विधान निम्नानुसार है—

ध्यान—प्रथमत: भगवती के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

जप—ध्यानोपरान्त भगवती के मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए।

हवन—जपोपरान्त भगवती के प्रीत्यर्थ चम्पा के पुष्पों से हवन करना चाहिए।

पूजन—हवनोपरान्त सिंहासनस्थ भगवती बगलामुखी का पूजन करना चाहिए।

फल—मन्त्र की सिद्धि होने पर साधक सभी देवताओं को वशीभूत कर लेता है।

'एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चम्पकोद्भवैः।
कुसुमैर्जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिदम्॥
इत्थं सिद्धमनुर्मन्त्री स्तम्भयेद् देवतादिकान्'।

पूजन-विधान—साधक को चाहिए कि वह पीत वस्त्र धारण करके, पीत माला ग्रहण करके (हल्दी की गाँठों से निर्मित माला), केसरिया चन्दन लगाकर ३६ वर्ण वाले बगलामुखी के मन्त्र का एक लाख जप करे।

मन्त्र—'ॐ ह्लीं बगलामुखि! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा'।

साधक इस मन्त्रजप के बाद पीत वर्ण वाली भगवती बगलामुखी का ध्यान करके पीतपुष्पों से उनका पूजन करे।

सिद्धियाँ : (क) **देवस्तम्भन (देव-वशीकरण)**—'इत्थं सिद्धमनुर्मन्त्री स्तम्भयेद् देवतादिकान्'।

(ख) **मानव-स्तम्भन**—मधु, घृत और शक्कर-मिश्रित तिल से हवन करने पर साधक सभी मनुष्यों को अपने वश में कर लेता है (यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इसके पूर्व ध्यान और जप अनिवार्य है)—

'पीतवस्त्रास्तदासीनः पीतमाल्यानुलेपनः।
पीतपुष्पैर्यजेद् देवीं हरिद्रोत्थस्रजा जपन्॥
पीतां ध्यायन् भगवतीं प्रयोगेष्वयुतं जपेत्।
त्रिमध्वक्ततिलैर्होमो नृणां वश्यकरो मतः'॥

कलहाविर्भाव—यदि साधक तेलमिश्रित नीम की पत्ती से हवन करे तो परस्पर कलह एवं विवाद उत्पन्न हो जाता है—विद्वेष का आविर्भाव हो जाता है।

'तैलाभ्यक्तैर्निम्बपत्रैर्होमो विद्वेषकारकः'।

आकर्षणोत्पत्ति—यदि साधक मधु, घृत, शक्कर एवं नमक को मिलाकर हवन करे तो सारे प्राणी आकृष्ट हो जाते हैं (इसे अनेक बार अनुभूत किया जा चुका है)।

'मधुरत्रितयाक्तैः स्यादाकर्षो लवणैर्ध्रुवम्'।

शत्रु-स्तम्भन—यदि साधक ताड़ के पत्ते, नमक एवं हल्दी की गाँठों से हवन करे तो शत्रु स्तम्भित हो जाता है—

'ताललवणहरिद्राभिर्द्विषां संस्तम्भनं भवेत्'।

शत्रु का विनाश—यदि साधक अगर, राई, भैंस का घी और गुग्गुल से रात्रि में हवन करता है तो शत्रु का बहुत शीघ्र विनाश हो जाता है (आगार-धूम, राजी, माहिष, गुग्गुल से हवन करने पर शत्रु का विनाश अवश्य हो जाता है)—

'आगारधूमं राजीश्च माहिषं गुग्गुलुं निशि'।

यदि यह हवन श्मशान से ली हुई आग में या श्मशानाग्नि में किया जाय तो यह सिद्धि शीघ्र होती है—

'श्मशानपावके हुत्वा नाशयेदचिरादरीन्'॥

उच्चाटन क्रिया—यदि साधक गृद्ध्र (गीध) एवं कौए के पंख को सरसों के तेल में मिलाकर चिता पर हवन करे तो शत्रु का उच्चाटन होता है—

'गरुतो गृध्रकाकानां कटुतैलं बिभीतकम्।
गृहधूमं चितावह्नौ हुत्वा प्रोच्चाटयेद् रिपून्'॥

रोग-निवृत्ति—रोग की निवृत्ति के लिए साधक मधु, शहद, चीनी, दूर्वा (दूब), गुरुच एवं धान का लावा लेकर उससे हवन करे। इस हवन के दर्शन मात्र से ही रोगी के समस्त रोग स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

'दूर्वा गुडूची लाजान्यो मधुरत्रितयान्वितान्।
जुहोति सोऽखिलान् रोगान् शमयेद् दर्शनादपि'॥

समस्त कार्यों की सिद्धि—साधक को चाहिए कि वह समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए पार्वत शिखर, घनघोर अरण्य, सरिता-तट या शिव-मन्दिर में ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवती बगला देवी के मन्त्र का एक लक्ष जप करे—

'पर्वताग्रे महारण्ये नदीसङ्गे शिवालये।
ब्रह्मचर्यरतो लक्षं जपेदखिलसिद्धये'॥

शत्रु-सामर्थ्य का विनाश—यदि साधक चीनी एवं मधु से युक्त एक वर्ण वाली गाय के दूध को बगला-मन्त्र से ३०० बार अभिमन्त्रित करके उस दूध को पी जाय तो उसके शत्रु का समस्त सामर्थ्य विनष्ट हो जाता है—

'एकवर्णगवीदुग्धं शर्करामधुसंयुतम् ।
त्रिशतं मन्त्रितं पीतं हन्याद् विषपराभवम्' ॥

शीघ्रगति सिद्धि—यदि साधक श्वेत पलाश की लकड़ी की सुन्दर खड़ाऊँ बनवाकर उसे अलक्तक या लाल रंग से रंगकर, १४ लाख बगलामन्त्रों से अभिमन्त्रित करके वह खड़ाऊँ धारण कर ले तो वह एक क्षण में १०० कोस का मार्ग तय कर लेता है—

'श्वेतपलाशकाष्ठेन रचिते रम्यपादुके ।
अलक्तरञ्जिते लक्षं मन्त्रयेन्मनुनाऽमुना ।
तदारूढः पुमान् गच्छेत् क्षणेन शतयोजनम्' ॥

अदृश्यीकरण—यदि साधक पारा, शिलाजीत, ताडपत्र के चूर्ण को मधु के साथ अपने शरीर के सभी अङ्गों में लेप कर ले और १४ लाख बगलामुखी का जप पूरा कर ले तो वह अदृश्य हो जाता है—

'पारदं च शिलां तालपिष्टं मधुसमन्वितम् ।
मनुना मन्त्रयेल्लक्षं लिम्पेत्तनाऽखिलां तनुम् ।
अदृश्यः स्यान्नृणामेष आश्चर्यं दृश्यतामिदम्' ॥

शत्रु के समस्त कार्यों का अवरोध—यदि साधक धतूरे के रस एवं निशाचूर्ण से हरिताल को घोंटकर षट्कोण यन्त्र में बीजमन्त्र एवं अपने शत्रु के नाम के पूरे अक्षर लिखकर उस यन्त्र को डोरे से लपेटकर अपने घर में रख दे। घूमते हुए कुम्भार के चाक की मिट्टी लेकर उस मिट्टी से बैल की एक सुन्दर मूर्ति बनाकर उस मूर्ति के मध्य उस यन्त्र को रखे और १४ दिनों तक उसमें हरताल का लेपन करके उस बैल का १४ दिन पर्यन्त पूजन करे तो शत्रु की वाणी, गति एवं उसके समस्त कार्य अवरुद्ध हो जाते हैं—

'षट्कोणे विलिखेद् बीजं साध्यनामान्वितं मनोः ।
हरितालं निशाचूर्णैरुन्मत्तरससंयुतैः ॥
शेषाक्षरैः समावीतं धरागेहविराजितम् ।
तद्यन्त्रं स्थापितं प्राणपीतसूत्रेण वेष्टयेत् ॥
भ्राम्यत् कुलालचक्रस्थां गृहीत्वा मृत्तिकां तथा ।
रचयेद् वृषभं रम्यं यन्त्रं तन्मध्यतः क्षिपेत् ॥
हरितालेन संलिप्य वृषं प्रत्यहमर्चयेत् ।
स्तम्भयेद् विद्विषां वाचं गतिं कार्य-परम्पराम्' ॥

शत्रु-गतिस्तम्भन—यदि साधक अपने वाम पाणि से श्मशानभूमि में स्थित मानव के कपाल (खोपड़ी) को लेकर चिता के अंगार से उस खोपड़ी में षट्कोण यन्त्र का निर्माण करके और उसे बगलामुखीमन्त्र से अभिमन्त्रित करके पृथ्वी में गाड़ दे तो शत्रु की गति का स्तम्भन हो जाता है—

'आदाय वामहस्तेन प्रेतभूमिस्थखर्परम् ।
अङ्गारेण चितास्थेन तत्र यन्त्रं समालिखेत्' ॥

शत्रु की वाणी का स्तम्भन—यदि साधक मृतक के कफ़न पर चिता के अङ्गार से यन्त्र निर्मित करके उसे मेढ़क के मुख में रखकर, मेढक सहित उस यन्त्र को पीले वस्त्र से लपेटकर पीले पुष्प से उसका पूजन करे तो शत्रु की वाणी स्तम्भित हो जाती है—

'प्रेतवस्त्रे लिखेद् यन्त्रमङ्गारेणैव वेष्टितम् ।
पूजितं पीतपुष्पैस्तद्वाचं संस्तभयेद्द्विषाम्' ॥

अतिवृष्टि-स्तम्भन—जहाँ अत्यन्त घनघोर वृष्टि होती हो उस स्थान पर षट्कोण यन्त्र निर्मित करके उस यन्त्र का वृषापत्र द्वारा मार्जन करने से अतिवृष्टि रुक जाती है—

'यद्भूमौ भविता दिव्यं तत्र यन्त्रं समालिखेत् ।
मार्जितं तद् वृषापत्रैर्दिव्यस्तम्भनकृद् भवेत्' ॥

जल-प्रवाह (बाढ़) का स्तम्भन—यदि साधक ७ या १४ बार इन्द्र एवं वरुण-मन्त्र से अभिमन्त्रित बगलामुखीयन्त्र को बाढ़ आये हुए जल में फेंक दे तो तत्क्षण बाढ़ रुक जाती है—

'इन्द्र-वारुणिकामूलं सप्तशो मनुमन्त्रितम् ।
क्षिप्तं जले दिव्यकृतं जलस्तम्भनकारकम्' ॥

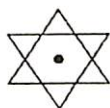
इन प्रयोगों को सम्यक् रीति से निष्पादित करने पर शत्रु की गति एवं बुद्धि आदि का स्तम्भन होता है—

'शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तम्भनो नाऽत्र संशयः' ।



तृतीय : अर्चा-खण्ड

(अध्याय : १०-११)

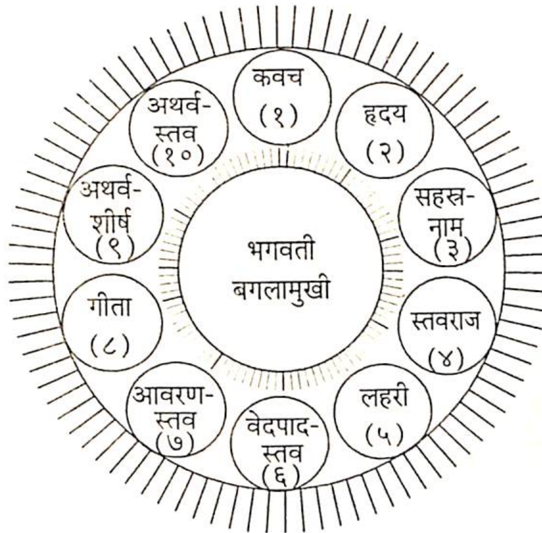


महाविद्या बगलामुखी की दशाङ्ग-साधना

दशम अध्याय

अर्चा के दशाङ्ग

भगवती बगलामुखी एवं सभी शक्तियों की अर्चा के दश अङ्ग माने गये हैं जो निम्नांकित हैं—कवच, हृदय, सहस्रनाम आदि सभी दशाङ्गों के मध्य भगवती (महाविद्या) बगलामुखी अवस्थित हैं। ये भगवती से पृथक् नहीं हैं। अर्चा यदि रथ है तो भगवती उसकी धुरी हैं। अर्चा यदि फल है तो भगवती उसका बीज हैं।



'मध्ये देवीं समावाह्य चिन्मयीं बगलाम्बिकाम्'। (सां.तं.)

'अर्चा' यदि परमाणु है तो भगवती परमाणु का केन्द्रक (न्यूक्लियस) हैं।

पूजा का यथार्थ स्वरूप—'स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थितिः'। (संकेतपद्धति)

अर्चा और अर्च्य, पूजा और पूज्य, सेवा एवं सेव्य, भजन एवं भजनीय, साधन एवं साध्य, ध्यान एवं ध्येय, दर्शन एवं दृश्य, अनुभव एवं अनुभूयमान, उपासना और उपास्य, आराधना एवं आराध्य अविभाज्य, अपृथक् एवं एकात्म हैं। मान्त्रिक एवं मन्त्र भी अपृथक् है। इसीलिए काश्मीर के शैवतान्त्रिकों ने कहा था—'चित्तं मन्त्रः'[1]। यदि मन्त्र एवं मन्त्री में पृथक्ता हुई तो मन्त्र कभी सिद्ध हो ही नहीं सकता—

---

१. शिवसूत्र (२।१)।

'पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा नैव सिद्ध्यति'[१] ॥

इसीलिए स्पन्दकारिका में कहा गया है कि—'सहाराधकचित्तेन तनैते शिवधर्मिणः'[२] ।

सामान्यतः उच्चारण किये जाने वाले मन्त्र 'मन्त्र' नहीं हैं—

'उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्रांश्चापि तान्विदुः'।

(सर्वज्ञानोत्तर)

मन्त्रों की आत्मा—अर्चा के दशाङ्गों की आत्मा-साधना की आत्मा—उपासना का प्राण–मन्त्रों की जीवात्मा केवल पराशक्ति है—'मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया' (तन्त्रसद्भाव)। क्योंकि—'मन्त्रयितुर्मन्त्रदेवतातादात्म्यप्रदः'। (शिवसूत्रविमर्शिनी) अर्चा का आदर्श रूप इस प्रकार है—

'यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्'।

(शंकराचार्य)

भगवती की पूजा के बाह्याङ्ग एवं अन्तरङ्ग दो अङ्ग हैं। अन्तरङ्ग निम्नांकित हैं—वर्णसंख्या, उद्धार, मात्रा, उच्चारण, स्थान, प्रयत्न, रूप, विभिन्न स्थितियाँ आदि। ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीज, शक्ति, कीलक, न्यास, बाह्यपूजा एवं कवच नामक अङ्ग बाह्याङ्ग हैं। आचार्य भास्करराय की दृष्टि में ये ही साधनाङ्ग हैं। आचार्य हयग्रीव के मतानुसार—कवच, हृदय, स्तवराज, लहरी, वेदपादस्तव, सहस्रनाम, गीता आदि अर्चन के १० अङ्ग हैं। कवच क्या है ? युद्धक्षेत्र में सैनिक या सेनापति के वक्षःस्थल पर कवच होता है उसी प्रकार देव्याराधन के अङ्ग के रूप में कवच होता है। कवच एक रक्षक उपकरण है जो योद्धा को आयुधों से होने वाले आघातों से रक्षा करता है। साधना के अन्तर्गत जो कवच होता है वह अदृष्ट आसुर शक्तियों से तो रक्षा करता ही है साथ ही यह अनेक सिद्धियाँ भी प्रदान करते हैं।

'पठित्वा धारयित्वा तु त्रैलोक्ये विजयी भवेत्'।

योगरत्नावली नामक ग्रन्थ में कवच एवं अर्गला की नई दृष्टि से व्याख्या की गई है। कवच क्या है ? कवच बीज है। अर्गला क्या है ? अर्गला शक्ति है—'कवचं बीजमादिष्टमर्गलाशक्तिरुच्यते'। पाठ का सामान्य क्रम इस प्रकार है—कवच, अर्गला, कीलक, किन्तु पूर्वापर क्रम के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है।

दशाङ्गों के क्रम के सम्बन्ध में मतभेद है; यथा—चिदम्बरसंहिता में पहले अर्गला,

---

१. श्रीकण्ठीसंहिता। २. स्पन्दसूत्र (२।२)।

फिर कीलक एवं फिर कवच के पाठ करने का विधान है—'अर्गलं कीलकं चादौ पठित्वा कवचं पठेत्'।

कवच के पढ़ने या धारण करने या पूजा करने से सारे वाञ्छित फल प्रदान करता है—'पठनाद् धारणादस्य पूजनात् वाञ्छितं लभेत्'। (रुद्रयामल)

रुद्रयामलतन्त्र (उत्तर खण्ड) में कहा गया है कि साधक को चाहिए कि वह भगवती के स्वरूप का ध्यान करके और एकाग्र होकर स्तोत्र का पाठ करे—

'हेमकुण्डलभूषां च पीतचन्द्रार्धशेखराम्।
पीतभूषणपीताङ्गीं स्वर्णसिंहासने स्थिताम्॥
एवं ध्यात्वा जपेत् स्तोत्रमेकाग्रकृतमानसः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति मन्त्रध्यानपुरःसरम्'॥

मन्त्र, स्तोत्र एवं यन्त्र—

'मन्त्रस्तावदलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रं च ते
यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां.....।
मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे
तन्नामस्मरणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम्॥
यत् कृतं जपसन्ध्यानं परमेश्वरि! चिन्तनं तव।
शत्रूणां स्तम्भनार्थाय तत् गृहाण नमोऽस्तु ते'॥

१. पाठक्रम—पहले चक्र का पूजन करना चाहिए। उसके बाद देवता के मन्त्र का जप करना चाहिए। उसके बाद देवी के सहस्रनाम का पाठ करना चाहिए—

'चक्राधिराजमभ्यर्च्य जप्त्वा पञ्चदशाक्षरीम्।
जपान्ते कीर्तयेन्नित्यमिदं नामसहस्रकम्'॥

भगवती बगला के प्रसङ्ग में पञ्चदशाक्षरी के स्थान पर बगलामन्त्र का जप करना चाहिए।

शाक्त आचार्य हयग्रीव ने 'शाक्तदर्शनम्' में कहा है कि भगवती के अर्चन के १० अङ्ग हैं जो निम्नांकित हैं—

दशाङ्ग

१. कवच २. हृदय ३. सहस्रनाम ४. स्तवराज ५. लहरी ६. वेदपादस्तव ७. आवरणस्तव
८. गीता ९. अथर्वशीर्ष १०. अथर्वस्तव

(१) 'जपेन्नित्यं दशाङ्गानि' ॥१७॥

(२) 'कवच-हृदय-सहस्रनाम-स्तवराज-लहरी-वेदपादस्तव-आवरणस्तव-गीता-अथर्वशीर्ष-सूक्तान्यङ्गानि'। (शाक्तदर्शनम् १६।३।१८)

भगवती बगलामुखी की उपासना के प्रसङ्ग में—(१) अथर्ववेदीय बगलासूक्त, (२) पीतोपनिषद्, (३) बगलामुखीस्तवराज, (४) पीताम्बरोपनिषद्, (५) बगलामुखी-कवच, (६) (रुद्रयामलोक्त अन्य) बगलामुखीकवच, (७) ब्रह्मास्त्रबगलाकवच, (८) विश्वसारोद्धारतन्त्र का बगलामुखीकवच, (९) विश्वयामलोक्त बगलामुखीकवच, (१०) रुद्रयामलोक्त प्रत्यङ्गिराकवच, (११) श्रीबगलामुखीशत्रुविनाशक कवच, (१२) वीरतन्त्रोक्त बगलामुखीकवच, (१३) बगलामुखीगायत्री, (१४) बगलामुखी पटल, (१५) बगलामुखीपटल (द्वितीय पटल), (१६) सिद्धेश्वरतन्त्र का बगलाहृदयस्तोत्र, (१७) विष्णुयामल का बगलाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, (१८) रुद्रयामल का बगला-ऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, (१९) बगलामुखीस्तोत्र, (२०) बगलासहस्रनामस्तोत्र, (२१) बगलापञ्जरस्तोत्र, (२२) सहस्रनामस्तोत्र (उत्कटशम्बरनागेन्द्रप्रयाणतन्त्र) आदि अर्चनाङ्ग (दशाङ्गान्तर्गत) सामग्री इसमें अन्तर्निविष्ट हैं।

भगवती की पञ्चोपचार, दशोपचार, षोडशोपचार, षट्त्रिंशोपचार सामग्रियों की ही भाँति स्तोत्र, कवच, हृदय, पटल, स्तवराज, कीलक, गीता, उपनिषद् आदि भी भगवती की उपासना के स्वाध्यायात्मक अङ्ग हैं। वेद भी कहता है—'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्'।

(२) **स्तोत्रादिक के पाठ के नियम**—भगवती के विभिन्न प्रकार के स्तोत्रों के पाठ के सम्बन्ध में कतिपय विशिष्ट नियमों के परिपालन की बाध्यता है, क्योंकि वैसा न करने से स्तोत्रपाठ का पूर्ण फल नहीं मिलता।

नियम—

१. भगवती के स्तोत्रादिक के पाठ के साथ भगवती का ध्यान भी करते जाना चाहिए।

२. पाठ करते समय पाठकों के लिए नियमों का पालन करना आवश्यक है—

मधुरस्वर से पाठ, अक्षरों का स्पष्टोच्चारण, पदों का विभाग, उत्तम स्वर, धैर्य, एक लय के साथ पाठ—ये पाठकों के ६ गुण हैं—

'माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः'॥

(३) **पाठ के दोष**—यदि पाठक स्तोत्रादिक का पाठ करते समय निम्न त्रुटियाँ करें तो इन्हें पाठ का दोष माना जाता है—

i. पाठ करते समय रागपूर्वक गाना।

ii. उच्चारण में शीघ्रता करना।

iii. पाठ करते समय सिर हिलाना।
iv. स्वहस्तलिखित पुस्तक से पाठ करना।
v. अर्थ के ज्ञान के बिना पाठ करना।
vi. अधूरा मन्त्र कण्ठस्थ करना।

'गीती शीघ्री शिर:कम्पी तथा लिखितपाठक:।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमा:'॥

(४) पाठक को चाहिए कि जब तक अध्याय पूर्ण न हो जाय तब तक वह मध्य में पाठ बन्द न करे।

(५) यदि पाठक को प्रमादवश अध्याय के मध्य में पाठ को विराम देना ही पड़े तो पुन: प्रति बार सम्पूर्ण अध्याय का पाठ करे—

'यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत् पठन्।
यदि प्रमादादध्याये विरामो भवति प्रिये।
पुनरध्यायमारभ्य पठेत्सर्वं मुहुर्मुहु:'॥

(६) स्तोत्रादिक पाठ की पुस्तक को हाथ में लेकर उसका पाठ नहीं करना चाहिए, क्योंक इसे पाठक का अज्ञान माना जाता है और इसके परिणामस्वरूप पाठक को पाठ का मात्र आधा फल ही प्राप्त होता है।

(७) स्तोत्र का पाठ मानसिक नहीं प्रत्युत वाचिक (स्पष्टतया सर्वश्रुत) होना चाहिए—

'अज्ञानात्स्थापिते हस्ते पाठे ह्यर्धफलं ध्रुवम्।
न मानसे पठेत्स्तोत्रं वाचिकं तु प्रशस्यते'॥

(८) उच्च स्वर से पाठ करना भी वर्जित है और शीघ्रता से पाठ करना भी वर्जित है। पाठ यत्नपूर्वक शुद्ध एवं स्थिर चित्त से ही करना चाहिए—

'उच्चै:पाठं निषिद्धं स्यात्त्वरां च परिवर्जयेत्।
शुद्धेनाचलचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नत:'॥

(९) यदि पाठ कण्ठस्थ न हो तो पुस्तक से पाठ देखकर पाठ किया जा सकता है किन्तु यह स्तोत्र स्वलिखित तथा अब्राह्मण-लिखित नहीं होना चाहिए—

'कण्ठस्थपाठाभावे तु पुस्तकोपरि वाचयेत्।
न स्वयं लिखितं स्तोत्रं नाब्राह्मणलिपिं पठेत्'॥

(१०) यदि एक सहस्र से अधिक श्लोकों या मन्त्रों का ग्रन्थ हो तो पुस्तक देखकर ही पाठ करना चाहिए। इससे कम श्लोक हों तो उन्हें कण्ठस्थ करके बिना पुस्तक के भी पाठ किया जा सकता है—

'पुस्तके वाचनं शस्तं सहस्रादधिकं यदि ।
ततो न्यूनं तु भवेत् वाचनं पुस्तकं विना' ॥

अन्य नियम—(१) देवी का ध्यान करके और पञ्चोपचार से पूजन करके फिर पुस्तक का पूजन करना चाहिए । यथा—

'ॐ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्' ॥

(वाराहीतन्त्र/चिदम्बरासंहिता)

(२) इसके बाद भगवती के समक्ष योनिमुद्रा का प्रदर्शन करके उन्हें प्रणाम करना चाहिए ।

(३) इसके उपरान्त मूल मन्त्र से पीठ आदि में आधारशक्ति की स्थापना करके उसके ऊपर पुस्तक को समासीन करना चाहिए ।

(४) इसके बाद शापोद्धार करना चाहिए ।

(५) इसके अनन्तर उत्कीलन मन्त्र का जप करना चाहिए ।

(६) शापोद्धारोपरान्त अन्तर्मातृका–बहिर्मातृका आदि न्यास करना चाहिए ।

(७) तदनन्तर देवी का ध्यान करके साङ्ग पाठ करना चाहिए । (यथा दुर्गासप्तशती में कवच, अर्गला, कीलक एवं रहस्यत्रय ही ६ अङ्ग स्वीकार किये गये हैं ।)



एकादश अध्याय

दशाङ्गात्मक साहित्य-सामग्री

दशाङ्ग

कवच, हृदय, सहस्रनाम, पटल, गीता, अथर्वशीर्ष, स्तवराज, अथर्वशीर्ष आदि दशाङ्गात्मक अर्चा का विधान वैष्णव, शैव, शाक्त, स्मार्त आदि सभी सम्प्रदायों में है। सभी अङ्गों के स्वरूप सम्प्रदायानुसार पृथक्-पृथक् अवश्य हैं।

वैसे पूजा के दो अङ्ग हैं—(१) अन्तरङ्ग तथा (२) बाह्याङ्ग।

(१) **अन्तरङ्ग अङ्ग**—विद्या के वर्णों की संख्या, उद्धार, काल या मात्रा, उच्चारण, स्थान, प्रयत्न, रूप, विभिन्न स्थितियाँ, आकार आदि।

(२) **बाह्य अङ्ग**—ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग, बीजशक्ति, कीलक, न्यास, ध्यान, नियम एवं पूजा।

(३) **दशाङ्ग**—कवच, हृदय, सहस्रनाम, स्तवराज, लहरी, वेदपादस्तव, आवरणस्तव, गीता, अथर्वशीर्ष और अथर्वस्तव।

पूजा अपने यथार्थ स्वरूप में अङ्गातीत है—पूजन का पूज्य में लय ही यथार्थ पूजा है। 'अहं देवी न चान्योऽस्मि' ही यथार्थ पूजा है[१]। सारे मन्त्रों का लक्ष्य नाद है और नादों का लक्ष्य अनाहत नाद है, अनाहत नाद का लक्ष्य 'ॐ' है और ॐ का लक्ष्य उन्मनी हैं।

सारे मन्त्र अन्ततः 'ॐ' में लयीभूत हो जाते हैं, किन्तु ॐ की भी मात्राएँ हैं। भगवती के एकाक्षर, चतुरक्षर, षट्त्रिंदशदक्षर आदि जो भी मन्त्र हैं उनकी मात्राएँ हैं। महामन्त्र की मात्राएँ—बिन्दु = १२८ लव। अर्धचन्द्र = ६४ लव। रोधिनी = ३२ लव। नाद =१६ लव। नादान्त = ८ लव। शक्ति—४ लव। व्यापिका = २ लव। समना—१ लव। उन्मना = काल-विहीन अतः मात्राहीन, लवहीन[२]।

मन्त्र की व्याप्ति अपनी मात्राओं के आधार पर इस प्रकार है—बिन्दु १/२,

---

१. पूजा का यथार्थ स्वरूप : आचार्य शङ्कर की दृष्टि—
'आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विविधोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद् यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्' ॥

२. वरिवस्यारहस्यम्।

निरोधिनी १/८, नादान्त १/३२, व्यापिनी १/१२८, अर्द्धचन्द्र १/४, नाद १/१६, शक्ति १/६४, समना १/२५६।

मन्त्र की गति समना तक तो है किन्तु इसके बाद उसका समस्त अस्तित्व उन्मना में लयीभूत हो जाता है।

अथर्ववेदीय बगलासूक्त

अथर्ववेद के पञ्चम काण्ड के छठे अनुवाक में बगलासूक्त आता है जिसका नियमपूर्वक प्रतिदिन पारायण करने से कृत्याजनित समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। भाष्यकार महीधर ने कृत्या-निवारणार्थ इसके उपयोग को रेखांकित किया है।

बगलासूक्त—

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये।
आमे मासे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥१॥
यां ते चक्रुः कृकवाका व्रजे वा यां कुरीरिणि।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥२॥
यां ते चक्रुरेकशके पशूनामुभयादति।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥३॥
यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥४॥
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥५॥
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥६॥
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥७॥
यां ते कृत्यां कूपे वदधुः श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रतिहरामि ताम्॥८॥
यां ते चक्रुः पुरुषस्यास्थे अग्नौ संकसुके च याम्।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रतिहरामि ताम्॥९॥
अपथैनाजभारैणां तां पथेतः प्रहिण्मसि।
अधीरो मर्या धीरेभ्यः सञ्जभाराचित्या॥१०॥
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादभङ्गुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः॥११॥
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेऽप्ययम्।
इन्द्रस्तं हन्तुमहता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया॥१२॥

●

पीतोपनिषद्

श्री गणेशाय नमः ।

अथ पीतोपनिषदारम्भः—ॐ अथारिमोचिनीम्पीताम्प्रणमामि यां ब्रह्मपत्नीं ब्रह्माणीम्पीताम्भास्वत्तनुमिवाराध्यमानो निपतति तिरः यद्द्वेष्टि कुलं पुरुषं परितापयति सन्नक्षयमानो निपतति ।

यः पीतामनुस्मरति स सर्वज्ञतामेति अथ ह मणिबन्धे पुरुषचतुष्टयज्ञानवर्तिनीं शरणमहम्प्रपद्ये ।

यन्नितान्तमाविष्करोति विद्विषः सेयम्पीतावयवैः पूज्या यो यं कालात्मको बोधः संसारमनुमर्दयति शत्रुः स लुप्यते यच्चिन्तनीया तच्चिन्तयामि यच्चिन्तयामि तद्भावयामि तारं मायां तदनु बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलयेति पदं तारं मायां वह्निवल्लभान्तञ्जपन्नरीन्प्रोच्चाटयति प्रोत्सादयति इत्थं वेदेष्वागमेषु प्रसिद्धमूर्तिं बगलां श्रद्धामि यः श्रावयति सुनृतया गिरा तद्द्वेष्ट्र उच्चाटनयैव कल्पेरन् ।

एषा तामसी शक्तिस्तामसी शक्तिः राजसी शक्तिः राजसी शक्तिरित्याह भगवान्कालाग्निरुद्रः ।

इति पीतोपनिषद्

बगलामुखीस्तवराज

वन्दे सकलसन्देहदावपावकमीश्वरम् ।
करुणावरुणावासं भक्तकल्पतरुं गुरुम् ।।१।।
उल्लसत्पीतविद्योति विद्योतिततनुत्रयम् ।
निगमागमसर्वस्वमीडेऽहं तन्महन्महः ।।२।।
ॐ पूर्वं स्थिरमायां च बगलामुखि सर्वतः ।
दुष्टानां वाचमुच्चार्य मुखं पदं तथोद्धरेत् ।।३।।
स्तम्भयेति ततो जिह्वां कीलयेति समुद्धरेत् ।
बुद्धिं विनाशयेति पदं स्थिरमायामनुस्मरेत् ।।४।।
प्रणवं वह्निजायां चेत्येष पैताम्बरो मनुः ।
पातु मां सर्वदा सर्वं निग्रहानुग्रहक्षमः ।।५।।
कण्ठं नारद ऋषिः पातु पंक्तिश्छन्दोऽवतान्मुखम् ।
पीताम्बरा देवता तु हृन्मध्यमवतान्मम ।।६।।
ह्लीं बीजं स्तनयोर्मेऽव्यात् स्वाहा शक्तिश्च दन्तयोः ।
स कीलकं तथा गुह्ये विनियोगोऽवताद् वपुः ।।७।।
षड्दीर्घभाजा बीजेन न्यासोऽव्यान्मे करादिकम् ।
द्विपञ्चपञ्चनन्देषु दशभिर्मन्त्रवर्णकैः ।।८।।

षडङ्गकल्पना पातु षडङ्गानि ह्यनुक्रमात् ।
ऐं विद्यातत्त्वं क्लीं मायातत्त्वं सौश्च शिवात्मकम् ॥९॥
तत्त्वत्रयं सं बीजं च मूलं हृत्कण्ठमध्यगः ।
सुधाब्धौ हेमभूरूढचम्पकोद्यानमध्यतः ॥१०॥
गारुडोत्पलनिर्व्यूढस्वर्णसिंहासनोपरि ।
स्वर्णपङ्कजसंविष्टां त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ॥११॥
पीतालङ्कारवसनां मल्लीचन्दनशोभिताम् ।
सव्याभ्यां पञ्चशाखाभ्यां वज्रं जिह्वां च बिभ्रतीम् ॥१२॥
मुद्गरं नागपाशं च दक्षिणाभ्यां मदालसाम् ।
भक्तारिविग्रहोद्योगप्रगल्भां बगलामुखीम् ॥१३॥
ध्यायमानस्य मे पातु शास्त्रवोद्द्वेषणे भृशम् ।
भूकलादलदिक्पत्रषट्कोणं त्र्यस्त्रबैन्दुकम् ॥१४॥
यन्त्रं पैताम्बरं पायाद् पायात् सा माम् अविग्रहा ।
आधारशक्तिमारभ्य ज्ञानात्मान्तास्तु शक्तयः ॥१५॥
पीठाद्याः पान्तु पीठेऽत्र प्रथमं मां च रक्षतु ।
शान्तिशङ्खविशेषात्मशक्तिभूतानि पान्तु माम् ॥१६॥
आवाहनाद्याः पञ्चापि मुद्राश्च सुमनोजलैः ।
त्रिकोणमध्यमारभ्य पूजिता बगलामुखी ॥१७॥
क्रोधिनी स्तम्भिनी चापि धारिण्यश्चापि मध्यगाः ।
ओजः पूषादिपीठानि कोणाग्रेषु स्थितानि वै ॥१८॥
त्रिकोणबाह्यतः सिद्धनाथाद्या गुरवस्तथा ।
सिद्धनाथः सिद्धानन्दनाथः सिद्धपरमेष्ठि हि ॥१९॥
नाथः सिद्धः श्रीकण्ठश्च नाथः सिद्धचतुष्टयम् ।
पातु मामथ षट्कोणे सुभगा भगरूपिणी ॥२०॥
भगोदया च भगनिपातिनी भगमालिनी ।
भगावह च मां पातु षट्कोणाग्रेषु च क्रमात् ॥२१॥
त्वगात्मा शोणितात्मा च मांसात्मा मेदसात्मकः ।
रूपात्मा परमात्मा च पातु मां स्थिरविग्रहा ॥२२॥
अष्टपत्रेषु मूलेषु ब्राह्मी माहेश्वरी तथा ।
कौमारी वैष्णवी वाराहीन्द्राणी च तथा पुनः ॥२३॥
चामुण्डा च महालक्ष्मीस्तत्र मध्ये पुनर्जया ।
विजया च जयाम्बा च राजिता जृम्भिणी तथा ॥२४॥
स्तम्भिनी मोहिनी वश्या कर्षिण्यथ तदग्रके ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रौधोन्मत्तकपालिनः ।
भीषणश्चापि संहार एते रक्षन्तु मां सदा ॥२५॥

ततः षोडशपत्रेषु मङ्गला स्तम्भिनी तथा।
जृम्भिणी मोहिनी वश्या ज्वालासिंही बलाहका ॥२६॥
भूधरा कल्मषा धात्री कन्यका कालकर्षिणी।
भान्तिका मन्दगमना भोगस्था भाविकेति च ॥२७॥
पातु मामथ भूसद्म दशदिक्षु दिगीश्वराः।
इन्द्रोऽनलो यमो रक्षो वरुणो मारुतः शशी ॥२८॥
ईशोऽनन्तः स्वयम्भूश्च दशैते पान्तु मे वपुः।
वज्रः शक्तिर्दण्डखड्गौ पाशाङ्कुशगदाः क्रमात्।
शूलं चक्रं सरोजं च तत्तच्छस्त्राणि पान्तु माम् ॥२९॥
अथ च पूर्वादिचतुर्द्वारेषु परतः क्रमात्।
पातु विघ्नेशबटुकौ योगिनी क्षेत्रपालकः ॥३०॥
गुरुत्रयं त्रिरेखासु पातु मे वपुरञ्जसा।
पुनः पीताम्बरा पातु उपचारैः प्रपूजिता ॥३१॥
साङ्गावरणशक्तिश्च जयश्रीः पातु सर्वदा।
वलयं वटुकादिभ्यो रक्षां कुर्वन्तु मे सदा ॥३२॥
शक्तयः साधका वीराः पान्तु मे देवता इमाः।
इत्यर्चाक्रमतः प्रोक्तं स्तोत्रं पैताम्बरं परम् ॥३३॥
यः पठेत् सकृदप्येतत् सोऽर्चाफलमवाप्नुयात्।
सर्वथा कारयेत् क्षिप्रं प्रपद्यन्ते गदातुरान् ॥३४॥
राजानो राजपत्न्याश्च पौरजानपदास्तथा।
वशगास्तस्य जायन्ते सततं सेवका इव ॥३५॥
गुरुकल्पाश्च विबुधा मूकतां यान्ति तेऽग्रतः।
स्थिरीभवति तद्गेहे चपलापि हरिप्रिया ॥३६॥
पीताम्बराङ्गवसनो यदि लक्षसंख्यं
पैताम्बरं मनुममुं प्रजपेत् नरो यः।
हैमीं सकृन्नियमवान् विधिना हरिद्रा-
मालां दधत् भवति तद्वशगा त्रिलोकी ॥३७॥
भवानि बगलामुखि त्रिदशकल्पवल्लिप्रभो
कृपाजलनिधे तव चरणधूतबाधाखिलः।
सुरासुरनरादिकसकलभक्तभाग्यप्रदे
त्वदङ्घ्रिसरसीरुहद्वयमहं तु ध्याये सदा ॥३८॥
त्वमस्य जगतां जनिस्थितिविनाशबीजं निज-
प्रकाशबहुलद्युतिर्भवति भक्तहृन्मध्यगा।
त्रयीमनु सुपूजिता हरिहरादिवृन्दारकैरनु
क्षणमनुक्षणं मयि शिवे क्षणं वीक्ष्यताम् ॥३९॥

शिवे तव तनूमहं हरिहराद्यगम्यां परां,
निखिलतापप्रत्यूहहृदयाभावयुक्तां स्मरे।
विदारय विचूर्णय ग्लपय शोषय स्तम्भय
प्रणोदय विरोधय प्रविलय प्रबद्धारीणाम् ॥४०॥
क्व पार्वति कृपालसन् मयि कटाक्षपातं मनाग्
अनाकुलतया क्षणं क्षिप विपक्षसंक्षोभिणि।
यदीक्षणपथं गतः सकृदपि प्रभुः कश्चन
स्फुटं मम वशंवदो भवतु तेन पीताम्बरे ॥४१॥

'ॐ नमो भगवते महारुद्राय हुं फट् स्वाहा' इति भैरवमन्त्रः।

इति अथर्वणरहस्ये बगलामुख्या अर्चाक्रमस्तोत्रम्

पीताम्बरोपनिषद्

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

हम सबकी एक साथ रक्षा हो, हम एक साथ भोजन करें, सब मिलकर पराक्रम करें, हम सब तेजस्वी बनें, किसी से द्वेष न करें। शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो।

ॐ अथ हेनां ब्रह्मरन्ध्रे सुभगां ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणीमाप्नोति ब्रह्मास्त्रां महाविद्यां शाम्भवीं सर्वस्तम्भकरीं, सिद्धां चतुर्भुजां, दक्षाभ्यां कराभ्यां मुद्गरपाशौ वामाभ्यां जिह्वावज्रे दधानां, पीतवाससं, पीतालङ्कारसम्पन्नां, दृढपीनोन्नतपयोधरयुग्माढ्यां, तप्तकार्तस्वरकुण्डलद्वयविराजितमुखाम्भोजां, ललाटपट्टोल्लसत्पीतचन्द्रार्धमनुबिभ्रतीम्, उद्यद्दिवाकरोद्योतां, स्वर्णसिंहासनमध्यमकलसंस्थां धिया सञ्चिन्त्य, तदुपरि त्रिकोण-षट्कोण-वसुपत्रवृत्तान्तः षोडशदलकमलोपरि भूबिम्बत्रयम् अनुसन्धाय तत्राद्ययोन्यन्तरे देवीमाहूय ध्यायेत्।

अब इस सुन्दरी, ब्रह्मास्त्रस्वरूपिणी, ब्रह्मास्त्रमहाविद्या, शाम्भवी, सर्वस्तम्भकरी, सिद्धा, चतुर्भुजा का जो दक्षकरों में मुद्गर और पाश, वामकरों में शत्रुजिह्वा और वज्रधारिणी है तथा पीतवस्त्रा, पीतालङ्कारयुक्ता, दृढपीनोन्नतकुचा, तप्तकाञ्चन-कुण्डलद्वयशोभिता, कुण्डलद्वयोपेतमुखाम्बुजा, ललाट पर पीतार्धचन्द्रधारिणी, उदित-भास्करसमा, स्वर्णसिंहासन पर कमल के मध्य संस्थित ब्रह्मरन्ध्र में बुद्धिपूर्वक चिन्तन करे। उस ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदलकमल, वृत्त, षोडशदल कमल एवं तीन भूगृहों का अनुसन्धान करके उस मण्डल के आदि योनि (त्रिकोण) के मध्य देवी बगला का आवाहन करके ध्यान करे।

योनिं जगद्योनिं समायमुच्चार्य, शिवान्ते भूमाग्रबिन्दुमिन्दुखण्डमग्निबीजं ततो

वर्णाङ्कगुणार्थत्रियुतं स्थिरामुखि इति सम्बोध्य सर्वदुष्टानामिदं चाभाष्य, वाचमिति मुखमिति पदमिति स्तम्भयेति चोच्चार्य जिह्वां वैशारदीं कीलयेति बुद्धिं विनाशयेति प्रोच्चार्य भूमायां वेदाद्यं, ततो यज्ञभूगुहायां योजयेत्। स महास्तम्भेश्वरः, सर्वेश्वरः, स सेनास्तम्भं करोति। किं बहुना विवस्वद्धृतिस्तम्भकर्ता, सर्ववातस्तम्भकर्तेति किं दिवा कर्षयति स सर्वविद्येश्वरः सर्वमन्त्रेश्वरो भूत्वा पूजायाम् आवर्तनं त्रैलोक्यस्तम्भिन्याः कुर्यात्।

'ऐं ह्ल्रीं स्थिरामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्ल्रीं ॐ स्वाहा'।

हे स्थिरमुखी ! सभी दुष्टों के वचन, मुख, पद एवं पद का स्तम्भन करो; वैशारदी रसना को कीलित करो और बुद्धि का विनाश करो। इस मन्त्र का जप करना चाहिए।

ऐसा कहने वाला महान् स्तम्भेश्वर एवं सर्वेश्वर हो जाता है। वह सेना का स्तम्भ करता है। अधिक क्या ? वह सूर्य की गति का स्तम्भन करने वाला, समस्त वायु को स्तम्भित करने वाला और दिन को आकृष्ट करने वाला होता है। वह समस्त विद्याओं का स्वामी, समस्त मन्त्रों का मन्त्रेश्वर एवं त्रैलोक्य को स्तम्भित करने वाला है। अतः त्रैलोक्यस्तम्भिनी की पूजा का आवर्तन करता है।

अङ्गमाद्यं द्वारतो गणेशं, वटुकं, योगिनीं, क्षेत्राधीशं च पूर्वादिकमभ्यर्च्य, गुरुपंक्तिमीशा सुरान्तमन्तः प्राच्यादौ क्रमानुगता बगला, स्तम्भिनी, जृम्भिणी, मोहिनी, अचला, दुर्धरा, अकल्मषा, आधारा, कल्पना, कालकर्षिणी, भ्रमरिका, मन्दगमना, भोगिका (भोगा), योगिका।

ह्यष्टदलानुगाः पूज्याः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, चामुण्डा, महालक्ष्मीश्च षड्योनिगर्भान्ता डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी वेदाद्यस्थिरमायायाः समभ्यर्च्य शक्राग्नियमनिर्ऋतिर्वरुणवायुधनदेशानप्रजापति-नागेशाः, परिवाराभिमताः स्थिरादिवेदाद्याः सवाहनाः सदस्त्रका बाह्यतोऽभ्यर्च्य तां योनिं रतिं प्रीतिमनोभुवा एताः सर्वाः समाः पीतांशुका ध्येयाः।

इस पूजा का आद्य अङ्ग इस प्रकार है कि द्वार पर पूर्व आदि के क्रम से गणेश, बटुक, योगिनी और क्षेत्रपाल की पूजा करे। बिन्दु के ईशान कोण से अग्निकोण तक गुरुपंक्ति की एवं अन्दर पूर्वादिक्रम से—(१) मङ्गला, (२) स्तम्भिनी, (३) जृम्भिणी, (४) मोहिनी, (५) वश्या, (६) अचला, (७) चला, (८) दुर्धरा, (९) अकल्मषा, (१०) धीरा, (११) कलना, (१२) कालकर्षिणी, (१३) भ्रामिका, (१४) मन्दगमना, (१५) भोगदा (भाविका) और (१६) योगिका की षोडश दलों में पूजा करनी चाहिए।

अष्टदलों में—(१) ब्राह्मी, (२) माहेश्वरी, (३) कौमारी, (४) वैष्णवी, (५) वाराही, (६) नारसिंही, (७) चामुण्डा तथा (८) महालक्ष्मी की एवं ६ त्रिकोणों के मध्य—(१) डाकिनी, (२) राकिनी, (३) लाकिनी, (४) काकिनी, (५) शाकिनी तथा

(६) हाकिनी की 'ॐ ह्रीं' मन्त्र से पूजा करके—(१) इन्द्र, (२) अग्नि, (३) यम, (४) निर्ऋति, (५) वरुण, (६) वायु, (७) कुबेर, (८) ईशान, (९) प्रजापति और (१०) नागेश (अनन्त)—इन १० दिक्पालों की सपरिवार, सवाहन एवं सास्त्र भूगृह के बाह्य भाग में 'ॐ ह्रीं' मन्त्र से पूजा करनी चाहिए। त्रिकोण के तीनों कोणों में रति, प्रीति एवं मनोभवा की पूजा करनी चाहिए। इन सभी को पीतवस्त्रधारी के रूप में कल्पित करना चाहिए।

तदन्तमूलायां दलादिषोडशानुगता: पूज्या नीराजनै: सहैश्वर्ययुक्तो भवति, य एनां ध्यायति स वाग्मी भवति, सोऽमृतमश्नुते सर्वसिद्धिकर्ता भवति, सृष्टिस्थितिसंहारकर्ता भवति, स सर्वेश्वरो भवति, स तु ऋद्धीश्वरो भवति, स शाक्त:, स वैष्णव:, स गणप:, स शैव:, स जीवन्मुक्तो भवति, स संन्यासी भवति न तु मुण्डितमुण्ड:। षट्त्रिंशदस्त्रेश्वरो भवेत्; सौभाग्यार्चनेनेति प्रोतं वेद ॐ शिवम्। 'सह नाववतु' इति मन्त्रेण शान्ति:।

नीराजना के साथ ऐसी पूजा करने वाला साधक ऐश्वर्यवान् हो जाता है।

जो इनका ध्यान करता है वह विद्वान् हो जाता है। वह दीर्घजीवी हो जाता है। वह सर्वसिद्धिकर्त्ता हो जाता है। वह सृष्टि, स्थिति एवं संहार का निष्पादन करने में समर्थ हो जाता है। वह सर्वेश्वर हो जाता है। वह ऋद्धीश्वर हो जाता है। वह शाक्त, वैष्णव, गणप, शैव एवं जीवन्मुक्त हो जाता है।

वह केवल मुण्डितमुण्ड न रहकर यथार्थ संन्यासी हो जाता है। सौभाग्यार्चन से छत्तीस अस्त्रों का अधीश्वर हो जाता है। 'ॐ शिवं सह नाववतु'—इस मन्त्र से शान्ति हो।

बगलामुखीकवच

रुद्रयामलमहातन्त्र का श्रीमहाविद्यापीताम्बराबगलामुखी कवच

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां, सिंहासनोपरि गतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं, देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥१॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥२॥
हिमवत्तनया गौरी कैलासेऽथ शिलोच्यते।
अपृच्छद्गि:.....देवी साधकानुग्रहेच्छया ॥

श्रीपार्वत्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक।
शृणु विज्ञाप्यते यत्तु श्रुत्वा सर्वं निवेदय ॥२॥
विशुद्धा: कौलिका लोके ये मत्कर्मपरायणा:।
तेषां निन्दाकरा लोके बहव: किल दुर्जना: ॥३॥

मनोबाधां विदधते मुहुः कटुभिरुक्तिभिः ।
तेषामाशु विनाशाय त्वया देव प्रकाशितः ॥४॥
यो मन्त्रो बगलामुख्याः सर्वकामसमृद्धिदः ।
कवचं तस्य मन्त्रस्य प्रकाशय दयानिधे ॥५॥
यस्य स्मरणमात्रेण पशूनां निग्रहो भवेत् ।
आत्मानं सततं रक्षेद् व्याघ्राग्निरिपुराजतः ॥६॥
श्रुत्वाथ पार्वतीवाक्यं ज्ञात्वा तस्या मनोगतम् ।
विहस्य तां परिष्वज्य साधु साध्वित्यपूजयत् ॥७॥
तदाह कवचं देव्यै कृपया करुणानिधिः ।

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु त्वं बगलामुख्याः कवचं सर्वकामदम् ॥८॥
यस्य स्मरणमात्रेण बगलामुखी प्रसीदति ।
सर्वसिद्धिप्रदा प्राच्यां पातु मां बगलामुखी ॥९॥
पीताम्बरा तु चाग्नेय्यां याम्यां महिषमर्दिनी ।
नैर्ऋत्यां चण्डिका पातु भक्तानुग्रहकारिणी ॥१०॥
पातु नित्यं महादेवी प्रतीच्यां शूकरानना ।
वायव्ये पातु मां काली कौबेर्यां त्रिपुराऽवतु ॥११॥
ईशान्यां भैरवी पातु पातु नित्यं सुरप्रिया ।
ऊर्ध्वं वागीश्वरी पातु मध्ये मां ललिताऽवतु ॥१२॥
अधस्ताद् अपि मां पातु वाराही चक्रधारिणी ।
मस्तकं पातु मे नित्यं श्रीदेवी बगलामुखी ॥१३॥
भालं पीताम्बरा पातु नेत्रे त्रिपुरभैरवी ।
श्रवणौ विजया पातु नासिकायुगलं जया ॥१४॥
शारदा वचनं पातु जिह्वां पातु सुरेश्वरी ।
कण्ठं रक्षतु रुद्राणी स्कन्धौ मे विन्ध्यवासिनी ॥१५॥
सुन्दरी पातु बाहू मे जया पातु करौ सदा ।
भवानी हृदयं पातु मध्यं मे भुवनेश्वरी ॥१६॥
नाभिं पातु महामाया कटिं कमललोचना ।
ऊरू मे पातु मातङ्गी जानुनी चापराजिता ॥१७॥
जङ्घे कपालिनी पातु चरणौ चञ्चलेक्षणा ।
सर्वतः पातु मां तारा योगिनी पातु चाग्रतः ॥१८॥
पृष्ठं मे पातु कौमारी दक्षपार्श्वे शिवाऽवतु ।
रुद्राणी वामपार्श्वे तु पातु मां सर्वदेष्टदा ॥१९॥
स्तुता सर्वेषु देवेषु रक्तबीजविनाशिनी ।
इत्येतत् कवचं दिव्यं धर्मकामार्थसाधनम् ॥२०॥

गोपनीयं प्रयत्नेन कस्यचिन्न प्रकाशयेत् ।
यः सकृच्छृणुयाद् एतत् कवचं मन्मुखोदितम् ॥२१॥
स सर्वान् लभते कामान् मूर्खो विद्यामवाप्नुयात् ।
तस्याशु शत्रवो यान्ति यमस्य भवने शिवे ॥



(रुद्रयामलोक्त अन्य) श्रीबगलामुखीकवच

श्रीभैरवी उवाच

श्रुत्वा च बगलापूजां स्तोत्रं चापि महेश्वर ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं वद मे प्रभो ॥१॥
वैरिनाशकरं दिव्यं सर्वाऽशुभविनाशनम् ।
शुभदं स्मरणात् पुण्यं त्राहि मां दुःखनाशन ॥२॥

श्रीभैरव उवाच

कवचं शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे ।
पठित्वा धारयित्वा तु त्रैलोक्ये विजयी भवेत् ॥३॥

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीकवचस्य नारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, लं बीजम्, ईं शक्तिः, ऐं कीलकम्, पुरुषार्थचतुष्टये जपे विनियोगः ।

शिरो मे बगला पातु हृदमेकाक्षरी परा ।
ॐ ह्लीं ॐ मे ललाटे च बगला वैरिनाशिनी ॥४॥
गदाहस्ता सदा पातु मुखं मे मोक्षदायिनी ।
वैरिजिह्वाधरा पातु कण्ठं मे बगलामुखी ॥५॥
उदरं नाभिदेशं च पातु नित्यं परात् परा ।
परात् परतरा पातु मम गुह्यं सुरेश्वरी ॥६॥
हस्तौ चैव तथा पातु पार्वती परिपातु मे ।
विवादे विषमे घोरे संग्रामे रिपुसङ्कटे ॥७॥
पीताम्बरधरा पातु सर्वाङ्गं शिवनर्तकी ।
श्रीविद्या समयं पातु मातङ्गी पूरिता शिवा ॥८॥
पातु पुत्रं सुतां चैव कलत्रं कालिका मम ।
पातु नित्यं भ्रातरं मे पितरं शूलिनी सदा ॥९॥
रन्ध्रे हि बगलादेव्याः कवचं मन्मुखोदितम् ।
न वै देयममुख्याय सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥१०॥
पठनाद् धारणादस्य पूजनाद् वाञ्छितं लभेत् ।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद् बगलामुखीम् ॥११॥

पिबन्ति शोणितं तस्य योगिन्यः प्राप्य सादराः ।
वश्ये चाकर्षणे चैव मारणे मोहने तथा ॥१२॥
महाभये विपत्तौ च पठेद् वा पठ्यते तु यः ।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद् भक्तियुक्तस्य पार्वति ॥१३॥

ब्रह्मास्त्रबगलामुखीकवच

श्रीदक्षिणामूर्तिसंहितान्तर्गत-ब्रह्मास्त्रबगलामुखीकवच

श्रीब्रह्मोवाच

विश्वेश दक्षिणामूर्ते निगमागमवित् प्रभो ।
मह्यं पुरा त्वया दत्ता विद्या ब्रह्मास्त्रसंज्ञिता ॥१॥
तस्य मे कवचं ब्रूहि येनाहं सिद्धिमाप्नुयाम् ।
भवामि वज्रकवचं ब्रह्मास्त्रन्यासमात्रतः ॥२॥

श्रीदक्षिणामूर्तिरुवाच

शृणु ब्रह्मन् परं गुह्यं ब्रह्मास्त्रकवचं शुभम् ।
यस्योच्चारणमात्रेण भवेद् वै सूर्यसन्निभः ॥३॥
सुदर्शनं मया दत्तं कृपया विष्णवे तथा ।
तद्वत् ब्रह्मास्त्रविद्यायाः कवचं कथयाम्यहम् ॥४॥
अष्टाविंशत्यस्त्रहेतुमाद्यं ब्रह्मास्त्रमुत्तमम् ।
सर्वतेजोमयं सर्वं सामर्थ्यं विग्रहं परम् ॥५॥
सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वदारिद्र्यनाशनम् ।
सर्वापच्छैलराशीनामस्त्रकं कुलिशोपमम् ॥६॥
न तस्य शत्रवश्चापि भयं चौर्यभयं जरा ।
नरा नार्यश्च राजेन्द्र खगा व्याघ्रादयोऽपि च ॥७॥
तं दृष्ट्वा वशमायान्ति किमन्यत् साधवो जनाः ।
यस्य देहे न्यसेद् धीमान् कवचं बगलामयम् ॥८॥
स एव पुरुषो लोके केवलः शङ्करोपमः ।
न देयं परशिष्याय शठाय पिशुनाय च ॥९॥
दातव्यं भक्तियुक्ताय गुरुदासाय धीमते ।
कवचस्य ऋषिः श्रीमान् दक्षिणामूर्तिरेव च ॥१०॥
अस्यानुष्टुप् छन्दः स्यात् श्रीबगला चास्य देवता ।
बीजं श्रीवह्निजाया च शक्तिः श्रीबगलामुखी ॥११॥
कीलकं विनियोगश्च स्वकार्ये सर्वसाधके ।

अथ ध्यानम्

शुद्धस्वर्णनिभां रामां पीतेन्दुखण्डशेखराम् ।
पीतगन्धानुलिप्ताङ्गीं पीतरत्नविभूषणाम् ॥
पीनोन्नतकुचां स्निग्धां पीतलाङ्गीं सुपेशलाम् ।
त्रिलोचनां चतुर्हस्तां गम्भीरां मदविह्वलाम् ॥
वज्रारिरसनापाशमुद्गरं दधतीं करैः ।
महाव्याघ्रासनां देवीं सर्वदेवनमस्कृताम् ॥
प्रसन्नां सुस्मितां क्लिन्नां सुपीतां प्रमदोत्तमाम् ।
सुभक्तदु:खहरणे दयार्द्रां दीनवत्सलाम् ।
एवं ध्यात्वा परेशानि बगलाकवचं स्मरेत् ॥

अथ रक्षाकवचम्

बगला मे शिरः पातु ललाटं ब्रह्मसंस्तुता ।
बगला मे भ्रुवौ नित्यं कर्णयोः क्लेशहारिणी ।
त्रिनेत्रा चक्षुषी पातु स्तम्भिनी गण्डयोस्तथा ।
मोहिनी नासिकां पातु श्रीदेवी बगलामुखी ।
ओष्ठयोर्दुर्धरा पातु सर्वदन्तेषु चञ्चला ।
सिद्धान्तपूर्णा जिह्वायां जिह्वाग्रे शारदाम्बिके ॥
अकल्मषा मुखे पातु चिबुके बगलामुखी ।
धीरा मे कण्ठदेशे तु कण्ठाग्रे कालकर्षिणी ॥

ब्रह्मास्त्रबगलाकवचम्

शुद्धस्वर्णनिभा पातु कण्ठमध्ये तथाऽम्बिका ।
कण्ठमूले महाभोगा स्कन्धौ शत्रुविनाशिनी ॥
भुजौ मे पातु सततं बगला सुस्मिता परा ।
बगला मे सदा पातु कूर्परे कमलोद्भवा ॥
बगलाम्बा प्रकोष्ठौ तु मणिबन्धे महाबला ।
बगलाश्रीर्हस्तयोश्चैवं कुरुकुल्ला कराङ्गुलिम् ॥
नखेषु वज्रहस्ता च हृदये ब्रह्मवादिनी ।
स्तनौ मे मन्दगमना कुक्षयोर्योगिनी तथा ॥
उदरं बगला माता नाभिं ब्रह्मास्त्रदेवता ।
पुष्टिं मुद्गरहस्ता च पातु नो देववन्दिता ॥
पार्श्वयोर्हनुमद्वन्द्या पशुपाशविमोचिनी ।
करौ रामप्रिया पातु उरुयुग्मं महेश्वरी ॥
भगमाला तु गुह्यं मे लिङ्गं कामेश्वरी तथा ।

लिङ्गमूले महाक्लिन्ना वृषणौ पातु दूतिका।
बगला जानुनी पातु जानुयुग्मं च नित्यश:॥
जङ्घे पातु जगद्धात्री गुल्फौ रावणपूजिता॥
चरणौ दुर्जया पातु पीताम्बा चरणाङ्गुली:।
पादपृष्ठं पद्महस्ता पादाधश्चक्रधारिणी॥
सर्वाङ्गं बगला देवी पातु श्रीबगलामुखी।
ब्राह्मी मे पूर्वत: पातु माहेशी वह्निभागत:॥
कौमारी दक्षिणे पातु वैष्णवी स्वर्गमार्गत:।
ऊर्ध्वं पाशधरा पातु शत्रुजिह्वाधरा ह्यध:॥
रणे राजकुले वादे महायोगे महाभये।
बगला भैरवी पातु नित्यं क्लीङ्काररूपिणी॥
इत्येवं वज्रकवचं महाब्रह्मास्त्रसंज्ञकम्।
त्रिसन्ध्यं य: पठेद् धीमान् सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात्॥
न तस्य शत्रव: केऽपि सखाय: सर्व एव च।
बलेनाकृष्य शत्रुं स्यात् सोऽपि मित्रत्वमाप्नुयात्॥
शत्रुत्वे मरुता तुल्यो धनेन धनदोपम:।
रूपेण कामतुल्य: स्याद् आयुषा शूलधृक्सम:॥
सनकादिसमो धैर्ये श्रिया विष्णुसमो भवेत्।
तत्तुल्यो विद्यया ब्रह्मन् यो जपेत् कवचं नर:॥
नारी वापि प्रयत्नेन वाञ्छितार्थमवाप्नुयात्।
द्वितीया सूर्यवारेण यदा भवति पद्मभू:॥
तस्यां जातं शतावृत्या शीघ्रं प्रत्यक्षमाप्नुयात्।
याता तुरीयं सन्ध्यायां भूशय्यायां प्रयत्नत:॥
सर्वान् शत्रून् क्षयं कृत्वा विजयं प्राप्नुयान्नर:।
दारिद्र्यान् मुच्यते चाऽशु स्थिरा लक्ष्मीर्भवेद् गृहे॥
सर्वान् कामानवाप्नोति सविषो निर्विषो भवेत्।
ऋणनिर्मोचनं स्याद् वै सहस्रावर्तनाद् विधे॥
भूतप्रेतपिशाचादिपीडा तस्य न जायते।
द्युमणिर्भ्राजते यद्वत् तद्वत् स्याच्छ्री: प्रभावत:॥
स्थिराभया भवेत् तस्य य: स्मरेद् बगलामुखीम्।
जयदं बोधनं काममभुकं देहि मे शिवे॥
जपस्यान्ते स्मरेद् यो वै सोऽभीष्टफलमाप्नुयात्।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद् बगलामुखीम्॥

न स सिद्धिमवाप्नोति साक्षाद् वै लोकपूजितः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कवचं ब्रह्मतेजसम् ॥
नित्यं पदाम्बुजध्यानान् महेशानसमो भवेत् ॥



विश्वसारोद्धारतन्त्रोक्त बगलामुखीकवच

कैलासाचलमध्यगं पुरवहं शान्तं त्रिनेत्रं शिवं
वामस्था गिरिजा प्रणव्य कवचं भूतिप्रदं पृच्छति ।
देवी श्रीबगलामुखी रिपुकुलारण्याग्निरूपा च या
तस्याश्चापविमुक्तमन्त्रसहितं प्रीत्याधुना ब्रूहि माम् ॥१॥

श्रीशङ्कर उवाच

देवि श्रीभववल्लभे शृणु महामन्त्रं विभूतिप्रदं
देव्या वर्मयुतं समस्तसुखदं साम्राज्यदं मुक्तिदम् ।
तारं रुद्रवधू विरञ्चिमहिला विष्णुप्रिया कामयुक्
कान्ते श्रीबगलानने मम रिपून् नाशाय युग्मं त्वति ॥२॥
ऐश्वर्याणि पदं च देहि युगलं शीघ्रं मनोवाञ्छितं
कार्यं साधय युग्मयुच्छिववधूवह्निप्रियान्तो मनुः ।
कंसारेस्तनयं च बीजमपरा शक्तिश्च वाणी तथा
कीलं श्रीमति भैरवर्षिसहितं छन्दो विराट्संयुतम् ॥३॥
स्वेष्टार्थस्य परस्य वेति नितरां कार्यस्य सम्प्राप्तये
नानाऽसाध्यमहागदस्य नियतं नाशाय वीर्याप्तये ।
ध्यात्वा श्रीबगलाननां मनुवरं जप्त्वा सहस्राख्यकं
दीर्घैः षट्कयुतैश्च रुद्रमहिलाबीजैर्विन्यस्याङ्गके ॥४॥

ध्यानम्

सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्गरपाशवज्ररसनाः सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत् ॥

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीब्रह्मास्त्रमन्त्रकवचस्य भैरव ऋषिः, विराट् छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, क्लीं बीजम्, ऐं शक्तिः, श्रीं कीलकं, मम परस्य च मनोभिलाषितेष्टकार्यसिद्धये विनियोगः । शिरसि भैरवऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदि बगलामुखीदेवतायै नमः, गुह्ये क्लीं बीजाय नमः, पादयोः ऐं शक्तये नमः, सर्वाङ्गे श्रीं कीलकाय नमः । ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ह्रूं

मध्यमाभ्यां नमः, ॐ हैं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्।

मन्त्रोद्धारः

ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्लीं श्रीबगलानने मम रिपून् नाशय नाशय, ममैश्वर्याणि देहि देहि, शीघ्रं मनोवाञ्छितं कार्यं साधय साधय ह्रीं स्वाहा।

शिरो मे पातु ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्लीं पातु ललाटकम्।
सम्बोधनपदं पातु नेत्रे श्रीबगलानने ॥१॥
श्रुतौ मम रिपुं पातु नासिकां नाशयद्वयम्।
पातु गण्डौ सदा मामैश्वर्याण्यन्तं तु मस्तकम् ॥२॥
देहि द्वन्द्वं सदा जिह्वां पातु शीघ्रं वचो मम।
कण्ठदेशं मनः पातु वाञ्छितं बाहुमूलकम् ॥३॥
कार्यं साधयद्वन्द्वं तु करौ पातु सदा मम।
मायायुक्ता यथा स्वाहा हृदयं पातु सर्वदा ॥४॥
अष्टाधिकचत्वारिंशदण्डाढ्या बगलामुखी।
रक्षां करोतु सर्वत्र गृहेऽरण्ये सदा मम ॥५॥
ब्रह्मास्त्राख्यो मनुः पातु सर्वाङ्गे सर्वसन्धिषु।
मन्त्रराजः सदा रक्षां करोतु मम सर्वदा ॥६॥
ॐ ह्रीं पातु नाभिदेशं कटिं मे बगलाऽवतु।
मुखिवर्णद्वयं पातु लिङ्गं मे मुष्कयुग्मकम् ॥७॥
जानुनी सर्वदुष्टानां पातु मे वर्णपञ्चकम्।
वाचं मुखं तथा पादं षड्वर्णाः परमेश्वरी ॥८॥
जङ्घायुग्मे सदा पातु बगला रिपुमोहिनी।
स्तम्भयेति पदं पृष्ठं पातु वर्णत्रयं मम ॥९॥
जिह्वावर्णद्वयं पातु गुल्फौ मे कीलयेति च।
पादोर्ध्वं सर्वदा पातु बुद्धिं पादतले मम ॥१०॥
विनाशयपदं पातु पादाङ्गुल्योर्नखानि मे।
ह्रीं बीजं सर्वदा पातु बुद्धीन्द्रियवचांसि मे ॥११॥
सर्वाङ्गं प्रणवः पातु स्वाहा रोमाणि मेऽवतु।
ब्राह्मी पूर्वदले पातु चाग्नेय्यां विष्णुवल्लभा ॥१२॥
माहेशी दक्षिणे पातु चामुण्डा राक्षसेऽवतु।
कौमारी पश्चिमे पातु वायव्ये चापराजिता ॥१३॥
वाराही चोत्तरे पातु नारसिंही शिवेऽवतु।
ऊर्ध्वं पातु महालक्ष्मीः पाताले शारदाऽवतु ॥१४॥

इत्यष्टौ शक्तयः पान्तु सायुधाश्च सवाहनाः।
राजद्वारे महादुर्गे पातु मां गणनायकः ॥१५॥
श्मशाने जलमध्ये च भैरवश्च सदाऽवतु।
द्विभुजा रक्तवसनाः सर्वाभरणभूषिताः ॥१६॥
योगिन्यः सर्वदा पान्तु महारण्ये सदा मम।
इति ते कथितं देवि! कवचं परमाद्भुतम् ॥१७॥
श्रीविश्वविजयं नाम कीर्तिश्रीविजयप्रदाम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं धीरं शूरं शतायुषम् ॥१८॥
निर्धनो धनमाप्नोति कवचस्यास्य पाठतः।
जपित्वा मन्त्रराजं तु ध्यात्वा श्रीबगलामुखीम् ॥१९॥
पठेदिदं हि कवचं निशायां नियमात् तु यः।
यद् यत् कामयते कामं साध्यासाध्ये महीतले ॥२०॥
तत् तत् काममवाप्नोति सप्तरात्रेण शङ्करि।
गुरुं ध्यात्वा सुरां पीत्वा रात्रौ शक्तिसमन्वितः ॥२१॥
कवचं यः पठेद् देवि! तस्यासाध्यं न किञ्चन।
यं ध्यात्वा प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं कवचं पठेत् ॥२२॥
त्रिरात्रेण वशं याति मृत्योः तन्नात्र संशयः।
लिखित्वा प्रतिमां शत्रोः सतालेन हरिद्रया ॥२३॥
लिखित्वा हृदि तन्नाम तं ध्यात्वा प्रजपेत् मनुम्।
एकविंशद्दिनं यावत् प्रत्यहं च सहस्रकम् ॥२४॥
जप्त्वा पठेत् तु कवचं चतुर्विंशतिवारकम्।
संस्तम्भं जायते शत्रोर्नात्र कार्या विचारणा ॥२५॥
विवादे विजयं तस्य संग्रामे जयमाप्नुयात्।
श्मशाने च भयं नास्ति कवचस्य प्रभावतः ॥२६॥
नवनीतं चाभिमन्त्र्य स्त्रीणां दद्यान्महेश्वरि।
वन्ध्यायां जायते पुत्रो विद्याबलसमन्वितः ॥२७॥
श्मशानाङ्गारमादाय भौमे रात्रौ शनावथ।
पादोदकेन स्पृष्ट्वा च लिखेत् लोहशलाकया ॥२८॥
भूमौ शत्रोः स्वरूपं च हृदि नाम समालिखेत्।
हस्तं तद्धृदये दत्वा कवचं तिथिवारकम् ॥२९॥
ध्यात्वा जपेन्मन्त्रराजं नवरात्रं प्रयत्नतः।
म्रियते ज्वरदाहेन दशमेऽह्नि न संशयः ॥३०॥
भूर्जपत्रेष्विदं स्तोत्रमष्टगन्धेन संलिखेत्।
धारयेद् दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा ॥३१॥

संग्रामे जयमाप्नोति नारी पुत्रवती भवेत् ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तति तं जनम् ॥३२॥
सम्पूज्य कवचं नित्यं पूजायाः फलमालभेत् ।
बृहस्पतिसमो वापि विभवे धनदोपमः ॥३३॥
कामतुल्यश्च नारीणां शत्रूणां च यमोपमः ।
कवितालहरी तस्य भवेद् गङ्गाप्रवाहवत् ॥३४॥
गद्यपद्यमयी वाणी भवेद् देवीप्रसादतः ।
एकादशशतं यावत् पुरश्चरणमुच्यते ॥३५॥
पुरश्चर्याविहीनं तु न चेदं फलदायकम् ।
न देयं परशिष्येभ्यो दुष्टेभ्यश्च विशेषतः ॥३६॥
देयं शिष्याय भक्ताय पञ्चत्वं चान्यथाऽऽप्नुयात् ।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद् यो बगलामुखीम् ।
शतकोटिं जपित्वा तु तस्य सिद्धिर्न जायते ॥३७॥
दाराढ्यो मनुजोऽस्य लक्षजपतः प्राप्नोति सिद्धिं परां
विद्यां श्रीविजयं तथा सुनियतं धीरं च वीरं वरम् ।
ब्रह्मास्त्राख्यमनुं विलिख्य नितरां भूर्जेऽष्टगन्धेन वै
धृत्वा राजपुरं व्रजन्ति खलु ते दासोऽस्ति तेषां नृपः ॥३८॥



विश्वयामलोक्त-बगलामुख्यास्त्रैलोक्यविजयं कवचम्

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि स्वरहस्यं च कामदम् ।
श्रुत्वा गोप्यं गुप्ततमं कुरु गुप्तं सुरेश्वरि ॥१॥
कवचं बगलामुख्याः सकलेष्टप्रदं कलौ ।
तत्सर्वस्वं परं गुह्यं गुप्तं च शरजन्मना ॥२॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचेशं मनोरमम् ।
मन्त्रगर्भं ब्रह्ममयं सर्वविद्याविनायकम् ॥३॥
रहस्यं परमं ज्ञेयं साक्षादमृतरूपकम् ।
ब्रह्मविद्यामयं वर्म दुर्लभं प्राणिनां कलौ ॥४॥
पूर्णमेकोनपञ्चाशद्वर्णैरुक्तं महेश्वरि ।
त्वद्भक्त्या वच्मि देवेशि ! गोपनीयं स्वयोनिवत् ॥५॥

श्रीदेव्युवाच

भगवन् ! करुणासार ! विश्वनाथ ! सुरेश्वर !
कर्मणा मनसा वाचा न वदामि कदाचन ॥१॥

श्रीभैरव उवाच

त्रैलोक्यविजयाख्यस्य कवचास्यास्य पार्वति ।
मनुगर्भस्य गुप्तस्य ऋषिर्देवोऽस्य भैरवः ॥१॥
उष्णिक्छन्दः समाख्यातं देवी श्रीबगलामुखी ।
बीज ह्लीं ॐ शक्तिः स्यात् स्वाहा कीलकमुच्यते ॥२॥
विनियोगः समाख्यातः त्रिवर्गफलप्राप्तये ।
देवि त्वं पठ वर्मैतन्मन्त्रगर्भं सुरेश्वरि ॥३॥
विना ध्यानं कुतः सिद्धिः सत्यमेतच्च पार्वति ।
चन्द्रोद्भासितमूर्धजां रिपुरसां मुण्डाक्षमालाकराम् ॥४॥
बालांसत्स्त्रकचञ्चलां मधुमदां रक्तां जटाजूटिनीं ।
शत्रुस्तम्भनकारिणीं शशिमुखीं पीताम्बरोद्भासिनीम् ॥५॥
प्रेतस्थां बगलामुखीं भगवतीं कारुण्यरूपां भजे
ॐ ह्लीं मम शिरः पातु देवी श्रीबगलामुखी ॥६॥
ॐ ऐं क्लीं पातु मे भालं देवी स्तम्भनकारिणी ।
ॐ अं इं हं भ्रुवौ पातु क्लेशहारिणी ॥७॥
ॐ हं पातु मे नेत्रे नारसिंही शुभङ्करी ।
ॐ ह्रीं श्रीं पातु मे गण्डौ अं आं इं भुवनेश्वरी ॥८॥
ॐ ऐं क्लीं सौः श्रुतौ पातु इं ईं उं च परेश्वरी ।
ॐ ह्लीं ह्रूं ह्लीं सदाव्यान्मे नासां ह्लीं सरस्वती ॥९॥
ॐ ह्रां ह्रीं मे मुखं पातु लीं एं ऐं छिन्नमस्तका ।
ॐ श्रीं वं मेऽधरौ पातु ओं औं दक्षिणकालिका ॥१०॥
ॐ क्लीं श्रीं शिरसः पातु कं खं गं घं च सारिका ।
ॐ ह्रीं ह्रूं भैरवी पातु ङं अं अः त्रिपुरेश्वरी ॥११॥
ॐ ऐं सौः मे हनुं पातु चं छं जं च मनोन्मनी ।
ॐ श्रीं श्रीं मे गलं पातु झं ञं टं ठं गणेश्वरी ॥१२॥
ॐ स्कन्धौ मेऽव्याद् डं ढं णं हूं हूं चैव तु तोतला ।
ॐ ह्रीं श्रीं मे भुजौ पातु तं थं दं वरवर्णिनी ॥१३॥
ऐं क्लीं सौः स्तनौ पातु धं नं पं परमेश्वरी ।
क्रों क्रों मे रक्षयेद् वक्षः फं बं भं भगवासिनी ॥१४॥
ॐ ह्रीं रां पातु कुक्षि मे मं यं रं वह्निवल्लभा ।
ॐ श्रीं ह्रूं पातु मे पार्श्वौ लं बं लम्बोदरन् प्रसूः ॥१५॥
ॐ श्रीं ह्रीं हूं पातु मे नाभिं शं षं षण्मुखपालिनी ।
ॐ ऐं सौः पातु मे पृष्ठं सं हं हाटकरूपिणी ॥१६॥

ॐ क्लीं ऐं कटिं पातु पञ्चाशद्वर्णमालिका।
ॐ ऐं क्लीं पातु मे गुह्यं अं आं कं गुह्यकेश्वरी ॥१७॥
ॐ श्रीं ऊं ऋं सदाऽव्यान्मे इं ईं खं खां स्वरूपिणी।
ॐ जुं सः पातु मे जङ्घे रुं रूं धं अघहारिणी ॥१८॥
श्रीं ह्रीं पातु मे जानू उं ऊं णं गणवल्लभा।
ॐ श्रीं सः पातु मे गुल्फौ लिं लीं ऊं चं चण्डिका ॥१९॥
ॐ ऐं ह्रीं पातु मे वाणी एं ऐं छं जं जगत्प्रिया।
ॐ श्रीं क्लीं पातु पादौ मे झं ञं टं ठं भगोदरी ॥२०॥
ॐ ह्रीं सर्वं वपुः पातु अं अः त्रिपुरमालिनी।
ॐ ह्रीं पूर्वे सदाऽव्यान्मे झं झां डं ढं शिखामुखी ॥२१॥
ॐ सौः याम्यं सदाऽव्यान्मे इं ईं णं तं च तारिणी।
ॐ वारुण्यां च वाराही उं थं दं धं च कम्पिला ॥२२॥
ॐ श्रीं मां पातु चैशान्यां पातु ॐ नं जनेश्वरी।
ॐ श्रीं मां चाग्नेयां ऋं भं मं धं च योगिनी ॥२३॥
ॐ ऐं मां पातु नैर्ऋत्यां लृं लं राजेश्वरी तथा।
ॐ श्रीं पातु वायव्यां लृं लं वीतकेशिनी।
ॐ प्रभाते च मां पातु लीं लं वागीश्वरी सदा ॥२४॥
ॐ मध्याह्ने च मां पातु ऐं क्षं शङ्करवल्लभा।
श्रीं ह्रीं क्लीं पातु सायं ऐं आं शाकम्भरी सदा ॥२५॥
ॐ ह्रीं निशादौ मां पातु ॐ सं सागरवासिनी।
क्लीं निशीथे च मां पातु ॐ हं हरिहरेश्वरी ॥२६॥
क्लीं ब्राह्मो मुहूर्तेऽव्याद् लं लां त्रिपुरसुन्दरी।
विसर्गा तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ॥२७॥
क्लीं तन्मे सकलं पातु अं क्षं ह्रीं बगलामुखी।
इतीदं कवचं दिव्यं मन्त्राक्षरमयं परम् ॥२८॥
त्रैलोक्यविजयं नाम सर्ववर्णमयं स्मृतम्।
अप्रकाश्यं सदा देवि! श्रोतव्यं च वाचिकम् ॥२९॥
दुर्जनायाकुलीनस्य दीक्षाहीनाय पार्वति।
न दातव्यं न दातव्यमित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥३०॥
दीक्षाकार्यविहीनाय शक्तिभक्तिविरोधिने।
कवचस्यास्य पठनात् साधको दीक्षितो भवेत् ॥३१॥
कवचेशमिदं गोप्यं सिद्धविद्यामयं परम्।
ब्रह्मविद्यामयं गोप्यं यथेष्टफलदं शिवे ॥३२॥

न कस्य कथितं चैतद् त्रैलोक्यविजयेश्वरम्।
अस्य स्मरणमात्रेण देवी सद्यो वशी भवेत् ।।३३।।
पठनाद् धारणादस्य कवचेशस्य साधकः।
कलौ विचरते वीरो यथा श्रीबगलामुखी ।।३४।।
इदं वर्म स्मरेन्मन्त्री संग्रामे प्रविशेद् यदा।
युयुत्सुः पठन् कवचं साधको विजयी भेवत् ।।३५।।
शत्रुं कालसमानं तु जित्वा स्वगृहमेति सः।
मूर्ध्नि धृत्वा यः कवचं मन्त्रगर्भं सुसाधकः ।।३६।।
ब्रह्माद्यमरान् सर्वान् सहसा वशमानयेत्।
धृत्वा गले तु कवचं साधकस्य महेश्वरि ।।३७।।
वशमायान्ति सहसा रम्भाद्यप्सरसां गणाः।
उत्पातेषु च घोरेषु भयेषु विविधेषु च ।।३८।।
रोगेषु च कवचेशं मन्त्रगर्भं पठेन्नरः।
कर्मणा मनसा वाचा तद्भयं शान्तिमेष्यति ।।३९।।
श्रीदेव्या बगलामुख्याः कवचेशं मयोदितम्।
त्रैलोक्यविजयं नाम पुत्रपौत्रधनप्रदम् ।।४०।।
ऋणं च हरते सम्यक् लक्ष्मीर्भोगविवर्धिनी।
वन्ध्या जनयते कुक्षौ पुत्ररत्नं न चान्यथा ।।४१।।
मृतवत्सा च विभूयात् कवचं च गले सदा।
दीर्घायुर्व्याधिहीनश्च तत्पुत्रो वर्धतेऽनिशम् ।।४२।।
इतीदं बगलामुख्याः कवचेशं सुदुर्लभम्।
त्रैलोक्यविजयं नाम न देयं यस्य कस्यचित् ।।४३।।
अकुलीनाय मूढाय भक्तिहीनाय दम्भिने।
लोभयुक्ताय देवेशि ! न दातव्यं कदाचन ।।४४।।
लोभदम्भविहीनाय कवचेशं प्रदीयताम्।
अभक्तेभ्यो अपुत्रेभ्यो दत्वा कुष्ठी भवेन्नरः ।।४५।।
रवौ रात्रौ च सुस्नातः पूजागृहगतः सुधीः।
दीपमुज्ज्वाल्य मूलेन पठेद्धर्मेदमुत्तमम् ।।४६।।
प्राप्तौ सत्यां त्रिरात्रौ हि राजा तद्गृहमेष्यति।
मण्डलेशो महेशानि देवि ! सत्यं न संशयः ।।४७।।
इदं तु कवचेशं तु मया प्रोक्तं नगात्मजे।
गोप्यं गुह्यतरं देवि ! गोपनीयं स्वयोनिवत् ।।४८।।

●

रुद्रयामलोक्त-बगलाप्रत्यङ्गिराकवचम्

श्रीशिव उवाच

अधुनाऽहं प्रवक्ष्यामि बगलायाः सुदुर्लभम्।
यस्य पठनमात्रेण पवनोऽपि स्थिरायते॥
प्रत्यङ्गिरा तां देवेशि शृणुस्व कमलानने।
यस्य स्मरणमात्रेण शत्रवो विलयं गताः॥

श्रीदेव्युवाच

स्नेहोऽस्ति यदि मे नाथ! संसारार्णवतारक।
तथा कथय मां शम्भो बगला प्रत्यङ्गिरा मम॥

श्रीभैरव उवाच

यं यं प्रार्थयते मन्त्री हठात्तं तमवाप्नुयात्।
विद्वेषणाकर्षणे च स्तम्भनं वैरिणां विभो॥
उच्चाटनं मारणं च येन कर्तुं क्षमो भवेत्।
तत्सर्वं ब्रूहि मे देव! यदि मां दयसे हर॥

श्रीसदाशिव उवाच

अधुना हि महादेवि! परानिष्ठा मतिर्भवेत्!
अतएव महेशानि! किञ्चिन्न वक्तुमर्हसि॥

श्रीपार्वत्युवाच

जिघांसन्तं जिघांसीयात्र तेन ब्रह्महा भवेत्।
श्रुतिरेषा हि गिरिश! कथं मां त्वं निनिन्दसि॥

श्रीशिव उवाच

साधु साधु प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितानघे।
प्रत्यङ्गिरां बगलायाः सर्वशत्रुनिवारिणीम्॥
नाशिनीं सर्वदुष्टानां सर्वपापौघहारिणीम्।
सर्वप्राणिहितां देवीं सर्वदुःखविनाशिनीम्॥
भोगदां मोक्षदां चैव राज्यसौभाग्यदायिनीम्।
मन्त्रदोषप्रमोचनीं ग्रहदोषनिवारिणीम्॥

अस्य श्रीबगलाप्रत्यङ्गिरामन्त्रस्य नारद ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः प्रत्यङ्गिरा देवता ह्लीं बीजं हूँ शक्तिः ह्रीं कीलकं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं प्रत्यङ्गिरा मम शत्रुविनाशे विनियोगः।

ॐ प्रत्यङ्गिरायै नमः प्रत्यङ्गिरे सकलकामान् साधय मम रक्षां कुरु कुरु सर्वान् शत्रून् खादय खादय मारय मारय घातय घातय ॐ ह्रीं फट् स्वाहा।

ॐ भ्रामरी स्तम्भिनी देवी क्षोभिणी मोहिनी तथा।
संहारिणी द्राविणी च जृम्भिणी रौद्ररूपिणी॥
इत्यष्टौ शक्तयो देवि! शत्रुपक्षे नियोजिताः।
धारयेत् कण्ठदेशे च सर्वशत्रुविनाशिनी॥

ॐ ह्लीं भ्रामरि सर्वशत्रून् भ्रामय भ्रामय ॐ ह्लीं स्वाहा।
ॐ ह्लीं स्तम्भिनि मम शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लीं स्वाहा।
ॐ ह्लीं क्षोभिणि मम शत्रून् क्षोभय क्षोभय ॐ ह्लीं स्वाहा।
ॐ ह्लीं मोहिनि मम शत्रून् मोहय मोहय ॐ ह्लीं स्वाहा।
ॐ ह्लीं संहारिणि मम शत्रून् संहारय संहारय ॐ ह्लीं स्वाहा।
ॐ ह्लीं द्राविणि मम शत्रून् द्रावय द्रावय ॐ ह्लीं स्वाहा।
ॐ ह्लीं जृम्भिणि मम शत्रून् जृम्भय जृम्भय ॐ ह्लीं स्वाहा।
ॐ ह्लीं रौद्रि मम शत्रून् सन्तापय सन्तापय ॐ ह्लीं स्वाहा।

इयं विद्या महाविद्या सर्वशत्रुनिवारिणी।
धारिता साधकेन्द्रेण सर्वान् दुष्टान् विनाशयेत्॥
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यः पठेत्स्थिरमानसः।
न तस्य दुर्लभं लोके कल्पवृक्ष इव स्थितः॥
यं यं स्पृशति हस्तेन यं यं पश्यति चक्षुषा।
स एव दासतां याति सारात्सारमिमं मनुम्॥



श्रीबगलामुखीशत्रुविनाशककवचम्

श्रीगणेशाय नमः। श्रीपीताम्बरायै नमः।

श्रीदेव्युवाच

नमस्ते शम्भवे तुभ्यं नमस्ते शशिशेखर।
त्वत्प्रसादाद्द्रुतं सर्वमधुना कवचं वद॥१॥

श्रीशिव उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्।
यस्य स्मरणमात्रेण रिपोः स्तम्भो भवेत् क्षणात्॥२॥
कवचस्य च देवेशि! महामायाप्रभावतः।
पंक्तिश्छन्दः समुद्दिष्टं देवता बगलामुखी॥३॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः।
ॐकारो मे शिरः पातु ह्लींकारो वदनेऽवतु॥४॥
बगलामुखि दोर्युग्मं कण्ठे सर्वं सदाऽवतु।
दुष्टानां पातु हृदयं वाचं मुखं ततः पदम्॥५॥

उदरे सर्वदा पातु स्तम्भयेति सदा मम।
जिह्वां कीलय मे मातर्बगला सर्वदाऽवतु ॥६॥
बुद्धिं विनाशय पादौ तु ह्लीं ॐ मे दिग्विदिक्षु च।
स्वाहा मे सर्वदा पातु सर्वत्र सर्वसन्धिषु ॥७॥
इति ते कथितं देवि! कवचं परमाद्भुतम्।
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वस्तम्भो भवेत् क्षणात् ॥८॥
यद्धृत्वा विविधा दैत्या वासवेन हताः पुरा।
यस्य प्रसादात् सिद्धोऽहं हरिः सत्त्वगुणान्वितः ॥९॥
वेधा सृष्टिं वितनुते कामः सर्वजगज्जयी।
लिखित्वा धारयेद् यस्तु कण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥१०॥
षट्कर्मसिद्धिस्तस्याशु मम तुल्यो भवेद् ध्रुवम्।
अज्ञात्वा कवचं देवि! तस्य मन्त्रो न सिध्यति ॥११॥



वीरतन्त्रोक्त-बगलामुखीकवचम्

वीरतन्त्र के 'महोग्रतारा़कल्प' में भैरव-संवादात्मक एक बगलामुखीकवच विद्यमान है जो नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्रीगणेशाय नमः। प्रथमं गुरुं ध्यायेत्।

श्रीदेव्युवाच

राज्ञां मण्डलिकादेवी बगलोपरि सर्पताम्।
सवर्णानां महादेव धनविप्लुतचेतसाम् ॥१॥
दुष्टसर्पादिजन्तूनां स्तम्भनं वद शङ्कर।

श्रीभैरव उवाच

पुरा कृतयुगे देवि! वातक्षोभ उपस्थिते ॥१॥
महार्णवानामेकत्वे गते क्षोभं भयं ययुः।
सेन्द्राः स वैष्णवाः सर्वे सभयं मामुपस्थिताः ॥२॥
शिव शङ्कर रुद्रेश रक्षाऽस्मान् शरणागतान्।
महावातादिसंक्षोभभयादस्मान् महार्णवात् ॥३॥
तच्छ्रुत्वाहं महेशानि कवचं पूर्वनिर्मितम्।
दत्तवान् सर्वदेवेभ्यो महाभयनिकृन्तनम् ॥४॥
कवचं बगलामुख्याः शिवप्राणप्रदं महत्।
पूर्वं भस्माऽसुरत्रासाद् भयव्याकुलितः स्वयम् ॥५॥
पच्यन्ते तेन मत्प्राणास्तान् ररक्ष महेश्वरी।
शिवप्राणप्रदं तस्य विश्रुतं रक्षकं परम् ॥६॥

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीकवचस्य श्रीभैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, अद्वैतरूपिणी महास्तम्भनकारिणी श्रीपीताम्बरा देवी, स्थिरमाया बीजं, स्वाहा शक्तिः, प्रणवः कीलकम्, मम दूरस्थानां समीपस्थानां सर्वदुष्टानां वाक्पदगतिमुखस्तम्भनार्थं, परसैन्यपरमन्त्रयन्त्र-स्तम्भनार्थं, सर्वराजकुलमोहनार्थं, सर्वकामिनीजनवश्यार्थं श्रीबगलामुखीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

ॐ ह्लां हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लूं शिखायै वषट्, ॐ ह्लैं कवचाय हुम्, ॐ ह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लः अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार न्यास भी करना चाहिए ।

ध्यान

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डितरत्नवेद्यां
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराऽभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं
देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥
षट्त्रिंशदक्षरा विद्या बगला पातु मे शिरः ।
सहस्रारे गुरुः पातु शक्त्या परमयोज्ज्वलः ॥८॥
चिद्रूपा परमा शक्तिर्ललाटं शिवगेहिनी ।
भ्रूयुग्मं मे महाकाली नेत्रे मे परमेश्वरी ॥९॥
कर्णयुग्मं पीतपुष्पप्रिया मे पातु कपोलयोः ।
चिबुके परमा शक्तिरोष्ठयोः परमा कला ॥१०॥
वदनं सकलं पातु परब्रह्मस्वरूपिणी ।
पीतपुष्पार्चिता कण्ठं स्कन्धौ स्कन्दस्तनप्रदा ॥११॥
पीताम्बरा दक्षभुजां वामे वामाङ्कधारिणी ।
हृदयं च स्तनद्वन्द्वं नाभिं विश्वस्वरूपधृक् ॥१२॥
उदरं दुर्धरा मेऽव्यात् कटिं कन्दर्परूपधृक् ।
नितम्बौ नमिता देशे देवता जघनं रमा ॥१३॥
जङ्घायुग्ममनाधारा जानुनी जन्तुरूपिणी ।
ऊरू धर्मप्रदा मेऽव्याद् गुल्फे गगनरूपधृक् ॥१४॥
पादौ तु कूर्मरूपा सा पातु पादाङ्गुलीस्तथा ।
शिरसः पादपर्यन्तं पातु मां परमा कला ॥१५॥
गणेशरूपिणी मेऽव्यादाधारं सच्चतुर्दलम् ।
स्वाधिष्ठानं षड्दलं पातु मे ब्रह्मरूपधृक् ॥१६॥
मणिपूरे दशदले पातु केशवरूपिणी ।
हृत्पङ्कजे शैवभक्तिविशुद्धं जीवरूपिणी ॥१७॥

आज्ञाचक्रे बिन्दुरूपा परब्रह्मकुटुम्बिनी ।
ब्रह्मरन्ध्रसहस्रारे पङ्कजे स्वच्छरूपिणी ॥१८॥
पातु मां परमा शक्तिश्चमरी कुटिलालका ।
षट्त्रिंशदक्षरा विद्या पीता पीतवपुर्धरा ॥१९॥
पीतपुष्पार्चिता पीतनैवेद्याऽपि बलिप्रिया ।
सर्वाङ्गे मे शुभा पातु वैरिस्तम्भनकारिणी ॥२०॥
ब्रह्मरन्ध्रं तु परमा संसारार्णवतारिणी ।
मां तारयेत् महादेवी मनोवाञ्छितदायिनी ॥२१॥
आज्ञाचक्रे गुरुरूपा महाभयविनाशिनी ।
सर्वविद्याप्रदा पातु जिह्वां शास्त्रवपुर्धरा ॥२२॥
विशुद्धे षोडशदले जीवेश्वरवपुर्धरा ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपा सा कण्ठस्था मां शिवाऽवतु ॥२३॥
हृत्पङ्कजे भवानी सा हृद्यरूपा परात्मिका ।
स्वकीयानां महाशत्रून् विदारय विदारय ॥२४॥
मणिपूरे दशदले महाविष्णुस्वरूपिणी ।
दारयत्यखिलान् लोकान् महामाया परा तु सा ॥२५॥
प्रजापतिस्वरूपेयं स्वाधिष्ठाने तु षड्दले ।
सृष्टिस्थितिपरा विद्या मां पातु बगलामुखी ॥२६॥
गणेशरूपधृक् पातु ममाधारे चतुर्दले ।
षोडशस्वररूपेण पातु मां परमा कला ॥२७॥
कं खं गं घं तथा ङं चं छं जं झं ञं तथाऽवतु ।
ञं टं ठं डं ढं तथा णं तं थं दं धं तथाऽवतु ॥२८॥
नं पं फं तु शत्रुभ्यः पीतां मां ध्यानतत्परम् ।
बं भं मं यं विदारय शत्रून् मे वाक्स्वरूपिणी ॥२९॥
रं लं वं शं तथा षं सं शत्रोर्जिह्वां विदारय ।
मे वाचं मे मुखं जिह्वां सदा रक्षतु रक्षतु ॥३०॥
हं ळं क्षं सकलं पातु रक्ष मे परमं यशः ।
प्रणवं स्थिरमायां च तृतीयं कान्तिरूपिणी ॥३१॥
या तृतीयस्वरा युग्मं पादाद्यं स्वरपङ्कजम् ।
द्विस्तृतीयं दक्षनेत्रं सर्वदुष्ट बहुस्मृतम् ॥३२॥
द्वितीयं कीलयेति च तथा बुद्धिं विनाशय ।
षष्ठ्या वाचं मुखं पदं स्तम्भयाथोऽपि जिह्वया ॥३३॥
स्थिरमाया तथा तारं चान्ते वह्निवधूप्रिया ।
एषा विद्या महाविद्या शत्रुस्तम्भनकारिणी ॥३४॥

त्रिधा मन्त्रं तथोच्चार्य सर्वाङ्गे व्यापकं कुरु।
जयत्येव न सन्देहः शत्रून् घोरान् महाहवे॥३५॥
कुलालमृत्तिका ग्राह्या वामहस्तेन दीपकम्।
कृत्या प्रज्ज्वाल्य तैलेन वाऽग्रे स्थाप्यं ततो जपेत्॥३६॥
त्रिरात्रे स्तम्भयत्येव शत्रुसेनां महाहवे।
गौरवर्णां पीतपुष्पैर्बालां सम्पूज्य वामतः॥३७॥
न्यासान् विधाय तद्देहे जायायोगे जपेन्मनुम्।
पीतोपचारैस्तां शक्तिं सन्तोष्य परिवारणात्॥३८॥
वशयत्येव लोकेशं किं पुनः क्षुद्रमानुषम्।
वाचः स्तम्भनकामस्तु वीरशक्तिं शुभाननाम्॥३९॥
षोडशाष्टसुवर्णाद्यैरलङ्कृत्य भजन् शिवाम्।
सहस्रं मूलमन्त्रं तु जप्त्वा वाचस्पतेरपि॥४०॥
स्तम्भयत्यैव परमां वाचं किं पुनः क्षुद्रमानुषम्।
वशीकरणकामस्तु बद्ध्वा परिकरं दृढम्॥४१॥
शक्तिलिङ्गोपरि स्थाप्या त्रिसहस्रं जपेन्मनुम्।
इन्द्राणीं वशयत्येव किं पुनः क्षुद्रमानुषीम्॥४२॥
मण्डलाधीशं वशीकुर्याच्चोत्तराभिमुखः स्थितः।
सुन्दरीं षोडशीं शुभ्रां स्वाननां च शुचिस्मिताम्॥४३॥
तत्कुचौ च करे धृत्वा पीताद्यां हसिताननाम्।
लिङ्गे संस्थाप्य सञ्चुम्बन् मुखं पीतामनु जपेत्॥४४॥
त्रिसहस्रे महाराजं वशयत्येव नाऽन्यथा।
कृष्णाष्टमी समारभ्य यावत् कृष्णचतुर्दशी॥४५॥
नियतं तु सहस्रं च शापाऽनुग्रहसिद्धये।
येन केनाप्युपायेन बगलाभक्तितत्परः॥४६॥
स्तम्भयेत् सकलान् देवान् वशयत्येव शङ्करम्।
मारयेच्छत्रुसङ्घातं चालयेत् पर्वतानपि॥४७॥
देवान् स्थापयते चैन्द्रे दृष्ट्वा ज्वरविनाशनम्।
स्तम्भितं चैकधा देवि! तत् सकृच्चासकृज्जपन्॥४८॥
एका सा परमा विद्या महाशत्रुविदारिणी।
नास्तिके तस्करे दुष्टे मूढे पण्डितमानिनि॥४९॥
न देया दुर्जने विद्या शुभोदयमवाप्नुयात्।
सुशीलाय सुदातव्या गुरुभक्तिपराय च॥५०॥
विशुद्धाय महामन्त्रजापिने देयमुत्तमम्।
अस्य पार्वतीमाहात्म्यकवचस्य वरानने॥५१॥

महेन्द्रादौ रणे वाते प्रलये पर्युपस्थिते ।
स्तम्भिता चैकधा देवि ! स्मृत्वा तं सकृज्जपात् ।।५२।।
कृत्वा पुरा तु कवचं जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
नान्यथा स्तम्भिनी विद्या सिद्धिः स्यादिति निश्चयम् ।।५३।।
(श्रीवीरतन्त्र : महोग्रताराकल्प)

●

गायत्री-विधान

बगलामुखीगायत्री

सांख्यायनतन्त्र के द्वादश पटल में गायत्री-विधान मिलता है। क्रौंचभेदन के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव (ईश्वर) कहते हैं—

क्रौञ्चभेदन उवाच

नमस्ते सर्वसर्वेश गर्विताऽसुरभञ्जन ।
गायत्रीं बगलाख्यां च वद मे करुणाकर ।।

ईश्वर उवाच

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि मन्त्रमाहात्म्यमेव च ।
पुरश्चर्याप्रयोगं च वक्ष्येऽहं तव पुत्रक ।।
ब्रह्मास्त्राय पदं चोक्त्वा विद्महेति पदं तथा ।
स्तम्भनेति पदं चोक्त्वा तन्नः शब्दं ततो वदेत् ।।
बगलापदमुच्चार्यमुद्धरेच्च प्रचोदयात् ।
गायत्री बगला नाम्नी सर्वसिद्धिप्रदा भुवि ।।
ब्रह्मा ऋषिश्छन्दश्च गायत्र्यं समुदाहृतम् ।
देवता बगलानाम्नी चिन्मयी शक्तिरूपिणी ।।
ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः कीलकं विद्महे पदम् ।
चतुर्लक्षं पुरश्चर्या तद्दशांशं च तर्पणम् ।।
तद्दशांशं हुनेदाज्यं तावद् ब्राह्मणभोजनम् ।
न्यासं ध्यानादिकं सर्वं कुर्यात्तन्मन्त्रराजवत् ।।
प्रयोगानथ वक्ष्यामि गायत्र्या बगलाह्वयाम् ।
तारादि प्रजपेन्मन्त्रं मोक्षार्थी च कुमारक ।।
कामार्थी प्रजपेन्मन्त्रं तारवाराहपूर्वकम् ।
सम्मोहनार्थं प्रजपेत् कामराजपुरःसरम् ।।
स्तम्भनार्थी जपेत् पुत्र बगलाबीजपूर्वकम् ।
विद्वेषणादौ प्रजपेत् हुङ्कारद्वयपूर्वकम् ।।
उच्चाटनार्थं प्रजपेत् शक्तिवाराहपूर्वकम् ।

वाराहशक्तिं वाराहं तच्च मायापुरःसरम् ॥
प्रजपेन्मन्त्रमेतद्धि मारणं भवति ध्रुवम् ।
वाग्भवादि जपेन्मन्त्रं विद्यासिद्धिर्भविष्यति ॥
बालादि प्रजपेन्मन्त्रं कन्यकां क्षितिमाप्नुयात् ।
वाराहीबीजमध्यस्थगायत्रीलक्षजापतः ॥
मूलाभो जायते तस्य अनायासेन पुत्रक ।
श्रीबीजादिं जपेत्पुत्र गायत्रीं बगलाह्वयाम् ॥
कुबेरसदृशः श्रीमान् जायते नात्र संशयः ।
तार्क्ष्यबीजादिकं मन्त्रं प्रजपेद् ध्यानपूर्वकम् ॥
नानाविषप्रयोगांश्च गररोगाऽऽदिनाशनम् ।
भैरवं बीजमादाय प्रजपेच्च कुमारक ॥
भूतप्रेतपिशाचाद्यास्तत्प्रयोगाद् व्यपोहति ।
जपेदमृतबीजादिं गायत्रीं बगलाह्वयाम् ॥
तापज्वरमहातापाच्छान्तिमाप्नोति पुत्रक ।
जपेच्च वायुबीजादिं गायत्रीं बगलाह्वयाम् ॥
क्षिप्रमुच्चाटनं तस्य भवेच्छङ्करभाषितम् ।
अग्निबीजादिगायत्रीं प्रजपेद् बगलाह्वयाम् ॥
तापेन महताऽऽविष्टः पश्चाच्छत्रुर्मृतो भवेत् ।
मायादिं प्रजपेन्मन्त्रं गायत्रीं बगलाह्वयाम् ॥
राजा वा राजपुत्रो वा मरणान्तवशो भवेत् ।
महामायादिगायत्रीं प्रजपेद् बगलाह्वयाम् ॥
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य शिवस्य वचनं यथा ।
मन्त्रराजस्य गायत्रीं पादाद्यवयवां तथा ॥
गायत्रीं च विना मन्त्रो न सिध्यति कलौ युगे ।
पुरश्चरणकाले तु गायत्रीं प्रजपेन्नरः ॥
मूलविद्यादशांशं च मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
त्यक्त्वा तां मन्त्रगायत्रीं यो जपेन्मन्त्रमादरात् ॥
कोटिकोटिजपेनाऽपि तस्य सिद्धिर्न जायते ।
जपसंख्या यत्र नोक्ता लक्षमेकं कुमारक ॥
दिनसंख्या यत्र नोक्ता पक्षमेकं न संशयः ।
गायत्री बगलानाम्नी बगलायाश्च जीवनम् ॥
मन्त्रादौ चाथ मन्त्रान्ते जपेद् ध्यानपुरःसरम् ।

बगलोपासना में बगलागायत्री का महत्त्व

बगलागायत्री का स्वरूप—

गायत्री बगलानाम्नी सर्वसिद्धिप्रदा भुवि ।
ब्रह्मा ऋषिश्छन्दश्च गायत्र्यं समुदाहृतम् ॥
देवता बगलानाम्नी चिन्मयी शक्तिरूपिणी ।
ॐ बीजं ह्लीं शक्तिः कीलकं विद्महे पदम् ॥
चतुर्लक्षं पुरश्चर्या तद्दशांशं च तर्पणम् ।
तद्दशांशं हुनेदाज्यं तावद् ब्राह्मणभोजनम् ॥

महत्त्व—

गायत्रीं च विना मन्त्रो न सिद्ध्यति कलौ युगे ।
पुरश्चरणकाले तु गायत्रीं प्रजपेन्नरः ॥
त्यक्त्वा तां मन्त्रगायत्रीं यो जपेन्मन्त्रमादरात् ।
कोटिकोटिजपेनापि तस्य सिद्धिर्न जायते ॥
(सांख्यायनतन्त्र १२।२५-२७)



बगलामुखी-पटल

(१) 'बगलामुखीं व्याख्यास्यामः' ॥१॥
(हम बगलामुखी की व्याख्या करते हैं ।)

(२) 'अष्टमी सा दशसु महाविद्यासु' ॥२॥
(वह महाविद्याओं में आठवीं (महाविद्या) है ।)

(३) 'स्तम्भनशक्तिर्बगलामुखी' ॥३॥
(बगलामुखी स्तम्भनशक्ति है ।)

(४) 'अध्यात्मं सा शङ्खिन्यां नाड्याम्' ॥४॥
(वह शङ्खिनी नाड़ी में आत्मा सहित स्थित है ।)

(५) 'अधिलोकं पितृयाने पथि' ॥५॥
(पितृयान के मार्ग में उसका लोक है ।)

(६) 'दण्डनाथा काचन मध्यमाया अधिदैवतम्' ॥६॥
(कोई मध्यमा की अधिष्ठात्री देवता 'दण्डनाथा' कहते हैं ।)

(७) 'रिपुस्तम्भनकामो बगलामुखीमुपासीत्' ॥७॥
(शत्रु के स्तम्भन की कामना रखने वाला व्यक्ति बगलामुखी की उपासना करे ।)

(८) 'अन्त:शत्रुस्तम्भनकामो वा' ॥८॥
(या आन्तरिक (काम-क्रोधादिक) शत्रुओं का स्तम्भन करने की आकांक्षा रखने वाले बगलामुखी की उपासना करे।)

(९) 'खेन्द्राग्निशान्तिचन्द्रैः संयुक्तैः' ॥९॥
('ख' (अर्थात् 'ह'), 'इन्द्र' (अर्थात् 'ल'), 'अग्नि' (अर्थात् 'र'), 'शान्ति' (अर्थात 'ई'), 'चन्द्र' (अर्थात् ँ)—इन सबके संयुक्त रूप के द्वारा निर्मित अक्षर अर्थात् बीज एकाक्षर मन्त्र 'ह्ल्रीं' से।)

(१०) 'शुद्धमुपासनमिन्द्रयोनिविद्यया' ॥१०॥
('इन्द्रयोनिविद्या' के द्वारा शुद्ध उपासना होती है।)

(११) 'इन्द्रयोनिश्च जिह्वामूले लम्बमानं तैजसं लिङ्गम्। तल्लक्ष्य ध्यानं तद् विद्या' ॥१॥
(इन्द्रयोनि अर्थात् जिह्वामूल में लम्ब भाव से सुस्थित तैजस लिङ्ग है। उसे लक्ष्य करके ध्यान करना ही यह विद्या है।)

(१२) 'अन्तर्वायुसञ्चारनिरोधेन वा' ॥१२॥
(अथवा अन्तर्वायु का सञ्चार रोक कर अर्थात् कुम्भक प्राणायाम के द्वारा।)

(१३) 'तं हठयोगमाहुः' ॥१३॥
(उसे हठयोग कहते हैं।)

(१४) 'यो वायुं स्तम्भयेत् स सर्वं स्तम्भयेत्' ॥१४॥
(जो वायु का स्तम्भन करता है वह सबका स्तम्भन कर देता है।)

बगलाहृदय के पाठ का वैशिष्ट्य

बगलोपासना में 'बगलाहृदय' के पाठ की महत्ता यह है कि यदि मात्र बगलाहृदय का ही पाठ कर लिया जाय तो फिर साधक को—ध्यान, होम, जप, तर्पण इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। लिखा तो यहाँ तक गया है कि—

(१) इसके श्रवण मात्र से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

(२) इसका एक बार भी उच्चारण कर लिये जाने से सारे अभीष्ट पूरे हो जाते हैं।

(३) इसका स्मरण कर लेने मात्र से समस्त कार्यसिद्धि हो जाने के कारण अभिषेक, मन्त्रदीक्षा, शास्त्रविधि, कालावधि, कालविधि आदि सभी निरर्थक हैं।

(४) बगलाहृदय का मन्त्र ब्रह्मादिकादि के लिए भी दुर्लभ है। इसके सकृत् स्मरण मात्र से सारे वाञ्छित अभीष्ट निष्पादित हो जाते हैं।

(५) पङ्गु चलने लगता है।

(६) मूक बोलने लगता है।

(७) दरिद्र धनी हो जाता है।

(८) निन्दित व्यक्ति भी कीर्तिमान् हो जाता है।

(९) उन्मादी व्यक्ति भी कवीश्वर हो जाता है।

(१०) बगलाहृदय मन्त्र के सकृत्पाठी का उल्लङ्घन करने मात्र से ब्रह्मा भी सकुशल नही रह सकते। बगलाहृदय परम सन्तोष प्रदान करता है और सिद्धियाँ देता है, अत: इसका जप अवश्य करना चाहिए—

'येन केनोपायेन क्रौञ्चभेदन तच्छृणु।
हृन्मत्रं जपते येन वाञ्छितं फलमाप्नुयात्' ॥

इसके लिए ध्यानादिक की अनिवार्यता भी नहीं है—

'न ध्यानं न च होमश्च न जपो न च तर्पणम्।
सकृदुच्चारणान्मन्त्रं चिन्तितं च भवेद् ध्रुवम् ॥
न चाभिषेको न च मन्त्रदीक्षा, न वा विधि: कालविधिश्च देवता।
× × × × × ×
दरिद्रो भवति श्रीमान् स्तब्धो भवति पण्डित:।
चतुरो मुखरश्चैव कीर्तिवान्निन्दितो भवेत्' ॥

(सांख्यायनतन्त्र)



बगलामुखी-पटल

अथ प्रवक्ष्ये शत्रूणां स्तम्भिनीं बगलामुखीम्।
प्रणवो गगनं पृथिवी शान्तिबिन्दुर्युतं बग ॥१॥
ला मु साक्षो गदी सर्वदुष्टानां वा हलीन्दुयुक्।
मुदं पदं स्तम्भयान्ते जिह्वां कीलय वर्णका: ॥२॥
बुद्धिं विनाशयान्ते तु बीजं तारोऽग्निसुन्दरी।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्र: नारदो मुनिरस्य तु ॥३॥
छन्दस्तु बृहती शेषं देवता बगलामुखी।
नेत्राक्षसायकनवपञ्चकाष्ठाभिरङ्गकम् ॥४॥

ध्यान

सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम्।
हस्तैर्मुद्गरपाशवज्ररसना: सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत् ॥५॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चम्पकोद्भवै:।
कुसुमैर्जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम् ॥६॥

चन्दनागुरुचन्द्राद्यैः पूजार्थं यन्त्रमालिखेत् ।
त्रिकोणषड्दलाष्टास्रषोडशारधरा पुरे ॥७॥
मध्ये सम्पूजयेद् देवीं कोणे सत्त्वादिकान् गुणान् ।
षट्कोणेषु षडङ्गानि मातृभैरवसंयुताः ॥८॥
सम्पूज्याऽष्टदले पद्मे षोडशारे यजेदिमाः ।
मङ्गला स्तम्भिनी चैव जृम्भिणी मोहिनी तथा ॥९॥
वश्या बला बलाका च भूधरा कल्मषाऽभिधा ।
धात्री च कलना कालकर्षिणी भ्रामिकाऽपि च ॥१०॥
मन्दगमना भोगस्था भाविका षोडशी स्मृता ।
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु पूर्वाऽऽदिषु यजेत् क्रमात् ॥११॥
गणेशं बटुकं चापि योगिनीं क्षेत्रपालकम् ।
इन्द्रादींश्च ततो बाह्ये निजाऽऽयुधसमन्वितान् ॥१२॥
इत्थं सिद्धमनुर्मन्त्री स्तम्भयेद् देवताऽऽदिकान् ।
पीतवस्त्रस्तदासीनः पीतमाल्याऽनुलेपनः ॥१३॥
पीतपुष्पैर्यजेद्देवीं हरिद्रोत्थस्रजा जपन् ।
पीतां ध्यायन् भगवतीं प्रयोगेष्वयुतं जपेत् ॥१४॥
त्रिमध्वाऽऽज्यतिलैर्होमो नृणां वश्यकरो मतः ।
मधुरत्रितयाक्तैः स्यादाकर्षो लवणैर्ध्रुवम् ॥१५॥
तैलाभ्यक्तैर्निम्बपत्रैर्होमो विद्वेषकारकः ।
ताललवणहरिद्राभिर्द्विषां संस्तम्भनं भवेत् ॥१६॥
अङ्गारधूमं राजीश्च माहिषं गुग्गुलं निशि ।
श्मशानपावके हुत्वा नाशयेदचिरादरीन् ॥१७॥
गरुतो गृद्ध्रकाकानां कटुतैलबिभीतकम् ।
गृहधूमचितावह्नौ हुत्वा प्रोच्चाटयेद् रिपून् ॥१८॥
दूर्वागुडूचीलाजान् यो मधुरत्रितयाऽन्वितान् ।
जुहोति सोऽखिलान् रोगान् शमयेद् दर्शनादपि ॥१९॥
पर्वताग्रे महारण्ये नदीसङ्गे शिवालये ।
ब्रह्मचर्यरतो लक्षं जपेदखिलसिद्धये ॥२०॥
एकवर्णगवीदुग्धं शर्करामधुसंयुतम् ।
त्रिशतं मन्त्रितं पीतं हन्याद् विषपराभवम् ॥२१॥
श्वेतपालाशकाष्ठेन रचिते रम्यपादुके ।
असक्तरञ्जिते लक्षं मन्त्रयेन्मनुनाऽमुना ॥२२॥
तदारूढः पुमान् गच्छेत् क्षणेन शतयोजनम् ।
पारदं च शिला तालं पिष्टं मधुसमन्वितम् ॥२३॥

मनुना मन्त्रयेल्लक्षं लिम्पेत्तेनाऽखिलां तनुम्।
अदृश्यः स्यान्नृणामेष आश्चर्यं दृश्यतामिदम्॥२४॥
षट्कोणे विलिखेद्बीजं साध्यनामान्वितं मनोः।
हरितालनिशाचूर्णैरुन्मत्तरससंयुतैः ॥२५॥
शेषाऽक्षरैः समा बीजं धरागेहविराजितम्।
तद्यन्त्रं स्थापितप्राणपीतसूत्रेण वेष्टयेत्॥२६॥
भ्राम्यत्कुलालचक्रस्थां गृहीत्वा मृत्तिकां तथा।
रचयेद् वृषभं रम्यं यन्त्रं तन्मध्यतः क्षिपेत्॥२७॥
हरितालेन संलिप्य वृषभं प्रत्यहमर्चयेत्।
स्तम्भयेद् विद्विषां वाचं गतिं कार्यं परम्पराम्॥२८॥
आदाय वामहस्तेन प्रेतभूमिस्थखर्परम्।
अङ्गारेण चितास्थेन तत्र यन्त्रं समालिखेत्॥२९॥
मन्त्रितं निहितं भूमौ रिपूणां स्तम्भयेद् गतिम्।
प्रेतवस्त्रे लिखेद् यन्त्रमङ्गारेण च तत्पुनः॥३०॥
मण्डूकवदने न्यस्येत् पीतसूत्रेण वेष्टयेत्।
पूजितं पीतपुष्पैस्तद् वाचं संस्तम्भयेद् द्विषाम्॥३१॥
यद्भूमौ भविता दिव्यं तत्र यन्त्रं समालिखेत्।
मार्जितं तद् वृषापत्रैर्दिव्यस्तम्भनकृद् भवेत्॥३२॥
इन्द्रवारुणिकामूलं सप्तांशो मनुमन्त्रितम्।
क्षिप्तं जले दिव्यकृत्तं जलस्तम्भनकारकम्॥३३॥
किं भूरिणा साधकेन मन्त्रः सम्यगुपासितः।
शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तम्भनो नात्र संशयः॥३४॥

●

सिद्धेश्वरतन्त्रोक्त-बगलाहृदयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीहृदयमालामन्त्रस्य नारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, ह्लीं बीजं, क्लीं शक्तिः, ऐं कीलकं, श्रीबगलामुखीवरप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

अथ न्यासः—ॐ नारदऋषये नमः शिरसि, ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, ॐ श्रीबगलामुख्यै देवतायै नमः हृदये, ॐ ह्लीं बीजाय नमो गुह्ये, ॐ क्लीं शक्तये नमः पादयोः, ॐ ऐं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

अथ कराङ्गन्यासौ। ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्लीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ऐं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ क्लीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ऐं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्लीं हृदयाय नमः। ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा। ॐ ऐं शिखायै वषट्। ॐ ह्लीं कवचाय हुम्। ॐ क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं अस्त्राय फट्। ॐ ह्लीं क्लीं ऐं इति दिग्बन्धः।

पीताम्बरां पीतमाल्यां पीताभरणभूषिताम् ।
पीतकञ्जपदद्वन्द्वां बगलां चिन्तयेऽनिशम् ॥

इति ध्यात्वा सम्पूज्य च—

पीतशङ्खगदाहस्ते पीतचन्दनचर्चिते ।
बगले मे वरं देहि शत्रुसङ्घविदारिणि ॥

इति सम्प्रार्थ्य 'ॐ ह्लीं क्लीं ऐं बगलामुख्यै गदाधारिण्यै प्रेतासनाध्यासिन्यै स्वाहा' इति मन्त्रं जपित्वा पुनः पूर्ववद् हृदयादिषडङ्गन्यासं कृत्वा स्तोत्रं पठेत् तद् यथा—

वन्देऽहं बगलां देवीं पीतभूषणभूषिताम् ।
तेजोरूपमयीं देवीं पीततेजःस्वरूपिणीम् ॥१॥
गदाभ्रमणभिन्नाभ्रां भृकुटीभीषणाननाम् ।
भीषयन्तीं भीमशत्रून् भजे भव्यस्य भक्तिदाम् ॥२॥
पूर्णचन्द्रसमानास्यां पीतगन्धानुलेपनाम् ।
पीताम्बरपरीधानां पवित्रामाश्रयाम्यहम् ॥३॥
पालयन्तीमनुपलं प्रसमीक्ष्याऽवनीतले ।
पीताचाररतां भक्तांस्ताम्भवानीं भजाम्यहम् ॥४॥
पीतपद्मपदद्वन्द्वां चम्पकारण्यरूपिणीम् ।
पीतावतंसां परमां वन्दे पद्मजवन्दिताम् ॥५॥
लसच्चारुसिञ्जत्सुमञ्जीरपादां
चलत्स्वर्णकर्णावतंसाञ्चिता स्याम् ।
वलत्पीतचन्द्राननां चन्द्रवन्द्यां
भजे पद्मजादीऽयसत्पादपद्माम् ॥६॥
सुपीताभयामालया पूतमन्त्रं
परं ते जपन्तो जयं संलभन्ते ।
रणे रागरोषाप्लुतानां रिपूणां
विवादे बलाद्वैरकृदघातमातः ॥७॥
भरत्पीतभास्वत्प्रभाहस्कराभां
गदागञ्जितामित्रगर्वां गरिष्ठाम् ।
गरीयो गुणागारगात्रां गुणाढ्यां
गणेशादिगम्यां श्रये निर्गुणाढ्याम् ॥८॥
जना ये जपन्त्युग्रबीजं जगत्सु
परं प्रत्यहं ते स्मरन्तः स्वरूपम् ।
भवेद् वादिनां वाङ्मुखस्तम्भ आद्ये
जयो जायते जल्पतामाशु तेषाम् ॥९॥

तव ध्याननिष्ठाप्रतिष्ठात्मप्रज्ञा-
वतां पादपद्मार्चने प्रेमयुक्ताः ।
प्रसन्ना नृपाः प्राकृताः पण्डिता वा
पुराणादिका दासतुल्या भवन्ति ॥१०॥
नमामस्ते मातः कनककमनीयाङ्घ्रिजलजं
बलद्विद्युद्वर्णां घनतिमिरविध्वंसकरणम् ।
भवाब्धौ मग्नात्मोत्तरणकरणं सर्वशरणम्
प्रपन्नानां मातर्जगति बगले दुःखदमनम् ॥११॥
ज्वलज्ज्योत्स्नारत्नाकरमणिविषक्ताङ्कभवनं
स्मरामस्ते धाम स्मरहरहरीन्द्रेन्दुप्रमुखैः ।
अहोरात्रं प्रातः प्रणयनवनीयं सुविशदम्
परं पीताकारं परिचितमणिद्वीपवसनम् ॥१२॥
वदामस्ते मातः श्रुतिसुखकरं नाम ललितं
लसन्मात्रावर्णं जगति बगलेति प्रचरितम् ।
चलन्तस्तिष्ठन्तो वयमुपविशन्तोऽपि शयने
भजामो यच्छ्रेयो दिवि दुरवलभ्यं दिविषदाम् ॥१३॥
पदार्चायां प्रीतिः प्रतिदिनमपूर्वा प्रभवतु
यथा ते प्रासन्न्यं प्रतिपलमपेक्ष्यं प्रणमताम् ।
अनल्पं तन्मातर्भवति भृतभक्त्या भवतु नो
दिशातः सद्भक्तिं भुवि भगवतां भूरि भवदाम् ॥१४॥
मम सकलरिपूणां वाङ्मुखे स्तम्भयाशु
भगवति रिपुजिह्वां कीलय प्रस्थतुल्याम् ।
व्यवसितखलबुद्धिं नाशयाऽशु प्रगल्भाम्
मम कुरु बहुकार्यं सत्कृपेऽम्ब प्रसीद ॥१५॥
व्रजतु मम रिपूणां सद्मनि प्रेतसंस्था
करधृतगदया तान् घातयित्वाऽशु रोषात् ।
सघनवसनधान्यं सद्म तेषां प्रदह्य
पुनरपि बगला स्वस्थानमायातु शीघ्रम् ॥१६॥
करधृतरिपुजिह्वापीडनं व्यग्रहस्ताम्
पुनरपि गदया तांस्ताडयन्तीं सुतन्त्राम् ।
प्रणतसुरगणानां पालिकां पीतवस्त्रां
बहुबलबगलान्तां पीतवस्त्रां नमामः ॥१७॥
हृदयवचनकायैः कुर्वतां भक्तिपुञ्जं
प्रकटति करुणार्द्रां प्रीणति जल्पतीति ।

धनमथ बहुधान्यं पुत्रपौत्रादिवृद्धिः
सकलमपि किमेभ्यो देयमेवं त्ववश्यम् ॥१८॥
तव चरणसरोजं सर्वदा सेव्यमानं
द्रुहिणहरिहराद्यैर्देववृन्दैः शरण्यम् ।
मृदुलमपि शरं ते शर्मदं सूरिसेव्यं
वयमिह करवामो मातरेतद् विधेयम् ॥१९॥
बगलाहृदयस्तोत्रमिदं भक्तिसमन्वितः ।
पठेद् यो बगला तस्य प्रसन्ना पाठतो भवेत् ॥२०॥
पीताध्यानपरो भक्तो यः श्रिणोत्यविकल्पतः ।
निष्कल्मषो भवेन्मर्त्यो मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२१॥
आश्विनस्य सिते पक्षे महाष्टम्यां दिवानिशम् ।
यस्त्विदं पठते प्रेम्णा बगलाप्रीतिमेति सः ॥२२॥
देव्यालये पठन्मर्त्यो बगलां ध्यायतीश्वरीम् ।
पीतवस्त्रावृतो यस्तु तस्य नश्यन्ति शत्रवः ॥२३॥
पीताचाररतो नित्यं पीतभूषां विचिन्तयन् ।
बगलायाः पठेन्नित्यं हृदयस्तोत्रमुत्तमम् ॥२४॥
न किञ्चिद्दुर्लभं तस्य दृश्यते जगतीतले ।
शत्रवो ग्लानिमायान्ति तस्य दर्शनमात्रतः ॥२५॥



भगवती बगलामुखी के अष्टोत्तरशतनाम

विष्णुयामलोक्त बगलाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीनारद उवाच

भगवन् ! देवदेवेश ! सृष्टिस्थितिलयात्मकम् ।
शतमष्टोत्तरं नाम्नां बगलाया वदाऽधुना ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु वत्स ! प्रवक्ष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
पिताम्बर्या महादेव्याः स्तोत्रं पापप्रणाशनम् ॥२॥
यस्य प्रपठनात् सद्यो वादी मूको भवेत् क्षणात् ।
रिपूणां स्तम्भनं याति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥३॥

ॐ अस्य पीताम्बर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य सदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्री-पीताम्बरी देवता, श्रीपीताम्बरीप्रीतये जपे विनियोगः ।

ॐ बगला विष्णुवनिता विष्णुशङ्करभामिनी ।
बहुला वेदमाता च महाविष्णुप्रसूरपि ॥१॥

महामत्स्या महाकूर्मा महावाराहरूपिणी ।
नरसिंहप्रिया रम्या वामना बटुरूपिणी ॥२॥
जामदग्न्यस्वरूपा च रामा रामप्रपूजिता ।
कृष्णा कपर्दिनी कृत्या कलहा कलविकारिणी ॥३॥
बुद्धिरूपा बुद्धिभार्या बौद्धपाखण्डखण्डिनी ।
कल्किरूपा कलिहरा कलिदुर्गतिनाशिनी ॥४॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा कोटिकन्दर्पमोहिनी ।
केवला कठिना काली कलाकैवल्यदायिनी ॥५॥
केशवी केशवाराध्या किशोरी केशवस्तुता ।
रुद्ररूपा रुद्रमूर्ती रुद्राणी रुद्रदेवता ॥६॥
नक्षत्ररूपा नक्षत्रा नक्षत्रेशप्रपूजिता ।
नक्षत्रेशप्रिया नित्या नक्षत्रपतिवन्दिता ॥७॥
नागिनी नागजननी नागराजप्रवन्दिता ।
नागेश्वरी नागकन्या नागरी च नगात्मजा ॥८॥
नगाधिराजतनया नगराजप्रपूजिता ।
नवीना नीरदा पीता श्यामा सौन्दर्यकारिणी ॥९॥
रक्ता नीला घना शुभ्रा श्वेता सौभाग्यदायिनी ।
सुन्दरी सौभगा सौम्या स्वर्णाभा स्वर्गतिप्रदा ॥१०॥
रिपुत्रासकरी रेखा शत्रुसंहारकारिणी ।
भामिनी च तथा माया स्तम्भिनी मोहिनी शुभा ॥११॥
रागद्वेषकरी रात्री रौरवध्वंसकारिणी ।
यक्षिणी सिद्धनिवहा सिद्धेशा सिद्धिरूपिणी ॥१२॥
लङ्कापतिध्वंसकरी लङ्केशरिपुवन्दिता ।
लङ्कानाथकुलहरा महारावणहारिणी ॥१३॥
देवदानवसिद्धौघपूजिता परमेश्वरी ।
पराऽणुरूपा परमा परतन्त्रविनाशिनी ॥१४॥
वरदा वरदाऽऽराध्या वरदानपरायणा ।
वरदेशप्रिया वीरा वीरभूषणभूषिता ॥१५॥
वसुदा बहुदा वाणी ब्रह्मरूपा वरानना ।
बलदा पीतवसना पीतभूषणभूषिता ॥१६॥
पीतपुष्पप्रिया पीतहरा पीतस्वरूपिणी ।
इति ते कथितं विप्र नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥१७॥
यः पठेत् पाठयेद् वाऽपि शृणुयाद् वा समाहितः ।
तस्य शत्रुः क्षयं सद्यो याति वै नात्र संशयः ॥१८॥

प्रभातकाले प्रयतो मनुष्यः पठेत् सुभक्त्या परिचिन्त्य पीताम् ।
द्रुतं भवेत् तस्य समस्तवृद्धिर्विनाशमायाति च तस्य शत्रुः ॥१९॥



रुद्रयामलोक्त-बगलाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ब्रह्मास्त्ररूपिणी देवी माता श्रीबगलामुखी ।
चिच्छक्तिर्ज्ञानरूपा च ब्रह्मानन्दप्रदायिनी ॥१॥
महाविद्या महालक्ष्मीः श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी ।
भुवनेशी जगन्माता पार्वती सर्वमङ्गला ॥२॥
ललिता भैरवी शान्ता अन्नपूर्णा कुलेश्वरी ।
वाराही छिन्नमस्ता च तारा काली सरस्वती ॥३॥
जगत्पूज्या महामाया कामेशी भगमालिनी ।
दक्षपुत्री शिवाङ्कस्था शिवरूपा शिवप्रिया ॥४॥
सर्वसम्पत्करी देवी सर्वलोकवशङ्करी ।
वेदविद्या महापूज्या भक्ताद्वेषी भयङ्करी ॥५॥
स्तम्भरूपा स्तम्भिनी च दुष्टस्तम्भनकारिणी ।
भक्तप्रिया महाभोगा श्रीविद्या ललिताम्बिका ॥६॥
मैनापुत्री शिवानन्दा मातङ्गी भुवनेश्वरी ।
नारसिंही नरेन्द्रा च नृपाराध्या नरोत्तमा ॥७॥
नागिनी नागपुत्री च नागराजसुता उमा ।
पीताम्बा पीतपुष्पा च पीतवस्त्रप्रिया शुभा ॥८॥
पीतगन्धप्रिया रामा पीतरत्नार्चिता शिवा ।
अर्द्धचन्द्रधरी देवी गदामुद्गरधारिणी ॥९॥
सावित्री त्रिपदा शुद्धा सद्योरागविवर्धिनी ।
विष्णुरूपा जगन्मोहा ब्रह्मरूपा हरिप्रिया ॥१०॥
रुद्ररूपा रुद्रशक्तिश्चिन्मयी भक्तवत्सला ।
लोकमाता शिवा सन्ध्या शिवपूजनतत्परा ॥११॥
धनाध्यक्षा धनेशी च धर्मदा धनदा धना ।
चण्डदर्पहरी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥१२॥
राजराजेश्वरी देवी महिषासुरमर्दिनी ।
मधुकैटभहन्त्री च रक्तबीजविनाशिनी ॥१३॥
धूम्राक्षदैत्यहन्त्री च भण्डासुरविनाशिनी ।
रेणुपुत्री महामाया भ्रामरी भ्रमराम्बिका ॥१४॥
ज्वालामुखी भद्रकाली बगला शत्रुनाशिनी ।
इन्द्राणी इन्द्रपूज्या च गुहमाता गुणेश्वरी ॥१५॥

वज्रपाशधरा देवी जिह्वामुद्‌गरधारिणी ।
भक्तानन्दकरी देवी बगला परमेश्वरी ॥१६॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां बगलायास्तु यः पठेत् ।
रिपुबाधाविनिर्मुक्तः लक्ष्मीस्थैर्यमवाप्नुयात् ॥१७॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च ग्रहपीडानिवारणम् ।
राजानो वशमायान्ति सर्वैश्वर्यं च विन्दति ॥१८॥
नानाविद्यां च लभते राज्यं प्राप्नोति निश्चितम् ।
भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति साक्षात् शिवसमो भवेत् ॥१९॥

●

बगलामुखीस्तोत्र

विनियोग—इस स्तोत्र का पाठ करने के पूर्व यथाविधान विनियोग पढ़कर जल छोड़े—

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीस्तोत्रस्य भगवान्नारद ऋषिः, बगलामुखी देवता, मनसन्निहितानां दुष्टानां विरोधिनां वाङ्मुखपदजिह्वाबुद्धीनां स्तम्भनार्थे श्रीबगलामुखीप्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

करन्यास—ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ बगलामुखि तर्जनीभ्यां नमः । ॐ सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ बुद्धिं विनाशय ह्लीं स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यास—ॐ ह्लीं हृदयाय नमः । ॐ बगलामुखि शिरसे स्वाहा । ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट् । ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं । ॐ जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यान—

सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां स्रक्चम्पकस्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्गरपाशबद्धरसनां सम्बिभ्रतीं भूषणै-
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तये ॥१॥

अर्थात् स्वर्ण के सिंहासन पर आसीन, त्रिनेत्रा, पीताम्बरा, स्वर्ण कान्ति वाली, चन्द्रकिरीटधारिणी, चम्पा पुष्प की माला पहने हुए, हाथ में मुद्गर एवं पाश लिये हुए तथा शत्रु की जिह्वा खींचे हुए, प्रत्येक शरीराङ्ग को आभूषणों से अलंकृत करके लोकत्रय को स्तम्भित किये हुए भगवती बगलामुखी का मैं चिन्तन (ध्यान) करता हूँ ।

मन्त्र—ॐ ह्लीं बगलामुखि ! सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

ब्रह्मास्त्रमहाविद्यास्तोत्र[1]

ॐ मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं, देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥१॥

अमृत के समुद्र के मध्य मणियों से सुसज्जित मैं मण्डप में स्थित एवं रत्नजटित वेदी पर स्थित (स्वर्ण) सिंहासन पर समासीन, पीतवर्ण वाली एवं पीताम्बरा, सर्वाभरणभूषिताङ्गी तथा हाथ से शत्रु की जिह्वा एवं मुद्गर धारण किये हुए स्थित भगवती बगलामुखी का मैं भजन करता हूँ।

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं, वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां भजामि ॥२॥

बायें हाथ से शत्रुजिह्वा का अग्रभाग पकड़कर दक्षिण हाथ से मुद्गर से शत्रु को पीड़ित करती हुई, द्विभुजा एवं पीताम्बरा भगवती बगलामुखी का मैं भजन करता हूँ।

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुमण्डस्थलीं
लसत्कनकचम्पकद्युतिमदिन्दुबिम्बाननाम्।
गदाहतविपक्षकाङ्कलितलोलजिह्वाञ्चलां
स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मयस्तम्भिनीम् ॥३॥

काञ्चन कुण्डलों के कम्पन होने से सुशोभित कपोलों वाली, स्वर्णप्रिया एवं चम्पा पुष्प (या स्वर्ण द्वारा निर्मित लगने वाले चम्पा पुष्प) की द्युति से कान्तिमान्, चन्द्रबिम्ब सदृश मुख वाली, अपनी गदा से शत्रु को आहत करने वाली, शत्रु की चञ्चल जिह्वा को नष्ट करने वाली तथा उसकी वाणी, मन एवं मुख को नष्ट करने वाली भगवती बगलामुखी का चिन्तन (स्मरण) करता हूँ।

पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रक्तोत्पले मण्डपे
सत्सिंहासनमौलिपातितरिपुं प्रेतासनाऽध्यासिनीम्।
स्वर्णाभाङ्करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां विभ्रमा-
मित्थं ध्यायति यान्ति तस्य विलयं सद्योऽद्य सर्वापदः ॥४॥

अमृत-पयोनिधि के मध्य रक्तारविन्दों के मण्डप में मनोज्ञ सिंहासन पर समासीन, शत्रुओं के शिरों को गिराने वाली, प्रेतासन पर आसीन, स्वर्ण की आभा से युक्त, शत्रु की जिह्वा को पीड़ित करने वाली, गदा को घुमाती हुई भगवती पीताम्बरा बगलामुखी का ध्यान करने मात्र से समस्त आपत्तियों का क्षण मात्र में ध्वंस हो जाता है। मैं ऐसी पीताम्बरा का ध्यान करता हूँ।

देवि! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलीन्
भक्त्या वामकरे निधाय च पुनः मन्त्रं मनोज्ञाक्षरम्।

१. श्रीब्रह्मास्त्रमहाविद्या स्तोत्र की श्लोक-संख्या अड़तीस है। यहाँ ग्रन्थ-गौरव के भय से कतिपय श्लोक ही उद्धृत किये गये हैं।

पीठध्यानपरोऽथ कुम्भकवशाद्बीजं स्मरेत् पार्थिवः
तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये जाड्यं भवेत् तत्क्षणात् ॥५॥

हे देवी ! जो लोग भक्ति के साथ आपके श्रीचरणों की अर्चा करने में पीतपुष्पों की अञ्जलि समर्पित करते हैं और स्पष्टाक्षरों से मन्त्र का ध्यान करते हैं तथा कुम्भकपूर्वक आपके बीजमन्त्रों का चिन्तन करते हैं उन लोगों को शत्रुजन्य वाणी-मन-हृदयगत समस्त पीड़ाएँ तत्क्षण नष्ट हो जाती हैं।

वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वद्यन्त्रणा यन्त्रितः
श्रीर्नित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं वचः ॥६॥

हे भगवती ! आपके यन्त्रणा से यन्त्रित शत्रु की वाणी मूक हो जाती है, राजा भी रङ्क हो जाता है, प्रज्वलित वैश्वानर शीतल हो जाता है, क्रोधी का क्रोध शान्त हो जाता है, दुर्जन सज्जन बन जाता है, वेगवान् पङ्गु हो जाता है, अभिमानी का गर्व भङ्ग हो जाता है और सर्वज्ञ शत्रु भी जड़ हो जाता है। हे कल्याणी ! हे लक्ष्मी ! हे नित्यसत्त्वा बगलामुखी ! मैं आपको अभिवादन करता हूँ।

मन्त्रस्यात्मबलविपक्षदलनं स्तोत्रं पवित्रं च ते
यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रं च चित्रं च ते।
मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे
त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम् ॥७॥

हे अम्बे ! आपकी आत्मशक्ति से शत्रुओं का दलन हो जाता है। आपका स्तोत्र अत्यधिक शुचि है, वादी-समूह को नियन्त्रित करने वाला है और विचित्र त्रैलोक्य को जीतने वाला है। हे भगवती ! आपका यह अत्यन्त सुन्दर बगलामुखी नाम जिस भी प्राणी के मुख में निवास करता है या जो प्राणी आपका तथा आपके इस मन्त्र का ध्यान करता है उसके शत्रुओं के मुख का अवश्य स्तम्भन हो जाता है।

दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणम्
भूभृद्भीशमनं चलन्मृगदृशाञ्चेतः समाकर्षणम्।
सौभाग्यैकनिकेतनं समदृशां कारुण्यपूर्णाऽमृतम्
मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ॥८॥

हे जननी ! दुष्टों को स्तम्भित करने वाला, दुर्निवार्य प्रत्यूहों को नष्ट करने वाला, दारिद्र्य को दूर करने वाला, नृपतियों के भय को विनष्ट करने वाला तथा सौभाग्यदायक भवन, करुणा से भरा अमृतस्वरूप मृत्यु का नाशक आपका शरीर सामने प्रकट हो।

मातर्भञ्जय मे विपक्षवदनं जिह्वां च सङ्कीलय
ब्राह्मीं मुद्रय नाशयाशुधिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय।

शत्रूंश्चूर्णय देवि ! तीक्ष्णगदया गौराङ्गि ! पीताम्बरे !
विघ्नौघं बगले ! हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णेक्षणे ॥९॥

हे माता ! मेरे शत्रु के मुख को तोड़ डालिए, उसकी जिह्वा को कीलित कर दीजिए, उसकी समस्त बुद्धि के विकास को नष्ट कर डालिए तथा उसकी वाणी एवं शीघ्र गति का शीघ्र स्तम्भन कीजिए। हे देवी बगले ! आप अपने कठोर गदा-प्रहार से शत्रुओं को चूर्ण कर डालिए। हे कारुण्यपूर्णनेत्री भगवती बगलामुखी ! आप मुझ प्रणत एवं अभिवादनपरायण भक्त के विघ्न-समूह का ध्वंस कीजिए।

मातर्भैरवि ! भद्रकालि ! विजये ! वाराहि ! विश्वाश्रये !
श्रीविद्ये ! समये ! महेशि ! बगले ! कामेशि ! रामे ! रमे !
मातङ्गि ! त्रिपुरे ! परात्परतरे ! स्वर्गापवर्गप्रदे
दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि ! त्राहि माम् ॥१०॥

हे माता ! हे भैरवी ! हे भद्रकाली ! हे विजये ! हे वाराही ! हे विश्वाश्रये ! हे लक्ष्मी ! हे श्री ! हे विद्ये ! हे समये ! हे महेशि ! हे बगले ! हे कामेशि ! हे रमे ! हे रामे ! मातङ्गि ! हे त्रिपुरसुन्दरी ! हे परात्परपरे ! हे स्वर्गापवर्गप्रदे ! हे विश्वेश्वरि ! मैं आपका दास हूँ और आपके शरणात हूँ ! देवि ! आप अपनी करुणा से मेरी रक्षा कीजिए।

फलश्रुति—

युद्ध में, चोरों के समूह में, प्रहार के काल में, बन्धन में, जल के मध्य में, शास्त्रार्थ में, विवाद में, राजा के कुपित होने पर, रात्रि के समय, दिव्यकाल में, वशीकरण के काल में, स्तम्भन-काल में, निर्जन स्थान में, वन में, चलते-बैठते हर काल में जो इस स्तोत्र का त्रिकाल पाठ पूर्ण भक्तिभावपूर्वक करता है वह धैर्यवान् व्यक्ति निश्चय ही शीघ्र कल्याण की प्राप्ति करता है।

नित्यं स्तोत्रमिदं पवित्रमिह यो देव्याः पठत्यादराद्
धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले।
राजानोऽप्यरयो मदान्धकरिणः सर्पा मृगेन्द्रादिका-
स्ते वै यान्ति विमोहितां रिपुगणाः लक्ष्मीः स्थिरां सिद्धयः ॥१२॥

जो व्यक्ति नित्यप्रति इस पवित्र स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करता है, इस यन्त्र तथा मन्त्र को अपनी भुजा एवं कण्ठ में धारण करता है उसके समक्ष राजा, शत्रु, मतवाला हस्ती, सर्प एवं सिंह सभी वशीभूत हो जाते हैं। उसके शत्रु स्वयं मोहित हो उठते हैं। उसकी लक्ष्मी एवं सिद्धियाँ भी स्थिर हो जाती हैं।

त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघविच्छेदिनी
कोषाकर्षणकारिणी त्रिजगतामानन्दसंवर्धिनी।

दुष्टोच्चाटनकारिणी जनमनस्सम्मोहसन्दायिनी
जिह्वाकीलन भैरवि ! विजयते ब्रह्मादिमन्त्रो यथा ॥१३॥

हे जननी ! तुम परमा विद्या हो, तुम तीनों लोकों की माता हो, तुम विघ्नसमूह की विनाशिनी हो, तुम कोषाकर्षण की सूत्रधार हो, तुम लोकत्रय में आनन्द का संवर्धन करने वाली हो, तुम दुष्टों का उच्चाटन करने वाली हो और तुम जनमन को सम्मोहित करने वाली हो। शत्रुओं की जिह्वा को कीलित करने वाली हे बगला देवी ! जिस प्रकार ब्रह्मा आदि त्रिदेवों का मन्त्र सदैव विजय प्रदान करता है उसी प्रकार आपका मन्त्र भी सभी क्षेत्रों में विजय प्राप्त करता है—अर्थात् साधकों को विजय प्राप्त कराता है।

विद्या लक्ष्मीः सर्वसौभाग्यमायुः पुत्रैः पौत्रैः सर्वसाम्राज्यसिद्धिः ।
मानं भोगो वश्यमारोग्यसौख्यं प्राप्तं तत्तद्भूतलेऽस्मिन्नरेण ॥१४॥



बगलासहस्रनामस्तोत्र

सुरालयप्रधाने तु देवदेवं महेश्वरम् ।
शैलाधिराजतनया संग्रहे तमुवाच ह ॥१॥

श्रीदेव्युवाच

परमेष्ठिन् ! परं धाम ! प्रधान ! परमेश्वर !
नाम्नां सहस्रं बगलामुख्यायं ब्रूहि वल्लभ ॥२॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि नामधेयं सहस्रकम् ।
परब्रह्मास्त्रविद्यायाश्चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥३॥
गुह्याद् गुह्यतरं देवि ! सर्वसिद्धैकवन्दितम् ।
अतिगुप्ततरा विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥४॥
विशेषतः कलियुगे महासिद्ध्यौघदायिनी ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥५॥
अप्रकाश्यमिदं सत्यं स्वयोनिरिव सुव्रते ।
रोधिनी विघ्नसङ्घानां मोहिनी परयोषिताम् ॥६॥
स्तम्भिनी राजसैन्यानां वादिनी परवादिनाम् ।
पुरा चैकार्णवे घोरे काले परमभैरवः ॥७॥
सुन्दरीसहितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ।
उरगासनमासीनो योगनिद्रामुपागमत् ॥८॥
निद्राकाले च ते काले मया प्रोक्तः सनातनः ।
महास्तम्भकरं देवि ! स्तोत्रं वा शतनामकम् ॥९॥

सहस्रनाम परमं वद देवस्य कस्यचित्।

श्रीभगवानुवाच

शृणु शङ्कर देवेश! परमातिरहस्यकम् ॥१०॥
अतोऽहं यत्प्रसादेन विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।
गोपनीयं प्रयत्नेन प्रकाशात् सिद्धिहानिकृत् ॥११॥

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीपीताम्बरीसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान् सदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीजगद्वश्यकरी पीताम्बरी देवता सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्—

पीताम्बरपरीधानां पीनोन्नतपयोधराम्।
जटामुकुटशोभाढ्यां पीतभूमिसुखासनाम् ॥१२॥
शत्रोर्जिह्वां मुद्गरं च बिभ्रतीं परमां कलाम्।
सर्वागमपुराणेषु विख्यातां भुवनत्रये ॥१३॥
सृष्टिस्थितिविनाशानामादिभूतां महेश्वरीम्।
गोप्या सर्वप्रयत्नेन शृणु तां कथयामि ते ॥१४॥
जगद्विध्वंसिनीं देवीमजराऽमरकारिणीम्।
तां नमामि महामायां महदैश्वर्यदायिनीम् ॥१५॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य स्थिरमायां ततो वदेत्।
बगलामुखी सर्वेति दुष्टानां वाचमेव च ॥१६॥
मुखं पदं स्तम्भयेति जिह्वां कीलय बुद्धिमत्।
विनाशयेति तारं च स्थिरमायां ततो वदेत् ॥१७॥
वह्निप्रियां ततो मन्त्रश्चतुर्वर्गफलप्रदः।
ब्रह्मास्त्रब्रह्मविद्या च ब्रह्ममाता सनातनी ॥१८॥
ब्रह्मेशी ब्रह्मकैवल्यं बगला ब्रह्मचारिणी।
नित्यानन्दा नित्यसिद्धा नित्यरूपा निरामया ॥१९॥
सन्धारिणी महामाया कटाक्षक्षेमकारिणी।
कमला विमला नीला रत्नकान्तिगुणाश्रिता ॥२०॥
कामप्रिया कामरता कामकामस्वरूपिणी।
मङ्गला विजया जाया सर्वमङ्गलकारिणी ॥२१॥
कामिनी कामिनीकाम्या कामुका कामचारिणी।
कामप्रिया कामरता कामाकामस्वरूपिणी ॥२२॥
कामाख्या कामबीजस्था कामपीठनिवासिनी।
कामदा कामहा काली कपाली च करालिका ॥२३॥

कंसारिः कमला कामा कैलासेश्वरवल्लभा।
कात्यायनी केशवा च करुणा कामकेलिभुक् ॥२४॥
क्रिया कीर्तिः कृत्तिका च काशिका मधुरा शिवा।
कालाक्षी कालिका काली धवलाननसुन्दरी ॥२५॥
खेचरी च खमूर्तिश्च क्षुद्राऽक्षुद्रक्षुधावरा।
खड्गहस्ता खड्गरता खड्गिनी खर्परप्रिया ॥२६॥
गङ्गा गौरी गामिनी च गीता गोत्रविवर्द्धिनी।
गोधरा गोकरा गोधा गन्धर्वपुरवासिनी ॥२७॥
गन्धर्वा गन्धर्वकला गोपनी गरुडासना।
गोविन्दभावा गोविन्दा गान्धारी गन्धमादिनी ॥२८॥
गौराङ्गी गोपिकामूर्तिर्गोपी गोष्ठनिवासिनी।
गन्धा गजेन्द्रगामान्या गदाधरप्रिया ग्रहा ॥१९॥
घोरघोरा घोररूपा घनश्रोणी घनप्रभा।
दैत्येन्द्रप्रबला घण्टावादिनी घोरनिस्वना ॥३०॥
डाकिन्युमा उपेन्द्रा च उर्वशी उरगासना।
उत्तमा उन्नता उन्ना उत्तमस्थानवासिनी ॥३१॥
चामुण्डा मुण्डिका चण्डी चण्डदर्पहरेति च।
उग्रचण्डा चण्डचण्डा चण्डदैत्यविनाशिनी ॥३२॥
चण्डरूपा प्रचण्डा च चण्डाचण्डशरीरिणी।
चतुर्भुजा प्रचण्डा च चराचरनिवासिनी ॥३३॥
क्षत्रप्रायः शिवोवाहा छलाछलतरा छली।
क्षत्ररूपा क्षत्रधरा क्षत्रियक्षयकारिणी ॥३४॥
जया च जयदुर्गा च जयन्ती जयदापरा।
जायिनी जयिनी ज्योत्स्ना जटाधरप्रिया जिता ॥३५॥
जितेन्द्रिया जितक्रोधा जयमाना जनेश्वरी।
जितमृत्युर्जरातीता जाह्नवी जनकात्मजा ॥३६॥
झङ्कारा झञ्झरी झण्टा झङ्कारी झकशोभिनी।
झखा झमेशा झङ्कारी योनिकल्याणदायिनी ॥३७॥
झर्झरा झमुरी झारा झराझरतरापरा।
झञ्झा झमेता झङ्कारी झणाकल्याणदायिनी ॥३८॥
ईमना मानसी चिन्त्या ईमुना शङ्करप्रिया।
टङ्कारी टिटिका टीका टङ्किनी च टवर्गका ॥३९॥
टापा टोपा टटपतिष्टमनी टमनप्रिया।
ठकारधारिणी ठीका ठङ्करी ठिकरप्रिया ॥४०॥

ठेकठासा ठकरती ठामिनी ठमनप्रिया ।
डारहा डाकिनी डारा डामरा डामरप्रिया ॥४१॥
डखिनी डडयुक्ता च डमरूकरवल्लभा ।
ढक्का ढक्की ढक्कनादा ढोलशब्दप्रबोधिनी ॥४२॥
ढामिनी ढामनप्रीता ढगतन्त्रप्रकाशिनी ।
अनेकरूपिणी अम्बा अणिमासिद्धिदायिनी ॥४३॥
आमन्त्रिणी अणुकरी अणुमद्भानुसंस्थिता ।
तारा तन्त्रावती तन्त्रा तत्त्वरूपा तपस्विनी ॥४४॥
तरङ्गिणी तत्त्वपरा तान्त्रिका तन्त्रविग्रहा ।
तपोरूपा तत्त्वदात्री तपःप्रीतिप्रघर्षिणी ॥४५॥
तन्त्रा यन्त्रार्चनपरा तलातलनिवासिनी ।
तल्पदा स्वल्पदा कामा स्थिरा स्थिरतरा स्थितिः ॥४६॥
स्थाणुप्रिया स्थितिपरा लतास्थानप्रदायिनी ।
दिगम्बरा दयारूपा दावाग्निदमनी दमा ॥४७॥
दुर्गा दुर्गपरा देवी दुष्टदैत्यविनाशिनी ।
दमनप्रमदा दैत्यदयादानपरायणा ॥४८॥
दुर्गार्तिनाशिनी दान्ता दम्भिनी दम्भवर्जिता ।
दिगम्बरप्रिया दम्भा दैत्यदम्भविदारिणी ॥४९॥
दमना दशनसौन्दर्या दानवेन्द्रविनाशिनी ।
दयाधरा च दमनी दर्भपत्रविलासिनी ॥५०॥
धारिणी धारिणी धात्री धराधरधरप्रिया ।
धराधरसुता देवी सुधर्मा धर्मचारिणी ॥५१॥
धर्मज्ञा धवला धूला धनदा धनवर्द्धिनी ।
धीरा धीरा धीरतरा धीरसिद्धिप्रदायिनी ॥५२॥
धन्वन्तरिधरा धीरा ध्येया ध्यानस्वरूपिणी ।
नारायणी नारसिंही नित्यानन्दा नरोत्तमा ॥५३॥
नक्ता नक्तवती नित्या नीलजीमूतसन्निभा ।
नीलाङ्गी नीलवस्त्रा च नीलपर्वतवासिनी ॥५४॥
सुनीलपुष्पखचिता नीलजम्बुसमप्रभा ।
नित्याख्या षोडशी विद्या नित्याऽनित्यसुखावहा ॥५५॥
नर्मदा नन्दना नन्दा नन्दाऽऽनन्दविवर्द्धिनी ।
यशोदानन्दतनया नन्दनोद्यानवासिनी ॥५६॥
नागान्तका नागवृद्धा नागपत्नी च नागिनी ।
नमिताशेषजनता नमकारवती नमः ॥५७॥

पीताम्बरा पार्वती च पीताम्बरविभूषिता ।
पीतमाल्याम्बरधरा पीताभा पिङ्गमूर्द्धजा ॥५८॥
पीतपुष्पार्चनरता पीतपुष्पसमर्चिता ।
परप्रभा पितृपतिः परसैन्यविनाशिनी ॥५९॥
परमा परतन्त्रा च परमन्त्रा परात्परा ।
पराविद्या परासिद्धिः परस्थानप्रदायिनी ॥६०॥
पुष्पा पुष्पवती नित्या पुष्पमालाविभूषिता ।
पुरातना पूर्वपरा परसिद्धिप्रदायिनी ॥६१॥
पीता नितम्बिनीपीता पीनोन्नतपयस्तनी ।
प्रेमा प्रमध्यमा शेषा पद्मपत्रविलासिनी ॥६२॥
पद्मावती पद्मनेत्रा पद्मा पद्ममुखी परा ।
पद्मासना पद्मप्रिया पद्मरागस्वरूपिणी ॥६३॥
पावनी पालिका पात्री परदा वरदा शिवा ।
प्रेतसंस्था परानन्दा परब्रह्मस्वरूपिणी ॥६४॥
जिनेश्वरप्रिया देवी पशुरक्तरतप्रिया ।
पशुमांसप्रिया पर्णा परामृतपरायणा ॥६५॥
पाशिनी पाशिका चापि पशुघ्नी पशुभाषिणी ।
कुल्लारविन्दवदनी कुल्लोत्पलशरीरिणी ॥६६॥
परानन्दाप्रदा वीणा पशुपाशविनाशिनी ।
फुत्कारा फुत्परा फेणी फुल्लेन्दीवरलोचना ॥६७॥
फट्मन्त्रा स्फटिका स्वाहा स्फोटा च फट्स्वरूपिणी ।
स्फाटिका घुटिका घोरा स्फटिकाद्रिस्वरूपिणी ॥६८॥
वराङ्गना वरधरा वाराही वासुकी वरा ।
बिन्दुस्था बिन्दुनी वाणी बिन्दुचक्रनिवासिनी ॥६९॥
विद्याधरी विशालाक्षी काशीवासिजनप्रिया ।
वेदविद्या विरूपाक्षी विश्वयुग् बहुरूपिणी ॥७०॥
ब्रह्मशक्तिर्विष्णुशक्तिः पञ्चवक्त्रा शिवप्रिया ।
वैकुण्ठवासिनी देवी वैकुण्ठपददायिनी ॥७१॥
ब्रह्मरूपा विष्णुरूपा परब्रह्ममहेश्वरी ।
भवप्रिया भवोद्भावा भवरूपा भवोत्तमा ॥७२॥
भवपारा भवाधारा भाग्यवत्प्रियकारिणी ।
भद्रा सुभद्रा भवदा शुम्भदैत्यविनाशिनी ॥७३॥
भवानी भैरवी भीमा भद्रकाली सुभद्रिका ।

श्लोक क्र. ७४ से ८० तक के ७ श्लोक इसमें इसलिए प्रकाशित नहीं किये जा रहे हैं क्योंकि उनकी अशिष्ट शब्दावली को देखकर ऐसा लगता है कि तन्त्र को बदनाम करने के लिए इन्हें किसी ने बाद में जोड़ दिया है। इसके लिए पाठक क्षमा करें।

(लेखक)

माधवी माधवीमान्या मधुरा मधुमानिनी ॥८०॥
मन्दहासा महामाया मोहिनी महदुत्तमा।
महामोहा महाविद्या महाघोरा महास्मृतिः ॥८१॥
मनस्विनी मानवती मोदिनी मधुरानना।
मेनिका मानिनी मान्या मणिरत्नविभूषणा ॥८२॥
मल्लिका मौलिका माला मालाधरमदोत्तमा।
मदना सुन्दरी मेधा मधुमत्ता मधुप्रिया ॥८३॥
मत्तहंसा समोन्नासा मत्तसिंहमहासनी।
महेन्द्रवल्लभा भीमा मौल्यं च मिथुनात्मजा ॥८४॥
महाकाल्या महाकाली मनोबुद्धिर्महोत्कटा।
माहेश्वरी महामाया महिषासुरघातिनी ॥८५॥
मधुरा कीर्तिमत्ता च मत्तमातङ्गगामिनी।
मदप्रिया मांसरता मत्तयुक् कामकारिणी ॥८६॥
मैथुन्यवल्लभा देवी महानन्दा महोत्सवा।
मरीचिर्मारतिर्माया मनोबुद्धिप्रदायिनी ॥८७॥
मोहा मोक्षा महालक्ष्मीर्महत्पदप्रदायिनी।
यमरूपा च यमुना जयन्ती च जयप्रदा ॥८८॥
याम्या यमवती युद्धा यदोः कुलविवर्द्धिनी।
रमा रामा रामपत्नी रत्नमाला रतिप्रिया ॥८९॥
रत्नसिंहासनस्था च रत्नाभरणमण्डिता।
रमणी रमणीया च रत्या रसपरायणा ॥९०॥
रतानन्दा रतवती रघूणां कुलवर्द्धिनी।
रमणारिपरिभ्राज्या रैधा राधिकरत्नजा ॥९१॥
रावी रसस्वरूपा च रात्रिराजसुखावहा।
ऋतुजा ऋतुदा ऋद्धा ऋतुरूपा ऋतुप्रिया ॥९२॥
रक्तप्रिया रक्तवती रङ्गिणी रक्तदन्तिका।
लक्ष्मीर्लज्जा लत्तिका च लीलालग्ना निताक्षिणी ॥९३॥
लीला लीलावती लोमा हर्षाह्लादनपट्टिका।
ब्रह्मस्थिता ब्रह्मरूपा ब्रह्मणा वेदवन्दिता ॥९४॥

ब्रह्मोद्भवा ब्रह्मकला ब्रह्माणी ब्रह्मबोधिनी।
वेदाङ्गना वेदरूपा वनिता विनता वसा ॥९५॥
बाला च युवती वृद्धा ब्रह्मकर्मपरायणा।
विन्ध्यस्था विन्ध्यवासी च बिन्दुयुक् बिन्दुभूषणा ॥९६॥
विद्यावती वेदधारी व्यापिका बर्हिणीकला।
वामाचारप्रिया वह्निर्वामाचारपरायणा ॥९७॥
वामाचाररता देवी वामदेवप्रियोत्तमा।
बुद्धेन्द्रिया विबुद्धा च बुद्धाचरणमालिनी ॥९८॥
बन्धमोचनकर्त्री च वारुणा वरुणालया।
शिवा शिवप्रिया शुद्धा शुद्धाङ्गी शुक्लवर्णिका ॥९९॥
शुक्लपुष्पप्रिया शुक्ला शिवधर्मपरायणा।
शुक्लस्था शुक्लिनी शुक्लरूपा शुक्लपशुप्रिया ॥१००॥
शुक्रस्था शुक्रिणी शुक्रा शुक्ररूपा च शुक्रिका।
षण्मुखी च षडङ्गा च षट्चक्रविनिवासिनी ॥१०१॥
षड्ग्रन्थियुक्ता षोढा च षण्माता च षडात्मिका।
षडङ्गयुवती देवी षडङ्गप्रकृतिर्वशी ॥१०२॥
षडानना षड्रसा च षष्ठी षष्ठेश्वरी प्रिया।
षडङ्गस्वादा षोडशी च षोढान्यासस्वरूपिणी ॥१०३॥
षट्चक्रभेदनकरी षट्चक्रस्थस्वरूपिणी।
षोडशस्वररूपा च षण्मुखी षड्रदान्विता ॥१०४॥
सनकादिस्वरूपा च शिवधर्मपरायणा।
सिद्धा सप्तस्वरी शुद्धा सुरमाता स्वरोत्तमा ॥१०५॥
सिद्धविद्या सिद्धमाता सिद्धाऽसिद्धस्वरूपिणी।
हरा हरिप्रिया हारा हारिणी हारयुक् तथा ॥१०६॥
हरिरूपा हरिधरा हरिणाक्षी हरिप्रिया।
हेतुप्रिया हेतुरता हिताऽहितस्वरूपिणी ॥१०७॥
क्षमा क्षमावती क्षीता क्षुद्रघण्टाविभूषणा।
भयङ्करी क्षितीशा च क्षीणमञ्चसुशोभना ॥१०८॥
अजानन्ता अपर्णा च अहल्या शेषशायिनी।
स्वान्तर्गता च साधूनामन्तराऽनन्तरूपिणी ॥१०९॥
अरूपा अमला चार्द्धा अनन्तगुणशालिनी।
स्वविद्या विद्यकाविद्या विद्या चार्विन्दलोचना ॥११०॥
अपराजिता जातवेदा अजपा अमरावती।
अल्पा स्वल्पा अनल्पाद्या अणिमासिद्धिदायिनी ॥१११॥

अष्टसिद्धिप्रदा देवी रूपलक्षणसंयुता ।
अरविन्दमुखा देवी भोगसौख्यप्रदायिनी ॥११२॥
आदिविद्या आदिभूता आदिसिद्धिप्रदायिनी ।
सीत्काररूपिणी देवी सर्वासनविभूषिता ॥११३॥
इन्द्रप्रिया च इन्द्राणी इन्द्रप्रस्थनिवासिनी ।
इन्द्राक्षी इन्द्रवज्रा च इन्द्रमद्योक्षणी तथा ॥११४॥
ईलाकामनिवासा च ईश्वरीश्वरवल्लभा ।
जननी चेश्वरी दीना भेदा चेश्वरकर्मकृत् ॥११५॥
उमा कात्यायनी ऊद्र्ध्वा मीना चोत्तरवासिनी ।
उमापतिप्रिया देवी शिवा चोङ्काररूपिणी ॥११६॥
उरगेन्द्रशिरोरत्ना उरगोरगवल्लभा ।
उद्यानवासिनी माला प्रशस्तमणिभूषणा ॥११७॥
ऊर्ध्वदन्तोत्तमाङ्गी च उत्तमा चोर्ध्वकेशिनी ।
उमासिद्धिप्रदा या च उरगासनसंस्थिता ॥११८॥
ऋषिपुत्री ऋषिच्छन्दा ऋषिसिद्धिप्रदायिनी ।
उत्सवोत्सवसीमन्ता कामिका च गुणान्विता ॥११९॥
एला एकारविद्या च एणी विद्याधरा तथा ।
ॐकारवलयोपेता ओङ्कारपरमाकला ॥१२०॥
ॐवदवदवाणी च ॐकाराक्षरमण्डिता ।
ऐन्द्री कुलिशहस्ता च ॐलोकपरवासिनी ॥१२१॥
ॐकारमध्यबीजा च ॐनमोरूपधारिणी ।
परब्रह्मस्वरूपा च अंशुकाशुकवल्लभा ॥१२२॥
ॐकारा अः षण्मन्त्रा च अक्षाक्षरविभूषिता ।
अमन्त्रा मन्त्ररूपा च पदशोभासमन्विता ॥१२३॥
प्रणवोङ्काररूपा च प्रणवोच्चारभाक् पुनः ।
ह्रीङ्काररूपा ह्रीङ्कारी वाग्बीजाक्षरभूषणा ॥१२४॥
हृल्लेखा सिद्धियोगा च हृत्पद्मासनसंस्थिता ।
बीजाख्या नेत्रहृदया ह्रींबीजा भुवनेश्वरी ॥१२५॥
क्लीं कामराजा क्लिन्ना च चतुर्वर्गफलप्रदा ।
क्लीं क्लीं क्लीं रूपिकादेवी क्रीं क्रीं क्रीं नामधारिणी ॥१२६॥
कमलाशक्तिबीजा च पाशाङ्कुशविभूषिता ।
श्रीं श्रीङ्कारा महाविद्या श्रद्धा श्रद्धावती तथा ॥१२७॥
ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं परा च क्लीङ्कारी परमाकला ।
ह्रीं क्लीं श्रीङ्कारस्वरूपा सर्वकर्मफलप्रदा ॥१२८॥

सर्वाढ्या सर्वदेवी च सर्वसिद्धिप्रदा तथा।
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च वाग्विभूतिप्रदायिनी ॥१२९॥
सर्वमोक्षप्रदा देवी सर्वभोगप्रदायिनी।
गुणेन्द्रवल्लभा वामा सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥१३०॥
सर्वानन्दमयी चैव सर्वसिद्धिप्रदायिनी।
सर्वचक्रेश्वरी देवी सर्वसिद्धेश्वरी तथा ॥१३१॥
सर्वप्रियङ्करी चैव सर्वसौख्यप्रदायिनी।
सर्वानन्दप्रदा देवी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी ॥१३२॥
मनोवाञ्छितदात्री च मनोवृद्धिसमन्विता।
अकारादि-क्षकारान्ता दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥१३३॥
पद्मनेत्रा सुनेत्रा च स्वधा स्वाहा वषट्करी।
स्ववर्गा देववर्गा च तवर्गा च समन्विता ॥१३४॥
अन्तस्था वेश्मरूपा च नवदुर्गा नरोत्तमा।
तत्त्वसिद्धिप्रदा नीला तथा नीलपताकिनी ॥१३५॥
नित्यरूपा निशाकारी स्तम्भिनी मोहिनीति च।
वशङ्करी तथोच्चाटी उन्मादी कार्षिणीति च ॥१३६॥
मातङ्गी मधुमत्ता च अणिमा लघिमा तथा।
सिद्धा मोक्षप्रदा नित्या नित्यानन्दप्रदायिनी ॥१३७॥
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्तचन्दनभूषिता।
स्वल्पसिद्धिः सुकल्पा च दिव्याचरणशुक्रभा ॥१३८॥
संक्रान्तिः सर्वविद्या च सस्यवासरभूषिता।
प्रथमा च द्वितीया च तृतीया च चतुर्थिका ॥१३९॥
पञ्चमी चैव षष्ठी च विशुद्धा सप्तमी तथा।
अष्टमी नवमी चैव दशम्येकादशी तथा ॥१४०॥
द्वादशी त्रयोदशी च चतुर्दश्यथ पूर्णिमा।
अमावस्या तथा पूर्वा उत्तरा परिपूर्णिमा ॥१४१॥
खड्गिनी चक्रिणी घोरा गदिनी शूलिनी तथा।
भुशुण्डी चापिनी बाणसर्वायुधविभूषणा ॥१४२॥
कुलेश्वरी कुलवती कुलाचारपरायणा।
कुलकर्मसु रक्ता च कुलाचारप्रवर्द्धिनी ॥१४३॥
कीर्तिः श्रीश्चरमा रामा धर्मायै सततं नमः।
क्षमा धृतिः स्मृतिर्मेधा कल्पवृक्षनिवासिनी ॥१४४॥
उग्रा उग्रप्रभा गौरी वेदविद्याविबोधिनी।
साध्या सिद्धा सुसिद्धा च विप्ररूपा तथैव च ॥१४५॥

काली कराली काल्या च कालदैत्यविनाशिनी ।
कीलिनी कालिका चैव क-च-ट-त-पवर्गिका ॥१४६॥
जयिनी जययुक्ता च जयदा जृम्भिणी तथा ।
स्राविणी द्राविणी देवी भरुण्डा विन्ध्यवासिनी ॥१४७॥
ज्योतिर्भूता च जयदा ज्वालामालासमाकुला ।
भिन्नाभिन्नप्रकाशा च विभिन्ना भिन्नरूपिणी ॥१४८॥
अश्विनी भरणी चैव नक्षत्रसम्भवानिला ।
काश्यपी विनताख्याता दितिरदितिरेव च ॥१४९॥
कीर्तिः कामप्रिया देवी कीर्त्यकीर्तिविवर्द्धिनी ।
सद्योमांससमा लब्धा सद्यश्छिन्नापि शङ्करा ॥१५०॥
दक्षिणा चोत्तरा पूर्वा पश्चिमा दिक् तथैव च ।
अग्नि-नैर्ऋति-वायव्या ईशान्यादि तथा स्मृता ॥१५१॥
ऊर्ध्वाङ्गाधोगता श्वेता कृष्णा रक्ता च पीतका ।
चतुर्वर्गा चतुर्वर्णा चतुर्मात्रात्मिकाक्षरा ॥१५२॥
चतुर्मुखी चतुर्वेदा चतुर्विद्या चतुर्मुखा ।
चतुर्गणा चतुर्माता चतुर्वर्गफलप्रदा ॥१५३॥
धात्री विधात्री मिथुना नारीनायकवासिनी ।
सुरामुदा मुदवती मोदिनी मेनकात्मजा ॥१५४॥
ऊर्ध्वकाली सिद्धिकाली दक्षिण्पा कालिका शिवा ।
नील्या सरस्वती सा त्वं बगला छिन्नमस्तका ॥१५५॥
सर्वेश्वरी सिद्धविद्या परा परमदेवता ।
हिङ्गुला हिङ्गुलाङ्गी च हिङ्गुलाधरवासिनी ॥१५६॥
हिङ्गुलोत्तमवर्णाभा हिङ्गुला भरणा च सा ।
जाग्रती च जगन्माता जगदीश्वरवल्लभा ॥१५७॥
जनार्दनप्रिया देवी जययुक्ता जयप्रदा ।
जगदानन्दकारी च जगदाह्लादकारिणी ॥१५८॥
ज्ञानदानकरी यज्ञा जानकी जनकप्रिया ।
जयन्ती जयदा नित्या ज्वलदग्निसमप्रभा ॥१५९॥
विद्याधरा च बिम्बोष्ठी कैलासाचलवासिनी ।
विभवा वडवाग्निश्च अग्निहोत्रफलप्रदा ॥१६०॥
मन्त्ररूपा परादेवी तथैव गुरुरूपिणी ।
गया गङ्गा गोमती च प्रभासा पुष्कराऽपि च ॥१६१॥
विन्ध्याचलरता देवी विन्ध्याचलनिवासिनी ।
बहू बहुसुन्दरी च कंसासुरविनाशिनी ॥१६२॥

शूलिनी शूलहस्ता च वज्रा वज्रहराऽपि च।
दुर्गा शिवा शान्तिकरी ब्रह्माणी ब्राह्मणप्रिया ॥१६३॥
सर्वलोकप्रणेत्री च सर्वरोगहराऽपि च।
मङ्गला शोभना शुद्धा निष्कला परमाकला ॥१६४॥
विश्वेश्वरी विश्वमाता ललितावसितानना।
सदाशिवा उमा क्षेमा चण्डिका चण्डविक्रमा ॥१६५॥
सर्वदेवमयी देवी सर्वागमभयापहा।
ब्रह्मेशविष्णुनमिता सर्वकल्याणकारिणी ॥१६६॥
योगिनी योगमाता च योगीन्द्रहृदयस्थिता।
योगिजाया योगवती योगीन्द्रानन्दयोगिनी ॥१६७॥
इन्द्रादिनमिता देवी ईश्वरी चेश्वरप्रिया।
विशुद्धिदा भयहरा भक्तद्वेषी भयङ्करी ॥१६८॥
भववेषा कामिनी च भरुण्डाभयकारिणी।
बलभद्रप्रियाकारा संसारार्णवतारिणी ॥१६९॥
पञ्चभूता सर्वभूता विभूतिर्भूतिधारिणी।
सिंहवाहा महामोहा मोहपाशविनाशिनी ॥१७०॥
मन्दुरा मदिरा मुद्रा मुद्रामुद्गरधारिणी।
सावित्री च महादेवी परप्रियनिनायका ॥१७१॥
यमदूती च पिङ्गाक्षी वैष्णवी शङ्करी तथा।
चन्द्रप्रिया चन्द्ररता चन्दनारण्यवासिनी ॥१७२॥
चन्दनेन्द्रसमायुक्ता चण्डदैत्यविनाशिनी।
सर्वेश्वरी यक्षिणी च किराती राक्षसी तथा ॥१७३॥
महाभोगवती देवी महामोक्षप्रदायिनी।
विश्वहन्त्री विश्वरूपा विश्वसंहारकारिणी ॥१७४॥
धात्री च सर्वलोकानां हितकारणकामिनी।
कमला सूक्ष्मदा देवी धात्री हरविनाशिनी ॥१७५॥
सुरेन्द्रपूजिता सिद्धा महातेजोवतीति च।
परारूपवती देवी त्रैलोक्याकर्षरूपिणी ॥१७६॥
इति ते कथितं देवि! पीतानामसहस्त्रकम्।
पठेद् वा पाठयेद् वाऽपि सर्वसिद्धिर्भवेत् प्रिये ॥१७७॥
इति ते विष्णुना प्रोक्तं महास्तम्भकरं परम्।
प्रात:काले च मध्याह्ने सन्ध्याकाले च पार्वति ॥१७८॥
एकचित्त: पठेदेतत् सर्वसिद्धिर्भविष्यति।
एकवारं पठेद् यस्तु सर्वपापक्षयो भवेत् ॥१७९॥

द्विवारं प्रपठेद्यस्तु विघ्नेश्वरसमो भवेत् ।
त्रिवारं पठनाद् देवि ! सर्वं सिध्यति सर्वथा ॥१८०॥
स्तवस्याऽस्य प्रभावेण साक्षाद् भवति सुव्रते ।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम् ॥१८१॥
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणान्विताम् ।
महित्वं वत्सरान्ताच्च शत्रुहानिः प्रजायते ॥१८२॥
क्षोणीपतिर्वशस्तस्य स्मरणे सदृशो भवेत् ।
यः पठेत् सर्वदा भक्त्या श्रेयस्तु भवति प्रिये ॥१८३॥
गणाध्यक्षप्रतिनिधिः कविकाव्यपरो वरः ।
गोपनीयं प्रयत्नेन जननीजारवत्सदा ॥१८४॥
हेतुयुक्तो भवेन्नित्यं शक्तियुक्तः सदा भवेत् ।
य इदं पठते नित्यं शिवेन सदृशो भवेत् ॥१८५॥
जीवन् धर्मार्थभोगी स्यान्मृतो मोक्षपतिर्भवेत् ।
सत्यं सत्यं महादेवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ॥१८६॥
स्तवस्यास्य प्रभावेण देवेन सह मोदते ।
सुचित्ताश्च सुराः सर्वे स्तवराजस्य कीर्तनात् ॥१८७॥
पीताम्बरपरीधाना पीतगन्धानुलेपना ।
परमोदयकीर्त्तिः स्यात् परतः सुरसुन्दरि ॥१८८॥

●

बगलापञ्जरस्तोत्रम्

सूत उवाच

सहस्रादित्यसङ्काशं शिवं साम्बं सनातनम् ।
प्रणम्य नारदः प्राह विनम्रो नतकन्धरः ॥१॥

श्रीनारद उवाच

भगवन् ! साम्बा तत्त्वज्ञ सर्वदुःखापहारक ।
श्रीमत्पीताम्बरादेव्याः पञ्जरं पुण्यदं सताम् ॥२॥
प्रकाशय विभो नाथ कृपां कृत्वा ममोपरि ।
यद्यहं तव पादाब्जधूलिधूसरितोऽभवम् ॥३॥

श्रीशिव उवाच

ॐ अस्य श्रीमद्बगलामुखीपीताम्बरापञ्जररूपस्तोत्रमन्त्रस्य भगवते नारदऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, जगद्वश्यकरी श्रीपीताम्बराबगलामुखीदेवतायै नमो हृदये, ह्लीं बीजाय नमो दक्षिणस्तने, स्वाहाशक्तये नमो वामस्तने, क्लीं कीलकाय नमो नाभौ, मम परसैन्यमन्त्रतन्त्रयन्त्रादिकृतविपक्षक्षयार्थं श्रीमत्पीताम्बराबगलादेव्याः प्रीतये

जपे विनियोगः । करसम्पुटेन मूलेन करशुद्धिः । ह्लामिति षड्दीर्घेण षडङ्गः । मूलेन व्यापकम् ।

ध्यानम्—

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डितरत्नवेद्यां, सिंहासनोपरि गतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥

इति ध्यात्वा, मनसा सम्पूज्य, मुद्रां प्रदर्श्य, ऋष्यादिन्यासं कृत्वा पञ्जरं न्यसेत् ।

श्रीशिव उवाच

पञ्जरं तत् प्रवक्ष्यामि देव्याः पापप्रणाशनम् ।
यं प्रविश्य न बाधन्ते बाणैरपि नराः क्वचित् ॥१॥
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं श्रीमत्पीताम्बरादेवी बगला बुद्धिवर्धिनी ।
पातु मामनिशं साक्षात् सहस्रार्कसमद्युतिः ॥२॥
शिखादिपादपर्यन्तं वज्रपञ्जरधारिणी ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीमद्ब्रह्मास्त्रविद्याया पीताम्बराविभूषिता ॥३॥
बगला मामवत्यत्र मूर्धभागं महेश्वरी ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं कामाङ्कुशकला पातु बगलाशास्त्रबोधिनी ॥४॥
पीताम्बरा सहस्राक्षा ललाटं कामितार्थदा ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला पीताम्बरसुधारिणी ॥५॥
कर्णयोश्चैव युगपद् अतिरत्नप्रपूजिता ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला नासिकां मे गुणाकरा ॥६॥
पीतपुष्पैः पीतवस्त्रैः पूजिता वेददायिनी ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला ब्रह्मविष्ण्वादिसेविता ॥७॥
पीताम्बरा प्रसन्नास्या नेत्रयोर्युगपद् भ्रुवौ ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला बलिदा पीतवस्त्रधृक् ॥८॥
अधरोष्ठौ तथा दन्तान् जिह्वां च मुखगां मम ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला पीताम्बरसुधारिणी ॥९॥
गले हस्ते तथा बाह्वोः युगपद् बुद्धिदा सताम् ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला दिव्यस्रगनुलेपना ॥१०॥
हृदये च स्तनौ नाभौ करावपि कृशोदरी ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला पीतवस्त्रघनावृता ॥११॥
जङ्घायां च तथा चोर्वोर्गुल्फयोश्चातिवेगिनी ।
अनुक्तमपि यत् स्थानं त्वक्केशनखलोमकम् ॥१२॥
असृङ् मांसं तथाऽस्थीनि सन्धयश्चापि मे परा ।

श्रीशिव उवाच

इत्येतद् वरदं गोप्यं कलावपि विशेषत: ॥१३॥
पञ्जरं बगलादेव्या दीर्घदारिद्र्यनाशनम्।
पञ्जरं य: पठेत् भक्त्या स विघ्नैर्नाभिभूयते ॥१४॥
अव्याहतगतिश्चास्य ब्रह्मविष्ण्वादिसत्पुरे।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले नाऽरयस्तं कदाचन ॥१५॥
प्रबाधन्ते नरव्याघ्रं पञ्जरस्थं कदाचन।
अतो भक्तै: कौलिकैश्च स्वरक्षार्थं सदैव हि ॥१६॥
पठनीयं प्रयत्नेन सर्वाऽनर्थविनाशनम्।
महादारिद्र्यशमनं सर्वमाङ्गल्यवर्धनम् ॥१७॥
विद्याविनयसत्सौख्यं महासिद्धिकरं परम्।
इदं ब्रह्मास्त्रविद्याया: पञ्जरं साधु गोपितम् ॥१८॥
पठेत् स्मरेद् ध्यानसंस्थ: स जीयान् मरणान् नर:।
य: पञ्जरं प्रविश्यैव मन्त्रं जपति वै भुवि ॥१९॥
कौलिकोऽकौलिको वाऽपि व्यासवद् विचरेद् भुवि।
चन्द्रसूर्यप्रभुर्भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि ॥२०॥

श्रीसूत उवाच

इति कथितमशेषं श्रेयसामादिबीजं
भवशतदुरितघ्नं ध्वस्तमोहान्धकारम्।
स्मरणमतिशयेन प्राप्तिरेवात्र मर्त्यो:
यदि विशति सदा वै पञ्जरं पण्डित: स्यात् ॥२१॥

पीताम्बरापञ्जरं समाप्तम्



अथ पञ्जरन्यासस्तोत्रम्

बगला पूर्वतो रक्षेद् आग्नेय्यां च गदाधरी।
पीताम्बरा दक्षिणे च स्तम्भिनी चैव नैर्ऋते ॥१॥
जिह्वाकीलिन्यतो रक्षेत् पश्चिमे सर्वदा हि माम्।
वायव्ये च मदोन्मत्ता कौबेर्यां च त्रिशूलिनी ॥२॥
ब्रह्मास्त्रदेवता पातु ऐशान्यां सततं मम।
संरक्षेन् मां तु सततं पाताले स्तब्धमातृका ॥३॥
ऊर्ध्वं रक्षेन्महादेवी जिह्वास्तम्भनकारिणी।
एवं दश दिशो रक्षेद् बगला सर्वसिद्धिदा ॥४॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा यत् किञ्चिज्जपमाचरेत्।
तस्या: संस्मरणादेव शत्रूणां स्तम्भनं भवेत् ॥५॥



सहस्रनामस्तोत्रम्

'श्रीउत्कटशम्बरनागेन्द्रप्रयाणतन्त्र' में भी देवी का सहस्रनामस्तोत्र प्राप्त होता है जो निम्नांकित है—

विनियोग—ॐ अस्य श्रीपीताम्बरीसहस्रनामस्तोत्रस्य भगवान् सदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्री जगद्वश्यकरी पीताम्बरी देवता सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानम्—

पीताम्बरपराधीनां पीनोन्नतपयोधराम् ।
जटामुकुटशोभाढ्यां पीतभूमिसुखासनाम् ।
शत्रोर्जिह्वां मुद्गरञ्च बिभ्रतीम्परमां कलाम् ॥
ॐ ब्रह्मास्त्रब्रह्मब्रह्मा च ब्रह्ममाता सनातनी ।
ब्रह्मेशी ब्रह्मकैवल्यमङ्गला ब्रह्मचारिणी ॥
नित्यानन्दा नित्यसिद्धा नित्यरूपा निरामया ।
सन्धारिणी महामाया कटाक्षक्षेमकारिणी ॥
कमला विमला नीला रत्नकान्तिगुणाश्रिता ।
कामप्रिया कामरता कामकामस्वरूपिणी ॥
मङ्गला विजया जाया सर्वमङ्गलकारिणी ।
कामिनी कामिनीकाम्या कामुका कामचारिणी ॥
कामप्रिया कामरता कामाकामस्वरूपिणी ।
कामाख्या कामबीजस्था कामपीठनिवासिनी ॥
कामदा कामहा काली कपाली च करालिका ।
कंसारिः कमला कामा कैलासेश्वरवल्लभा ॥
कात्यायनी केशवा च करुणा कामकेलिभुक् ।
क्रिया कीर्तिः कृत्तिका च काशिका मथुरा शिवा ॥
कालाक्षी कालिका काली धवलाननसुन्दरी ।
खेचरी च खमूर्तिश्च क्षुद्रा क्षुद्रक्षुधावरा ॥
खड्गहस्ता खड्गरता खड्गिनी खर्परप्रिया ।
गङ्गा गौरी गामिनी च गीता गोत्रविवर्धिनी ॥
गोधरा गोकरा गोधा गन्धर्वपुरवासिनी ।
गन्धर्वा गन्धर्वकला गोपनी गरुडासना ॥
गोविन्दभावा गोविन्दा गान्धारी गन्धमादिनी ।
गौराङ्गी गोपिका मूर्तिर्गोपी गोष्ठनिवासिनी ॥
गन्धा गजेन्द्रगामान्या गदाधरप्रिया ग्रहा ।
घोरघोरा घोररूपा घनश्रोणी घनप्रभा ॥

दैत्येन्द्रप्रबला घण्टावादिनी घोरनिस्वना ।
डकिन्युमा उपेन्द्रा च उर्वशी उरगासना ॥
उत्तमा उन्नता उन्ना उत्तमस्थानवासिनी ।
चामुण्डा मुण्डिता चण्डी चण्डदर्पहरेति च ॥
उग्रचण्डा चण्डचण्डा चण्डदैत्यविनाशिनी ।
चण्डरूपा प्रचण्डा च चण्डाचण्डशरीरिणी ॥
चतुर्भुजा प्रचण्डा च चराचरनिवासिनी ।
क्षत्रप्रायशिशरोवाहा छला छलतरा छली ॥
क्षत्ररूपा क्षत्रधरा क्षत्रियक्षयकारिणी ।
जया च जयदुर्गा च जयन्ती जयदा परा ॥
जायिनी जयिनी ज्योत्स्ना जटाधरप्रिया जिता ।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा जयमाना जनेश्वरी ।
जितमृत्युर्जरातीता जाह्नवी जनकात्मजा ।
झङ्कारा झञ्झरी झण्टा झकारी झकशोभनी ॥
झखा झमेशा झङ्कारी योनिकल्याणदायिनी ।
झञ्झरा झमुरी झारा झराझरतरा परा ॥
झञ्झा झमेता झङ्कारी झणाकल्याणदायिनी ।
ईमना मानसी चिन्त्या ईमुना शङ्करप्रिया ॥
टङ्कारी टिटिका टीका टङ्किनी च टवर्गका ।
टापा टोपा टटपतिष्टमनी टमनप्रिया ॥
ठकारधारिणी ठीका ठकरी ठिकरप्रिया ।
ठेठठासा ठकरती ठामिनी ठमनप्रिया ॥
डारहा डाकिनी डारा डामरा डमरप्रिया ।
डखिनी डडयुक्ता च डमरूकरवल्लभा ॥
ढक्का ढक्की ढक्कनादा ढोलशब्दप्रबोधिनी ।
ढामिनी ढामनप्रीता ढगतन्त्रप्रकाशिनी ॥
अनेकरूपिणी अम्बा अणिमासिद्धिदायिनी ।
अमन्त्रिणी अणुकरी अणुमद्भानुसंस्थिता ॥
तारा तन्त्रावती तन्त्रतत्त्वरूपा तपस्विनी ।
तरङ्गिणी तत्त्वपरा तन्त्रिका तन्त्रविग्रहा ॥
तपोरूपा तत्त्वदात्री तपःप्रीतिप्रधर्षिणी ।
तन्त्रा यन्त्रार्चनपरा तलातलनिवासिनी ॥
तल्पदा त्वल्पदा काम्या स्थिरा स्थिरतरा स्थितिः ।
स्थाणुप्रिया स्थपरा स्थिता स्थानप्रदायिनी ॥

दिगम्बरा दयारूपा दावाग्निदमनी दमा ।
दुर्गा दुर्गापरा देवी दुष्टदैत्यविनाशिनी ॥
दमनप्रमदा दैत्यदयादानपरायणा ।
दुर्गार्तिनाशिनी दान्ता दम्भिनी दम्भवर्जिता ॥
दिगम्बरप्रिया दम्भा दैत्यदम्भविदारिणी ।
दमना दशनसौन्दर्या दानवेन्द्रविनाशिनी ॥
दयाधरा च दमनी दर्भपत्रविलासिनी ।
धरिणी धारिणी धात्री धराधरधरप्रिया ॥
धराधरसुता देवी सुधर्मा धर्मचारिणी ।
धर्मज्ञा धवला धूला धनदा धनवर्धिनी ॥
धीराधीरा धीरतरा धीरसिद्धिप्रदायिनी ।
धन्वन्तरिधराधीरा ध्येया ध्यानस्वरूपिणी ॥
नारायणी नारसिंही नित्यानन्दनरोत्तमा ।
नक्ता नक्तवती नित्या नीलजीमूतसन्निभा ।
यमरूपा च यमुना जयन्ती च जयप्रदः ।
याम्या यमवती युद्धा यदोः कुलविवर्धिनी ॥
रमा रामा रामपत्नी रत्नमाला रतिप्रिया ।
रत्नसिंहासनस्था च रत्नाभरणमण्डिता ॥
रमणी रमणीया च रत्या रसपरायणा ।
रतानन्दा रतवती रघूणाङ्कुलवर्धिनी ॥
रमणारिपरिभ्राज्या रैधाराधिकरत्नजा ।
रावी रसस्वरूपा च रात्रिराजसुखावहा ॥
ऋतुजा ऋतुदा ऋद्धा ऋतुरूपा ऋतुप्रिया ।
रक्तप्रिया रक्तवती रङ्गिणी रक्तदन्तिका ।
लक्ष्मीर्लज्जा लतिका च लीला लग्ना निताक्षिणी ।
लीला लीलावती लोमाहर्षाह्लादनपट्टिका ॥
ब्रह्मस्थिता ब्रह्मरूपा ब्रह्मणा वेदवन्दिता ॥
ब्रह्मोद्भवा ब्रह्मकला ब्रह्माणी ब्रह्मबोधिनी ॥
वेदाङ्गना वेदरूपा वनिता विनता वसा ।
बाला च युवती वृद्धा ब्रह्मकर्मपरायणा ॥
विन्ध्यस्था विन्ध्यवासी च बिन्दुयुग्बिन्दुभूषणा ।
विद्यावती वेदधारी व्यापिका बर्हिणी कला ॥
वामाचारप्रिया वह्निर्वामाचारपरायणा ।
वामाचाररता देवी वामदेवप्रियोत्तमा ॥

बुद्धेन्द्रिया विबुद्धा च बुद्धाचरणमालिनी।
बन्धमोचनकर्त्री च वारुणा वरुणालया।।
शिवा शिवप्रिया शुद्धा शुद्धाङ्गी शुक्लवर्णिका।
शुक्लपुष्पप्रिया शुक्ला शिवधर्मपरायणा।।
शुक्लस्था शुक्लिनी शुक्लरूपशुक्लपशुप्रिया।
शुक्रस्था शुक्रिणी शुक्रा शुक्ररूपा च शुक्रिका।।
षण्मुखी च षडङ्गा च षट्चक्रविनिवासिनी।
षड्ग्रन्थियुक्ता षोढा च षण्माता च षडात्मिका।
षडङ्गयुवती देवी षडङ्गप्रकृतिर्वशी।
षडानना षड्रसा च षष्ठी षष्ठेश्वरीप्रिया।।
षङ्गवादा षोडशी च षोढान्यासस्वरूपिणी।
षट्चक्रभेदनकरी षट्चक्रस्थस्वरूपिणी।।
षोडशस्वरूपा च षण्मुखी षड्रदान्विता।
सनकादिस्वरूपा च शिवधर्मपरायणा।।
सिद्धा सप्तस्वरी शुद्धा सुरमाता स्वरोत्तमा।
सिद्धविद्या सिद्धमाता सिद्धा सिद्धस्वरूपिणी।।
हरा हरिप्रिया हारा हारिणी हारयुक् तथा।
हरिरूपा हरिधारा हरिणाक्षी हरिप्रिया।।
हेतुप्रिया हेतुरता हिताहितस्वरूपिणी।
क्षमा क्षमावती क्षीता क्षुद्रघण्टाविभूषणा।।
क्षयङ्करी क्षितीशा च क्षीणा मध्यसुशोभना।
अजानन्ता अपर्णा च अहल्याशेषशायिनी।।
स्वान्तर्गता च साधूनामन्तरानन्तरूपिणी।
अरूपा अमला चार्द्धा अनन्तगुणशालिनी।।
स्वविद्या विद्यकाविद्या विद्या चार्विन्दलोचना।
अपराजिता जातवेदा अजपा अमरावती।।
अल्पा स्वल्पा अनल्पाद्या अणिमासिद्धिदायिनी।
अष्टसिद्धिप्रदा देवी रूपलक्षणसंयुता।
अरविन्दमुखा देवी भोगसौख्यप्रदायिनी।
आदिविद्या आदिभूता आदिसिद्धिप्रदायिनी।।
सीत्काररूपिणी देवी सर्वासनविभूषिता।
इन्द्रप्रिया च इन्द्राणी इन्द्रप्रस्थनिवासिनी।।
इन्द्राक्षी इन्द्रवज्रा च इन्द्रमद्योक्षणी तथा।
ईला कामनिवासा च ईश्वरीश्वरवल्लभा।।

जननी चेश्वरी दीना भेदा चेश्वरकर्मकृत्।
उमा कात्यायनी ऊर्ध्वा मीना चोत्तरवासिनी॥
उमापतिप्रिया देवी शिवा चोङ्काररूपिणी।
उरगेन्द्रशिरोरत्ना उरगोरगवल्लभा॥
उद्यानवासिनी माला प्रशस्तमणिभूषणा।
ऊर्ध्वदन्तोत्तमाङ्गी च उत्तमा चोद्ध्र्वकेशिनी॥
उमासिद्धिप्रदा या च उरगासनसंस्थिता।
ऋषिपुत्री ऋषिच्छन्दा ऋषिसिद्धिप्रदायिनी॥
उत्सवोत्सवसीमन्ता कामिका च गुणान्विता।
एला एकारविद्या च एणी विद्याधरा तथा॥
ओङ्कारवलयोपेता ओङ्कारपरमा कला।
ॐवदवदवाणी च ओङ्काराक्षरमण्डिता॥
ऐन्द्री कुलिशहस्ता च ॐलोकपरवासिनी।
ओङ्कारमध्यबीजा च ॐनमोरूपधारिणी॥
परब्रह्मस्वरूपा च अंशुकांशुकवल्लभा।
ओङ्कारा अः फट्मन्त्रा च अक्षाक्षरविभूषिता॥
अमन्त्रा मन्त्ररूपा च पटभोभासमन्विता।
प्रणवोङ्काररूपा च प्रणवोच्चारभाक् पुनः॥
ह्रीङ्काररूपा ह्रीङ्कारी वाग्बीजाक्षरभूषणा।
हृल्लेखा सिद्धियोगा च हृत्पद्मासनसंस्थिता॥
बीजाख्या नेत्रहृदया ह्रींबीजा भुवनेश्वरी।
क्लींकामराजा क्लिन्ना च चतुर्वर्गफलप्रदा॥
क्लींक्लींक्लींरूपिका देवी क्रींक्रींक्रींनामधारिणी॥
कमला शक्तिबीजा च पाशाङ्कुशविभूषिता॥
श्रीं श्रीङ्कारा महाविद्या श्रद्धा श्रद्धावती तथा।
ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं परा च क्लीङ्कारी परमा कला॥
ह्रीं क्लीं श्रीकारस्वरूपा सर्वकर्मफलप्रदा।
सर्वाढ्या सर्वदेवी च सर्वसिद्धिप्रदा तथा॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च वाग्विभूतिप्रदायिनी।
सर्वमोक्षप्रदा देवी सर्वभोगप्रदायिनी॥
गुणेन्द्रवल्लभा वामा सर्वशक्तिप्रदायिनी।
सर्वानन्दमयी चैव सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥
सर्वचक्रेश्वरी देवी सर्वसिद्धेश्वरी तथा।
सर्वप्रियङ्करी चैव सर्वसौख्यप्रदायिनी॥

सर्वानन्दप्रदा देवी ब्रह्मानन्दप्रदायिनी।
मनोवाञ्छितदात्री च मनोवृद्धिसमन्विता॥
अकारादिक्षकारान्ता दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
पद्मनेत्रा सुनेत्रा च स्वधास्वाहावषट्करी॥
स्ववर्गा देववर्गा च तवर्गा च समन्विता।
अन्तस्था वेश्मरूपा च नवदुर्गा नरोत्तमा॥
तत्त्वसिद्धिप्रदा नीला तथा नीलपताकिनी।
नित्यरूपा निशाकारी स्तम्भिनी मोहिनीति च॥
वशङ्करी तथोच्चाटी उन्मादी कर्षिणीति च।
मातङ्गी मधुमत्ता च अणिमा लघिमा तथा॥
सिद्धा मोक्षप्रदा नित्या नित्यानन्दप्रदायिनी।
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्तचन्दनभूषिता॥
स्वल्पसिद्धिस्सुकल्पा च दिव्यचारणशुक्रभा।
संक्रान्तिस्सर्वविद्या च सस्यवासरभूषिता॥
प्रथमा च द्वितीया च तृतीया च चतुर्थिका।
पञ्चमी चैव षष्ठी च विशुद्धा सप्तमी तथा॥
अष्टमी नवमी चैव दशम्येकादशी तथा।
द्वादशी त्रयोदशी च चतुर्दशपथपूर्णिमा॥
अमावस्या तथा पूर्वा उत्तरा परिपूर्णिमा।
खड्गिनी चक्रिणी घोरा गदिनी शूलिनी तथा॥
भुशुण्डी चापिनी बाणा सर्वायुधविभूषणा।
कुलेश्वरी कुलवती कुलाचारपरायणा॥
कुलकर्मसुरक्ता च कुलाचारप्रवर्धिनी।
कीर्तिः श्रीश्च रमा रामा धर्मायै सततं नमः॥
क्षमा धृतिः स्मृतिर्मेधा कल्पवृक्षनिवासिनी।
उग्रा उग्रप्रभा गौरी वेदविद्याविबोधिनी॥
साध्या सिद्धा सुसिद्धा च विप्ररूपा तथैव च।
काली कराली काल्या च कलादैत्यविनाशिनी॥
कौलिनी कालिका चैव क-च-ट-त-पवर्णिका।
जयिनी जययुक्ता च जयदा जृम्भिनी तथा॥
स्राविणी द्राविणी देवी भरुण्डा विन्ध्यवासिनी।
ज्योतिर्भूता च जयदा ज्वालामालासमाकुला।
भिन्ना भिन्नप्रकाशा च विभिन्ना भिन्नरूपिणी।
अश्विनी भरणी चैव नक्षत्रसम्भवानिला॥

काश्यपी विनता ख्याता दितिजादितिरेव च।
कीर्तिः कामप्रिया देवी कीर्त्या कीर्तिविवर्धिनी॥
सद्योमांससमालब्धा सद्यश्छिन्नासि शङ्करा।
दक्षिणा चोत्तरा पूर्वा पश्चिमा दिक् तथैव च॥
अग्निनैर्ऋतिवायव्या ईशान्यादिक् तथा स्मृता।
ऊर्ध्वाङ्गाधोगता श्वेता कृष्णा रक्ता च पीतका॥
चतुर्वर्गा चतुर्वर्णा चतुर्मात्रात्मिकाक्षरा।
चतुर्मुखी चतुर्वेदा चतुर्विद्या चतुर्मुखा॥
चतुर्गणा चतुर्माता चतुर्वर्गफलप्रदा।
धात्री विधात्री मिथुना नारी नायकवासिनी॥
सुरामुदा मुदवती मोदिनी मेनकात्मजा।
ऊर्ध्वकाली सिद्धिकाली दक्षिणाकालिका शिवा॥
नील्या सरस्वती सा त्वं बगला छिन्नमस्तका।
सर्वेश्वरी सिद्धविद्या परा परमदेवता॥
हिङ्गुला हिङ्गुलाङ्गी च हिङ्गुलाधरवासिनी।
हिङ्गुलोत्तमवर्णाभा हिङ्गुलाभरणा च सा॥
जाग्रती च जगन्माता जगदीश्वरवल्लभा।
जनार्दनप्रिया देवी जययुक्ता जयप्रदा॥
जगदानन्दकारी च जगदाह्लादकारिणी।
ज्ञानदानकरी यज्ञा जानकी जनकप्रिया॥
जयन्ती जयदा नित्या ज्वलदग्निसमप्रभा।
विद्याधरा च बिम्बोष्ठी कैलासाचलवासिनी॥
विभवा वडवाग्निश्च अग्निहोत्रफलप्रदा।
मन्त्ररूपा परा देवी तथैव गुरुरूपिणी॥
गया गङ्गा गोमती च प्रभासा पुष्करापि च।
विन्ध्याचलरता देवी विन्ध्याचलनिवासिनी॥
बहू बहुसुन्दरी च कंसासुरविनाशिनी।
शूलिनी शूलहस्ता च वज्रा वज्रहरापि च॥
दुर्गा शिवा शान्तिकरी ब्रह्माणी ब्राह्मणप्रिया।
सर्वलोकप्रणेत्री च सर्वरोगहरापि च॥
मङ्गला शोभना शुद्धा निष्कला परमा कला।
विश्वेश्वरी विश्वमाता ललिता वसितानना॥
सदाशिवा उमा क्षेमा चण्डिका चण्डविक्रमा।
सर्वदेवमयी देवी सर्वागमभयापहा॥

ब्रह्मेशविष्णुनमिता सर्वकल्याणकारिणी ।
योगिनी योगमाता च योगीन्द्रहृदयस्थिता ॥
योगिजाया योगवती योगीन्द्रानन्दयोगिनी ।
इन्द्रादिनमिता देवी ईश्वरी चेश्वरप्रिया ॥
विशुद्धिदा भयहरा भक्तद्वेषि भयङ्करी ।
भववेषा कामिनी च भरुण्डा भयकारिणी ॥
बलभद्रप्रियाकारा संसारार्णवतारिणी ।
पञ्चभूता सर्वभूता विभूतिर्भूतिधारिणी ॥
सिंहवाहा महामोहा मोहपाशविनाशिनी ।
मन्दुरा मदिरा मुद्रा मुद्रामुद्गरधारिणी ॥
सावित्री च महादेवी परप्रियनिनायिका ।
यमदूती च पिङ्गाक्षी वैष्णवी शङ्करी तथा ॥
चन्द्रप्रिया चन्द्ररता चन्दनारण्यवासिनी ।
चन्दनेन्द्रसमायुक्ता चण्डदैत्यविनाशिनी ॥
सर्वेश्वरी यक्षिणी च किराती राक्षसी तथा ।
महाभोगवती देवी महामोक्षप्रदायिनी ॥
विश्वहन्त्री विश्वरूपा विश्वसंहारकारिणी ।
कमला सूक्ष्मदा देवी धात्री हरविनाशिनी ॥
सुरेन्द्रपूजिता सिद्धा महातेजोवतीति च ।
परारूपवती देवी त्रैलोक्याकर्षकारिणी ॥

(उत्कटशम्बरनागेन्द्रप्रयाणतन्त्र)

●

गायत्री मन्त्र—

'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा । हंसहंसाय विद्महे सोऽहं हंसाय धीमहि । तन्नो हंसः प्रचोदयात्' ॥

अद्वैत भावना का मनन-निदिध्यासन—

'अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत्' ॥

सांख्यायनतन्त्र में भगवती बगला की उपासना में लक्ष्मीसूक्त के पाठ को भी सम्मिलित किया गया है ।

लक्ष्मीसूक्त—ॐ सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥१॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमश्विनौ ॥२॥

वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥३॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाऽशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ॥४॥
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षी पद्मसम्भवे।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥५॥
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
विष्णुप्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥६॥
महालक्ष्मी च विद्महे विष्णुपत्नी च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥७॥
पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व ॥८॥
आनन्दः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः।
ऋषयः श्रियपुत्राश्च मयि श्रीर्देवि देवता ॥९॥
ऋणरोगादिदारिद्र्यं पापं च अपमृत्यवः।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥१०॥
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यं मा विधाच्छोभमानं महीयते।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥११॥

कलशस्थापन का तान्त्रिक विधान

मन्त्राभिषेक के प्रसङ्ग में (तृतीय पटल-सांख्यायनतन्त्र में) भगवती बगलामुखी की उपासना में कलशपूजन का विधान किया गया है और कहा गया है—

'प्रार्थयेद्युग्मसंयुक्तमर्चयेद्वस्त्रभूषणैः ॥१९॥
शक्रादिदिक्षु मन्त्रैश्च प्रथमं कलशार्चनम्।
लक्ष्मीश्रीसूक्तकाभ्याञ्च द्वितीयं कलशार्चनम् ॥२०॥
पौरुषेणैव सूक्तेन तृतीयं कलशं तथा।
नारायणानुवाकेन चतुर्थं कलशं तथा ॥२१॥
पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रैः पञ्चमं कलशं तथा।
षष्ठं चाम्भस्य पारेण ब्रह्मवल्ल्या तु सप्तमम् ॥२२॥
अष्टमं भृगुवल्ल्या तु मार्जयेन्मन्त्रकोविदः।
मध्यस्थं पूर्वकलशं मूलमन्त्रेण मार्जयेत् ॥२३॥
एवं च मार्जनं कृत्वा नवीनैर्वस्त्रभूषणैः।
अलंकृत्वा तु शिष्यं तमानीय मण्डपान्तरे' ॥२४॥

इस कलशस्थापन विधान को पूर्णतः प्रस्तुत करने पर इसका स्वरूप इस प्रकार होगा—

कलशपूजन के मन्त्र—अभिषेक-कलश को स्थापित करने के समय निम्न मन्त्रों का इस प्रकार प्रयोग किया जायेगा—

दिक्पालमन्त्र-प्रयोग : प्रथम कलश—

इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्।
कुबेर ईशो ब्रह्मा च ह्यनन्तो दश दिक्पतिः ॥

(१) इन्द्रदेवता का आवाहन—

इन्द्रं सुरपतिश्रेष्ठं वज्रहस्तं महाबलम्।
आवाहये यज्ञसिद्ध्यै शतयज्ञाधिपं प्रभुम्॥

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहव शूरमिन्द्रं धात्विन्द्रः। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति मघवा धात्विन्द्रः॥

ॐ भूः इन्द्रेहागच्छ। इन्द्राय नमः। इन्द्रं स्थापयामि पूजयामि॥

(२) अग्निदेवता का आवाहन—

त्रिपादं सप्तहस्तं च द्विमूर्धानं द्विनासिकम्।
षण्नेत्रं च चतुःश्रोत्रमग्निमावाहयाम्यहम्॥

ॐ त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च बन्ध त्राता लोकस्य तनये गवामस्य निमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्रते।

ॐ भूः अग्ने इहागच्छ। अग्नये नमः। अग्निं स्थापयामि पूजयामि।

(३) यमदेवता का आवाहन—

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्।
यज्ञसंरक्षणार्थाय यममावाहयाम्यहम्॥
ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा।
धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे॥

ॐ भूः यमेहागच्छ। यमाय नमः। यमं स्थापयामि पूजयामि।

(४) निर्ऋतिदेवता का आवाहन—

सर्वप्रेताधिपं देवं निर्ऋतिं नीलविग्रहम्।
आवाहये यज्ञसिद्ध्यै नरारूढं वरप्रदम्॥

ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छं स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य। अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु॥

ॐ भूः निर्ऋते इहागच्छ। निर्ऋतये नमः। निर्ऋतिं स्थापयामि पूजयामि।

(५) **वरुणदेवता का आवाहन—**

शुद्धस्फटिकसङ्काशं जलेशं यादसां पतिम्।
आवाहये प्रतीचीशं वरुणं सर्वकामदम्॥

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳ समा न आयुः प्रमोषीः।

ॐ भूः वरुण इहागच्छ। वरुणाय नमः। वरुणं स्थापयामि पूजयामि।

(६) **वायुदेवता का आवाहन—**

मनोजवं महातेजं सर्वतश्चारिणं शुभम्।
यज्ञसंरक्षणार्थाय वायुमावाहयाम्यहम्॥

ॐ आनो नियुद् शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्। वायो अस्मिन् सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

ॐ भूः वायो इहागच्छ। वायवे नमः। वायुं स्थापयामि पूजयामि॥

(७) **कुबेरदेवता का आवाहन—**

आवाहयामि देवेशं धनदं यक्षपूजितम्।
महाबलं दिव्यदेहं नरयानगतिं विभुम्॥
ॐ वयꣳ सोम व्रते तवमनस्तनूषु बिभ्रतः।
प्रजावन्तः सचेमहि॥

ॐ भूः सोमेहागच्छ। सोमाय नमः। सोमं स्थापयामि पूजयामि।

(८) **ईशानदेवता का आवाहन—**

सर्वाधिपं महादेवं भूतानां पतिमव्ययम्।
आवाहये तमीशानं लोकानामभयप्रदम्॥

ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमये वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥

ॐ भूः ईशानेहागच्छ। ईशानाय नमः। ईशानं स्थापयामि पूजयामि।

(९) **ब्रह्मा** (देवता) **का आवाहन—**

पद्मयोनिं चतुर्मूर्तिं वेदगर्भं पितामहम्।
आवाहयामि ब्रह्माणं यज्ञसंसिद्धिहेतवे॥

ॐ अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः। यः शंसते स्तुवते धायि वज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः।

पूर्वेशानयोर्मध्ये ॐ भूः ब्रह्मन्निहागच्छ। ब्रह्मणे नमः। ब्रह्मणं स्थापयामि पूजयामि।

(१०) **अनन्त** (देवता) **का आवाहन—**

अनन्तं सर्वनागानामधिपं विश्वरूपिणम्।
जगतां शान्तिकर्तारं मण्डले स्थापयाम्यहम्॥
ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥

निर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये ॐ भूः अनन्तेहागच्छ। अनन्ताय नमः। अनन्तं स्थापयामि पूजयामि।

दिक्पालमन्त्र-प्रयोग का यही विधान है।

द्वितीय कलश : पूजन-मन्त्र

द्वितीय कलश की स्थापना एवं उसके पूजन की दिशा में ऋग्वेद के श्रीसूक्त का प्रयोग किया जाता है।

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥१॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥२॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥३॥
काँसोस्मितां हिण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम्॥४॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वा वृणोमि॥५॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥६॥
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतः सुराष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥७॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥८॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥९॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥१०॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भवकर्दम।
श्रियं वायस मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥
आपः स्रजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१३॥
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१४॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६॥

'ॐ सरसिजनिलये·····दीर्घमायुः' ॥

(इसे प्रारम्भ में ही दिया जा चुका है।)

लक्ष्मीसूक्त

पद्मानने पद्मिविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि।
विश्वप्रिये विष्णुमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व ॥१॥
पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षि पद्मसम्भवे।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥२॥
अश्वदायि च गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे जुषतां देवि! सर्वकामांश्च देहि मे ॥३॥
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वादिगवेरथम्।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥४॥
धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणो धनमस्तु मे ॥५॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥६॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्त्या श्रीसूक्तजापिनाम् ॥७॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥८॥
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम्।
लक्ष्मीं प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥९॥

महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥१०॥
आनन्दः कर्दमः श्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः।
ऋषयश्च श्रियः पुत्रा मयि श्रीर्देवि देवता ॥११॥
ऋणरोगादिदारिद्र्यं पापं च अपमृत्यवः।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥१२॥
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥१३॥

पुरुषसूक्त : तृतीय कलश

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥४॥
ततो विराडजायत विराजोऽअधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥१०॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥११॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकान् अकल्पयन् ॥१३॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥
अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टाविदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥२१॥
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि
रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥२२॥

नारायणानुवाक : चतुर्थ कलश

ॐ सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशम्भुवम् ।
विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं पदम् ॥
विश्वतः परमान्नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ।
विश्वमेवेदं पुरुषस्तद् विश्वमुपजीवति ॥
पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ।
नारायणं महाज्ञेयं विश्वात्मानं परायणम् ॥
नारायणपरो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ॥
नारायणपरो ध्याता ध्यानं नारायणः परः ।
यच्च किञ्चिज्जगत् सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥
अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
अनन्तमव्ययं कविं समुद्रेऽन्तविश्वशम्भुवम् ॥
पद्मकोशप्रतीकाशं हृदयं चाप्यधोमुखम् ।

अधोनिष्ठ्या वितस्त्यान्ते नाभ्यामुपरि तिष्ठति ।
ज्वालामालाकुलं भाति विश्वस्यायतनं महत् ।
सन्ततं शिराभिस्तु लम्बत्याकोशसन्निभम् ।।
तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
तस्य मध्ये महानग्निर्विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः ।।
सोऽग्रभुक् विभजन् तिष्ठन्नाहारमजरः कविः ।
तिर्यगूर्ध्वमधः शायी रश्मयस्तस्य सन्तताः ।।
सन्तापयति स्वं देहमापादतलमस्तकम् ।
तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थितः ।।
नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा ।
नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ।।
तस्याः शिखाया मध्ये तु परमात्मा व्यवस्थितः ।
स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।।

पाँच ब्रह्ममन्त्र : पञ्चम कलश

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवे नातिभवे भवस्व माम्भवोद्भवाय नमः ।।१।।
ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो
रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो
बलविकरणाय नमो बलाय नमो
बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ।।२।।
ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।।३।।
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।।४।।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ।।५।।

अम्भस्य पारेणानुवाक : षष्ठ कलश

ॐ हरिः । अम्भस्य पारे भुवनस्य मध्ये नाकस्य पृष्ठे
महतो महीयान् । शुक्रेण ज्योतींषि समनु प्रविष्टः ।
प्रजापतिंश्चरति गर्भे अन्तः । यस्मिन्निदं सञ्चविचैति
सर्वं यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।।
तदेव भूतं तदु भव्यमा इदं तदक्षरे परमे व्योमन् ।
येनावृतं खं च महीं च येनादित्यस्तपति तेजसा भ्राजसा च ।।

यमन्तः समुद्रे कवयो वयन्ति यदक्षरे परमे प्रजाः।
यतः प्रसूता जगतः प्रसूती तोयेन जीवन् व्यससर्ज भूम्याम् ॥
यदोषधीभिः पुरुषान् पशूंश्च विवेश भूतानि चराचराणि।
अतः परं नान्यदणीयसं हि परात्परं यन्महतो महान्तम्।
यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात् ॥
तदेवर्तं तदु सत्यमाहुः तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम्।
इष्टापूर्तं बहुधा जातं जायमानं विश्वं बिभर्ति भुवनस्य नाभिः ॥
तदेवाग्निस्तद्वायुः तत्सूर्यस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रममृतं तद् ब्रह्म तदापः स प्रजापतिः।
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ॥
कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः।
अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च कल्पताम् ॥
स आपः प्रदुधे उभे इमे अन्तरिक्षमथो सुवः।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्च न मध्ये परिज्रभत्।
न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद् यशः।
न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

अद्भ्यः सम्भूतो हिरण्यगर्भः इत्यष्टौ एष हि देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः स विजायमानः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठति विश्वतोमुखः। विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो हस्त उत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यां धमति सम्पत-त्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः। तेनस्तत् पश्यन् विश्वाभुवनानि विद्वान् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। यस्मिन्निदꣳ सञ्चविचैकं स ओतः विभुः प्रजासु। प्रतद्वोचे अमृतं न विद्वान् गन्धर्वो नाम निहितं गुहासु ॥

ब्रह्मानन्दवल्ली : सप्तम कलश

प्रथम अनुवाक

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति।

द्वितीय अनुवाक

अन्नाद्वै प्रजा: प्रजायन्ते। या: काश्च पृथिवीं श्रिता:। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्तत:। अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यत इति।

तस्माद्वा एतास्मादन्नरसमयादन्योऽन्तर आत्मा प्राणमय:। तेनैष पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविध:। तस्य प्राण एव शिर:। व्यानो दक्षिण: पक्ष:। अपान उत्तर: पक्ष:। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति।

तृतीय अनुवाक

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति। मनुष्या: पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायु:। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। सर्वमेव त आयुर्मन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते। प्राणो हि भूताना-मायु:। तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा य: पूर्वस्य।

चतुर्थ अनुवाक

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शारीर आत्मा य: पूर्वस्य।

तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयस्तेनैष पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविध:। तस्य श्रद्धैव शिर:। ऋतं दक्षिण: पक्ष:। सत्यमुत्तर: पक्ष:। योग आत्मा। मह: पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति।

पञ्चम अनुवाक

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवा: सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद। तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति। शरीरे पाप्मनो हित्वा। सर्वान्कामान्समश्नुत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा य: पूर्वस्य।

तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमय:। तेनैष पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविध:। तस्य प्रियमेव शिर:। मोदो दक्षिण: पक्ष:। प्रमोद उत्तर: पक्ष:। आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति।

सप्तम अनुवाक

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत्। तदात्मानं स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति।

यद्वै तत्सुकृतं रसो वै स:। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात्मक: प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति।

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां वितन्यते। अथ सोऽभयं गतो भवति।

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नु दरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति।

अष्टम अनुवाक

भीषास्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति।

सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति। युवा स्यात्साधुयुवाध्यापक आशिष्टो द्रढिष्ठो बलिष्ठस्तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः।

ते ये शतं मानुषा आनन्दाः। स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।

ये ते शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।

ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः। स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥

ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः। ये कर्मणा देवानपि यन्ति। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।

ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।

ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।
ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।
ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।
ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः। स य एवंविदस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति। तदप्येष श्लोको भवति।

नवम अनुवाक

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति।

एतं ह वाव न तपति। किमहं साधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति। स विद्वानेते आत्मानं स्पृणुते। उभे ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते। य एवं वेद। इत्युपनिषत्।

ब्रह्मानन्दवल्ली समाप्त

भृगुवल्ली : अष्टम कलश

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:।

प्रथम अनुवाक

भृगर्वै वारुणि: वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणं चक्षु: श्रोत्रं मनो वाचमिति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

द्वितीय अनुवाक

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत्। स तपस्तप्त्वा।

तृतीय अनुवाक

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा।

चतुर्थ अनुवाक

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। मनसा जातानि जीवन्ति। मन: प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत्। स तपस्तप्त्वा।

पञ्चम अनुवाक

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत्। स तपस्तप्त्वा।

षष्ठ अनुवाक

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

सप्तम अनुवाक

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्। शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। शरीरे प्राणाः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

अष्टम अनुवाक

अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्। आपो वा अन्नम्। ज्योतिरन्नादम्। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम्। ज्योतींष्यापः प्रतिष्ठिताः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान्कीर्त्या।

नवम अनुवाक

अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान्कीर्त्या।

दशम अनुवाक

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद् व्रतम्। तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते। एतद्वै मुखतोऽन्नं राद्धम्। मुखतोऽस्मा अन्नं राध्यते। एतद्वै मध्यतोऽन्नं राद्धम्। मध्यतोऽस्मा अन्नं राध्यते। एतद्वा अन्ततोऽन्नं राद्धम्। अन्ततोऽस्मा अन्नं राध्यते। य एवं वेद।

क्षेम इति वाचि। योगक्षेम इति प्राणापानयोः। कर्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः। विमुक्तिरिति पायौ। इति मानुषीः समाज्ञाः। अथ दैवीः। तृप्तिरिति वृष्टौ। बलमिति विद्युति। यश इति पशुषु। ज्योतिरिति नक्षत्रेषु। प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे। सर्वमित्याकाशे।

तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत। प्रतिष्ठावान् भवति। तन्मह इत्युपासीत। महान् भवति। तन्मन इत्युपासीत। मानवान् भवति। तदन्नम् ह्युपासीत। नम्यन्तेऽस्मै कामाः। तद् ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान् भवति। तद् ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत। पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः। परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः।

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः। स य एवंवित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य। इमांल्लोकान्कामान्नी कामरूप्यनुसञ्चरन्। एतत् साम गायन्नास्ते।

हा३वु हा३वु हा३वु। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादो३ऽहमन्नादो३-ऽहमन्नादः। अहं श्लोककृदहं श्लोककृदहं श्लोककृत्। अहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य। पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि। यो मा ददाति स इदेव मा३वाः। अहमन्नमन्नमदन्तमा३-द्मि। अहं विश्वं भुवनमभ्यभवा३म्। सुवर्णज्योतीः। य एवं वेद। इत्युपनिषत्।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवी-न्माम्। आवीद्वक्तारम्।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इति भृगुवल्ली समाप्ता

नवम कलश का पूजन

इस कलश का पूजन मूल मन्त्र से करना चाहिए।

(अभिषेक के कलश की स्थापना के समय प्रत्येक कलश की स्थापना के विविध मन्त्र हैं। कलश-स्थापना की विधि में इन मन्त्रों की विशिष्ट भूमिका है।)

कलश-स्थापन एवं मन्त्र

(प्रथम कलश)	(द्वितीय कलश)	(तृतीय कलश)	(चतुर्थ कलश)
इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त का आवाहन।	श्रीसूक्त का पाठ, लक्ष्मीसूक्त का पाठ	पुरुषसूक्त का पाठ	नारायणानुवाक

(पञ्चम कलश)	(षष्ठ कलश)	(सप्तम कलश)	(अष्टम कलश)	(नवम कलश)
पञ्च ब्रह्ममन्त्र	अम्भस्यपारेणा-नुवाक	ब्रह्मानन्दवल्ली (तै.उप.)	भृगुवल्ली (तै.उप.)	मूल मन्त्र



